



विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) के नवीन दिशा-निर्देश के अनुरूप

ISSN 2321-4945
PEER REVIEWED
& REFEREED JOURNAL

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

वर्ष : 75 अंक : 02-03

मई-जून, 2025



एक हृदय हो भारत जननी

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

(भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक शोध-पत्रिका)

PEERREVIEWED & REFEREED JOURNAL

www.arpsguwahati.com

वर्ष : 75

अंक : 02-03

मई-जून, 2025

परामर्श मंडल

- भारतभूषण महंत (असम) ● प्रो. आर. एस. सर्राजु (तेलंगाना) ● प्रो. किरण हाजरिका (पंजाब)
● प्रो. प्रदीप के शर्मा (सिक्किम) ● प्रो. एच. एन. वाघेला (गुजरात) ● डॉ. रीतामणि वैश्य (असम)

संपादक मंडल

- प्रो. देवाशीष महापात्र (तेजपुर) ● डॉ. अमूल्य चंद्र बर्मन (गुवाहाटी) ● प्रो. दिलीप कुमार मेधी (गुवाहाटी)
● डॉ. अनुशब्द (तेजपुर) ● डॉ. कुसुम कुंज मालाकार (गुवाहाटी) ● डॉ. जुरी दत्त (तेजपुर)
● डॉ. अंबेश्वर गोगोई (गुवाहाटी) ● डॉ. प्रांजल शर्मा वशिष्ठ (गुवाहाटी) ● डॉ. स्वप्नाली दास (गुवाहाटी)

प्रधान संपादक

डॉ. क्षीरदा कुमार शङ्कीया

संपादक

प्रो. मोहन

कार्यकारी संपादक

रामनाथ प्रसाद



असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

DWIBHASHI RASTRASEWAK : A Bilingual (Hindi & Assamese) Monthly Research Journal, Focused on Language, Literature, Society, Art and Culture, Partially funded by Central Hindi Directorate, Govt. of India and Published by Asom Rastrabhasha Prachar Samiti, Rupnagar, Guwahati-781032.

प्रकाशक :

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी-32

संपादकीय कार्यालय :

प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-32
फोन : 9101541395, 9101541380
ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

सहयोग राशि : 100/- (प्रति अंक)

शब्द संयोजन : रतिकान्त कलिता

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की ओर से मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शङ्कीया द्वारा साराइघाट फोटो टाइप्स प्रा. लिमिटेड, इंडस्ट्रियल इस्टेट, गुवाहाटी-781021 में मुद्रित, प्रकाशित एवं प्रसारित।

© सर्वाधिकार : असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी-32

द्विभाषी राष्ट्रसेवक में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। सभी कानूनी विवादों का निपटारा गुवाहाटी न्यायालय के अधीनस्थ होगा।

विषय सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
हिंदी विभाग			
	<i>संपादकीय</i>		5
1.	साहित्यिक अनुवाद और तकनीकी शब्दावली की अंतराश्रयता	✍ डॉ. अनुशब्द	7
2.	लोकनायक राम : तुलसी मानस के संदर्भ में	✍ डॉ. एस. प्रीति	12
3.	पंडित विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में लोक-संस्कृति	✍ डॉ. प्रीति राय	16
4.	सामाजिक उपन्यास दंताल हातीर ऊँईये खोवा हाउदा : एक अनुशीलन	✍ डॉ. बिद्या दास	26
5.	समकालीन हिंदी रंगमंच और पूर्वोत्तर भारत : मणिपुर के विशेष संदर्भ में	✍ डॉ. जमुना सुखाम	31
6.	भारत की नई शिक्षा नीति-2020 में स्वामी विवेकानंद के विचारों का समावेश	✍ मोहित कुमार शर्मा	
		✍ डॉ. नीरज रूवाली	38
7.	रवाई घाटी के लोक साहित्य में परिलक्षित धाड़ा परंपरा	✍ प्रमोद प्रसाद	43
8.	उतराखंड त्रासदी पर आधारित डॉ. निशंक के साहित्य का एक संक्षिप्त अवलोकन	✍ परमेश्वरी	50
9.	हिंदी का राष्ट्रीय एवं वैश्विक परिदृश्य	✍ जितेंद्र कुमार यादव	56
10.	स्वामी विवेकानंद : भारत में नारीवादी विचार के अग्रदूत	✍ डॉ. ब्रजेश कुमार प्रसाद	61
11.	छत्तीसगढ़ में संत गुरु घासीदास का सामाजिक प्रभाव	✍ चन्द्रकांत सोनवानी	67
12.	असमिया और ब्रज के लोकगीत : एक अध्ययन	✍ डॉ. कल्पना साईकीया	72
13.	किन्नर समुदाय का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण	✍ ग्लोरी जॉनसन सिंह	
		✍ डॉ. बृजेंद्र कुमार अग्निहोत्री	77
14.	तेजेंद्र शर्मा के कहानी संग्रह 'मौत एक मध्यांतर' की कहानियों में बाजारवाद	✍ पूर्णिमा सिंह	
		✍ डॉ. कुसुम कुंज मालाकार	82
15.	असम में हिंदी भाषा का प्रयोग और विकास	✍ डॉ. अर्चना हजारिका	87
16.	ममता कालिया की कहानियों में सांस्कृतिक महत्ता	✍ ममता देवी	
		✍ डॉ. बृजेंद्र कुमार अग्निहोत्री	92
17.	हिंदी विज्ञान कथा का उद्भव : आलोचनात्मक मूल्यांकन	✍ डॉ. आशीष कुमार यादव	97
18.	पूर्वोत्तर भारत की आदिवासी कहानियाँ : सामाजिक यथार्थ एवं परम्पराएँ	✍ जेरेलडिना मुचवार	102
19.	हिमाचल प्रदेश के पंगवाल जनजातीय समाज के संस्कारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन	✍ केहर सिंह	
		✍ प्रो. कंवर चन्द्रदीप सिंह	109
20.	हिंदी दलित पत्रकारिता में दलित समाज का वर्तमान परिदृश्य	✍ अभिषेक कुमार	115
21.	झरोखों से झाँकता सौंदर्य : बीकानेर की हवेलियों का अलंकरण	✍ सोनू पारीक	
		✍ डॉ. सोनिया रानी	121
22.	वैश्वीकरण के संदर्भ में जितेंद्र श्रीवास्तव के काव्य का अनुशीलन	✍ पूजा कुशवाहा	
		✍ डॉ. विनोद कुमार	126
23.	हिंदी और असमिया भाषा के व्याकरणिक कोटियों में उत्पन्न व्यतिरेकियाँ : एक परिचयात्मक अध्ययन	✍ एन. ओकेंद्रो सिंह	132

অসমীয়া বিভাগ

24. অসমৰ বুৰঞ্জীমূলক আখ্যানগীতত অসমৰ ছাত্ৰ আন্দোলনৰ প্রতিচ্ছবি : এক অধ্যয়ন	ড° ভাস্কৰজিৎ বৰা	141
25. কবিতাৰ সমাজতত্ত্ব আৰু হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতা	শচীন শৰ্মা	146
26. য়েছে দৰজে ঠংচিৰ শৰ কটা মানুহ উপন্যাসত 'অন্য'ৰ ইতিহাসৰ প্ৰতিফলন	ড° শিখা দেৱী নাথ	155
27. ইমৰান শ্বাহৰ জবানবন্দী উপন্যাসত সমাজ পৰিবৰ্তন	জ্যোৎস্না বড়ো	161
28. অসমৰ নৱবৈষ্ণৱ সাহিত্যৰ ব্যক্তি স্বতন্ত্ৰতা আৰু সামাজিক ন্যায়	ড° গুণীন শইকীয়া	167
29. এধানী মাহীৰ হাঁহি : ঔপনিৱেশিক আমোলত অসমৰ সামাজিক পট পৰিৱৰ্তনৰ জীৱন্ত দলিল	ড° উৎপলা দাস	175
30. বৰ্মা দাশৰ গল্পত নগৰীয়া জীৱন : এটি বিশ্লেষণ	ড° প্ৰফুল্ল কুমাৰ নাথ ড° বনজিৎ ঠাকুৰীয়া	184
31. নতুন ৰাষ্ট্ৰীয় শিক্ষানীতি, ২০২০ আৰু শংকৰদেৱৰ শিক্ষা ব্যৱস্থাৰ প্ৰাসংগিকতা	ড° মনীষা চলিহা	193
32. বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ উপন্যাসত প্ৰতিফলিত লোক-সংস্কৃতিৰ উপাদান (আই আৰু শতাব্দী উপন্যাসৰ বিশেষ উল্লেখসহ)	নিৰ্মালী বৰা	198
33. ঔপনিৱেশিক অসমৰ ইতিহাস চৰ্চাত পুৰাকথা-আখ্যানৰ প্ৰসংগ	চন্দনা দাস ড° পাৰমিতা দাস	205
34. লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ সাহিত্যত শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱৰ কৃষ্ণ	ড° ৰ'দালি চেতিয়া	209
35. বিহুগীতত প্ৰতিফলিত অসমীয়া পৰম্পৰাগত সাজপাৰ : এক আলোচনা	ৰিজুমণি দাস	216
36. সামাজিক পুঁজি আৰু সমাজ পৰিৱৰ্তন : ডাইনী হত্যাৰ বিৰুদ্ধে বীৰৱালা ৰাভাৰ সংগ্ৰামৰ এক আলোচনা	জ্যোতিষ্মতা ভূঞা ড° প্ৰিয়ংকা শৰ্মা	223
37. ড° ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়াৰ অসুৰ গল্পৰ নাট্য-অভিযোজনা এক বিশ্লেষণ	অৰন বুঢ়াগোহাঁই ড° সত্যজিৎ দাস	233
38. স্বৰ্ণ বৰাৰ 'সোৱণশিৰিত ৰেলৰ উকি' উপন্যাসত মিচিং জনজাতিৰ সমাজ-সংস্কৃতিৰ চিত্ৰণ	যুগল বৰগোহাঁই	241
39. যুৱ অধ্যয়ন তত্ত্বৰ দৃষ্টিকোণেৰে মনালিছা শইকীয়াৰ সত্যবান দূৰ হৈ নাযাবা উপন্যাসৰ এক অধ্যয়ন	চয়নিকা ৰাজখোৱা ড° প্ৰভাত ভূঞা	248
40. চাহ জনগোষ্ঠী আৰু সাদৰি ভাষাৰ এটি বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন (কোৰামোৰ, পানেৰী আৰু ডিমাকুচি চাহ বাগিচাৰ বিশেষ উল্লেখসহ)	দিপাঞ্জলী মেধি দাস ড° প্ৰণীতা দেৱী	256
41. অসমৰ সংস্কৃতিত পৰম্পৰাগত অলংকাৰ : ইয়াৰ গুৰুত্ব আৰু তাৰ লগত জড়িত লোকবিশ্বাস	প্ৰণীতা শৰণীয়া ড° কাকলি গগৈ	260

योग : भारत का आध्यात्मिक उपहार वैश्विक जीवनशैली का आधार

21 जून को प्रतिवर्ष अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के रूप में मनाया जाना, न केवल भारत की सांस्कृतिक विरासत की वैश्विक स्वीकृति का प्रतीक है, बल्कि यह योग की सार्वभौमिक महत्ता और मानवता के लिए उसके योगदान को भी उजागर करता है। योग एक शारीरिक व्यायाम मात्र नहीं, बल्कि जीवन जीने की समग्र पद्धति है—तन, मन और आत्मा के समन्वय की कला है। यह प्राचीन भारतीय ज्ञान का वह रत्न है, जो आज मानवता के स्वास्थ्य, शांति और समरसता का आधार बन रहा है। पतंजलि योगसूत्र (1.2) के अनुसार, ‘योगः चित्तवृत्तिनिरोधः’ अर्थात् – योग चित्त की वृत्तियों का निरोध है।

भारतवर्ष में योग की परंपरा हजारों वर्षों पुरानी है। वैदिक युग में ऋषियों ने ध्यान, तप और आत्मानुभूति के माध्यम से योग की विविध शाखाओं को विकसित किया। महर्षि पतंजलि ने अपने ‘योगसूत्र’ में योग को एक व्यवस्थित दर्शन के रूप में प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने अष्टांग योग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—का उल्लेख किया। उदाहरणार्थ, योगसूत्र (2.29) का निम्न श्लोक द्रष्टव्य है—

‘यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहारः ।

धारणा ध्यान समाधयोऽष्टाव अङ्गानि ॥’

योग न केवल आध्यात्मिक उन्नति का साधन था, बल्कि यह जीवन के सभी आयामों—स्वास्थ्य, आचरण, सामाजिक समरसता और मानसिक संतुलन से भी जुड़ा रहा है। वेदों, उपनिषदों, भगवद्गीता तथा तंत्र ग्रंथों में योग का गहन वर्णन मिलता है।

संयुक्त राष्ट्र महासभा ने भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी के प्रस्ताव पर 11 दिसंबर, 2014 को 21 जून को ‘अंतरराष्ट्रीय योग दिवस’ घोषित किया। 21 जून को इसलिए चुना गया, क्योंकि यह वर्ष का सबसे लंबा दिन होता है और सूर्य की उपस्थिति को भारतीय दर्शन में अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। प्रधानमंत्री मोदी जी ने संयुक्त राष्ट्र में अपने भाषण में कहा था—‘योग भारत की प्राचीन परंपरा का एक अमूल्य उपहार है। यह मन और शरीर, विचार और क्रिया, संयम और पूर्ति का समन्वय है—यह स्वास्थ्य और कल्याण के लिए एक समग्र दृष्टिकोण प्रदान करता है।’

आज विश्व के लगभग हर देश में योग को अपनाया जा चुका है। अमेरिका, यूरोप, ऑस्ट्रेलिया, अफ्रीका और एशिया के अनेक देशों में योग शिक्षण केंद्र, योग प्रशिक्षक और थेरेपिस्ट सक्रिय रूप से कार्य कर रहे हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने भी योग को एक प्रभावी स्वास्थ्य प्रणाली के रूप में मान्यता दी है।

‘योगेन चित्तस्य पदेन वाचां, मलं शरीरस्य च वैद्यकेन ।

योऽपाकरोत्तं प्रवरं मुनिनां, पतञ्जलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि ॥’

इस श्लोक में महर्षि पतंजलि को नमन करते हुए कहा गया है कि उन्होंने योग के द्वारा चित्त की शुद्धि, व्याकरण के द्वारा वाणी की शुद्धि और आयुर्वेद के द्वारा शरीर की शुद्धि की। आज योग न केवल स्वास्थ्य बल्कि तनाव प्रबंधन, डिप्रेशन, मोटापा, अनिद्रा, मधुमेह, उच्च रक्तचाप, जैसी समस्याओं में एक प्रभावी

चिकित्सा प्रणाली के रूप में सिद्ध हो रहा है। इसके साथ ही कॉर्पोरेट जगत, सेना, विद्यालय, विश्वविद्यालय, कारागार, पुलिस प्रशिक्षण केंद्र आदि में भी योग को अपनाया गया है।

भारतीय संस्कृति में योग कोई नवाचार नहीं, बल्कि यह जीवन का मूल आधार रहा है। योग के माध्यम से भारत ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के विचार को व्यावहारिक स्वरूप दिया। योग में आत्मा और परमात्मा के मिलन की अवधारणा भारतीय दर्शन के अद्वैत सिद्धांत से जुड़ी है।

‘सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥’

उपनिषद् का यह मंत्र योग के उद्देश्य को सार रूप में प्रस्तुत करता है—सार्वभौमिक कल्याण। भारत ने योग को सदैव एक आध्यात्मिक, शारीरिक और मानसिक सुधार की साधना के रूप में देखा है। ऋषि-मुनियों ने हिमालय की कंदराओं में, आश्रमों में और समाज में रहकर योग के विविध रूपों का अभ्यास किया और समाज को इसका लाभ पहुंचाया।

वर्तमान समय में जब मानव जीवन तनाव, चिंता, प्रतिस्पर्धा और अशांति से ग्रस्त है, योग मानवता के लिए एक अमूल्य वरदान बनकर उभरा है। आज के डिजिटल युग में जहाँ शारीरिक निष्क्रियता, मानसिक व्याकुलता और सामाजिक अलगाव बढ़ते जा रहे हैं, वहाँ योग एक संतुलनकारी शक्ति के रूप में कार्य करता है। इसलिए योग को भगवद्गीता (2.48) में ‘समत्वं योग उच्यते’ कहा गया है, अर्थात् समभाव या संतुलन ही योग है। यह श्लोक बताता है कि योग केवल आसनों का अभ्यास नहीं, बल्कि जीवन की स्थितियों के प्रति संतुलित दृष्टिकोण अपनाना भी है। यह मानसिक दृढ़ता, निर्णय क्षमता और आत्मनियंत्रण को विकसित करता है। योग के अभ्यास से व्यक्ति में धैर्य, सहनशीलता, सृजनात्मकता, आत्मबोध और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है। यही कारण है कि आज शिक्षा संस्थानों में योग को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जा रहा है, ताकि बचपन से ही विद्यार्थी शारीरिक और मानसिक रूप से सशक्त बन सकें।

भारत अब न केवल वैश्विक शक्ति के रूप में उभर रहा है, बल्कि एक आध्यात्मिक शक्ति के रूप में भी पुनः प्रतिष्ठित हो रहा है। योग के माध्यम से भारत ने यह सन्देश दिया है कि आर्थिक, सैन्य और तकनीकी प्रगति के साथ-साथ आंतरिक शांति और सामूहिक कल्याण भी अत्यावश्यक है।

‘अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।

उदारचारितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥’

योग उसी उदार भावना का प्रसार करता है, जिसमें समस्त मानवता एक परिवार के रूप में देखी जाती है। यह केवल भारतीयों के लिए नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए है। अंतरराष्ट्रीय योग दिवस एक ऐसा पर्व बन चुका है, जो सम्पूर्ण विश्व को भारत के ज्ञान, परंपरा और मानव कल्याण के दृष्टिकोण से जोड़ता है। यह दिवस न केवल स्वास्थ्य की ओर लौटने का आह्वान है, बल्कि यह एक वैचारिक क्रांति है—जहाँ मनुष्य बाहरी भोग की ओर नहीं, बल्कि आत्मबोध की ओर अग्रसर होता है। आज आवश्यकता है कि हम योग को एक दैनिक जीवन शैली के रूप में अपनाएं, न कि केवल एक दिन के उत्सव तक सीमित रखें। जब व्यक्ति योगी बनेगा, तभी समाज स्वस्थ होगा, और जब समाज स्वस्थ होगा, तभी राष्ट्र और विश्व में स्थायी शांति और प्रगति सम्भव होगी। इस अंतरराष्ट्रीय योग दिवस पर आइए हम सब संकल्प लें—‘योग को अपनाएं, जीवन को सजाएं और विश्व को स्वस्थ, शांत और समरस बनाएं।’

सभी सुधी पाठकों को अंतरराष्ट्रीय योग दिवस की हार्दिक शुभकामनाएँ!

साहित्यिक अनुवाद और तकनीकी शब्दावली की अंतराश्रयता



डॉ. अनुशब्द

वर्तमान वैश्विक युग में अनुवाद केवल भाषांतर की प्रक्रिया नहीं, बल्कि संस्कृतियों के अंतर्लीन संवाद का माध्यम बन चुका है। विशेषतः साहित्यिक अनुवाद की प्रक्रिया में जब कोई रचनाकार अपने रचना-संसार को एक भाषा से दूसरी भाषा में पहुंचाने का प्रयास करता है, तो वह केवल शब्द नहीं, संवेदना, संस्कृति, प्रतीक, संदर्भ और विचार भी स्थानांतरित कर रहा होता है। इस पूरी प्रक्रिया में तकनीकी शब्दावली की भूमिका अत्यंत निर्णायक हो जाती है, क्योंकि आज का साहित्य मात्र भावुक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि दर्शन, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, राजनीति, विज्ञान, मीडिया और डिजिटल यथार्थ से संवाद करता हुआ एक बहुआयामी कलेवर ले चुका है। इस संदर्भ में यह प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है कि क्या तकनीकी शब्दावली साहित्यिक अनुवाद की प्रकृति को यांत्रिक बना देती है? या वह अर्थ की सटीकता और सांस्कृतिक बोध को गहराई प्रदान करती है? यह शोध आलेख इन्हीं प्रश्नों का उत्तर खोजने का प्रयास है।

‘तकनीकी शब्दावली’ (technical terminology) शब्दों का वह वर्ग है जो किसी विशिष्ट क्षेत्र में प्रयुक्त विशिष्ट अर्थों और अवधारणाओं को संप्रेषित करता है। जैसे — ‘मनोविश्लेषण’, ‘प्रसार-क्रांति’, ‘सांस्कृतिक विमर्श’, ‘डिजिटल अभिव्यक्ति’, ‘संवेगात्मक बुद्धिमत्ता’ आदि शब्द अपने-अपने क्षेत्र में तकनीकी हैं। इनका अनुवाद केवल शाब्दिक नहीं, बल्कि वैचारिक और प्रयोगगत स्तर पर होना चाहिए। Snell-Hornby के अनुसार, ‘A technical term is not only a linguistic unit, it’s a cultural signifier.’¹ हिंदी साहित्य में, विशेषकर समकालीन रचनाओं में ऐसे अनेक शब्दों का प्रयोग किया जाता है जो अन्य विषयों की तकनीकी अवधारणाओं से आए हैं। जब उनका अनुवाद होता है तो उनसे जुड़े सांस्कृतिक मंतव्य, सन्दर्भ और अर्थविस्तार को समझना अनिवार्य होता है।

साहित्यिक अनुवाद में सबसे बड़ी चुनौती यह होती है कि उसमें भाव और विचार दोनों के स्तर पर एक प्रकार की ‘प्रेरित पुनर्रचना’ (inspired recreation) करनी होती है। यह न तो केवल स्रोत भाषा के प्रति निष्ठावान होता है और न ही मात्र लक्ष्य भाषा की सुविधा के लिए समर्पित। इसमें द्वि-भाषिक, द्वि-सांस्कृतिक और द्वि-प्रासंगिक चेतना का समावेश होता है। जैसे, मन्नू भंडारी के उपन्यास ‘आपका बंटी’ में प्रयुक्त ‘अलगाव’, ‘टूटन’, ‘मानसिक विखंडन’ जैसे शब्द मनोवैज्ञानिक तकनीकी शब्द हैं। इनका अंग्रेजी में अनुवाद करते हुए Alienation, Fragmentation, Psychological trauma जैसे पदों का प्रयोग किया गया है,

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
तेजपुर विश्वविद्यालय
नपाम तेजपुर (असम)–784028
☎ 9555638788
✉ dranushabda@gmail.com

किंतु अनुवादक को पात्रों की पारिवारिक, सामाजिक और भावनात्मक पृष्ठभूमि को समझते हुए इनका चयन करना पड़ता है।² इसी प्रकार, निर्मल वर्मा के उपन्यास 'वे दिन' में जब पात्र 'वैकल्पिक सत्य' और 'विलग अनुभूति' जैसे दार्शनिक पदों का उपयोग करते हैं, तो अनुवादक को 'Alternate reality' या 'Detached experience' जैसे पदों की सहायता लेनी पड़ती है, जो विशुद्ध तकनीकी पद, परंतु गहन संवेदना के वाहक भी हैं।

कविता भाषा की दृष्टि से सबसे अधिक सघन, प्रतीकात्मक और भावनात्मक विधा है। तकनीकी शब्दों का प्रयोग कविता में एक ओर जहाँ उसे समकालीन संदर्भ प्रदान करता है, वहीं दूसरी ओर उसकी सौंदर्यात्मकता और लयात्मकता के लिए चुनौती भी प्रस्तुत करता है। आधुनिक हिंदी कविता के तीन प्रमुख और प्रिय कवियों—केदारनाथ सिंह, अरुण कमल तथा कुंवर नारायण की कविताओं का विश्लेषण यहां प्रस्तुत है—

केदारनाथ सिंह की एक प्रसिद्ध कविता है 'बाघ'। इस कविता में बाघ केवल एक जीव नहीं, बल्कि स्मृति, भय, संस्कृति और अंतर्मन का प्रतीक है। कविता में बाघ बार-बार एक ऐसे बिंब के रूप में आता है जो भाषा, भूगोल और समय को लाँघकर कवि के भीतर की चेतना में प्रवेश करता है। इस कविता में 'भूगोल' जैसे शब्दों का प्रयोग मात्र तकनीकी नहीं है, वह एक सांस्कृतिक स्थलमिति का संकेतक बनता है। जब इसे अंग्रेजी में अनूदित किया जाता है, तो 'भूगोल' का लिटरल अनुवाद 'Geography' करना पर्याप्त नहीं बल्कि उसके भावात्मक और सांस्कृतिक विन्यास को भी बनाए रखना अनिवार्य है। नहीं तो कविता के भाव का क्षरण हो जाएगा।

अरुण कमल की कविताओं में समकालीन शिक्षा-प्रणाली की आलोचना के क्रम में कई तकनीकी शब्दों का प्रयोग किया गया है। जैसे — 'पाठ्यक्रम', 'शिक्षा नीति', 'प्रशासन', 'समग्र मूल्यांकन', 'वर्ग-विभाजन' आदि। इन शब्दों का अंग्रेजी में Curriculum, Educational policy, Administration, Comprehensive evaluation, Class division के रूप में अनुवाद किया जाता है। अनुवादक को यह सुनिश्चित करना होता है कि इन शब्दों की शाब्दिक स्पष्टता के साथ-साथ सामाजिक

व्यंग्यात्मकता भी संप्रेषित हो। जैसे कविता की एक पंक्ति है—'बच्चों की आंखों में भर दिया गया पाठ्यक्रम'। यह केवल पाठ्य योजना का उल्लेख नहीं, बल्कि विचारधारा के आरोपण की आलोचना भी है। अतः 'Curriculum imposed into children's eyes' जैसे अनुवाद में 'imposed' शब्द तकनीकी व्याख्या को सशक्त बनाता है।

इसी तरह यदि हम कुंवर नारायण की कविताओं पर नजर डालें तो उनकी कविताएँ दार्शनिकता और ऐतिहासिक चेतना से युक्त होती हैं। कुंवर जी की कविताओं में प्रयुक्त 'सभ्यता', 'संस्कृति', 'राजनीति', 'न्याय', 'मानवता' जैसे शब्द अपनी मूल प्रकृति में तकनीकी हैं। इनका अनुवाद 'civilization', 'culture', 'politics', 'justice', 'humanity' के रूप में होता है। किंतु कुंवर नारायण की कविता में इन शब्दों के भीतर स्मृति, शंका और प्रश्नाकुलता का भाव निहित है। अतः इनका रचनात्मक अनुवाद केवल शब्दों की अदला-बदली नहीं, बल्कि भावों की पुनर्रचना होती है। इस संदर्भ में प्रसिद्ध आलोचक निर्मला जैन बिल्कुल ठीक कहती हैं कि 'कविता की भाषा की भूमिका दुहरी होती है। वह कवि की संवेदना को अभिव्यक्त करती है और कलात्मक प्रभाव पैदा करती है।' ³ कविता कि इस भाषा का अनुवाद करते समय 'अनुवादक का यह दायित्व होता है कि अपने पाठक पर अनुवाद के द्वारा उसी प्रभाव का सृजन करे जो मूल रचना से उस पर पड़ रहा था।' ⁴

भारतीय भाषाओं, विशेषकर हिंदी में मुहावरे और लोकोक्तियां भाषा की जीवंतता का प्रमाण हैं। इनसे भाषा कि खूबसूरती अनपेक्षित रूप से बढ़ जाती है। लेकिन इनका अनुवाद सबसे कठिन या कहे कि चुनौतीपूर्ण कार्यों में से एक है, क्योंकि उनमें कई सारे सांस्कृतिक संदर्भ और प्रसंग सन्निहित होते हैं। उदाहरणस्वरूप, 'नाक कटना' का शाब्दिक अनुवाद 'nose being cut' न केवल हास्यास्पद है, बल्कि निरर्थक भी है। इसका अर्थ है — सामाजिक अपमान। अतः तकनीकी व्याख्या द्वारा इसका अनुवाद 'loss of honour या social disgrace' के रूप में किया जाना अधिक उपयुक्त होगा। इसी प्रकार 'नौ दो ग्यारह होना' का अनुवाद 'to vanish' या

‘strategic disappearance’ के रूप में किया जा सकता है, जो अंग्रेजी में तकनीकी प्रशासनिक शब्द के रूप में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मुहावरों और लोकोक्तियों का अनुवाद जब तकनीकी शब्दावली की सहायता से किया जाता है, तो अर्थ की सटीकता में वृद्धि होती है, यद्यपि उसकी साहित्यिकता को बनाए रखने की चुनौती बनी रहती है।

21वीं सदी में साहित्यिक लेखन और अनुवाद दोनों पर डिजिटलीकरण और वैश्विक संचार तकनीकों का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। साहित्य अब केवल कागज़ की दुनिया तक सीमित नहीं रहा, बल्कि वह वेब टेक्स्ट, ब्लॉग, ई-पत्रिका, सोशल मीडिया कविता और डिजिटल हाइपर टेक्स्ट के रूप में भी उभर रहा है। इस नए परिदृश्य में ‘algorithm’, ‘interface’, ‘virtuality’, ‘metadata’, ‘digital footnotes’ जैसे तकनीकी शब्दों का प्रयोग न केवल सामान्य भाषा में हो रहा है, बल्कि साहित्य में भी इनका प्रयोग स्वाभाविक हो चुका है। जैसे किसी डिजिटल कविता में ये पंक्तियाँ आती हैं- ‘मैं एक algorithm के सहारे/ अपने मन की virtuality में/ तुम्हारा trace निकाल रहा हूँ’। यहाँ algorithm, virtuality, trace जैसे शब्दों का अगर हम पुरानी शब्दावली में अनुवाद करें तो कविता की समकालीनता नष्ट हो जाएगी। ये तकनीकी शब्द ही आज की भावनाओं के नवीन प्रतीक बन चुके हैं। जब इन शब्दों का अनुवाद किया जाता है, तो उनका तकनीकी सन्दर्भ भी साथ लाना आवश्यक हो जाता है। जैसे-

Virtuality=आभासिता नहीं, बल्कि सन्निकट अनुभूति का आभास, Interface = केवल ‘अंतरफलक’ नहीं, बल्कि संवेदनशील माध्यम। इसलिए डिजिटल युग के साहित्यिक अनुवाद में तकनीकी शब्दों की अनदेखी अनुवाद को अप्रासंगिक बना सकती है।

तकनीकी शब्दों के अनुवाद की कार्यप्रणाली पर ध्यान देना भी आवश्यक है। तकनीकी शब्दों के अनुवाद हेतु एक सुव्यवस्थित कार्यप्रणाली की आवश्यकता होती है। इसके कुछ मुख्य सोपान इस प्रकार हैं-

संप्रेषणीयता की प्राथमिकता : अनुवादक को यह तय करना होता है कि तकनीकी शब्दों का अनुवाद लक्षित

पाठकों के लिए कितना बोधगम्य है। अनूदित पाठ की बोधगम्यता को प्राथमिकता देते हुए उसे footnote, glossary, या contextual explanation अवश्य देना चाहिए ताकि पाठक सही संदर्भों के साथ अपेक्षित अर्थ को ग्रहण कर सके। अनुवादक का दायित्व एक भाषा के मूल पाठ के लेखकीय अर्थ को पूरी संजीदगी और संप्रेषणीयता के साथ दूसरी भाषा में पहुंचाना है।

विषयवस्तु की सटीकता : अनुवादक को इस बात का हमेशा ध्यान रखना होता है कि मूल पाठ और अनूदित पाठ के बीच कम-से कम अंतराल हो। इसके लिए उसे अनुवाद के दौरान विविध प्रसंगों में विषय विशेष के तकनीकी शब्दों का प्रयोग करना होता है। मान लीजिए यदि किसी पाठ में मनोविज्ञान या दर्शनशास्त्र के तकनीकी शब्द हैं — जैसे ‘repression’, ‘Oedipal conflict’, ‘existential angst’, तो उनका अनुवाद अत्यंत सावधानीपूर्वक उन्हीं विषयों के संदर्भ में करना होता है। जैसे- existential angst को ‘अस्तित्वगत उद्विग्नता’ कहना एक सटीक तकनीकी अनुवाद है। इसीलिए तो अनुवाद को सही संदर्भ में उपयुक्त शब्दों के चयन और प्रयोग की कला कहते हैं।

रूपात्मक साम्यता : अनुवाद में शब्दों के phonetic या rhythmic matching का भी ध्यान रखा जाता है — विशेषकर कविता में। जैसे- ‘bio politics’ का अनुवाद केवल ‘जीव-राजनीति’ कर देना पर्याप्त नहीं है, उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भभूमि को भी व्याख्यायित करना होगा। केवल शब्द के स्थान पर शब्द और वाक्य के स्थान पर वाक्य रख देने से अनुवाद नहीं होगा। यह अनुवादक की जिम्मेदारी है कि वह मूल पाठ के कथ्य या अर्थ की रक्षा करे, उसके शब्द या वाक्य की नहीं।

नाइडा के अनुसार, अनुवाद में दो दृष्टिकोण होते हैं— पहला, Formal Equivalence (औपचारिक समानता) और दूसरा, Dynamic Equivalence (गतिशील समानता)⁵। तकनीकी शब्दों के अनुवाद में Formal equivalence यानी औपचारिक समानता महत्वपूर्ण होता है, ताकि संकल्पनात्मक समानता बनी रहे, लेकिन साहित्यिक अनुवाद में Dynamic equivalence

lence अर्थात् गतिशील समानता को प्राथमिकता दी जाती है, जिससे कि भाव, शैली और सांस्कृतिक अनुकूलता बनी रहे। सुसन बैसनेट (Susan Bassnett) का मानना है कि- 'A translator must be a cultural mediator when handling technical terminology in literary text.'⁶ यानी एक अनुवादक को किसी साहित्यिक पाठ में आए तकनीकी शब्दावली का अनुवाद करते समय निश्चित रूप से सांस्कृतिक संदर्भों का भी ध्यान रखना चाहिए। अनुवादक को अनुवाद-प्रक्रिया में स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा के बीच सांस्कृतिक मध्यस्थ की भूमिका निभानी पड़ती है। वास्तव में, अनुवाद दो संस्कृतियों के बीच सेतु निर्माण का कार्य करता है। इस प्रक्रिया में तकनीकी शब्दों को एक संवेदनशील तथा आवश्यक घटक के रूप में देखा जाना चाहिए, न कि किसी यांत्रिक अवरोध के रूप में। इस दृष्टि से हिंदी की कुछ साहित्यिक रचनाओं के अंग्रेजी अनुवादों का विश्लेषण यहाँ आवश्यक है। विशेष रूप से इस बात पर ध्यान देते हुए कि तकनीकी शब्दों की भूमिका कैसे उनके अर्थ और प्रभाव को परिवर्तित करती है।

मन्नू भंडारी का 'आपका बंटी' उपन्यास एक टूटते हुए परिवार की मार्मिक कहानी है, जिसमें मनोवैज्ञानिक शब्दों का गहरा प्रभाव है। जैसे- 'बंटी की मानसिक अवस्था विखंडित हो चुकी थी।' इसका अंग्रेजी अनुवाद होगा- 'Buntty's mental state was fragmented.' यहाँ 'fragmented' शब्द फ्रायडियन मनोविज्ञान का तकनीकी पद है, जो मानसिक अस्थिरता को गहराई से अभिव्यक्त करता है। यदि इसकी जगह 'broken' या 'disturbed' कहा जाता, तो अपेक्षित प्रभाव या तकनीकी सटीकता समाप्त हो जाती।⁷ इसी तरह से यदि हम भीष्म साहनी के उपन्यास 'तमस' को देखें तो यह उपन्यास विभाजन की त्रासदी पर आधारित है। इसमें 'सांप्रदायिकता', 'राजनीतिक उकसावे', 'धार्मिक उन्माद'⁸ जैसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं। इन शब्दों का अनुवाद क्रमशः 'communalism', 'political provocation', 'religious fanaticism' होगा। ये सभी शब्द राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र के तकनीकी पद हैं। अनुवादक से इस उपन्यास के अनुवाद के क्रम में न केवल अंतर्वस्तुगत

यथार्थ को सुरक्षित रखने की, बल्कि विचारधारात्मक परिप्रेक्ष्य को भी पूरी गंभीरता से समझने की अपेक्षा की जाएगी। इन तकनीकी शब्दों के प्रयोग से ही अनुवाद सशक्त बन पाएगा। यदि हम 'आधुनिक नाटकों के मसीहा मोहन राकेश' की बात करें तो उनके प्रसिद्ध नाटक 'आषाढ़ का एक दिन' में संस्कृत-परंपरा, ऐतिहासिक चेतना और नाट्यशास्त्रीय शब्दों का खूब प्रयोग हुआ है। जैसे — 'नायक', 'संन्यास', 'साहित्य', 'प्रस्तावना'⁹ आदि। इनका अनुवाद क्रमशः 'protagonist', 'renunciation', 'literature', 'prologue' के रूप में किया गया है। यहाँ 'prologue' शब्द नाट्य संरचना का तकनीकी शब्द है, जो नाटक की भूमिका को प्रकट करता है। यदि 'introduction' कहा जाता, तो शायद वह साहित्यिक अर्थ नहीं दे पाता। कालजयी व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई की व्यंग्य रचनाओं में प्रशासन, न्याय व्यवस्था और राजनीतिक तकनीकी शब्दों की भरमार होती है— जैसे 'नोटशीट', 'फाइलिंग सिस्टम', 'सामाजिक न्याय', 'संविधान की व्याख्या'¹⁰ आदि। इनका अंग्रेजी अनुवाद करते समय— 'file notation', 'social justice', 'constitutional interpretation' जैसे तकनीकी शब्दों का प्रयोग किया जाता है, जो अभिधात्मक के साथ-साथ व्यंग्यात्मक अर्थ को भी बनाए रखते हैं। बहरहाल, एक सफल अनुवाद और अनुवादक के लिए विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों, विषयों एवं उनमें प्रचलित तकनीकी शब्दावली की जानकारी तो आवश्यक है ही लक्षित पाठकों के बौद्धिक, सांस्कृतिक और भाषिक स्तर को भी ध्यान में रखना निहायत जरूरी है। साथ ही यह भी ध्यातव्य है कि पाठ यदि तकनीकी पृष्ठभूमि का है, तो शब्दों का अनुवाद तकनीकी रूप में बनाए रखना उचित होता है लेकिन यदि पाठ का भावनात्मक या काव्यात्मक पक्ष अधिक प्रबल है, तो तकनीकी शब्दों को अनुवाद में इस प्रकार प्रयुक्त किया जाना चाहिए कि वे कविता की आत्मा, संगीत और संवेदना को बाधित न करें। यह हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि अनुवादक मूल पाठ में निहित भाव या कथ्य का गला नहीं घोंट सकता। उसकी नैतिक जिम्मेदारी है कि वह पाठ के मूल अर्थ या कथ्य की रक्षा करे।

कुल मिलाकर, साहित्यिक अनुवाद एक बहुस्तरीय संप्रेषण की प्रक्रिया है, जिसमें भाषा के साथ-साथ संस्कृति, संदर्भ, संवेदना और विचारधारा का भी स्रोत भाषा से लक्ष्य भाषा में संवहन होता है। तकनीकी शब्दावली इस प्रक्रिया में एक दोधारी तलवार की तरह होती है—वह एक ओर अनुवाद को सटीक और प्रामाणिक बनाती है, तो दूसरी ओर यदि उसका उपयोग पर्याप्त सजगता न किया जाए तो वह पाठ की साहित्यिकता को यांत्रिकता में बदल सकती है। वर्तमान युग में साहित्य केवल भावनात्मक अनुभव नहीं, बल्कि एक जटिल बौद्धिक, दार्शनिक और

वैज्ञानिक अंतर्वस्तु वाला माध्यम बन चुका है। ऐसे में तकनीकी शब्दों के सटीक और सृजनात्मक अनुवाद के बिना साहित्यिक अनुवाद अधूरा, अनभिव्यक्त और अप्रामाणिक रह जाएगा। यह भी स्पष्ट है कि तकनीकी शब्दों का केवल अनुवाद नहीं, संप्रेषणात्मक पुनर्सृजन (communicative recreation) आवश्यक होता है। अनुवादक को एक समय में भाषाविद्, साहित्यकार, विषय-विशेषज्ञ और सांस्कृतिक मध्यस्थ की भूमिका निभानी होती है। ऐसे में तकनीकी शब्दावली अनुवाद को केवल सहज नहीं, बल्कि ज्ञानात्मक और वैचारिक रूप से समृद्ध बनाती है। □

संदर्भ-सूची :

1. Snell-Hornby, Mary. Translation Studies: An Integrated Approach. John Benjamins, 1988, पृ. 74-82
2. भंडारी, मन्म. आपका बंटी. राजकमल प्रकाशन, 2005, पृ. 112 पृ. 17.
3. जैन, निर्मला. अनुवाद मीमांसा. राजकमल प्रकाशन, 2018, पृ. 42.
4. वही. पृ. 41.
5. Nida, Eugene A. Toward a Science of Translating. Brill, 1964 पृ. 128-135
6. Bassnett, Susan. Translation Studies. Routledge, 2013, पृ. 91 पृ. 95.
7. Trivedi, Harish. "Translation and the Postcolonial Experience." The O & ford Handbook of Translation Studies, edited by Kirsten Malmkjaer and Kevin Windle, O&ford UP, 2011, पृ. 391- 408
8. साहनी, भीष्म. तमस. राजकमल प्रकाशन, 1974, पृ. 135 पृ. 142.
9. राकेश, मोहन. आषाढ़ का एक दिन. राजपाल एंड संज, 1961, पृ. 9 पृ. 18.
10. परसाई, हरिशंकर. तट पर मैं रोता हूँ. लोकभारती प्रकाशन, 1972, पृ. 54 पृ. 58.

लोकनायक राम : तुलसी मानस के संदर्भ में

शोध सार :



डॉ. एस. प्रीति

तुलसीदास जी का समय काल भारतीय संस्कृति का संक्रमण काल था। यह वह समय था, जब भारत में मुस्लिम शासन की स्थापना हो चुकी थी। देश में शासन के विस्तार के साथ ही इस्लामी सभ्यता-संस्कृति का प्रचार-प्रसार भी तेजी से हो रहा था। ऐसे में हिंदू समाज को अपनी सभ्यता-संस्कृति और धर्म का भविष्य को लेकर संकट महसूस हो रहा था। ध्यान देने की बात यह है कि भारत सिर्फ इस्लाम के भारत में आगमन के कारण ही नहीं, बल्कि स्वयं भारत में भी जैन, बौद्ध जैसे धर्मों और विभिन्न संप्रदायों के आपस में मतभेद और वैमनस्य के कारण भी हिंदू वर्ग संकट और असहजता महसूस कर रहा था। साथ ही समाज में कई तरह की कुरीतियाँ और कुप्रथाएँ भी व्याप्त थीं। ऐसे में यह बहुत जरूरी था कि आपस में सबके बीच सामंजस्य और सौहार्द विकसित हो। तुलसीदास जी ने इस जरूरत को समझा और समय की जरूरतों के हिसाब से जनसामान्य में परंपरा से स्वीकार्य और सर्वमान्य राम के चरित्र की पुनर्रचना द्वारा व्यक्ति और समाज के निर्माण का कार्य किया। यही समय भारत में भक्तिकाल के रूप में भी जाना जाता है, जिसमें उत्तर से लेकर दक्षिण भारत तक के संतों का विशेष योगदान है। सभी संतों ने धर्म के रक्षार्थ समाज में जन जागरण के लिए लेखनी को हथियार बनाया। इन संतों की रचनाओं की सबसे खास बात यह है कि इनमें किसी के प्रति वैमनस्यता की जगह मानव के सद्गुणों और सद्चरित्रों पर बल दिया गया है, जो समाज को सुशिक्षित, संयमित और चरित्रवान बनाने की मंशा से रची गई। इनका एक उद्देश्य आक्रांताओं के आगमन से समाज में उत्पन्न दोषों और कुरीतियों से बचाना भी था। तुलसीदास जी का जीवन और रचना काल भी यही समय था। जिस समय संत तुलसीदास जी का आविर्भाव हुआ, उस समय मुगलों की धार्मिक वैमनस्यता और विलासी जीवन भारत की भोली-भाली जनता को दिग्भ्रमित कर रहा था। ऐसी सामाजिक व्यवस्था के प्रति तुलसीदास जी के मन में प्रतिक्रिया की भावना उत्पन्न हुई। अतः उन्होंने नवीन समाज व्यवस्था का संकल्प किया। वह जिस समाज की कल्पना करके चले, वह स्वार्थ, त्याग और बलिदान सिखाने वाला था और जिस राज्य की कल्पना तुलसी जी ने की वह लोकाराधन के लिए राज्य, सुख, राग आदि को न्योछावर कर देने वाला था।

बीज शब्द :

आदर्श, मानवता, वर्णाश्रम धर्म, भ्रातृत्व, सदाचार।

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
विज्ञान एवं मानविकी संकाय
एस आर एम इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस
एण्ड टेक्नोलॉजी
काट्टानकोलेतूर-603203
☎ 8939934141
✉ drpreeti112@gmail.com



शोध आलेख :

श्रीरामचरितमानस मर्यादा का आदर्श ग्रंथ है। सदाचार, परोपकार, सामाजिक सरोकार एवं घनघोर संकट सहने की शक्ति प्रदान करने वाला ऐसा ग्रंथ है, जो हमें सामाजिक न्याय, लोक मंगल की भावना, समन्वय के संस्कार, अन्याय से जूझने की जिजीविषा प्रदान करता है। आज दुनिया भौतिक सुख भोगों के पीछे अंधाधुंध भाग-दौड़ में लगी हुई है। जीवन की विविध सुख-सामग्री अर्जित करने के लिए मानव अत्यंत व्याकुल है। इस भाग-दौड़ के कारण मनुष्य मानवीय मूल्यों को खोता जा रहा है। ऐसी स्थिति में 'मानस' मनुष्य को मनुष्य की तरह जीने की कला सिखाता है। आज के कलुषित होते वातावरण में दूषित मनोवृत्तियों से मानव के संरक्षण हेतु मानस कहता है-

“राम नाम मणि दीप धरू, जीह देहरी द्वार।

‘तुलसी’ भीतर बहिरेहु, जौ चाहसि उजियार।।”

आज परिवार का आदर्श रूप विकृत होता दृष्टिगोचर हो रहा है। परिवार का सदस्य स्नेहहीन, ममतारहित, सहृदयता से शून्य तथा पारस्परिक सहयोग की भावना से

विमुख हो गया है। तुलसी ने हमें इससे सतर्क किया। हम माता-पिता के चिर ऋणी हैं। जन्म-जन्मांतर में भी हम उनके ऋण से उऋण नहीं हो सकते।

“अनुचित उचित विचार, तीज जे पाहहि पितु बैन।

ते भाजन सुख, सुजास के बसहि अमरपति ऐन।।”

तुलसीदास जी यह बात भलीभाँति जानते थे कि वर्ण-व्यवस्था किसी संकुचित दायरे में बँधी नहीं है। वह किसी भी प्रकार के ऊँच-नीच, धनी-निर्धन के भेदभाव पर आधारित नहीं है। जिस प्रकार कभी भी दो व्यक्ति समान नहीं होते, मनुष्य के अपने शरीर में ही पाँचों उँगलियाँ कभी समान नहीं होतीं। उसी प्रकार व्यक्तियों की योग्यता, कार्यकुशलता, व्यवहार में भी अंतर पाया जाता है। वर्णाश्रम धर्म के प्रति तुलसीदास का अनुराग-

“वर्णाश्रम निज-निज धरम, निरत वेद पथ लोग।

चलहिं सदा पावहिं सुखहि, नहीं भय सोक न रोग।।”

समाज का सबसे बड़ा आधार विश्वास होता है। जो लोग मित्रता तो करते हैं, परंतु उसका निर्वाह नहीं करते। ऐसे कुमित्र को छोड़ने की तुलसीदास सलाह देते हैं, क्योंकि इससे मानवता कलंकित होती है। राम ने सुग्रीव से मित्रता की, उसमें कलंक नहीं लगाया। विभीषण के शरणागत होने के पहले जब वानरगण उन्हें यह सलाह देते हैं कि रावण का भाई विभीषण आपसे मिलने आया है तो राम अपने मित्र सुग्रीव से पूछते हैं -

“कह प्रभु सखा बूझिये काहा”

एक अच्छे मित्र के लक्षण यहाँ दिखाई देते हैं, जो मानवता का एक अच्छा उदाहरण है। यही नहीं, राम ने विभीषण को भी अपना मित्र बनाया और राम-रावण युद्ध में राम ने विभीषण से मित्रवत व्यवहार करते हुए उसे सखा कहकर सलाह माँगी। कुशल क्षेम पूछते हुए राम विभीषण से कहते हैं -

“सखा-कही तुम्ह नीकि उपाई।

करिउ दैव जौ होई सहाई।।”

राजा और प्रजा का संबंध पिता तथा पुत्र का संबंध जैसा होता है। जिस प्रकार पिता अपने पुत्र संतान की सुख-सुविधा का ख्याल रखता है, उसी प्रकार राम भी अपने कर्तव्य का पालन करना चाहते हैं। उनके अनुसार

राजा को निःस्वार्थ होना चाहिए। प्रजापालन विवेकपूर्ण करने पर अधिक बल दिया है-

“मुखिया सुख सो चाहिए, खान-पान की एक।
पालइ पोसई सकल अंग, तुलसी सहित विवेक॥”

विपत्ति के समय पत्नी का क्या धर्म है, उसका भी पथ प्रदर्शन तुलसीदास जी ने समाज के समक्ष मानस के माध्यम से कराया है-

“प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माही,
मो कहु सुखद सतहुं कछ नाही॥”

समाज संस्कारक होने के नाते उन्होंने नारी को पतित होने से बचाया। सीता को आदर्श नारी के रूप में स्थापित कर इस बात पर जोर दिया कि पुरुष एक पत्नीव्रता हो तथा पत्नियाँ भी मन-वचन-कर्म से पति का हित साधन करने वाली हों।

भरत एवं लक्ष्मण की भातृत्व भावना अप्रतिम है। संसार के किसी भी साहित्य में ऐसा उदाहरण दुर्लभ है। ज्यों ही लक्ष्मण ने अपने अग्रज श्री रामचंद्रजी के वन-गमन का समाचार पाया, त्यों ही वह व्याकुल एवं अधीर हो उठे -

“समाचार जब लक्ष्मण पाए।
व्याकुल बिलक वदन उठि धाए॥
कंप पुलक तन नयन समीरा।
गहे चरन अति प्रेम अधीरा॥”

आदर्श सहोदरता का दूसरा चित्र हमें भ्रातृप्रेम की मूर्तिमान प्रतिमा भरत के द्वारा तुलसीदास का यह कथन दिखाता है -

“जो न होत जग जनम भरत को।
सकल धरम धरम धरनि धरत को॥”

अपने अग्रज राम के प्रति जो अन्याय हुआ है, उसे भरत सहन नहीं कर सके और अपने आराध्य श्री रामचंद्रजी को वापस आयोध्या लिवा लाने के लिए चित्रकूट पहुँचते हैं-

“नरकस लिए उठाइ उर लाए कृपा नीधान।
भरत राम की निलाने लखि, बिसरे सबहि अपान॥”
इस प्रकार हम देखते हैं कि दो भाइयों के स्नेह सिक्त

हृदयों को आने वाली पीढ़ी पढ़कर आत्मविभोर हुए बिना नहीं रह सकती है। मानस की प्रत्येक पंक्ति में आदर्श जीवन एवं आदर्श समाज की झाँकी प्रतिबिंबित होती है। कविवर रहीम के शब्दों में -

“रामचरित मानस विमल संतन जीवन प्रान।
हिनु आन को वेद सम यवनहि प्रकट कुरान॥”

इस प्रकार यदि हम तुलसीकृत रामचरितमानस को देखें तो इसे राम से लेकर रामराज्य तक की अवधारणा को प्रस्तुत करने वाला एकमात्र ग्रंथ कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि रामचरितमानस राम को किसी भगवान की बजाय मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में प्रस्तुत करता है। एक ऐसा व्यक्तित्व, जो किसी भी व्यक्ति के लिए अनुकरणीय हो। कहने का तात्पर्य यह कि यह मनुष्य के अंदर राम की तरह साहस, धैर्य, नैतिकता, विचार, दया, क्षमा, शील, शिष्टाचार आदि गुणों के संवर्धन की शिक्षा देता है। साथ ही यह व्यक्तित्व निर्माण से समाज और राष्ट्र निर्माण तक की भी प्रेरणा और शिक्षा प्रदान करता है। इस प्रकार देखा जाए तो तुलसीदास का रामचरितमानस सिर्फ राम की आराधना का धार्मिक ग्रंथ नहीं है, यह तत्कालीन समाज की जरूरतों के अनुसार रचा गया आख्यान है, जिसमें व्यक्ति के गुणों के साथ राजा के गुणों की भी बात कही गई है-

“जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी
सो नृप अवस नर्क अधिकारी”

एक राजा के ऐसे गुणों के आधार पर ही तुलसीदास जी ने रामराज्य की भी संकल्पना प्रस्तुत करते हुए कहा है -

“रामराज्य का एक चरित्र न्यारा।
जहाँ न काम क्रोध न विषमता बारा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती।
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति॥”

निष्कर्ष :

इस प्रकार तुलसी के राम एक नायक नहीं, एक ऐसे मर्यादा पुरुष हैं, जो व्यक्तियों के लिए अनुकरणीय बनकर समाज और राष्ट्र के हित के निमित्त बनते हैं और अंततः समाज और राष्ट्र तक को आदर्शवादी विचार देते हैं। इसलिए राम जन-जन के हैं। समस्त मानव जाति के ही

नहीं, समस्त सृष्टि के भी। जो उनके आदर्शों पर चलेगा उसका जीवन मंगलमय होगा- उदाहरणस्वरूप शबरी हो या अहल्या।

वर्तमान पीढ़ी को इससे यह सीख लेनी चाहिए- भाई हो भरत या लक्ष्मण जैसा, गुरु हो तो वशिष्ठ या विश्वामित्र की तरह, सेवक हो तो हनुमान जैसा, माता हो तो कौशल्या या सुमित्रा जैसी, जिन्होंने अपने पुत्रों को

पिता की आज्ञा को सर्वोपरि मानने का उपदेश दिया। राम कैकेयी से कहते हैं कि - हे माँ! संसार में वही पुत्र बहुभागी है, जो माता-पिता के वचनों को पालन करने वाला हो-

“रघुकुल रीति सदा चली आई।

प्राण जाए पर वचन न जाई।।” □

संदर्भ ग्रंथ :

1. तुलसी मानस संदर्भ - डॉ रामस्वरूप आर्य और गिरिराज शरण अग्रवाल, प्रकाशन-मानस चतुरशती आयोजन समिति संभल (उ.प्र.), 1974
 2. भारतीय धर्म एवं संस्कृति - बुद्ध प्रकाश, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, दिल्ली, 1987
 3. रामचरित मानस में ऋषियों की भूमिका-डॉ. सीताराम दिवाकर, प्रकाशन रा.वि. हाडौती शोध प्रतिष्ठान कोटा-2, 1998
 4. रामचरितमानस संक्षिप्त आयोध्या कांड (सटीक)- दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, 2004
 5. रघुवंशम् - श्रीमती अर्चनाधर। रामनारायणलाल बेनीप्रसाद इलाहाबाद-2, 1963
-

पंडित विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में लोक-संस्कृति



डॉ. प्रीति राय

शोध-सार :

पंडित विद्यानिवास मिश्र के निबंधों का मूलभाव भारतीय लोकसंस्कृति, भाषा, जीवन-मूल्य और भारतीयता की गहराई से पड़ताल करना है। उन्होंने अपने निबंधों में गांव, लोकजीवन, लोककला, जातीय समरसता, प्रकृति, तीर्थ, धर्म, पर्यावरण, भाषा, और साहित्य के माध्यम से भारतीय समाज के सांस्कृतिक पक्ष को अत्यंत आत्मीयता और गहराई से प्रस्तुत किया है। उनके निबंधों में गाँव, रीति-रिवाज, मांगलिक प्रसंग, लोकगीत, तथा त्योहारों का जीवंत चित्रण मिलता है। उन्होंने हिंदी की समृद्ध परंपरा और उसकी व्यापकता पर विचार किया और हिंदी को 'संयोजन और सौहार्द की भाषा' बताया। वे मानते हैं कि भारत केवल एक भौगोलिक इकाई नहीं, बल्कि एक भावधारा है, जो संस्कृति और जीवन मूल्यों से परिपूर्ण है। गंगा, वृक्ष, पशु-पक्षियों के माध्यम से भारतीय जनमानस की पर्यावरणीय चेतना को उन्होंने साहित्य में स्थान दिया। जातिवाद, अस्पृश्यता जैसे मुद्दों के बावजूद उनके निबंधों में एक आत्मीय सह-अस्तित्व की भावना दिखती है। उनके अनुसार साहित्य वही है जो पाठक की चेतना को झकझोरे, उसे बार-बार जीया जाए और हर बार नया अर्थ दे। पंडित विद्यानिवास मिश्र के निबंध भारतीय समाज, संस्कृति, परंपरा और भाषा की जीवंत, संवेदनशील और व्यापक समझ को दर्शाते हैं। उनका साहित्य भारतीय लोकमानस का सजीव दर्पण है, जिसमें आधुनिकता और परंपरा का अद्भुत समन्वय मिलता है।

बीज शब्द :

प्रकृति, लोक संस्कृति, भारतीयता, पर्यावरण, साहित्य, धर्म, सामाजिक विघटन, पलायन।

प्रस्तावना : आलेख में विस्तार से पंडित विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में लोक संस्कृति के विभिन्न पहलुओं – जैसे गांव-जीवन, रीति-रिवाज, लोकभाषा, लोकगीत, जजमानी व्यवस्था, तीर्थ, पर्व, पर्यावरण आदि, का गहन और जीवंत चित्रण किया गया है। ये विषय आलेख के केंद्र में हैं, और इन्हीं पर शीर्षक केंद्रित है। पंडित विद्यानिवास मिश्र का नाम शीर्षक में देकर यह स्पष्ट कर दिया गया है कि चर्चा किसी सामान्य लोक साहित्य की नहीं, बल्कि एक विशिष्ट लेखक की दृष्टि में लोक संस्कृति की है। शीर्षक में वह शोध की दिशा भी प्रकट होती है और वह दृष्टिकोण भी कि यह केवल वर्णनात्मक न होकर विश्लेषणात्मक है। यह आलेख यह दिखाना चाहता है कि कैसे मिश्र जी ने अपने निबंधों में गांव, रीति-रिवाज, लोक भाषा, लोक जीवन, परंपराएं, लोकगीत, और पर्यावरण को संवेदनशीलता से

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर
विश्वविद्यालय, लखनऊ
☎ 9451888162
✉ pritirai14.mzu@gmail.com

प्रस्तुत किया। लेख का उद्देश्य यह भी है कि भारतीयता सांस्कृतिक चेतना और जीवन दृष्टि है, जिसे मिश्र जी ने अपने निबंधों में स्थापित किया। मिश्र जी ने यह दिखाया है कि हिंदी भाषा न केवल अभिव्यक्ति का माध्यम है बल्कि वह सांस्कृतिक एकता का सूत्र भी है। यह लेख यह भी दर्शाता है कि साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं बल्कि परिवर्तन का माध्यम भी होता है। मिश्र जी ने साहित्य के सामाजिक उद्देश्य को गहराई से समझाया। आलेख यह संकेत करता है कि आज के समाज में जो विघटन, जातिवाद, पर्यावरणीय संकट, सांस्कृतिक विस्मृति है—उनके समाधान लोक संस्कृति की पुनर्प्रतिष्ठा में निहित है, इस आलेख का उद्देश्य पंडित विद्यानिवास मिश्र के निबंधों के माध्यम से भारतीय लोक संस्कृति, भाषा, साहित्य और जीवन मूल्यों को समझना, विश्लेषित करना तथा यह सिद्ध करना है कि उनका साहित्य आज भी सामाजिक चेतना से संपृक्त है। पंडित विद्यानिवास मिश्र के निबंधों का संकलन, संपादन और मूल्यांकन पहले भी हुआ है। लेकिन लोक संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में उनका विश्लेषणात्मक अध्ययन इस शोध आलेख में विशेष रूप से प्रस्तुत किया गया है।

मूल आलेख :

पंडित विद्यानिवास मिश्र जी ने हिंदी साहित्य को अनेक विचारोत्तेजक, संवेदनशील और लोक-संस्कृति से समृद्ध निबंध दिए हैं। उनके निबंध गांव, भारतीय संस्कृति, भाषा, लोक-जीवन, परंपरा, पर्यावरण, और भारतीयता जैसे विषयों पर आधारित हैं। विद्यानिवास मिश्र के प्रमुख निबंधों के नाम हैं—

मेरा गांव मेरा घर—ग्रामीण जीवन, जातीय संबंधों, लोक रीति-रिवाजों का चित्रण। **आंगन के पंछी**—मनुष्य और पक्षियों के आपसी संबंधों तथा पर्यावरणीय चेतना पर आधारित। **तुम चंदन हम पानी**—मनुष्य की उपयोगिता, संघर्ष और आत्मसमर्पण की भावना पर केंद्रित। **चितवन की छांह**—प्रकृति, सौंदर्य और यौवन की भावनात्मक प्रस्तुति। **भारतीय कौन**—भारतीयता, नागरिकता और कर्तव्यबोध पर चिंतन। **मेरे राम का मुकुट भींग रहा है**—प्रवासी मजदूरों, माँ-बेटे के विरह और लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या। **हिंदू धर्म**—तीर्थ और पर्वोत्सव—भारतीय तीर्थ, पर्व और धार्मिक परंपराओं की सांस्कृतिक

महत्ता पर लेख। **इमली का बीया**—भोजपुरी लोक जीवन और जातीय संरचना की सूक्ष्म अभिव्यक्ति। **कांची अमियां ना तुरिह**—लोकगीतों की पृष्ठभूमि और ग्रामीण जीवन की अनुभूतियों पर आधारित।

लोक संस्कृति का अर्थ : सामान्य जनसमूह (लोक) द्वारा जी जाने वाली संस्कृति, जिसमें उनके जीवन के रीति-रिवाज, परंपराएँ, विश्वास, गीत, कहानियाँ, त्योहार, भाषा, पहनावा, खानपान, लोक कला, नृत्य, संगीत आदि शामिल होते हैं। यह संस्कृति लिखित नहीं, बल्कि वाचिक (मौखिक) होती है और पीढ़ी दर पीढ़ी अनुभव व परंपरा के माध्यम से चलती रहती है। पंडित विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में लोकसाहित्य के अनेक उपदान (तत्व/अंग) गहराई से समाहित हैं। उन्होंने लोकजीवन को केवल विषय नहीं, बल्कि अनुभव और संवेदना के रूप में प्रस्तुत किया है। उनके निबंधों में निम्नलिखित लोक साहित्यिक उपादान प्रमुख रूप से दिखाई देते हैं: विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में लोकसाहित्य के उपादान केवल सांस्कृतिक दस्तावेज नहीं हैं, वे जीवन की आत्मा हैं। उन्होंने लोकजीवन की गंध, रंग, लय और आत्मा को अपने निबंधों में समेटा है।

पंडित विद्यानिवास मिश्र के विपुल साहित्य कर्म का वैविध्यपूर्ण विस्तार मूलतः और मुख्यतः निबंध विद्या के दायरे में है। जो कि जाहिर है कि निबंध के विधागत दायरे को पार करते हुए, बल्कि कहना चाहिए कि उसे अपार करते हुए भी संभव हुआ है। इस विधा में जितना काम उन्होंने किया है, हिंदी जगत में शायद ही किसी और ने; इस विधा के जितने काम हैं शायद ही कोई और। उनके लिखने-लिखवाने को ही नहीं संबोधन-व्याख्यान को भी इस विधा की जैसे सहज सिद्ध हो। लिखकर बोलकर सुना हो सुनना हो देखना हो या दिखाना हो या सूचना हो विचार ना हो समझना हो समझना हो रचना हो या परखना हो। कल के, आज के कल के संदर्भ में देश-दुनिया या सभ्यता-समाज को लेकर धर्म संस्कृति या इतिहास राजनीति को लेकर, भाषा, भाषाशास्त्रीय साहित्य, साहित्य को लेकर कला या तंत्र को लेकर पंडित जी ने निबंध को सब कुछ समेट सकने लायक सब कुछ को निबंध में समेटने लायक पाया है। अनायास नहीं है कि

उनके यहां निबंध के विषयनिष्ठ जैसे किसी भेदभाव को अक्सर जगह नहीं मिल पाती है। इसलिए भी की एक लेखक के रूप में उन्होंने अपनी निष्ठा किसी अन्य से अधिक अपने पाठक के प्रति रही है। यह पाठक उनके अनन्य है। और बल-बुद्धि-विद्या किसी भी मामले में उनसे घटकर नहीं है। कभी-कभी बढ़कर जरूर है। खास कर तब जब उसी के आचार-विचार, उसी के मन मंतव्य के आधार पर हुए वे कुछ स्थापित करते हैं या किसी स्थापित भ्रम-विभ्रम को खारिज करते हैं यह पाठक उन्हीं की तरह उनके गांव घर का है।

देश भर का है, दुनिया भर का है। उन्हीं की तरह उनके गांव घर का होकर ही है। जो व्यंजित हुआ है। उनके निबंधों में वह उतना उनका अपना है उनके पाठक का उतना ही है। एक नितांत गंवाई व्यक्तित्व जो जो है गंवाई होकर ही है। जिनके लिए जीया जंतु, पेड़, नदी पहाड़ सबका अपना एक व्यक्तित्व है। जीवन-जगत के लिए हैं, अपने ही जितना जरूरी। किसी मन, इसी मिजाज के मुताबिक उनके निबंध जितने अपने निबंधकार के हैं उतने ही अपनी निबंध वस्तु के व्यंजना से संबंधित है। सजीव-सजीवन बतियाते हुए, बोलते हुए गूढ़ से गूढ़, रुके से रुक विषय भी सहज तरल होकर जैसे खुद को खोलकर, खुलकर रखते हुए किसी बतरसबस, एक मनसायनपन के साथ।

लोक संस्कृति का सामान्य अर्थ है साधारण जन समाज में प्रचलित वे सब बातें जो सिद्धांतः संस्कृति के से क्षेत्र से संबंध कहो। मानव जीवन के जितने आचार-विचार, प्रथा-परंपरा, धर्म तथा अनुष्ठान, विधिनिषेध, विश्वास आदि को इसमें सम्मिलित किया जाता है। यानी की इसमें संपूर्ण लोक समाज के समूचे जीवन शैली का प्रकटीकरण होता है।

पंडित विद्यानिवास मिश्र के निबंधों में हमें लोक जीवन का जीवंत चित्रण मिलता है। गांव से जुड़े होने के कारण उन्होंने अपने निबंधों में जो प्रतिबिंब उपस्थित किया है वह अनुपम है। वह कहते हैं- 'कैसे कहूँ उसे गांव का नहीं हूँ जहां जन्मा; उन शहरों का नहीं हूँ जिन्होंने मुझे ठौर-ठिकाना दिया और उस व्यापक देश का नहीं हूँ जिसे हर विदेश यात्रा के पूर्व रुमाल में गांठ लगाई जिसने हर विदेश यात्रा के लिए स्वदेश की पहचान की एक कसौटी बनाई और जिसने विदेश की संस्कृति को समझने

की आत्मीय परकीयता प्रदान और जिनका होकर मैं अपने को बराबर अस्तित्व बना पाता रहा।' ¹ एक व्यक्ति के निर्माण में हर उस संस्कृति का योगदान होता है, जहां वह रहता है। यह अपने नौकरी के प्रारंभिक दिनों में ब्रज क्षेत्र में रहे इस कारण वृंदावन तथा कृष्ण के प्रति अनुराग भी स्पष्ट रूप से झलकता है। लोक संस्कृति से लोगों का परिचय बचपन में ही हो जाता है। बचपन में ही लोगों को वह सारी चीजें अनौपचारिक रूप से सीखा दी जाती है। पंडित मिश्र के अनुसार 'यह नहीं छूटता की बिना कोई परीक्षा पास किया या किसी स्कूल में गए मेरे बाबा ने बचपन में रामायण-महाभारत और हितोपदेश-पंचतंत्र की कहानी सुना दी थी।' ² यानी कि उनका परिचय साहित्य एवं महाकाव्य से बाल्यावस्था में ही हो गया था।

हरेक लोक संस्कृति की अपनी अपनी विशेषता होती है पंडित मिश्र की संस्कृति भोजपुरी थी इसी का वह अपने निबंधों में चित्रण करते हैं। वह कहते हैं कि 'मेरे घर की संस्कृति के मांगलिक उपादान मूर्त रूप से हल्दी-दूब और दधि-अक्षत ही है इसीलिए शहर में एक लंबे समय तक बचने के बाद भी मन इन मंगल द्रव्यों की शोभा के लिए ललक उठता है।' ³ उनके क्षेत्र में विवाह के अवसर पर इन मंगल द्रव्यों के द्वारा दूल्हा-दुल्हन का चुमावन किया जाता है शादी या अन्य किसी मांगलिक कार्य के अवसर पर हल्दी का लेप लगाया जाता है दही से तिलक किया जाता है तथा अक्षत एवं दूब से सौभाग्य की कामना की जाती है।

लोक संस्कृति जजमानी व्यवस्था पर आधारित होती है जजमानी व्यवस्था वस्तु विनिमय प्रणाली पर आधारित होती है या साफ शब्दों में कहें तो वर्ण व्यवस्था पर। जिसमें हर जाति के लोगों का काम बंटा होता है पंडित मिश्र के निबंध मेरा गांव मेरा घर में इसकी स्पष्ट झलक देखने को मिलती है। पर उनके गांव में पंचायती राज की जहरीली राजनीति अभी तक घुल नहीं पाई थी पूरे गांव स्नेह इनके साथ था इनके बाबा गांव के मुखिया थे जिनको गांव की जमीन का नक्शा चप्पा चप्पा याद था। जब वह अमराई से होकर विद्यालय जाते थे तो बरगद वाले पीर बाबा को स्मरण करके जाते थे बौना भागीरथी चमार बड़ी मीठी लय में गाता था तथा बढ़िया ढोलक भी बजाता था

गौरी लोहार निर्गुण गाता था यह सभी साथ मिलकर विद्यालय जाते थे और भी उनके बहुत संगी-साथी थे जिनके बारे में एक-एक कर लिखें तो भी मन ना भरे। आज के समय में समाज में अलगाव का भाव पाया जाता है हर एक जाति का अपना नेता तथा देवता है सामूहिकता केवल जाति विशेष के बीच के लोगों में होती है ना कि ना कि सर्व समाज में। लोग कच्ची मिट्टी के घर में अवश्य रहते थे पर उनके इरादे पक्के होते थे गांव के दलान में बैठकर सभी बातें किया करते थे नाग पंचमी के अवसर पर सावधानी अहीर की बहू पचरंगी साड़ी पहनकर पंचायत पूजने जाती है पंचायत नाग पंचमी को कहा जाता है इस दिन नाग को दूध और लावा खिलाएं जाने का रिवाज है। और उससे विवाह की जिद बाल्यावस्था में विद्यानिवास कर देते हैं शिवधनी उनकी जिद को मानकर हां भी कर देते हैं पर यह विवाह उनको प्रौढ़ावस्था तक मजाक का कारण बनती है। गांव की अहीरो के दही जमाने की कला का चित्रण इस निबंध में हुआ है।

प्रकृति के चित्रण के बिना लोक संस्कृति का चित्रण नहीं किया जा सकता है। चितवन की छांह नामक निबंध में पंडित मिश्र ने यौवन की मादकता को भी गंभीरता के साथ विवेचित किया है चितवन यानी कि सप्तपर्णी एक सदाबहार पेड़ होता है इसके पुष्पों की गंध से वातावरण में उन्माद छाया रहता है गंध की लहक प्रकार स्पर्श सुखद और मोहक हो जाता है। रूप को यदि गंध ना मिले तो मन नहीं रमता पलाश पर हमारा ध्यान अधिक नहीं टिक पाता है, क्योंकि पलाश में सिर्फ रंग होता है कोई गंध नहीं।

तुम चंदन हम पानी नामक निबंध में पंडित मिश्र ने मनुष्य की उपयोगिता को भी रेखांकित किया है। चंदन जब वैसे विना घिस कहीं पड़ा रहता है तो उसकी न कोई ना तो सुगंध फैलती है और ना ही वह किसी को शीतलता प्रदान करता है। पार्थिव शिलाखंड पर पानी के साथ घिस जाने पर वह अपने गुण को प्रदर्शित करता है कहा जाता है कि चंदन को बगैर ईश्वर को समर्पित किया नहीं लगना चाहिए बकौल पंडित मिश्र 'मेरी जिज्ञासा के समाधान में पितृव्यचरण ने बताया था कि चंदन अपने आप घिसकर बिना देवता को चढ़ाए अपने सिर पर लगाना पाप होता

है। उस वाक्य के पीछे युग की शिक्षा पर संघृष्ट महान सत्य की पावन स्मृति होगी कि मनुष्य को अपने जीवन संघर्ष से सुरभि अर्जित करने का अधिकार तभी मिलता है जब वह अर्पित भाव से संघर्ष में रत होता है।' ⁴

लोकगीतों के माध्यम से भी लोक जीवन अभिव्यक्त होता है। कांची अमियां ना तुरिह नामक कविता में आम के मंजर से पकाने तक संपूर्ण अवस्थाओं का वर्णन हुआ है -

'कांची अमिया ना तुरिह बलम कांची
मोर टिकोरवा न रसवा पगल हो
हियरा में गुठली न अबल जगल हो...' ⁵

इमली का बीया भोजपुरी में लिखित एक निबंध है जो आंगन के पंछी निबंध से मिलती-जुलती विषय पर लिखी गई है। इस निबंध से यह बात मालूम होती है कि सभी ब्राह्मण पुजारी नहीं होते, पुरोहित का काम

करने वाले ब्राह्मणों को निम्न माना जाता है। और चर्मकार भी दो प्रकार के होते हैं दखिनहवा और चमड़ा का काम करने वाले। बकौल पंडित मिश्र-'गांव में सबसे नीमन बात इ रहे कि सब जाति-व्यवसाय के लोग रहल। पांच घर बढ़ई, चार घर लोहार, चार घर नाउ श, पांच घर दखिनहवा चमार एक घर चमड़ा के कम करे बाला चमार, तीन घर तेली, पांच घर कलवार, तीन घर कोंहार तीन घर माली, दो घर लाला, दो सकलदीपी ब्राह्मण, एक घर पुरोहित, सबसे ढेर घर अहीर के आउर मल्लाह के।' ⁶ वह हर जाति के लोगों को सम्मान के साथ लिखते हैं और इससे लगता है कि उनके बीच काफी आत्मीय संबंध रहा होगा। पंक्तिपावन ब्राह्मण अन्य ब्राह्मणों को भी निम्न मानते हैं पर इस कुल से होने के बाद भी पंडित मिश्र का अन्य जातियों के साथ पढ़ना-खेलना विस्मय में पैदा करता है। और इससे लगता है की इनके बचपन में अस्पृश्यता वैसे इनके गांव में नहीं थी जैसे किताबों में बताई जाती है।

इन निबंधों में पलायन का भी जिक्र मिलता है भोजपुरी-क्षेत्र के लोग देश के अन्य भागों के साथ-साथ विदेशों में भी रहते हैं और यहां उनकी पत्नियों गांव में कुटान-पीसान करके गुजर-बसर किया करती है कई पुरुष तो परदेश में ही भुलाकर मर जाते थे और संचार के

माध्यम ना होने के कारण उनकी कोई खोज खबर भी नहीं मिलती थी। कुल मिलाकर गांव पिछड़ा था पर गांव में मेल मिलाप काफी था पंडित मिश्र लिखते हैं ‘कि आज लोग कहले पर पतियाई नाइ कि पिछड़लो कहाए वाला गांव अइसन मेल-जोल के गांव हो सकेला जइसन हम देखले हई। इ नाई कि राग द्वेष ना होखे, आपस में क्लेश ना होखे.....’⁷ गांव में कई कुरीतियां भी पाई जाती है डायन, भूत प्रेत का भी चित्रण इनके निबंधों में हुआ है।

उनके निबंधों में भोजपुरी लोक संस्कृति की झलक भी देखने के मिलती है

जिसमें लोकगीत भी है एक प्रसिद्ध लोकगीत है-

‘मोरे राम के भीजै मुकुटवा,

लछिमण के पटुकवा

मोरी सीता के भीजै सिंदुरवा

किराम घर लौटहिं।’⁸

इन गीतों को गाकर महिलाएं परदेश कमाने जा चुके अपने पुत्रों के वियोग को व्यक्त करती थी महिलाओं का पुत्र वियोग में वही हाल है जो कौशल्या का राम के वन जाने के बाद हुआ था। पंडित मिश्र ने मेरे राम का मुकुट भींग रहा है नामक निबंध में बेटियां एवं बेटे के विरह की तुलना भी की है। यह विरह सिर्फ राम के वन गमन के जाने के बाद कौशल्या का विरह नहीं है बल्कि रोजी-रोजगार एवं बेहतरी की तलाश में विभिन्न स्थान पर प्रवास को गए उन युवकों की माताओं के विरह का वर्णन है। भिखारी ठाकुर ने विदेशिया नामक लोक नृत्य में इसी प्रकार के पलायन का वर्णन किया है।

महान प्रतापी राजा भरत के नाम पर इस पवित्र भूमि का नाम भारत पड़ा। अब प्रश्न उठता है कि भारतीय कौन है? क्या इस देश के सभी निवासी भारतीय हैं? वैसे तो संविधान लागू होने के समय जो भारत में रह रहे थे या विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के द्वारा जिसे भारत की नागरिकता प्रदान कर दी गई है वह सभी भारतीय हैं। पंडित विद्यानिवास मिश्र ने भारतीय कौन नामक निबंध में इस विषय पर भी गंभीरता से विचार किया वह कहते हैं कि ‘मेरी समझ में दो प्रकार के भारतीय होते हैं, एक तो वे जो अपने को भारत का मानते हैं और दूसरे वे जो भारत

को अपना मानते हैं। एक कहता है मैं भारत का हूं दूसरा कहता है भारत मेरा है।’⁹ और भारत मेरा है कहने वालों वाले अधिक संख्या में हैं। यानी कि अधिकार का दावा करने वाले लोग। मैं भारत का हूं कहने वाले बहुत कम है। यानी कि कर्तव्यबोध वाले। किसी भी राष्ट्र की मजबूती के लिए वहां के नागरिकों में कर्तव्य बोध की भावना होनी जरूरी है। जब हम कहते हैं कि मैं भारत का हूं तब मेरा उत्तरदायित्व भारत के प्रति हो जाता है और भारत के जो जीवन मूल्य हैं उसे मैं अपने में भी ग्रहण करता हूं। और भारत के जीवन मूल्य ही भारतीयता है। क्या परिभाषाओं में बंधा होना काफी है? इस पर पंडित मिश्र लिखते हैं ‘भारत सही मायने में एक भाव धारा है जो हर पानी में गंगा का आवाहन करती है, हर पत्थर भी एक चेतन देवता देखती है, हर फूल हर पत्ती में एक आकांक्षा पढ़ती है, जो हर आदमी में एक अन्य चैतन्य को देखते हैं। राम-कृष्ण और बुद्ध इस इतिहास में तो एक बार उतरे पर जीवन में इस भाव धारा के कारण बार-बार उतरते हैं वह कभी व्यतीत नहीं होते हैं।’¹⁰ यानी कि भारतीय होना केवल एक राजनीतिक कारण नहीं है बल्कि सांस्कृतिक कारण भी है। बहुत से व्यक्ति जो भारत के नागरिक नहीं है पर भारतीय जीवन मूल्यों को विदेश में भी रहकर जीते हैं और उसका प्रचार प्रसार करते हैं तो वे भारतीय हैं। जैसे कि बहुत सारे प्रवासी जो कि विभिन्न देशों में बसे हैं और उच्च उच्च पदों पर आसीन हैं। वह वहां भारतीय जीवन मूल्य को अपने अंदर समेटे हुए हैं वह दिवाली मनाते हैं, होली मनाते हैं। उनकी स्मृतियों में राम है, उनकी स्मृतियों में कृष्ण है, वे रामचरितमानस का पाठ करते हैं उनकी स्मृतियों में बुद्ध है तो वह भारतीय ही कहलाएंगे न।

किसी भी भू-भाग भाग को राजनीतिक तथा प्रशासनिक रूप से देश तो बनाया जा सकता पर राष्ट्र बनाने के लिए कुछ सांस्कृतिक कड़ियों की आवश्यकता होती है और वह कड़ियां या तत्व ही उस भू-भाग के निवासियों के बीच एक एकत्व स्थापित करने का काम करती है। पर्व-त्यौहार एवं तीर्थ भारत के सांस्कृतिक धरोहरों में से एक है महाभारत में कहा गया है कि ‘सभी नदियां सरस्वती है सभी पहाड़ पुण्य है है जाजलि! आत्मा

तीर्थ है। व्यर्थ में देश देशांतर में घूमती हुई दूसरे के अतिथि क्यों बनते हो?’¹¹ फिर भी भारत में इतने सारे तीर्थ एवं त्यौहार हैं। बुद्ध ने हर प्रकार के बाह्याडंबर का विरोध किया पर उनसे संबंधित स्थान तीर्थ बन गए और उनसे जुड़ी तिथियां त्यौहार। पंडित विद्यानिवास मिश्र ने प्रसिद्ध निबंध हिंदू-धर्म : तीर्थ और पर्वोत्सव में इसकी महत्ता पर प्रकाश डालते हुए बताया है कि तीर्थ स्थान का क्या महत्व है? और वह किस प्रकार से भारत में सांस्कृतिक एक स्थापित करने का माध्यम है। पर तीर्थस्थलों पर जिस प्रकार की भीड़ रहती है वहां बहुत सारे लोग पुण्यकांक्षी बनकर जाते हैं पर कुछ धूर्त व्यक्तियों द्वारा ठगी का शिकार भी हो जाते। हैं पंडित मिश्र ने तीर्थ स्थानों के संरक्षण पर भी विचार प्रकट किया है। ‘इस बात की आवश्यकता है कि तीर्थ की गरिमा की रक्षा की जाए तथा वहां साफ-सफाई की व्यवस्था करवाई जाए, पंडों (तीर्थ पुरोहित) को प्रशिक्षण भी दिलवाया जाए।’¹² तीर्थ यात्राओं को करने से पुण्य मिले ना मिले पर सीख बहुत मिलती है। आज जहां हर तीर्थ स्थान को पर्यटक स्थल के रूप में विकसित किया जा रहा है विभिन्न प्रकार के आधुनिक विलासितापूर्ण सी सुविधाओं से सुसज्जित किया जा रहा है। वहां भोग विलासी व्यक्तियों का आगमन अधिक हो रहा है। इस चकाचौंध में तीर्थ की सात्विकता भी कहीं नष्ट हो रही है। केदारनाथ बद्रीनाथ जैसे दुर्गम यात्राओं को पहाड़ काटकर सुगम बनाया जा रहा है, जिसके कारण एडवेंचरिज्म से युक्त उत्साही युवा वहां जाकर शराब पीते हैं और सह-यात्रियों के साथ आपत्तिजनक व्यवहार करते हैं। इससे तीर्थ यात्रा पर जाना एक पीड़ा दायक कार्य हो गया है। और एकता जोड़ने की बजाय अब यह विभेद पैदा करने का काम करती है।

भारतीयता की अवधारणा के मूल में सर्वसमावेशन का भाव रहा है। यहां हर पंथ/मत के लोग रहते आए हैं। गंगा ने सबको अपने जल से सींचा है, हिमालय ने विभिन्न झंझावातों से सबको बचाया है। गंगा नदी के बारे में पंडित मिश्र लिखते हैं कि ‘गंगा के अविच्छिन्न आहुति का आमंत्रण है कि यह जीवन लोक के लिए अर्पित होने के लिए है; इसी में अधूरे जीवन की पूर्ति है यही सबसे बड़ा साकल्य है।’¹³ गंगा की धारा में स्नान के द्वारा

व्यक्ति अपनी अपूर्णता को पूर्ण करता है। गंगा में कोई स्नान करता है, कोई वजू, कोई मोची चमड़ी धोता है तो कोई पंडित अपनी प्यास बुझाता है। इसलिए इसे जीवनदायिनी कहा गया है। यदि हम भारतीयता की बात करेंगे तो उसमें गंगा की चर्चा आवश्यक की जाएगी।

प्रत्येक राष्ट्र की अपनी संस्कृति होती है। और भारत तो सांस्कृतिक विविधताओं से भरा देश है। पर जब हम भारतीय संस्कृति की विशेषताओं की बात करते हैं तो हमारी स्मृति में धर्म आता है। पंडित मिश्र कहते हैं ‘धर्म सार्थक जीवन की विधि है, पुरुषार्थ का साधन है, शरीर के भीतर ही धर्म का वास्तविक प्रयोजन सधता है। क्योंकि यह शरीर ब्रह्मांड का एक प्रतिरूप है, इसलिए शरीर को साधने का प्रत्येक दैनंदिन व्यापार भी धर्म है।’¹⁴ धर्म की इतनी भी विशद व्याख्या भारतीयता का परिचायक है। यहां धर्म संकीर्णता नहीं बल्कि वह संपूर्णता में आता है। वह जीवन पद्धति है। विभिन्न मतों संप्रदायों के देश भारत में कमोबेश सभी धर्म मानवीयता की रक्षा करना है यही सीख देते हैं और यही मानवीयता की रक्षा भारतीयता है।

भारतीयता केवल धर्म एवं संस्कृति में ही नहीं बल्कि आम जनजीवन में भी दिखता है। भारतीय जीवनमूल्य पाश्चात्य जीवनमूल्यों से अलग है। वहां आत्म और पर में विभेद है। पर हमारे यहां आत्म और पर में एकाकार की बात की गई है। जब सृष्टि का कल्याण होगा तो मेरा भी कल्याण होगा। यहां की अवधारणा समष्टि केंद्रित है; जबकि पच्छिम की अवधारणा व्यष्टि केंद्रित है। अब पश्चिम के प्रभाव के कारण भारतीय संस्कृति नष्ट हो रही है। पंडित मिश्र ने इसपर काफी गहरी कटाक्ष किया है। जन्मोत्सव और जन्मदिन में जो फर्क है वही फर्क भारतीयता और पश्चात्यता में है।

भारतीयता में पर्यावरण संरक्षण की नवीन अवधारणा भी सन्निहित हैं। यहां तुलसी, पीपल एवं नीम में देवता, नदियों में देवी, पृथ्वी को माता तथा अन्य पशुओं को भी देव का रूप माना जाता है। पंडित मिश्र ने आंगन के पंछी नामक निबंध में मनुष्य एवं पक्षियों के अंतर्संबंध को बड़ी ही गहनता के साथ उद्घरित किया है। उनके गांव में कहा जाता था कि जिस घर में गौरेया घोंसला नहीं बनाती है वह घर निर्वंश हो जाता है। पंछियों का चहचहाना जीवंतता

की निशानी है। गोरेया को एक घरेलू पक्षी माना जाता है, वह आंगन में बैठी रहती है और जब घर के लोग अन्न सुखाते हैं तो उसका दाना चुनती है। घर के किसी कोने में अपना छोटा सा घोंसला बनाकर उसमें रहती है, घर के बच्चे उसके दान भी देते हैं और पानी भी पिला देते हैं। इससे घर में चहल-पहल बनी रहती है जो की जीवंतता की निशानी है।

प्रत्येक समाज की एक संस्कृति होती है जिसे किसी भाषा के माध्यम से साहित्य के रूप में व्यक्त किया जाता है। आचार्य शुक्ल ने तो साहित्य को जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब कहा है। यानी कि किसी भी संस्कृति की जानकारी खोजनी हो तो हमें उसके साहित्य में गोते लगाने होंगे। भाषा साहित्य और संस्कृति समाज के सापेक्ष होती है। जैसा समाज वैसी भाषा साहित्य एवं संस्कृति साहित्य की प्रवृत्तियां भी समाज पर निर्भर करती है। हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक रामविलास शर्मा की हिंदी जाति की अवधारणा भी इसी सिद्धांत पर आधारित है।

जब हम हिंदी की बात करते हैं तो वर्तमान समय में इसमें पांच उप-भाषाएं एवं 18 बोलियां हैं। हिंदी की शुरुआत कहां से मानी जाए इसको लेकर विभिन्न आलोचकों के अलग-अलग मत हैं पर लगभग सभी अपभ्रंश से हिंदी की उपज मानते हैं। प्रत्येक अपभ्रंश की अपनी एक-एक बोलियां भी थीं उन्हीं में से खड़ी बोली आज मानक हिंदी है। पंडित मिश्र इस विषय पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहते हैं 'हिंदी भाषा क्षेत्र में 20-21 उपभाषाओं के उपक्षेत्र हैं सन्निविष्ट हैं। इसमें प्रत्येक की अपनी एक उपमानक हिंदी है परंतु इन सभी उपमानकों के बीच संप्रेषणीयता का जो मानक रूप बनता है उसी का नाम हिंदी है।' ¹⁵ संस्कृत भाषा के प्रकांड ज्ञाता होने के नाते पंडित मिश्र की भाषा विज्ञान पर जबरदस्त पकड़ थी। उन्होंने भाषा की उत्पत्ति, आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का हिंदी के साथ अंतर्संबंध आदि विषयों पर भी गंभीरता से लेखन किया है। भाषा एवं साहित्य का विकास एकाएक नहीं हो जाता, यह एक विकास की सतत प्रक्रिया है। आज यदि हम हिंदी के खड़ी बोली की बात करें तो वह एकाएक ही नहीं हिंदी की मानक बन गई उसके

विकास के भी अनेक चरण हैं। हिंदी साहित्य के पुनरावलोकन नामक निबंध में हिंदी का साहित्य क्या है?, कबीर, विद्यापति, जायसी आदि कवियों को क्या हिंदी का कवि माना जा सकता है? क्योंकि यह भोजपुरी अवधी, ब्रज एवं मैथिली आदि के कवि हैं। और हिंदी साहित्य में तो आज खड़ी बोली को ही केंद्रीय दर्जा प्राप्त है इस विवाद पर वे कहते हैं कि यह फिर से बता देना नितांत आवश्यक हो गया है कि हिंदी साहित्य की जमीन गंगा के विशाल जल क्षेत्र की तरह कुशल किसानों के कारण अभी तक अपनी उर्वरता बनाए हुए हैं, उसमें कई नदियों का पानी है। यह बतलाने की जरूरत है कि 'हिंदी साहित्य संस्कृत, पालि, प्राकृत साहित्य और अपभ्रंश साहित्य की विरासत संभालने के साथ-साथ उन सभी घातों एवं प्रतिघातों को सहने और उन्हें मोड़ने में सबसे अधिक सक्रिय भूमिका निभाने वाला रहा है।' ¹⁶ वे हिंदी को न केवल एक क्षेत्रीय बोली का मिश्रण बल्कि उर्दू फारसी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के मेल से निर्मित मानते हैं। कोई भी भाषा तब तक ही जीवित रह सकती है जब उसके उपयोग करने वाले लोग जीवित रहे। या फिर उसभाषा में अन्य भाषाओं के शब्दों को ग्रहण करने की क्षमता हो। हिंदी आदिकाल से ही आम जनो की भाषा रही है पंडित मिश्र कहते हैं कि 'हिंदी ने संस्कृति की ज्ञान गरिमा की धरोहर संभाली। उसने पाली एवं प्राकृतिक के श्रमण साहित्य की त्याग वृत्ति संभाली, उसने अपभ्रंश साहित्य का पौरुष पराक्रम और जीवन के रसास्वाद की वृत्ति संभाली। सारांश में उसने जातीय राग-विराग जातीय अमर्ष जातीय आध्यात्मिकता और जातीय विश्व दृष्टि की धरोहर बड़े यत्न से संभाली।' ¹⁷

वर्तमान समय में हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के बीच विभेद पैदा किया जा रहा है विशुद्ध राजनैतिकता के कारण तमिल भाषा एवं हिंदी भाषा के बीच जातीयता का जहरीला पानी भरा जा रहा है। पंडित विद्यानिवास मिश्र इस पर विचार प्रकट करते हैं वह कहते हैं कि 'जब हिंदी यह विश्वास जगाएगी कि उसे अंग्रेजी नहीं बनना है, उसे हुकूमत की भाषा नहीं बननी है। उसे बनना है संयोजन की भाषा, सौहार्द की, एवं प्यार की भाषा। हिंदी भाषा क्षेत्र के जन का स्वत्व जागेगा तो वह अपने क्षेत्र के

सरकारों से आग्रह करेगा कि दूसरे क्षेत्रीय भाषाओं से उन्हीं भाषाओं में व्यवहार करो अपने यहां भारत की समस्त भाषाओं में समर्थ है व्यक्ति तैयार करो।'¹⁸ भाषाई विवाद को दूर करने के लिए उन्होंने क्षेत्रीय बोलियां का व्यापक व्यवहार बढ़ाने की बात कही एवं अन्य भारतीय भाषाओं को सीखने पर भी जोड़ दिया।

त्रिभाषा फार्मूले की बात भी विगत कई वर्षों से चल रही है। इसमें हिंदी-अंग्रेजी एवं एक क्षेत्रीय भाषा को सीखने पर बल दिया जाना था। परंतु दक्षिण भारत में इसका काफी विरोध हो रहा है, क्योंकि इसमें हिंदी को अनिवार्य बनाया जा रहा है। किसी भी भाषा को हम किसी पर थोप नहीं सकते और यदि राज्य इस प्रकार का कृत्य करेगा तो उसका परिणाम बांग्लादेश एवं श्रीलंका के रूप में सामने आ सकता है। जहां क्रमशः उर्दू एवं सिंधानी भाषा को जबरन अनिवार्य बना दिया गया भाषा ही अस्मिता की लड़ाई के फल स्वरूप पाकिस्तान से कटकर एक स्वतंत्र मुल्क बांग्लादेश का जन्म हुआ। और जब श्रीलंका के उत्तरी भाग में तमिल वासी लोगों पर सिंहली भाषा थोपने की कोशिश की गई तो वहां भयंकर गृह युद्ध हुआ। यही कारण है कि भारत में त्रिभाषा सूत्र पर सहमति नहीं बन पा रही है।

भाषा के प्रश्न पर विचार करने के पश्चात हम साहित्य के प्रयोजन पर विचार करते हैं। और यह प्रश्न भी स्वाभाविक है कि समाज में साहित्य की क्या भूमिका है? इस विषय पर साहित्य में आरंभ से ही विभिन्न विद्वानों ने अनेक मत दिए हैं। मम्मट ने एक सूत्र का प्रतिपादन किया जो लगभग सर्वमान्य है। पंडित विद्यानिवास मिश्र ने भी अपने विभिन्न निबंधों में साहित्य का समाज में प्रयोजनीयता पर भी विचार किया। वे लिखते हैं कि 'समाज और साहित्य के बीच एक अजीब-सा रिश्ता है। इसका एक दूसरे के बिना काम भी नहीं चल सकता। और यह एक दूसरे से निरपेक्ष भी होना चाहते हैं। साहित्य समाज के लिए होता है पर समाज साहित्य से नियमित होने के लिए तैयार नहीं होता है। इसी प्रकार साहित्य सामाजिक संप्रेषण के बिना अपना अस्तित्व नहीं रखता है। परंतु साहित्य सामाजिक व्यवस्था को ज्यों का क्यों स्वीकार नहीं करता।' ¹⁹ प्रेमचंद ने तो साहित्य को आगे चलने वाली मशाल कहा है। साहित्य समाज कैसा है? इससे अधिक कैसा होना चाहिए? पर बात करता है यानि

कि यह बीड़ंग से अधिक बीकमिंग की बात करता है। वह समाज में सकारात्मक बदलाव चाहता है और इसके लिए साहित्यकार एक आदर्श प्रस्तुत करता है। तुलसी का रामराज्य, कबीर का अमरदेश, जायसी का सिंघलदीप एवं रविदास का बेगमपुरा इसी के उदाहरण हैं। पंडित मिश्र ने भक्तिकाल के इन कवियों के कुछ मुक्तकों को आधार बनाकर आलेख लिखे हैं। एवं वे इन निबंधों में सगुन एवं निर्गुण के विवाद में ना जाकर ईश्वर के उन तत्वों की व्याख्या की जो सामान्य मानवीय जीवन में सहज है। ईश्वर का रूप चाहे जो भी हो उसके दर्शन या साक्षात्कार के लिए सभी तड़पते हैं वह लिखते हैं 'प्यार और मरण का एकीकरण और इस कारण सनातन विरह की तड़पन दोनों स्तरों के भक्तों के अनुभवों में है। यह मृत्यु अनुष्ठानिक मात्र नहीं है यह सचमुच में मरण है।' ²⁰ क्योंकि प्रेम का तत्व सर्वव्यापी है और जब भक्त प्रेम के स्तर पर आ जाते हैं तो दोनों भेद समाप्त हो जाता है।

जब कोई साहित्यकार रचना करता है तो उसके मन में रचना को क्यों करें? यह जो प्रश्न होता है और उसका उसके अंतर्मन से जो उत्तर निकलता है वही साहित्य का प्रयोजन कहलाता है। पंडित मिश्र लिखते हैं कि 'साहित्यकार अपने लिए आदर नहीं मांगता अपनी कृति के लिए पहचान मांगता है। और यदि कृति पहचानी जाती है तो उसे संतोष प्राप्त होता है और उसका प्रयोजन सिद्ध होगा।' ²¹ यानी कि साहित्य का प्रयोजन पाठक वर्ग से सिद्ध होता है। कोई रचनाकार जब कृति रचता है तो उसे कोई पहचानता नहीं पर जब उसकी कृति को ख्याति मिल जाती है तो लेखक रचनाकार को भी पहचान मिल जाती है। अपने समाज में रहते हुए साहित्यकार विभिन्न अंतर्विरोधों से जुझते हुए और समाज में जीते हुए जो कुछ रचता है वह साहित्य है पंडित मिश्र के अनुसार 'साहित्य की सबसे सटीक परिभाषा यही है कि जितनी बार वह दोहराया जाए, जितनी बार पढ़ा जाए उतनी ही बार जिया जाए। सही अर्थों में जितनी बार जिया जाए उतनी ही बार पाठक के द्वारा नया रचा जाए।' ²² उनके कहने का तात्पर्य है कि एक उत्कृष्ट साहित्य वही होता है जो पाठकों के अंतर्गत दृष्टि में नवीनता लाता है। वह वह नहीं है जो लिखा गया है वह वह है जो पढ़ा जाएगा। यानी कि साहित्य का अर्थ

पाठक की अनुभूतियों पर निर्भर करता है।

किसी साहित्य का मूल्यांकन उसका पाठक वर्ग करता है। किसी रचना को पढ़कर जब हमारी संवेदनाएं तीव्र हो जाती हैं या फिर न्यू हो जाती हैं तो वही साहित्य का उद्देश्य होता है। पंडित मिश्र लिखते हैं 'साहित्य समाज के भीतर जीने वाले मनुष्यों की हार, हारकर जीतने वाले उत्साह का, और बार-बार जीत कर टूटने वालों की कथा है'²³ साहित्य लोक का है और लोक समाज के भीतर रहने वाले लोगों के समूह को कहा जाता है। और समाज लोकहित के उत्थान की बात करता है। साहित्य लौकिकता की बात करता है। 'वह इस माने में लौकिक है कि वह है लोकचित की न्याय प्रियता पर आस्था रखता है और अपने पाठक से आशा करता है कि तुम भी लोकाचित में आस्था रखो।' ²⁴ साहित्य का अपना एक लोक वृत्त होता है। हिंदी में इसका प्रथम प्रयोग वरिष्ठ आलोचक पुरुषोत्तम अग्रवाल ने किया था। यह संस्कृति का परिचायक होती है। बहुत सी बातें जो साहित्य से छूट जाती हैं वह आम जनों में प्रचलित रहती हैं और परंपरागत रूप से वह वाचिक परंपरा में रहती हैं। लोकगीत, लोकगाथा एवं लोकधर्मिता इसके विभिन्न विन्यास हैं। पंडित मिश्र लोक को शास्त्र के विरुद्ध नहीं बल्कि उसका पूरक मानते हैं। क्योंकि लोक वृत्त एक जीवंत प्रक्रिया होती है। जैसे कि जब भी हम जायसी के पद्यावत को पढ़ते हैं तो उसमें हमें अवधी के लोक वृत्त का चित्रण मिलता है। रेणु की रचनाओं को पढ़े तो हमें पूर्वी बिहार के जो लोकवृत्त हैं उनका चित्रण मिलता है। जबकि दोनों को हिंदी का ही रचनाकार माना जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि हिंदी में अनेक लोक वृत्त हैं।

हिंदी संघ की राजभाषा है यानी की सरकारों के कामकाज की भाषा। इस भाषा को लेकर संविधान में विभिन्न प्रावधान हैं। पंडित मिश्र हिंदी को लेकर काफी सजग थे, उनके समय ही राजभाषा अधिनियम 1963 पास हुआ जिसमें अंग्रेजी के प्रयोग को अनिश्चितकाल तक के लिए बढ़ा दिया गया। और जब वे हिंदी दिवस का आयोजन देखते तो उनके मन में क्षोभहोता था वह कहते थे 'एक और बात दुखद है कि हिंदी के रचनाकारों

के मन में हिंदी भाषा के लिए दर्द नहीं है। हिंदी के अध्यापकों मन में हिंदी के लिए कोई हुक नहीं है। वह हिंदी की रोटी खाते हैं, इसलिए हिंदी उनके लिए महत्वपूर्ण है।' ²⁵ हिंदी जिसे गांधी ने राष्ट्रभाषा का दर्जा दिया था उसके प्रति उपेक्षा हिंदीभाषियों के लिए शर्म का विषय है।

जब कोई भाषा काज की भाषा ना हो तब तक वह समाज की भाषा नहीं हो सकती है। अंग्रेजी सीखना जरूरी है, क्योंकि विश्व स्तरीय ज्ञान एवं रोजगार उसमें उपलब्ध है। इसका यह मतलब नहीं की विश्व के समस्त ज्ञान का सृजन अंग्रेजी भाषी करते हैं, लेकिन किसी भी भाषा के ज्ञान का अनुवाद वे शीघ्रता से अंग्रेजी भाषा में कर देते हैं। इसी कारण अंग्रेजी में विश्वास स्तरीय ज्ञान का साहित्य उपलब्ध हो जाता है। कवि गुरु रवींद्रनाथ टैगोर ने बांग्ला भाषा में गीतांजलि की रचना की थी अनुवादक ने उसका उत्कृष्ट अनुवाद किया और वह कृति साहित्य में नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाली एशिया की पहली कृति बनी। हाल ही में गीतांजलिश्री के उपन्यास 'रेत की समाधि' का अनुवाद डेजी रा. कवेल ने 'टॉन्ब ऑफ सेंड' के नाम से किया और इस कृति को साहित्य के दूसरे सबसे बड़े सम्मान बुकर पुरस्कार से सम्मानित किया गया। हिंदी में भी अंतर्राष्ट्रीय भाषा बनने की क्षमता है, क्योंकि इसके भाषा-भाषी समुदाय विशाल मात्रा में हैं। साफ शब्दों में कहें तो हिंदी का बाजार का दायरा काफी बड़ा है, आवश्यकता ही इस भाषा को तकनीकी एवं प्रौद्योगिकी सुलभ बनाने की। पंडित मिश्र कहते थे कि 'अपने देश के लोग हिंदी के बारे में कितने ही उदासीन हो किंतु जो विद्वान भाषाप्रवाह की गति को पहचानते हैं वह अच्छी तरह समझने लगे हैं कि 20वीं सदी के अंत होते-होते विश्व में कुल 10 भाषाएं अंतर्राष्ट्रीय महत्व की रह जाएंगी। जिसमें आपसी आदान-प्रदान सहज संचालित बनाने के लिए यांत्रिक सुविधाएं सुलभ हो जाएगी उसमें हिंदी का स्थान प्रमुख होगा।' ²⁶ हम यह कह सकते हैं की हिंदी की अंतर्राष्ट्रीय भूमिका कोई दिवा स्वप्न नहीं बल्कि एक मांग है और आने वाले भविष्य की वास्तविकता है।

निष्कर्ष :

लोक संस्कृति का महत्व केवल ही थी बल्कि आने वाली के लिए भी नए समाज के लिए अत्यंत गहरा और समय-सम्मत महत्व है। इस आलेख में न केवल भारतीय लोकसंस्कृति का संवेदनशील चित्रण है, बल्कि यह आधुनिक समाज के टूटते मूल्यों और संवेदनहीनता के बीच सांस्कृतिक पुनर्जागरण की भी प्रेरणा देता है। संवेदनशील समाज की आवश्यकता का बोध कराता है। मिश्र जी के निबंध यह

बताते हैं कि साहित्य केवल दर्पण नहीं, परिवर्तन का साधन है। आज के यंत्रवत समाज को यह निबंध संवेदनशीलता, आत्मीयता और मानवीय दृष्टिकोण सिखाते हैं। जब आज पश्चिमीकरण के प्रभाव में पारंपरिक मूल्य खोते जा रहे हैं, ये निबंध बताते हैं कि हमारी लोक संस्कृति में ही समाधान छिपा है। लोकगीत, लोक परंपरा, तीर्थ, रीति-रिवाज- ये सब आज के समाज को सांस्कृतिक एकता में बांध सकते हैं। □

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पंडित विद्यानिवास मिश्र संचयिता- संपादक दयानिधि मिश्र; राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली ,2015 पृष्ठ संख्या- 57
2. पृष्ठ संख्या- 58
3. पृष्ठ संख्या- 31
4. पृष्ठ संख्या- 26
5. पृष्ठ संख्या- 181
6. पृष्ठ संख्या - 183
7. पृष्ठ संख्या - 185
8. निबंध निलय, संपादक - डॉ. सत्येंद्र;वाणी प्रकाशन; जनवरी 2021; पृष्ठ क्रमांक-262
9. पंडित विद्यानिवास मिश्र संचयिता , संपादक : दयानिधि मिश्र, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2015 पृष्ठ संख्या - 401
10. पृष्ठ संख्या-402
11. पृष्ठ संख्या - 419
12. पृष्ठ क्रमांक-424
13. पृष्ठ संख्या-435
14. पृष्ठ क्रमांक- 431
15. पृष्ठ संख्या- 243
16. पृष्ठ संख्या- 241
17. पृष्ठ संख्या- 247
18. पृष्ठ संख्या - 248
19. पृष्ठ संख्या- 280
20. पृष्ठ संख्या - 254
21. पृष्ठ संख्या- 291
22. पृष्ठ संख्या- वहीं
23. पृष्ठ संख्या-302
24. पृष्ठ संख्या- वहीं
25. पृष्ठ संख्या- 371
26. पृष्ठ संख्या- 375

सामाजिक उपन्यास दंताल हातीर ऊँईये खोवा हाउदा : एक अनुशीलन



डॉ. बिद्या दास

शोध सार :

सामाजिक उपन्यासकार समाज-जीवन को प्रभावित करने वाले तमाम पक्ष, जैसे राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और उनसे जुड़े विभिन्न मुद्दों की पड़ताल करते हुए अपना विचार व्यक्त करता है। 'दंताल हातीर ऊँईये खोवा हाउदा' उपन्यास में लेखिका ने आमरंगा सत्र का जनजीवन, धर्म, परिवेश, वहाँ की सामाजिक व्यवस्था का यथार्थ चित्रण करने के साथ ही उस समाज व्यवस्था में सुधार एवं परिवर्तन लाने पर भी जोर दिया है। स्वतंत्रता पूर्व और परवर्ती समय में असम के दक्षिण कामरूप जिला में विभिन्न सामाजिक मुद्दों को अपनी रचनाकृति के जरिये प्रस्तुत कर लेखिका मामनी रयसम गोस्वामी ने असमिया जन-समाज में जागरूकता लाने का प्रयास किया है। तत्कालीन समय में दक्षिण कामरूपी ग्रामीण समाज विशेष तौर पर सत्राधीन ब्राह्मण समाज में व्याप्त जड़वादी मान्यताओं का शिकार स्वयं लेखिका भी रही हैं; उसी का जीवंत वर्णन उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है।

बीज शब्द :

समाज, जनजीवन, आमरंगा सत्र, ब्राह्मण, यथार्थ, मानवता।

मूल आलेख :

समाज-हित के प्रति सचेत प्रत्येक साहित्यकार रचनात्मक सम्बलों को वास्तविक जीवन से एकत्रित कर साहित्य का निर्माण करता है, फलतः उनकी रचनाओं में युग सत्य की झलक स्पष्ट रूप से मिलती है। मामनी रयसम गोस्वामी उर्फ डॉ. इंदिरा गोस्वामी भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त आधुनिक असमिया साहित्य की सुविख्यात लेखिका रही हैं, जो अपने जीवन के अंत समय तक देश, समाज व परिवेश से गहरे स्तर पर जुड़ी रहीं और उसी का यथार्थ चित्रण अपनी रचनाओं में भी किया है। मामनी रयसम गोस्वामी ने अपनी मातृभाषा असमिया के साथ ही अंग्रेजी में भी लेखनी चलायी हैं। वे न केवल असमिया साहित्य बल्कि भारतीय साहित्य में भी एक प्रबल नारीवादी चिंतक के रूप में प्रसिद्ध हैं। साहित्यकार मामनी रयसम गोस्वामी ने कल्पना की उड़ानें नहीं भरीं, बल्कि मानव जीवन की वास्तविकता के प्रति सचेत होकर अपनी रचनाकृतियों द्वारा दायित्वशीलता का परिचय दिया है।

मामनी रयसम गोस्वामी की प्रमुख रचनाकृतियों में चेनाबर स्रोत(प्रथम उपन्यास), अहिरन(उपन्यास), नीलकण्ठी ब्रज(उपन्यास), मामरे धरा तरोवाल(उपन्यास), आधा लेखा दस्तावेज(आत्मजीवनी) आदि हैं। वास्तविक

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय,
गुवाहाटी, असम
☎ 6002146138
✉ bidyadas@cottonuniversity.ac.in

जीवन के धरातल पर लिखी गई इनकी रचनाकृतियों ने असमिया साहित्य में एक नई धारा की शुरुआत की है। निम्न, दरिद्र और समाज के प्रत्येक शोषित जन के प्रति उनके संवेदनशील मन में अपार सहानुभूति थी। 'उनकी रचनाओं का मूल उपादान वास्तविकता का अनुसंधान, अनुभूति की तीव्रता और गहन शिल्प-चेतना रही है। इनके अलावा लेखिका की मानवतावादी दृष्टि सर्वोपरि है।' ¹

'दंताल हातीर ऊँईये खोवा हाउदा' (सन् 1988) उपन्यास मामनी रयसम गोस्वामी की श्रेष्ठ रचनाओं में से अन्यतम है, जिसकी पृष्ठभूमि सन् 1947 से 1981 तक की है। इस उपन्यास की रचना असम के दक्षिण कामरूप अंचल के आमरंगा सत्र और वहाँ की समाज व्यवस्था को केंद्र में रखकर की गई है। देश की स्वाधीनता और उसके परवर्ती समय में आमरंगा सत्र का परिवेश, आहोम शासकों द्वारा भूमि दानस्वरूप प्राप्त करने वाले सत्राधिकारों का वंश-गौरव, अभिमान, प्रजा पर उनका प्रभुत्व, सत्रीय जनजीवन की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियाँ, ब्राह्मण विधवाओं का यंत्रणामय जीवन, अप्नीम के नशे में लिस समाज तथा इसी के साथ तत्कालीन राजनैतिक चेतना जिसमें कम्युनिस्टों के सहयोग से भू-अधिकार के लिए प्रजा का विद्रोह आदि प्रमुख समस्याओं को उपन्यास में दर्शाया गया है।

दक्षिण कामरूप अंचल का आमरंगा सत्र प्रधानतः दामोदरिया सत्र के रूप में जाना जाता है। आमरंगा सत्र और सत्राधिकारी वर्ग ने आहोम शासकों से विस्तृत भूमि प्राप्त की थी, इसी कारण सत्र के आसपास के पूरे समाज में इन सत्राधिकारों का व्यापक प्रभुत्व बना हुआ था। इसी प्रभाव और प्रभुत्व के चलते वे सामान्य जन का शोषण करते थे। सामान्य जनजीवन सत्राधिकारों के अधीन होने के कारण उनसे डरकर रहती थीं। 'गोसाई देव के घर के सम्मुख पहुँचते ही बेंड-बाजा सब बंद हो गया। पालकी पर बैठी नई दुल्हन को भी पकड़कर उतारा गया। यह सत्राधिकार महाप्रभु के घर का चौखट है; यहाँ बेंड-बाजा सब बन्द होना पड़ेगा, पालकी पर बैठे लोगों को भी उतरना पड़ेगा। किसी शूद्र व्यक्ति की कुर्सी पर बैठने पर गोसाई देव के दादा खंगाल सत्राधिकार द्वारा हथपंखे की

नाल से मारकर घाव कर देने की बात सोरु गोसाईनी ने सुन रखी थी।' ² (गोस्वामी, मामनी रयसम, (2011) दंताल हातीर ऊँईये खोवा हाउदा, चंद्र प्रकाश, पानबाजार, गुवाहाटी, पृसं. 195)

समाज केंद्रित उपन्यास होने के नाते सामाजिक उपन्यास की महत्वपूर्ण शर्तों में यह है कि एक निश्चित समय अवधि में सामाजिक संरचनाओं तथा स्थितियों की खोज व प्रस्तुति के बाद उसकी आलोचना करना। समाज जीवन को प्रभावित करने वाले तमाम पक्ष, जैसे राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और उनसे जुड़े विभिन्न मुद्दों की पड़ताल करते हुए साहित्यकार अपना विचार व्यक्त करता है। 'दंताल हातीर ऊँईये खोवा हाउदा' उपन्यास में लेखिका ने आमरंगा सत्रीय जीवन-परिवेश, वहाँ की समाज व्यवस्था में फैले जड़वाद तथा पात्रों के यथार्थ चित्रण करने के साथ ही समाज व्यवस्था में सुधार एवं परिवर्तन लाने पर भी जोर दिया है। तत्कालीन समय में दक्षिण कामरूपी ग्रामीण समाज विशेष तौर पर सत्राधीन ब्राह्मण समाज में व्याप्त जड़वादी मान्यताएं, कुसंस्कार, ब्राह्मण विधवाओं के प्रति कठोर नीति-नियम तथा अंधविश्वासों का शिकार स्वयं लेखिका भी रही हैं; उसी का जीवन्त रूप उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है।

सामन्तवादी समाज व्यवस्था का मूल स्तम्भ हमेशा से पुरुषतंत्र रहा है। पुरुषतंत्र और सत्रीय समाज-व्यवस्था के प्रभाव से नारी के अवहेलित, अवदमित जीवन की करुण कहानी इस उपन्यास का अन्यतम विषय रहा। सत्राधीन समाज में पुरुषों की तुलना में स्त्री-जीवन निम्न स्तर का था; विधवा स्त्रियों का मानो समाज में कोई अस्तित्व ही न था। सत्राधिकार परिवार की तीनों ब्राह्मण विधवा सोरु गोसाईनी, दुर्गा और गिरीबाला की मानसिक द्वंद्व और उनके नीरस जीवन की करुण कहानी के जरिये लेखिका ने रूढ़ीवादी सत्रीय-समाज में विधवा जीवन की अमानवीय, यंत्रणामय जीवन चित्र को यथार्थ रूप प्रदान किया है। अम्बुबासी के समय ब्राह्मण विधवाओं को अपवित्र माना जाता है; उनके पैरों से ताम्बुल पेड़ के सूखे छाल बाँध दिये जाते थे जिससे जमीन पर उनके पैरों की छाप मिट जाये। सामाजिक कुसंस्कार, अन्धविश्वास के चलते विधवा नारी के प्रति समाज द्वारा किए गए अमानवीय

व्यवहार का एक उदाहरण जिसमें गिरीबाला के विधवा होकर पितृगृह लौटने पर एक वयस्क महिला कहती है, 'मत छूना, मत छूना! अभी-अभी विधवा होने वाली इस औरत को तुम सधवा औरतें मत छूना।' ³ अंधविश्वास और कुसंस्कार से ग्रस्त सत्रीय समाज में ब्राह्मण लड़कियों का विवाह से पूर्व पुष्पिता/रजस्वला होना अपवित्र माना जाता है, और इसी डर से लड़कियों का विवाह कम उम्र में ही कर दिया जाता था। समाज में अंधविश्वास ऐसा व्याप्त था कि यात्रा के लिए निकलते समय किसी का छींकना भी अपशुन माना जाता है। इंद्रनाथ के घर से निकलते ही कालकुट महावत के छींकने पर उसे डाँट सुननी पड़ी- 'धेकुरा, मात्रात मरा। छींकने का और कोई समय नहीं मिला।' ⁴

उपन्यास में सत्र के प्रतापी अधिकारी वर्ग द्वारा पुरुषतांत्रिक समाज का दंभ उजागर हुआ है। जिस समय सामान्य जनसमाज अपना प्रकृत संपद खोकर प्रति पल निःस्व होता जा रहा होता है उसी समय अधिकारी वर्ग अमानवीय कार्यकलापों में लिप्त होकर उपभोग कर रहा होता है। सत्रीय वंश के पुरुष स्वयं विवाहित होते हुए सुदूर औरत तथा निम्न जाति की रक्षिताओं के साथ उनका संपर्क था। ऐसे प्रतापी अधिकारी वर्ग के पात्रों में गिरीबाला का पति लातु गोसाई उल्लेखनीय है। मृत्यु से पूर्व लातु गोसाई का पर-नारी के साथ अवैध संबंध होने के कारण गिरीबाला का जीवन-यौवन सब ध्वंस हो गया था। उपन्यास की अन्य एक पात्र सुरु गोसाईनी के दुर्भाग्य का मूल कारण भी यही रहा कि पति के परलोक गमन से पूर्व अपने पिता के परस्त्री संबंध के विरुद्ध प्रतिवाद करने पर पैतृक संपत्ति से वंचित होना पड़ा। वंश-परम्परा की इस भोगवादी चिन्तनधारा के प्रति घृणा और अनासक्ति का भाव रखने वाले इंद्रनाथ, जो इस उपन्यास का नायक है, के मन में अन्य गोसाईयों की तरह उपभोग करने की वासना नहीं थी। उसका विवेक सत्रीय समाज-व्यवस्था की अमानुषिकता को देख पिंजराबद्ध किसी पक्षी की तरह अशान्त और दुखी था। सत्र के दोनों तरफ देखकर इंद्रनाथ सोचने लगता है, '...पहले यहाँ के प्रत्येक घरों में दस-बारह तांबुल के पेड़ हुआ करते थे। उन पेड़ों पर पान की लताएँ कपों चिड़ियों की पंखों की तरह भरपूर थीं।

पर अब वही पान की लतायें सूखी अंतड़ियों सी पेड़ से लटकी हुई हैं।' ⁵

देश की स्वाधीनता से पूर्व अफीम के नशे ने असम के पूरे ग्रामीण समाज को अपने ग्रास में ले लिया था। अफीम के नशे में लोग आलसी, कामचोर और रोगी बन चुके थे। अफीम का नशा सत्र-समाज में प्रवेश कर सत्रीय परिवेश को भी नष्ट करने लगा था। उसी का यथार्थ चित्रण लेखिका ने आमरंगा सत्र और उसके परिवेश के संदर्भ में उपन्यास में किया है। यह वर्ग अफीम के नशे में लिप्त समाज का प्रतिनिधित्व करता है जिनमें सामान्य प्रजा के दुख-कष्ट के प्रति कोई संवेदना नहीं। जिस समय सत्र का गोसाई वर्ग भोग-विलास में लिप्त था उसी समय साधारण जनता दुख और अभाव में जीवन व्यतीत कर रही थी। फलतः अफीम की लत दरिद्र और शोषित जनों के दुख निवारण का एकमात्र सहारा बन गई थी। समाज का एक वर्ग अफीम को चोरी छिपे बेच रहा है, वहीं दूसरा वर्ग अफीम के नशे से लोगों को मुक्त करने की चेष्टा करता है। इस अफीम के नशे से लोगों को मुक्त करने का प्रयास करना दरअसल लेखिका का समाज के प्रति दायबद्धता का परिचय देता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के अंतिम भाग में आधुनिकता के प्रवेश के साथ ही सामंतयुगीन समाज-व्यवस्था में परिवर्तन आया। रूढ़िवादी सत्रीय-समाज-परिवर्तन की इस लहर को रोक नहीं पाया। समाज में सत्राधिकारों एवं गोसाईयों का प्रभाव और प्रभुत्व दोनों कम होने लगा। एक नये युग का संदेश लेकर कम्युनिस्टों का दल असम के गाँव-अंचलों में प्रवेश करने लगा था। सामान्य जन सचेत होने लगे; कम्युनिस्ट आंदोलन से प्रभावित होकर किसानों ने अपनी प्राप्य भूमि के लिए आवाज उठाई और सत्राधिकारों को धान देने से अस्वीकार किया, 'जाओ, बुलाकर लाओ अपने गोसाई देव को। वह भी तुम्हारी तरह हल पकड़े। हल पकड़कर खेती करें, धान की कटाई करें।' ⁶

पात्रों का चयन और निर्माण लेखिका ने अपने उसी समाज-जीवन से ग्रहण किया है। इंद्रनाथ, गिरीबाला, दुर्गा, सुरु गोसाईनी यह सभी पात्र समाज की निस्तुरता, कुसंस्कार, अमानुषिकता आदि से जुझते हुए छटपटा रहे हैं। इंद्रनाथ उपन्यास का मुख्य पात्र है। आधुनिक शिक्षा

प्रास इंद्रनाथ आमरंगा सत्र का भावी सत्राधिकार होने के बावजूद सत्र की परम्परा, संस्कार, रीति-नीति के प्रति उसकी कोई आस्था नहीं थी। सत्राधिकारों की जड़वादी मान्यताओं तथा जमींदारी प्रथा में बदलाव कर वह रैयतों को उनकी प्राप्य भूमि प्रदान करने पर ज्यादा बल दे रहा था। सत्र के गोसाईयों की कठोर रीति-नीति के प्रति ध्यान न देकर उसने ईसाई धर्म प्रचारक मार्क साहब के पुराने ग्रंथों की गवेषणा के लिए अपनी विधवा बहन गिरीबाला को उनके साथ संगी के रूप में भेजा। यह उसकी प्रगतिशील दृष्टिकोण का एक उदाहरण है। ससुराल वालों की निस्तुरता और अवहेलना की शिकार हुई दुर्गा तथा प्रतिकूल परिस्थिति में साहस के साथ युद्ध करने के बाद भी पराजित होने वाली सरु गोसाईनी के प्रति भी इंद्रनाथ के मन में गहन संवेदना थी।

उपन्यास की नायिका के रूप में गिरीबाला ने आमरंगा सत्र की इस समाज-व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह कर मृत्यु को सहज आत्मसात् कर लिया। गिरीबाला कम उम्र में हुई एक विधवा औरत थी; समाज द्वारा निर्देशित कठोर नीति-नियम और परम्परा के विरुद्ध अपने ससुराल लौट जाने को अस्वीकार कर, मांस भक्षण कर साथ ही ब्राह्मण समाज द्वारा बहिष्कृत गोरे साहब मार्क के साथ घूमकर विद्रोह की घोषणा करती है। वैवाहिक जीवन की असन्तुष्टि, वैधव्य की यंत्रणा और समाज की लांछना ने गिरीबाला के जीवन को विनाश पथ पर ला दिया था, उस जीवन से मुक्ति पाने के लिए उसने स्वेच्छा से मृत्यु वरण किया। उसकी मृत्यु मानो जड़वादी समाज द्वारा उसके प्रति किये गये जीवनभर की यंत्रणा-लांछना के विरुद्ध एक प्रतिवाद था। गिरीबाला के जरिये लेखिका ने न केवल ब्राह्मण विधवा की अवहेलित और अवदमित जीवन का करुण वर्णन किया है, बल्कि उस परिवेश के विरुद्ध अपने प्रतिवाद को भी दर्शाया है।

मामनी रयसम गोस्वामी की रचनाकृतियों का प्रधान सम्बल समाज के निम्न श्रेणी लोगों का जीवन रहा है। उनके उपन्यासों के केंद्र में श्रमिक वर्ग, विधवा नारी जीवन और समाज का अवहेलित वर्ग रहा है। इंद्रनाथ के मन में जिसके प्रति प्रेम भाव था वह गोसाई वंश से निम्न व दरिद्र श्रेणी की एक सामान्य ब्राह्मण लड़की इलिमन

थी। वंश गौरव की दृष्टि से इलिमन उसके योग्य नहीं थी तथापि दरिद्रता और अवहेलना के बीच बड़ी हुई इलिमन के प्रति इंद्रनाथ का करुणामिश्रित एक आंतरिक आकर्षण था। इलिमन के जरिये लेखिका ने निम्नवर्गीय लोगों की जीवन-धारणा, मूल्यबोध तथा इतिहासाश्रित समाज और समसामयिक समाज दोनों प्रकार के समाज जीवन का चित्रण उपन्यास में किया है। वे खुद लिखती हैं, 'मेरे व्यक्तिगत वास्तविकता का अनुभव और इसका स्पर्श मेरे सारी लेखनियों में विद्यमान है।...एक कर्कश वास्तविकता के ड्यौरी पर मैंने अपनी रचनाओं को रचा है।' ⁷

उपन्यास में नई पीढ़ी के प्रतिनिधि इंद्रनाथ, गिरीबाला के द्वारा नवजागरण एवं समाज परिवर्तन की प्रक्रिया को आरम्भ होते हुए दिखाया गया है। यह नई पीढ़ी सामन्तयुगीन रूढ़ीवाद तथा अमानवीयता के विरुद्ध प्रतिवाद कर मानवता के प्रति आस्था प्रकट करती है। मृत्यु के क्षण में इंद्रनाथ का अपने दोस्त बलराम से यह कहना कि, 'मैंने जो परीक्षण-निरीक्षण किया था..वह परीक्षा अभी सफल हो गई है।' ⁸ इसका आशय यह था कि समानता के आधार पर मनुष्य को मनुष्य के अधिकार की प्राप्ति के लिए इंद्रनाथ ने जो आदर्श स्थापित किया था वह सार्थक हुआ है। उपन्यास के अधिकांश पात्र मानवीय मर्यादाबोध के जीवंत प्रतिमूर्ति हैं। सामाजिक रूढ़िवाद और कु-संस्कार के विरुद्ध विद्रोह करने वाले इंद्रनाथ के आत्मोत्सर्ग के बीच से मानवता की जय घोषणा हुई है। इंद्रनाथ ने अपने ज्ञान और तर्कशील बुद्धि से सत्रीय समाज के अन्याय के विरुद्ध जो प्रतिवाद जारी रखा था वह संपूर्णतः आधुनिक चिंतन का द्योतक है। परंपरागत जमींदारी प्रथा के प्रति विद्रोह कर प्रजा को उनकी प्राप्य भूमि प्रदान कराने के लिए उसने अपने घर से ही संग्राम आरंभ कर दिया था, उसी इंद्रनाथ के मन में समाज के निस्सहाय दरिद्रजन के प्रति अपार सहानुभूति थी। ⁹ आमरंगा सत्र का भावी सत्राधिकार होते हुए भी इंद्रनाथ ने समाज की निम्न श्रेणी के लोगों के साथ जातपात को लेकर किसी प्रकार का भेदभाव न रखकर समानता का भाव रखा और इसीलिए इंद्रनाथ अपने गाँव-समाज में सभी का प्रिय गोसाई देव बन चुका था। इसी इंद्रनाथ के जरिये लेखिका की मानवतावादी धारणा परिलक्षित होती है।

मामनी रयसम गोस्वामी की रचनाशैली का अन्यतम विशेषत्व है प्रतीकों का व्यवहार। 'दंताल हातीर ऊँईये खोवा हाउदा' में हाथी और हाउदा दोनों को एक सांकेतिक अर्थ में प्रयोग किया गया है। धनी, संपन्न सामन्तों का हाथी की पीठ पर लगे हाउदा हौदा में बैठकर जाना सम्मानजनक बात हुआ करती थी; रंगीन हाउदा प्रतीक है सत्र के उन अधिकारी वर्ग की वंश-मर्यादा का। लोगों के बैठने पर हाथी की जो अधमरी अवस्था होती है वह दरअसल प्रतीक है समाज के निम्न व शोषित जन का। और हाउदा को दीमकों द्वारा कुतरना दरअसल सामंत वर्ग के दंभ का खोखला स्वरूप प्रकट करता है। होम गार्ड का यह कथन, 'अपनी पीठ के हाउदा पर लोगों को बिठाकर अधमरे हुए यह हाथी दरअसल हम लोगों की तरह हैं। उन्हें भी गजमूर्ख कहा जाता है और हम, हम भी गजमूर्ख...'।¹⁰

निष्कर्ष :

'दंताल हातीर ऊँईये खोवा हाउदा' उपन्यास में सत्रीया समाज के परिवेश में एक रूढ़िवादी समाज, अधिकारी वर्ग के शासन-शोषणतंत्र और साधारण जन का विपर्यय चित्र स्पष्ट रूप से प्रकट हुआ है। समाज जीवन से जुड़ा कोई भी साहित्यकार अपने युग से अपने परिवेश से कटकर नहीं रह सकता। यह बात मामनी रयसम गोस्वामी के संपूर्ण जीवन की समग्र रचनाशीलता से परिपुष्ट होती है। स्वतंत्रता पूर्व और परवर्ती समय में असम के दक्षिण कामरूप जिला के आमरंगा सत्रीय जीवन से जुड़े विभिन्न सामाजिक मुद्दों को प्रस्तुत कर लेखिका ने जन-समाज में जागरूकता लाने का प्रयास किया है। सत्रीय परिवेश में प्रचलित समाज जीवन को पंगु करने वाले कुसंस्कारों, अंधविश्वासों के विरुद्ध विन्यास, परिस्थिति, पात्र-चित्रण के जरिये जीवन और समाज का यथार्थ रूप प्रकट कर अपनी सामाजिक दायबद्धता और संचेतना का भी परिचय दिया है। □

असमिया शब्दों के हिंदी अर्थ :

दंताल हातीर ऊँईये खोवा हाउदा— दीमकों द्वारा कुतरा गया दंताल हाथी का हौदा। **आमरंगा**— असम के दक्षिण कामरूप जिले का एक अंचल। **सत्र**— एकशरणीया वैष्णव धर्म से जुड़े संस्थागत केंद्र जिसकी स्थापना महापुरुष शंकरदेव ने की थी, मठ। **दामोदरिया**— दामोदर यानि श्रीकृष्ण; जहाँ श्रीकृष्ण मुख्य आराध्य देव रूप में पूजे जाते हैं। **ताम्बूल**— सुपारी। **मान्नात**— नरक, जहन्नुम।

संदर्भ ग्रंथ :

1. भराली, हेमंत कुमार(संपादक), (2011) मामनी रयसम गोस्वामीर उपन्यास समग्र, बनलता, गुवाहाटी, पृ.सं.161
2. गोस्वामी, मामनी रयसम, (2011) दताल हातीर ऊँईये खोवा हाउदा, चन्द्र प्रकाश, पानबाजार, गुवाहाटी, पृ.सं.195
3. वहीं, पृ.सं.42
4. वहीं, पृ.सं.32
5. गोस्वामी, मामनी रयसम, (2011) दताल हातीर ऊँईये खोवा हाउदा, चन्द्र प्रकाश, पानबाजार, गुवाहाटी, पृ.सं.33
6. वहीं, पृ.सं.245
7. गोस्वामी, मामनी रयसम, (2006) मोर लेखार आरर काहिनी, ज्योति प्रकाशन, गुवाहाटी, पृ.सं.189
8. गोस्वामी, मामनी रयसम, (2011) दताल हातीर ऊँईये खोवा हाउदा, चन्द्र प्रकाश, पानबाजार, गुवाहाटी, पृ.सं.294
9. गरियोसी(असमीया मासिक पत्रिका), अंक.27, भाग-5, फरवरी, 2020 पृ.सं.40
10. गोस्वामी, मामनी रयसम, (2011) दताल हातीर ऊँईये खोवा हाउदा, चन्द्र प्रकाश, पानबाजार, गुवाहाटी, पृ.सं.156

समकालीन हिंदी रंगमंच और पूर्वोत्तर भारत : मणिपुर के विशेष संदर्भ में



डॉ. जमुना सुखाम

शोध-सार :

रंगमंच का संबंध मानव-जीवन के उस युग से है, जिसे इतिहासकार आदिम युग कहते हैं। मनुष्य और उसके जीवन के साथ जिन विद्याओं और कलाओं का संबंध माना जाता है, उनमें रंगमंच सबसे महत्वपूर्ण है। समकालीन मणिपुरी रंगमंच की विकास स्थिति की तुलना भारतीय संदर्भ में मराठी और बंगला जैसे कुछ उन्नत रंगमंचों से ही की जा सकती है। मणिपुर में नाटक और रंगमंच का उद्गम स्रोत यहाँ के धार्मिक और सामाजिक अवसरों पर आयोजित किए जाने वाले नृत्य-संगीतपूर्ण उत्सव ही हैं, जो नृत्य-संगीत प्रधान धार्मिक महोत्सव 'लाइ हराओबा' है। इसमें सृष्टि-निर्माण, इसके क्रमिक विकास और मानव सभ्यता के अभ्युदय संबंधी मणिपुरी जाति की अपनी विशिष्ट कल्पना निहित है। मणिपुरी रंगमंच की अत्याधुनिक तकनीकी व्यवस्था, कलाकारों की अभिनयात्मक कुशलता और इनके विशेष प्रकार के आकर्षक वेशभूषा न केवल भारत में, बल्कि पूरे विश्व में अपनी एक पहचान बनाए हुए हैं।

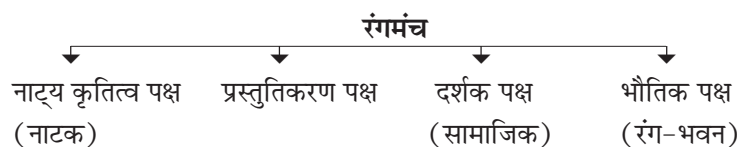
बीज शब्द :

रंगमंच, अभ्युदय, अभिनय, आकर्षण, कुशलता, तकनीकी, नृत्य-नाटिका, प्रदर्शन, लाइ-हराओबा।

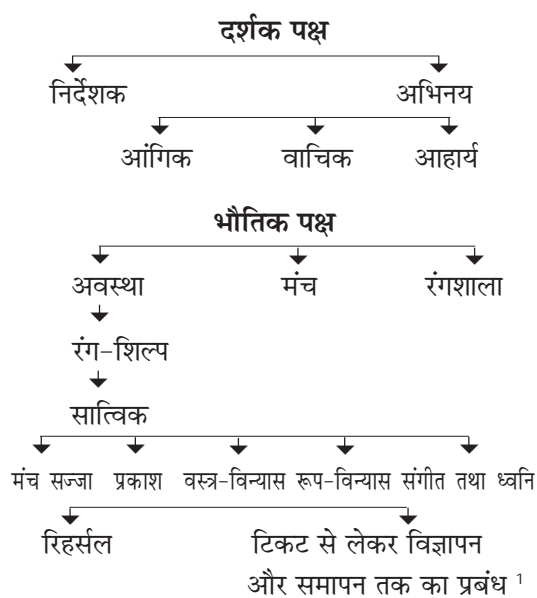
प्राकृतिक सौंदर्य से सुशोभित 'मणिपुर' राज्य अपनी एक विशिष्ट पहचान पूरे विश्व में रखता है। यह पूर्वोत्तर भारत का एक छोटा-सा राज्य है, जिसके अंदर अपार लोक सांस्कृतिक परंपराएँ तथा प्राकृतिक विशिष्टताएँ शामिल हैं।

रंगमंच विशुद्ध रूप में नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करने वाली एक नृत्य नाटिका है। वास्तव में रंगमंच एक भाव-भूमि है, जिसका सीधा संबंध मानव समाज से है। नाटक के तत्वों को सही ढंग से पहचानने के लिए लक्ष्मीनारायण लाल जी ने व्यावहारिक रूप से भावचित्र प्रस्तुत किया है।

जैसे-



अध्यापिका, नीलपद्मा उच्च
माध्यमिक शिक्षा विद्यालय
इंफाल, शिक्षा विभाग, मणिपुर
☎ 9774675045/9863837983
✉ jsukham@gmail.com



आकृति - 1

मणिपुरी रंगमंच का प्रारंभ और विकास :

मणिपुर में नाटक का प्रारंभ लगभग बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण से ही माना जाता है। यहाँ नाटक और रंगमंच का उद्गम स्रोत यहाँ के धार्मिक और सामाजिक अवसरों पर आयोजित किए जाने वाले नृत्य-संगीतपूर्ण उत्सव ही हैं, जिससे नृत्य-संगीत प्रधान धार्मिक महोत्सव 'लाइ हराओबा' से मणिपुरी रंगमंच का उद्भव माना जाता है, जो विशुद्ध रूप में नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करने वाली एक नृत्य नाटिका भी है। इसमें सृष्टि निर्माण, इसके क्रमिक विकास और मानव सभ्यता के अभ्युदय संबंधी मणिपुरी जाति की अपनी विशिष्ट कल्पना और धारणा को छंदोबद्ध प्रार्थना गीतों एवं नृत्य नाटिका के माध्यम से रूपायित किया गया है।

मणिपुर में आरंभिक समय में खेले गए नाटक की भाषा बंगला थी। इसलिए यहाँ रंगान्दोलन लाने में बंगालियों का बड़ा योगदान रहा था। इन लोगों के अतिरिक्त इनके साथ निकट संबंध रखने वाले कच्छड़ के मणिपुरियों का भी बड़ा योगदान रहा था। डॉ. जवाहर सिंह अपनी पुस्तक 'मणिपुर साहित्य और संस्कृति' में लिखते हैं- "ईसा की तीसरी शताब्दी में राजा तावथिंगमाड के राज्यकाल में लोकधर्मी प्रदर्शनकारी कलाओं के स्वरूप

में एक नवीनता आई थी, जब बाँस की पतली-पतली तीलियों से निर्मित मुखौटों को काले रंग में रंगकर कुछ लोगों ने बुरी आत्माओं या प्रेतों को भगाने के लिए दैत्य का स्वांग रचा था। इस तरह के प्रदर्शन खुली सड़कों, गलियों या मैदानों में किए जाते थे और इनमें बुराई पर भलाई और पाप पर पुण्य की विजय दिखाई जाती थी।"²

पाँचवीं शताब्दी के प्रारंभ में राजा नोंखों खोडबा के राज्यकाल से मणिपुर में गीति-नाट्य का प्रारंभ माना जाता है। इन गीति-नाट्यों के कथानक मुख्यतः रामायण के विविध प्रसंगों को लेकर निर्मित होते थे और बाद में अन्य पौराणिक कथा प्रसंगों को भी इनका आधार बनाया जाने लगा।

मणिपुरी रंगमंच के विकास या इसके आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में बंगला रंगमंच और नाटकों का बहुत बड़ा योगदान है। 19वीं शताब्दी के प्रथम दशक में ही इंफाल में 'रामचरण मुखोपाध्याय बान्धब' नाट्यशाला नामक से बंगला का एक स्थायी रंगमंच स्थापित हो चुका था। फिर सन 1905 ई. में 'मणिपुरी फ्रेंड ड्रामेटिक यूनियन' की स्थापना के साथ मणिपुर में विधिवत नाट्य-आंदोलन की शुरुआत मानी गई। कुछ उल्लेखनीय अनूदित नाटक जो ड्रामेटिक यूनियन के मंच पर सफलतापूर्वक मंचित किए गए, वे हैं- "कर्णार्जुन, सावित्री, विल्व-मंगल तथा टीपू-सुल्तान और सीता आदि।"³

मणिपुर में रंगमंच का आंदोलन सन 1930 ई. से शुरू हुआ और चौथे और पाँचवें दशक तक पूरे उत्साह से चलता रहा। इसी दौरान कई नाट्य मंडलियों का गठन हुआ, जो इस प्रकार हैं-

- 1) आर्यन थियेटर
- 2) चित्रांगदा नाट्य मंदिर
- 3) इंफाल थियेटर
- 4) कस्मोपोलिटन तथा
- 5) नव-नाट्य मंदिर

मणिपुरी रंगमंच और इसकी शैलियाँ :

मणिपुर में नाटक और रंगमंच का उद्गम स्रोत यहाँ के धार्मिक और सामाजिक अवसरों पर आयोजित किए

जाने वाले नृत्य-संगीतपूर्ण उत्सव ही हैं। हिंदी रंगमंच की तरह मणिपुरी रंगमंच में प्रमुख दो रंग शैलियाँ हैं-

- 1) लोक रंग शैली
- 2) शास्त्रीय रंग शैली

1) लोक रंग शैली :

मणिपुरी लोक रंग शैली की एक झलक 'लाइ हराओबा' (देवी-देवताओं की पूजा, जो मणिपुरी समाज की एक महत्वपूर्ण पौराणिक त्योहार है) की अंतिम रात्रि में संपन्न 'तांखुल नूपी थिबा', नृत्य-नाटिका में देखने को मिलती है। मोइराङ् के 'थाङ्जीङ्', देवता के निर्मित सात लीला-रूपों में आधारित 'खम्बा-थोइबी', 'याइथिङ्कोनु-खीयोल हाओबा', 'हेनजुनहा- लाइरौलेम्बी', 'कदेङ्-तोनुलाइजिङ्लेम्बी' आदि देखने को मिलता है। इन नाटकों में लोक-रंगमंचीय शैली देखने को मिलती है। ये लीलाएँ शुमाङलीला (खुले आँगन या मैदान में) में मंचित होती हैं, जो 'मोइराङ्-पर्व' के नाम से जगह-जगह मंचित की जाती हैं।

मोइराङ् पर्व : मोइराङ् की प्रसिद्ध लोक गाथा पर आधारित यह लीला आज भी मणिपुरी समाज में बहुत चर्चित एवं प्रसिद्ध है। इन लोक-गाथाओं में 'थाङ्जिङ् देवता और पानथोइबी देवी' के सात लीला रूपों की गाथाएँ हैं।

शुमाङ-लीला : शुमाङ लीला को जात्रावाली के नाम से जाना जाता था। बंगाल के 'यात्रा' से प्रभावित प्रसिद्ध लोक-शैली 'यात्रा' का उच्चारण मणिपुरी लोग 'जात्रा' कहकर खेलते थे और आजकल शुमाङलीला के नाम से जाना जाता है। 'यात्रा' नाटकों का मंचन और मंच सीधा और सरल होता है, जो ऊँची और खुली जगह अथवा मंदिर के चबूतरे पर बनाया जाता है।

गोष्ठलीला : गोष्ठलीला श्रीकृष्ण के गोचारण प्रसंग पर आधारित लोक-नाट्य है। इसका आयोजन 'अग्रहायन' माह की शुक्ल आठवीं को किया जाता है। इसमें बालक कृष्ण का अपने बाल सखाओं के संग वृंदावन में गाय चराने जाना, गाय चराते समय मथुरा नरेश कंश के दुष्ट राक्षसों द्वारा कई प्रकार के संकट पहुँचाया जाना और कृष्ण द्वारा उन राक्षसों का दमन प्रदर्शित किया जाता है। मणिपुर

में इसका आयोजन श्रीश्री गोविंदजी तथा श्री विजय गोविंदजी के मंदिरों के पास स्थित मैदान में होता है।

गौर लीला : यह गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय के प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु के जीवन पर आधारित लोक रंग शैली है। चैतन्य महाप्रभु का बचपन का नाम निमाइ है। गौर वर्ण होने के कारण उन्हें 'गौरांग' के नाम से जाना जाता है। इसी वजह से इनके जीवन से संबंधित लीला को गौरलीला नाम रखा गया।

पास-खेला : यह महिला कलाकारों द्वारा खेला जाने वाला एक लोक-नाट्य है। यह गोकुल की गोपियों का नाव से जमुना पार कर मथुरा जाने तथा रास्ते में किशोर कृष्ण का गोप सखाओं के साथ छेड़-छाड़ करना आदि पर आधारित है। इसमें नृत्य और गान एक प्रमुख शैली के रूप में प्रयोग किए जाते हैं।

2) शास्त्रीय रंग शैली :

मणिपुर की शास्त्रीय रंग शैली नट-संकीर्तन एवं रासलीला नृत्य में देखने को मिलती है। इस पर गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय का प्रभाव पड़ता है। नट संकीर्तन और रासलीला मूलतः नृत्य प्रधान हैं। फिर भी इसमें कथातत्व भी है। कथातत्व के आधार पर नियमित गीत, संगीत, नृत्य तथा अभिनय के माध्यम से प्रस्तुत किए जाने के कारण उन्हें शास्त्रीय रंग शैली माना गया है। इसके अंतर्गत कुछ प्रमुख शास्त्रीय गीति-नाट्य भी हैं, जैसे-

नट-संकीर्तन : नट संकीर्तन मणिपुर का एक प्रमुख शास्त्रीय गीति-नाट्य है। यह बंगाल के चैतन्य देव के संकीर्तन से प्रभावित है, किंतु चैतन्य देव के संकीर्तन और मणिपुर के नट संकीर्तन में भेद होता है। चैतन्य देव के संकीर्तन में भगवान कृष्ण का गुणगान एवं राधा-कृष्ण के प्रेम, भक्ति का वर्णन होता है। लेकिन मणिपुर के नट-संकीर्तन में चैतन्य देव के जीवन से संबंधित प्रसंग का गायन अनिवार्य होता है।

रासलीला : रासलीला, जिसे मणिपुरी रास के नाम से जाना जाता है, राधा और कृष्ण के पवित्र प्रेम पर आधारित है। यह गीत नृत्य और अभिनय का सम्मिलित रूप है। लेकिन प्रमुखता गीत की है। अतः यह एक गीति-नाट्य है। इसमें आंगिक, वाच्यिक, सात्विक एवं



आहार्य- चारों प्रकार के अभिनय किए जाते हैं। हिंदी क्षेत्र का रास हिंदी रंगमंचीय परंपरा में लोक-शैली के रूप में प्रदर्शित होता है। परंतु मणिपुरी रंगमंचीय परंपरा में शास्त्रीय शैली की है, क्योंकि मणिपुर की रासलीला में गीत, संगीत, नृत्य, अभिनय, परिधान आदि का प्रयोग शास्त्रीय नियमों के आधार पर होता है।

मणिपुरी रासलीला पाँच प्रकार के होते हैं। जैसे-

- i. महा रास
- ii. कूँज रास
- iii. वसंत रास
- iv. नृत्य रास
- v. दीवा रास

i) **महा रास** : यह अग्रहायन की पूर्णिमा को किया जाता है।

ii) **कूँज रास** : यह कार्तिक पूर्णिमा की रात्रि को किया जाता है।

iii) **वसंत रास** : यह चैत्र माह की पूर्णिमा को किया जाता है।

iv) **नृत्य रास** : यह चैत्र और अग्रहायन दोनों महीनों को छोड़कर कभी भी किया जा सकता है। यह नीति लीला है।

v) **दीवा रास** : यह नृत्य रास की भाँति किसी भी महीने में किया जा सकता है। यह दिन में किया जाता है। जबकि महा रास, कूँज रास, वसंत रास और नृत्य रास केवल देर रात्रि को किए जाते हैं।

उपर्युक्त रंग शैलियों के अतिरिक्त अन्य कुछ शैलियाँ भी हैं। जैसे-

अ) मिश्रित रंग शैली और

आ) आंगिक रंग- शैली (बॉडी थियेटर)

अ) मिश्रित रंग शैली : सन 1970 के आस-पास उभरने वाले रंगकर्मियों द्वारा पारंपरिक लोक शैली एवं शास्त्रीय शैली को मिलाकर एक नई रंग शैली का निर्माण किया

गया, उसे मिश्रित रंग शैली की संज्ञा दी गई। इन नाटकों की मूल कथा मणिपुरी लोक-कथाओं पर आधारित है, और प्रस्तुतिकरण शैली आधुनिक एवं शास्त्रीय होती है। इस मिश्रित रंग शैली का प्रदर्शन रतन थियाम ने अपने 'चक्रव्यू', 'इंफाल-इंफाल', 'उत्तर प्रियदर्शी' आदि नाटकों में किया।

आ) आंगिक रंग-शैली (बाँडी थिएटर) : मणिपुर रंगमंच में आंगिक रंग शैली आधुनिक रंग शैली या रंगमंच की देन है। आंगिक अभिनय से तात्पर्य शरीर के अंगों, उपांगों और प्रत्यंगों की विभिन्न चेष्टाओं, भंगिमाओं आदि से है। आंगिक अभिनय आंगिक रंग शैली के मूलतः तीन प्रकार हैं- शरीर, मुख और चेष्टागत। हिंदी रंगमंच तथा बंगला रंगमंच के प्रभाव से मणिपुर रंगमंच में भी आंगिक रंग शैली का निर्माण किया गया है।

मणिपुरी रंगमंच और इसके प्रमुख संस्थाएँ :

मणिपुरी रंगमंच के विकास में अनेक रंग-संस्थानों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इन रंग संस्थानों का विवरण निम्नांकित काल-खंडों के आधार पर देखा जा सकता है-

क) द्वितीय महायुद्ध पूर्व रंग-संस्थाएँ।

ख) द्वितीय महायुद्धोपरांत रंग-संस्थाएँ।

(क) द्वितीय महायुद्ध पूर्व रंग-संस्थाएँ :

द्वितीय महायुद्ध पूर्व रंगान्दोलन में मणिपुरी रंगमंच का योगदान सराहनीय है। इन रंग-संस्थाओं के माध्यम से पर्याप्त मात्रा में नाटकों का मंचन किया गया, जिसमें ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक आदि नाटकों का मंचन शामिल था। इस काल के कुछ प्रमुख संस्थान हैं- एरियान थिएटर, इंफाल थिएटर, नवयुग थिएटर, मणिपुर ड्रामाटिक यूनियन (एम.डी.यू.), सोसाइटी थिएटर, रॉक्सी थिएटर और चित्रांगदा नाट्य मंदिर, रूपमहल थिएटर आदि।

आर्यन थिएटर : इस संस्था की स्थापना सन 1935, 23 सितंबर को शगोलबंद मैनो लैरक में श्री अतोमबापु शर्मा के मंडप से माना जाता है। सर्वप्रथम सन 1928 में 'सीता-वनवास' नामक नाटक का मंचन यहाँ हुआ। बाद में सन 1945 में शगोलबंद वाहेडबम लैकाइ के किनारे इस संस्था का स्थानांतरण किया गया।

इंफाल थिएटर : इसकी स्थापना सन 1938 में हुई। उरिपोक नामक जगह में परीखा शर्मा के पूजा-मंडप में नाटकों का मंचन किया करते थे।

नवयुग थिएटर : इसकी स्थापना सन 1936-37 के कालावधि में उरिपोक में हुई थी। इस थिएटर में खेले गए कुछ प्रमुख नाटक हैं- शाहजहाँ, कालिदास, महाप्रभु, चित्रांगदा आदि।

रॉक्सी थिएटर : इसकी स्थापना सन 1945 में उरिपोक पोलेम लैकाइ में हुई। हाओबम कला, बीरबल, राजकुमार हजुरशाना, थियाम नरेन्द्र, खोडबानताबम तोलहल आदि कलाकारों ने इस नाट्य संस्था के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

मणिपुर ड्रामाटिक यूनियन (एम.डी.यू.) : सन 1931 में याइस्कूल नामक इंफाल की एक जगह में इस संस्था की स्थापना 'मैतै ड्रामाटिक यूनियन' नाम से हुआ, फिर बाद में सन 1937 में इसका नाम बदलकर 'मणिपुर ड्रामाटिक यूनियन' रखा गया।

सोसाइटी थिएटर : सन 1937 में रिवोल्यूशनरी थिएटर के नाम से इस रंग संस्था की स्थापना हुई। बाद में इसका नाम 'नेशनल थिएटर', फिर कुछ वर्षों बाद 'सोसाइटी थिएटर' के नाम से स्थापित किया गया।

चित्रांगदा नाट्य मंदिर : इस संस्था की स्थापना एम.डी.यू. के कुछ युवा रंग कर्मियों ने सन 1936 में पहले की नाट्य संस्था से अलग होकर की थी। इस नाट्य संस्था की ओर से मंचित कुछ प्रमुख नाटक हैं- जयदेव, हरिश्चंद्र, कर्णार्जुन, सभा पर्व, इबेममा आदि।

रूपमहल थिएटर : इस नाट्य संस्था की स्थापना सन 1943 के 23 दिसंबर को हुई। पहले यह नाट्य संस्था मोइराड्डोम के निवासी राजपुरोहित के घर में थी, फिर बाद में सन 1948 में इसका वीर टिकेन्द्रजीत रोड इंफाल पर स्थानांतरण किया गया।

(ख) द्वितीय युद्धोपरांत प्रमुख रंग संस्थाएँ :

द्वितीय विश्व युद्ध के कारण मणिपुरी रंगमंच की गति थोड़ी मंद पड़ गई थी। लेकिन सन 1950 के बाद मणिपुरी रंगमंच की गति तीव्र होने लगी। साथ ही कई

रंग संस्थाएँ भी स्थापित हुई, जैसे-

- i. लाडमैदोड् ड्रामाटिक यूनियन (1943-1944)
- ii. पेराडाइस थिएटर (1944-1945)
- iii. संगीत कला संगम (1958)
- iv. थिएटर मिरर (1965)
- v. पीपलस आर्ट्स ड्रामाटिक एसोसियशन (1965-1966)
- vi. कोस्मोपोलिटान ड्रामाटिक यूनियन (1968)
- vii. कलाक्षेत्र मणिपुर (1969)
- viii. अपुनबा शक्तम आर्टिस्ट एसोसियशन (1969-1970)
- ix. पानथोड्बी नाट्य मन्दिर (1971-72)
- x. सोशियल ड्रामाटिक यूनियन (1971-72)
- xi. एवंट-गार्ड (1972-73)
- xii. मारजिड्कोल कलचरेल कम ड्रामाटिक एसोसियशन (1975-76)
- xiii. कोरस रिपर्टरी थिएटर (1976)
- xiv. थाङ्गा आर्टिस्ट एसोसियशन (1985-86)
- xv. मणिपुर एसेम्बल (1986)
- xvi. औग्री थिएटर रिपर्टरी (1990)

मणिपुर के कुछ प्रमुख रंगकर्मी :

मणिपुर में स 1960 के परंपरागत रंगमंच के साथ-साथ एक नई रंग शैली उभर कर आई। यह बंगाल के बादल सरकार का मणिपुर में परदारपन एवं नई दिल्ली के राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय से प्रशिक्षित रंगकर्मीयों की नई प्रस्तुतिकरण शैली का परिणाम है। मणिपुरी रंगमंच में सबसे अधिक प्रखर रूप से उभरने वाले रंगकर्मीयों में जी.सी. तोड्ब्रा का नाम पहले आता है। इनके सभी नाटक व्यंग्यात्मक हैं, जिसमें जीवन और समाज के यथार्थ को व्यंग्यात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं। कुछ उल्लेखनीय रंगकर्मीयों के नाम हैं- रतन थियाम, एच.कन्हाइलाल, सनख्या इबोतोम्बी, अराम्बम लोकेन्द्रो, पुख्रम्बम शमु, नव वारेप्पा, एस.के. मडङ्ग एल. दोरेन्द्र, डॉ. एन. प्रेमचौद,

रनवीर मडङ्ग खेत्री जुगीन्द्रो, एल. गोजेन्द्र, डब्ल्यू. खोगेन्द्र आदि।

मणिपुरी रंगमंच-वर्तमान स्थिति :

प्राचीन एवं पौराणिक कथाओं को आधुनिक शैली में प्रस्तुत करके समकालीन समस्याओं को प्रस्तुत करना वर्तमान रंगमंच का एक महत्वपूर्ण रूप है। मणिपुरी रंगमंच की वर्तमान स्थिति काफी संतोषजनक है। 'मणिपुर स्टेट कला अकादमी' की स्थापना से मणिपुरी रंगमंच में विकासशीलता एवं प्रगतिशीलता आई है। समय-समय पर मणिपुर स्टेट कला अकादमी द्वारा आयोजित लघु नाटिका उत्सव एवं हर साल थिएटर सेंटर मणिपुर द्वारा आयोजित लघु नाटकों की प्रतियोगिता ने आधुनिक मणिपुरी रंगमंच को काफी लोकप्रियता प्रदान की है। इस प्रकार के नाट्योत्सव एवं प्रतियोगिता में कई युवा रंगकर्मीयों को अपना कौशल दिखाने का अवसर मिलता है और इन युवा रंगकर्मीयों ने अपनी-अपनी शैलियों में कई प्रस्तुति के माध्यम से अपनी पहचान बनाने की कोशिश की है। अधिकांश युवा रंगकर्मी राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के स्नातक होने के कारण इनकी नाट्य शैलियों में नए-नए प्रयोग देखने को मिलते हैं।

उपलब्धियाँ :

हिंदी रंगमंच के विकास के मूल में महत्वपूर्ण तीन कारण माना जा सकता है-

- 1) तत्कालीन पारसी रंगमंच का प्रभाव
- 2) भारतीय नवजागरण से उत्पन्न चेतना और
- 3) पाश्चात्य प्रभाव

इसी प्रकार समकालीन मणिपुरी रंगमंच भी पर्याप्त प्रयोगशील, कल्पनाशील और जीवन यथार्थ को प्रस्तुत करने के संकल्प से जुड़ा हुआ है। मणिपुरी रंगमंच मराठी, बंगला और पंजाबी रंगमंच के समान ही प्रगतिशील है। डॉ. जवाहर सिंह के शब्दों में - "मणिपुरी रंगमंच की श्रेष्ठता और वर्तमान उपलब्धियों का इससे भी अंदाजा लगाया जा सकता है कि समय-समय पर दिल्ली में आयोजित होने वाले राष्ट्रीय नाट्य महोत्सवों तथा इलाहाबाद की एकांकी प्रतियोगिताओं में शायद ही कोई ऐसा अवसर

हो, जब मणिपुर की किसी-न-किसी नाट्य संस्था को प्रथम, द्वितीय या तृतीय स्थान न मिला हो। समकालीन मणिपुरी रंगमंच को नई दिशा और नई दृष्टि देने वाले निर्देशकों में श्री रतन थियाम (संप्रति निदेशक, नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा, नई दिल्ली) तथा श्री कन्हाइलाल का नाम राष्ट्रीय स्तर पर मान्य है। श्री रतन थियाम की नाट्य संस्था 'कोरस' और श्री कन्हाइलाल की 'कला क्षेत्र' ने पिछले दस वर्षों में अपनी उत्कृष्ट नाट्य प्रस्तुतियों द्वारा मणिपुर और मणिपुर के बाहर भी काफी ख्याति अर्जित की है। अति आधुनिक रंगमंचीय तकनीक का प्रयोग करते हुए इन दोनों नाट्य संस्थाओं ने अनेक प्रयोगशील एवं नई वैचारिकता वाले यथार्थवादी नाटक प्रस्तुत किए हैं। श्री एच. नीलमणि सिंह, ओ. वीरमंगोल सिंह, एन. तोम्बी सिंह और श्री चन्दन गोपाल सिंह कुछ ऐसे नाम हैं, जिन्होंने अपने कुशल निर्देशन और मंचीय अनुभव से

मणिपुरी रंगमंच को विकास के राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक पहुँचा दिया है।⁴

निष्कर्ष :

इस प्रकार मणिपुरी रंगमंच लोकधर्मिता की नई प्रवृत्ति के साथ धीरे-धीरे विकसित होता गया। यहाँ के गाँव-गाँव में विशेष अवसरों पर आयोजित की जाने वाली सुमाडलीलाएँ (मूलतः घर के आँगन में खेली जाने वाली लीला) दिन-पर-दिन अधिकाधिक लोकप्रिय होती गईं। इसमें समसामयिक सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं पर हास्य-व्यंग्यपूर्ण कथोपकथन तथा जन मनोरंजन का विशेष महत्व होता है। अब यह महत्वपूर्ण जान पड़ता है कि वर्तमान में मणिपुरी रंगमंच अत्याधुनिक तकनीकी व्यवस्था, कलाकारों की अभिनयात्मक कुशलता और विशेष प्रकार के आकर्षक वेश-भूषा के विकास के साथ-साथ नई उपकरणों का प्रयोग भी अति आवश्यक है। □

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. समकालीन हिंदी रंगमंच के परिप्रेक्ष्य में मणिपुर का समकालीन रंगमंच, मणिपुर विश्वविद्यालय की पी.एच.डी. शोध-प्रबंध अनुसंधानकर्ता, हा. आनंदी देवी, मणिपुर विश्वविद्यालय, काँचीपुर, 795003, पृष्ठ सं. 24
2. मणिपुर साहित्य और संस्कृति, डॉ. जवाहर सिंह, पृष्ठ सं. 34
3. वही, पृष्ठ सं. 36
4. वही, पृष्ठ सं. 38

सहायक ग्रंथ सूची :

1. रंगमंच नया परिदृश्य, डॉ. रीतारानी पालीवाल, लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली-110002
2. हिंदी नाटक और रंगमंच, पहचान और परख, सं. डॉ. इंद्रनाथ मदान, लिपि प्रकाशन, दिल्ली-2
3. रंगदर्शन, नेमिचंद्र जैन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
4. समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच, डॉ. नरेन्द्र मोहन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
5. नाट्य-विमर्श, डॉ. रमेश गौतम, नवराज प्रकाशन, भजनपुरा, दिल्ली-110053
6. नया नाटक उद्भव और विकास, डॉ. नरनारायण राय, कादम्बरी प्रकाशन, दिल्ली-110007

भारत की नई शिक्षा नीति - 2020 में स्वामी विवेकानंद के विचारों का समावेश



मोहित कुमार शर्मा

शोधार्थी, इतिहास विभाग
एम.बी.जी.पी.जी कॉलेज
हल्द्वानी, नैनीताल (उत्तराखंड)
☎ 8737953599
✉ mohit.77@gmail.com



डॉ. नीरज रूवाली

एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग
एम.बी.जी.पी.जी कॉलेज
हल्द्वानी, नैनीताल (उत्तराखंड)
☎ 9628846784

सारांश :

जिस देश के लोगों का वैचारिक सामर्थ्य जितना अधिक होता है, उस देश की संस्कृति उतनी ही समृद्ध होती है। शिक्षा एक ऐसी व्यवस्था है, जिसके माध्यम से संस्कृति, सभ्यता तथा युगों से संचालित ज्ञान को नई पीढ़ी में संप्रेषित किया जाता है। स्वामी विवेकानंद जी के अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जो चरित्र का गठन करे, मानसिक रूप से मजबूत करे, बुद्धि का विकास हो और मनुष्य स्वावलंबी बने। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 और स्वामी विवेकानंद जी के विचार में समानताएँ परिलक्षित होती हैं। मनुष्य का शारीरिक, मानसिक, धार्मिक, नैतिक, सामाजिक, बौद्धिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, चारित्रिक, भावनात्मक विकास, कौशल विकास, आध्यात्मिक आनंद, स्वतंत्र विचार शक्ति, निर्णय लेने की शक्ति, समतामूलक और समावेशी समाज, वैश्विक नागरिक के संबंध में स्वामी विवेकानंद के विचार और राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 समभाव का प्रचार व प्रसार करती है। भारत में अंग्रेजी हुकूमत ने यहाँ की शिक्षा व्यवस्था पर काफी नकारात्मक प्रभाव डाला, क्योंकि वह भारतीयों को नियंत्रण में बनाए रखना चाहते थे। भारत को अंग्रेजों से आजादी सन 1947 में मिली। तब से लेकर 1968 तथा 1986 के बाद यह तीसरी बार 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020' भारतीय शिक्षा व्यवस्था को लेकर बनाई गई नीति है, जिसमें स्वामी विवेकानंद द्वारा दर्शाए गए शिक्षा के आदर्श को देखा जा सकता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में आधुनिकता के साथ उन आदर्शों को लिया गया है, जो दशकों पूर्व स्वामी विवेकानंद जी का सपना था।

आजादी के अमृत महोत्सव में भारत की नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में स्वामी विवेकानंद के विचारों का किस प्रकार से समावेश किया गया है, का तार्किक रूप से विश्लेषण किया जाएगा।

शब्द कुंजियाँ:

समावेशी समाज, चारित्रिक उत्थान, निषेधात्मक शिक्षा, आत्मनिर्भर भारत, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, वंचित वर्ग, स्वामी विवेकानंद का शैक्षिक दर्शन, वेदांत शिक्षा।

परिचय :

स्वामी विवेकानंद जी समझ गए थे कि मानव जाति संकट से गुजर रही है, क्योंकि भौतिकता पर अत्यधिक जोर दिया जा रहा है। फलस्वरूप मनुष्य मशीन बनता जा

रहा है। नैतिक और धार्मिक मूल्यों को कमजोर किया जा रहा है और सभ्यता के मूलभूत सिद्धांतों की अनदेखी की जा रही है। आज मनुष्य जो समाज का प्रमुख घटक है, स्वभावतः मानव नहीं रह गया है। स्वामी विवेकानंद जी ने ऐसे मनुष्य के निर्माण की कल्पना की थी, जो दयालु होने के साथ-साथ बुद्धिमान हो, दिल से महान हो, दिमाग से महान हो और जो गतिशीलता से समाज में सकारात्मक बदलाव ला सके। स्वामी विवेकानंद के अनुसार शिक्षा का मतलब यह नहीं है कि तुम्हारे दिमाग में ऐसी बहुत-सी बातें इस तरह ठूस दी जाएँ कि अंतर्द्वंद्व होने लगे और तुम्हारा दिमाग उन्हें जीवन भर पचा ही न सके।¹ अतः स्वामीजी के अनुसार शिक्षा को मात्र सूचना तक सीमित नहीं होना चाहिए। केवल कुछ विचारों को रटकर डिग्री लेना शिक्षा नहीं है। जो विचार जीवन-निर्माण में सहायक हों, उनकी अनुभूति करना आवश्यक है। विवेकानंद जी ने कहा है कि शिक्षा का लक्ष्य बालक को यह अनुभूत करना है कि उसके भीतर ईश्वर है।² स्वामी विवेकानंद जी द्वारा भारत के लिए शिक्षा-विषयक अनेक सूत्र दिए गए, जिनके आधार पर हम वर्तमान भारत की जरूरत के अनुरूप एक नया शिक्षा तंत्र स्थापित कर सकते हैं। इन्हीं सूत्रों को एक नीति में पिरोने का काम नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में किया गया है। स्वामी विवेकानंद जी एक क्रांतिकारी शिक्षाविद थे, जिन्होंने अपने समय की शिक्षा प्रणाली को त्यागने का साहस किया और इसे एक एकीकृत समाज की दिशा में एक व्यापक छात्र केंद्रित मॉडल के साथ बदलने का प्रस्ताव दिया, जो सभी के लिए न्यायंगत हो। स्वामी जी ऐसी शिक्षा की कल्पना करते हैं- “जो शिक्षार्थी को बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक बनाए। स्वामी जी के अनुसार शिक्षा की कुँजी ब्रह्मचर्य, सम्मान और आत्मविश्वास है। उन्होंने राष्ट्र शिक्षा की जो संरचना लिखी, उसमें सार्वजनिक शिक्षा, नारी शिक्षा, धार्मिक शिक्षा, मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा, मूल्यों की शिक्षा आदि को प्राथमिकता दी गई। उनका मानना था उचित शिक्षा के बिना राष्ट्र समृद्ध नहीं हो सकता।”

शोध उद्देश्य :

1. स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक दर्शन पर विचार करना।
2. स्वामी विवेकानंद का युवाओं के लिए क्या दृष्टिकोण था, इसका अध्ययन करना।

3. आधुनिक शिक्षा प्रणाली के परिदृश्य का अध्ययन करना।

4. वर्तमान शिक्षा प्रणाली में रिक्तता की पहचान करना।

5. राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के संबंध में स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक विचारों और आदर्शों का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि :

प्रस्तुत अध्ययन के लिए गुणात्मक और वर्णनात्मक अध्ययन पद्धति का उपयोग किया गया है। इस अध्ययन में प्राथमिक और द्वितीयक दोनों आँकड़ों को शामिल किया गया है। प्राथमिक डाटा का संग्रह राष्ट्रीय शिक्षा नीति रिपोर्ट, साक्षात्कार आदि के माध्यम से किया गया है। द्वितीय आँकड़ों का संकलन किताबों, जर्नल, समाचार-पत्रों, पत्रिकाओं और लेख के द्वारा किया गया है। अंत में, आँकड़ों का तार्किक रूप से विश्लेषण किया जाएगा।

भारत की नई शिक्षा नीति-2020 में स्वामी विवेकानंद के विचारों का समावेश :

स्वामी विवेकानंद जी ने शिक्षा को मातृभाषा में देने पर जोर दिया। उनका मानना था कि सर्वांगीण व्यक्तित्व के विकास के लिए अंग्रेजी और संस्कृत सीखने की जरूरत है, क्योंकि अंग्रेजी पश्चिमी विज्ञान और प्रौद्योगिकी में महारत हासिल करने के लिए आवश्यक है और वहीं संस्कृत हमारे पुराने समृद्ध ग्रंथ भंडार की गहराई को समझने में सहायता करती है। इसी भावना को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में कक्षा 5 तक की शिक्षा में मातृभाषा/क्षेत्रीय भाषा को अध्ययन के माध्यम के रूप में अपनाने पर बल दिया गया है। साथ ही, इस नीति में मातृभाषा को कक्षा 8 और आगे की शिक्षा के लिए प्राथमिकता देने का सुझाव दिया गया है। स्कूली और उच्च शिक्षा में छात्रों के लिए संस्कृत और अन्य प्राचीन भारतीय भाषाओं का विकल्प उपलब्ध होगा। परंतु किसी भी छात्र पर भाषा के चुनाव की कोई बाध्यता नहीं होगी। इस शिक्षा नीति में त्रिभाषा फॉर्मूला अपनाकर आधुनिक भारतीय भाषाओं को पढ़ाने पर भी जोर दिया गया है। फलतः इससे राष्ट्रीय सद्भाव में वृद्धि होगी।

स्वामी विवेकानंद जी का मानना था कि आत्मनिर्भर भारत के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी का अत्यंत महत्व है। स्वामी जी के सपने को साकार करने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी स्वायत्त निकाय राष्ट्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी फोरम (National Educational Technology Forum) का गठन किया जाएगा, जिसके द्वारा शिक्षण, मूल्यांकन योजना और प्रशासन में अभिवृद्धि हेतु विचारों का आदान-प्रदान किया जा सकेगा; राष्ट्रीय अनुसंधान फाउंडेशन (NRF) की स्थापना और छात्रों की प्रकृति के मूल्यांकन तथा छात्रों को अपने भविष्य से जुड़े निर्णय लेने में सहायता प्रदान करने के लिए आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस आधारित सॉफ्टवेयर का प्रयोग करने का सुझाव दिया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कक्षा-6 से ही शैक्षिक पाठ्यक्रम में व्यावसायिक शिक्षा को शामिल कर दिया जाएगा। इसमें इंटरशिप की व्यवस्था भी की जाएगी। अतः यह नीति आत्मनिर्भर भारत बनने में अचूक फॉर्मूला सिद्ध होगी।

स्वामी विवेकानंद जी मानते थे कि सशक्त भारत के लिए समग्र शिक्षा का होना बहुत जरूरी है। स्वामी विवेकानंद महिलाओं और वंचित समूह जैसे- अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, कमजोर परिस्थिति वाले बच्चे आदि को शिक्षा देने के समर्थक थे। स्वामी जी का मानना था- एक श्रेष्ठ और उन्नत भारत के लिए समग्र शिक्षा अत्यंत आवश्यक है। इसके बिना भारत के लोग एकता के सूत्र में नहीं बंध सकते। स्वामी जी का स्पष्ट मत था कि देश के विकास के लिए ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक- अर्थात् सभी लोगों के लिए शिक्षा आवश्यक है। स्वामी विवेकानंद नारी शिक्षा पर बल देते हुए उसे मानसिक धरातल पर आत्मनिर्भर बनाना चाहते थे। उनका कहना था कि हमें नारियों को ऐसी स्थिति में पहुँचा देना चाहिए, जहाँ उनका स्त्री बोध आध्यात्मिकता-भौतिकता में समाहित है। स्त्रियों के विषय में बात करते हुए वे कहते थे कि भारतीय स्त्रियों का आदर्श सीता, सावित्री, दमयंती, गार्गी, लोपामुद्रा, मैत्रेयी, सुलभा आदि विदुषी महिलाएँ थीं। स्वामी जी की महान शिष्या भगिनी निवेदिता का कहना है कि उनको स्त्रियों से डर नहीं लगता था। उनकी अनेक शिष्याएँ थीं, सहकर्मी थीं और सहेलियाँ भी थीं। वे इन लोगों के श्रेष्ठ

गुण और चरित्र देखते थे। वे हमेशा अपने शिष्यों से कहा करते थे कि हमारा उद्देश्य स्त्रियों और पिछड़े लोगों का उद्धार करना है। 19वीं शताब्दी के अंतिम भाग में विवेकानंद ने 'नारीवाद' शब्द का प्रयोग किया और नारीत्व के विकास के महत्व पर भी चर्चा की। स्वामी जी का मानना था कि जब आप आत्मा, ज्ञान और बुद्धि, ब्रह्म के बारे में विचार करेंगे तो पुरुषों और महिलाओं के बीच कोई अंतर नहीं है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में भी महिलाओं तथा ऐतिहासिक रूप से हाशिए पर रहे वंचित और कम प्रतिनिधित्व वाले समूहों का विशेष ध्यान रखा गया है।

स्वामी विवेकानंद जी शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य का निर्माण करना मानते थे। उनके अनुसार जीवन के सुख-दुख व्यक्ति की आत्मा पर छाप छोड़ते हैं। शिक्षा द्वारा अच्छे विचारों का निर्माण और आध्यात्मिक ज्ञान में वृद्धि होनी चाहिए।³ स्वामी विवेकानंद जी ने सभी सामाजिक बुराइयों को खत्म करने के लिए शिक्षा को रामबाण माना है। उनके अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य संपूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण है। यह सिद्धांत इस पर निर्भर है कि शिक्षा को न केवल संज्ञानात्मक क्षमताओं का विकास करना चाहिए, बल्कि सामाजिक और भावनात्मक क्षमताओं को भी सशक्त बनाना चाहिए। उन्होंने वेदांत के अपने व्यापक दर्शन के दायरे में मानव निर्माण की शिक्षा का प्रस्ताव रखा, जो राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 की पहली पंक्ति में प्रतिध्वनित होता है, जो इस प्रकार है- “पूर्ण मानव क्षमता प्राप्त करने के लिए शिक्षा मौलिक है।” स्वामी विवेकानंद जी के आदर्श से प्रेरित होकर राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 2020 का भी उद्देश्य छात्रों को नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य, चरित्र ज्ञान, कौशल, रचनात्मक प्रतिभा, नवाचारयुक्त मनुष्य का निर्माण करना है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 किसी व्यक्ति के बौद्धिक कौशल के माध्यम से उसके चरित्र का निर्माण करने और उसे बड़े पैमाने पर राष्ट्र और दुनिया में योगदान करते हुए, अपने पैरों पर खड़े होने के लिए तैयार करने की इच्छा से निर्देशित है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 सहयोग, टीम वर्क, नेतृत्व आदि जैसे कौशल के साथ-साथ प्रत्येक व्यक्ति की रचनात्मक क्षमता के विकास पर भी जोर देती है। यह नीति स्पष्ट रूप से स्वामी जी की शैक्षिक दृष्टि से प्रेरित दिखाई देती है।

स्वामी विवेकानंद एक कट्टर आशावादी थे। उन्होंने कहा था कि, “उठो, जागो और तब तक मत रुको, जब तक अपने लक्ष्य को प्राप्त न कर लो।” ये पंक्तियाँ राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के क्रियान्वयन के संबंध में बिल्कुल सटीक बैठती हैं, क्योंकि यह नई नीति 2021-22 से शुरू होने वाले इस दशक में धीरे-धीरे लागू होने वाली है। स्वामी जी के इसी आदर्श को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिक्षा प्रणाली को समग्र, लचीला, बहुविषयक और 21वीं सदी और 2030 के सतत विकास लक्ष्यों की जरूरत के अनुरूप बनाया गया है। एक समय था, जब दुनिया भर के छात्र विज्ञान और कला का ज्ञान प्राप्त करने के लिए नालंदा और तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालय में आते थे। शिक्षा नीति में भारत के इसी खोए हुए गौरव को बहाल करने के लिए तथा भारत को एक बार फिर से ज्ञान, उत्कृष्टता और नवाचार का पावर हाउस बनाने के लिए प्रयास किया गया है।

स्वामी विवेकानंद जी शिक्षा में भारतीय मूल्यों को समाहित करने के पूर्णतया समर्थक थे। स्वामी जी के अनुसार, जिस देश के पास वैचारिक सामर्थ्य जितना अधिक होगा, उसकी संस्कृति उतनी ही समृद्ध होती है। लॉर्ड मैकाले की शिक्षा नीति के ‘निस्संदेह सिद्धांत’ ने भारत की शिक्षा व्यवस्था को चकनाचूर कर दिया, क्योंकि यह भारतीय आदर्शों पर आधारित नहीं थी।⁴ स्वामी विवेकानंद जी का मानना था कि शिक्षा में भारतीय मूल्य जैसे करुणा, नैतिकता, स्वतंत्र विचार शक्ति, समता आदि होनी चाहिए।⁵ स्वामी विवेकानंद की संपूर्ण शिक्षा का प्रयोजन उस शिक्षा से था, जो चरित्र का गठन करे, मन का बल बढ़ाए, बुद्धि का विकास हो, मनुष्य स्वावलंबी बने। उनका विश्वास था कि जब तक मानव भौतिक दृष्टि से सुखी नहीं होता, तब तक ज्ञान, भक्ति, योग यह सब कल्पना की ही वस्तु है।⁶ स्वामी विवेकानंद जी ने इन सब जीवन मूल्यों को ग्रहण कर जिस शिक्षा दर्शन का प्रतिपादन किया, वह भारतीय शिक्षा दर्शन की अमूल्य निधि है।⁷ राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में पारंपरिक भारतीय मूल्यों और सभी बुनियादी मानवीय और संवैधानिक मूल्यों जैसे सेवा, अहिंसा, स्वच्छता, सत्य, शांति, निष्काम

कर्म सहित विविधता, बहुलवाद, नैतिक आचरण, क्षमा, देशभक्ति, न्याय, स्वतंत्रता, समानता आदि को विकसित किया जाएगा। इस नीति के तहत शिक्षण को अनुभवात्मक विधियों के माध्यम से समृद्ध किया जाएगा और भाषाओं का शिक्षण भी अनुभवात्मक अधिगम शिक्षण शास्त्र पर आधारित होगा।⁸

स्वामी विवेकानंद जी की शिक्षा के उद्देश्य में मनुष्य का शारीरिक विकास भी है। उनके अनुसार, जब तुम्हारा शरीर दृढ़ता से खड़ा होगा, तब तुम उपनिषदों और आत्मा की महत्ता को अधिक अच्छी तरह समझ पाओगे। स्वामी विवेकानंद जी ने व्यक्ति के बलिष्ठ शरीर पर जोर दिया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि हमें तेजस्वी, वीर्यवान और दृढ़विश्वासी नवयुवकों की आवश्यकता है और इस प्रकार के नवयुवक शिक्षा द्वारा ही तैयार किए जा सकेंगे।⁹ स्वामी जी हमेशा मानसिक और शारीरिक शक्ति दोनों के विकास के लिए प्रतिबद्ध रहते हैं। सरकार का ‘फिट इंडिया मूवमेंट’ इसी से प्रेरित है और राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के अंतर्गत शिक्षा में बागवानी, खेलकूद, योग आदि उपलब्धता के अनुसार प्रदान करने की कोशिश पर विचार किया गया है। इस नीति में बच्चों को बुनियादी प्रशिक्षण, सार्वजनिक स्वच्छता, आपदा प्रबंधन, प्राथमिक चिकित्सा आदि का भी ज्ञान कराया जाएगा, जिससे उनका व्यक्तित्व अधिक रचनात्मक हो जाएगा।¹⁰

स्वामी विवेकानंद जी निषेधात्मक शिक्षा के पक्षधर नहीं थे।¹¹ उनका मानना था कि देश को सफल और उन्नत बनाने के लिए जिन-जिन विषयों को पढ़ाने की आवश्यकता हो, जैसे शारीरिक प्रशिक्षण, साहित्य, धार्मिक शिक्षा, वेदांत दर्शन वे विषय अवश्य पढ़ाए जाएँ। शैक्षिक योजना में निर्देशन व परामर्श विधि का प्रयोग करके व्यक्तियों में स्वतंत्र विचार शक्ति, निर्णय लेने की शक्ति का विकास किया जाए।¹² स्वामी जी भारत का कल्याण सर्वसमर्पण से चाहते थे।¹³ स्वामी विवेकानंद जी के अनुसार मानव के भीतर ज्ञान तथा शक्ति का अनंत स्रोत निहित है, जिसे हम प्रकृति कहते हैं। उसे केवल उद्दीपन घर्षण की क्रिया द्वारा प्रकट करना होता है।¹⁴ स्वामी विवेकानंद के इसी दर्शन से प्रेरित होकर राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में

भी प्रस्तावित सुधारों के अनुसार, कला और विज्ञान, व्यावसायिक तथा शैक्षिक विषयों का पाठ्यक्रम व पाठ्येतर गतिविधियों के बीच बहुत अधिक अंतर नहीं है और अब उच्च शिक्षा में छात्रों को विषय चुनने की स्वतंत्रता है।

निष्कर्ष :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 तथा राष्ट्र और युवाओं के लिए स्वामी विवेकानंद जी के दृष्टिकोण में समानताएँ परिलक्षित होती हैं। इस क्रम में भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति के दर्शन के अनुरूप बच्चों के संपूर्ण व्यक्तित्व विकास को सुनिश्चित करने के लिए कक्षा एक से पाँच तक छात्रों के लिए रामकृष्ण मिशन का 'जागृति' कार्यक्रम शुरू किया है। इस मिशन के अनुसार जागृति कार्यक्रम से बच्चों की क्षमता की पहचान होगी। यह मिशन राष्ट्रीय शिक्षा नीति से जुड़ा हुआ है, जो इसे ठीक से और सुचारू रूप से लागू करने के लिए नींव के रूप में काम करेगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 स्वामी विवेकानंद के दर्शन से गहराई से प्रेरित है। स्वामी विवेकानंद से लेकर श्री अरविंदो, युगद्रष्टा रविंद्रनाथ टैगोर और सत्य के पुजारी महात्मा

गांधी तक हमारे कई महान लोगों ने देश को आगे ले जाने के लिए एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की कल्पना की थी, जो प्रगतिशील हो और हमारे सभ्यतागत मूल्यों में निहित हो। हमें 21वीं सदी के एक ऐसे नागरिक तैयार करने होंगे, जो वैश्विक जिम्मेदारियाँ उठा सकें। इसलिए हमारी शिक्षा व्यवस्था राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुरूप होनी चाहिए। नई शिक्षा नीति का उद्देश्य भारत की शिक्षा को 2030 तक बदल देना है। ऐसे बदलाव जिसे रटंत विद्या के स्थान पर व्यावहारिक विद्या ले ले और छात्र जो भी सीखें, जाने या करें। वह मन से करें, न कि भिन्न प्रकार के दबाव में। मन से किया गया कार्य आत्मा को संतुष्ट करता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 की नीतियाँ आगामी पीढ़ी का मार्गदर्शन करेंगी और 'एक भारत, श्रेष्ठ भारत' के सपने को साकार करेंगी। इस नई शिक्षा नीति की सफलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि केंद्र तथा राज्य दोनों एक मत होकर इस नीति पर कितना तेजी से कार्य करते हैं, क्योंकि 1976 से भारत में शिक्षा 'समवर्ती सूची' का विषय है। □

संदर्भ ग्रंथ :

1. विवेकानंद साहित्य. खंड-5. संस्करण-1989. पृ.सं.-195
2. शर्मा,ओमप्रकाश. "स्वामी विवेकानंद". साहित्य केंद्र प्रकाशन, नई दिल्ली. 1989. पृ.सं.-56
3. नाथ, सत्येंद्र. "विवेकानंद चरित्र". रामकृष्ण मठ प्रकाशन, नागपुर.1998. पृ.सं.-58
4. चौबे, सरयू प्रसाद. "भारतीय शिक्षा का इतिहास". माधव प्रकाशन, इलाहाबाद. 1986. पृ.सं.-145
5. <https://www.education.gov.in/sites/upload.files/mhrd/files/>
6. शर्मा, ओमप्रकाश. "स्वामी विवेकानंद". साहित्य केन्द्र प्रकाशन, दिल्ली. 1989. पृ.सं.-77
7. रहवर, हंसराज, "योद्धा संन्यासी विवेकानंद". राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली. पृ.सं.-37
8. <https://www.education.gov.in/sites/upload.files/mhrd/files/NEP-HINDI-0.pdf>
9. कुमार, भारत. "स्वामी विवेकानंद का दार्शनिक चिंतन". भारतीय विद्यापीठ. नई दिल्ली. 1989. पृ.सं.-23
10. <https://www.education.gov.in/sites/upload.files/mhrd/files/NEP-HINDI-0.pdf>
11. विवेकानंद साहित्य. खंड-5. संस्करण-1989. पृ.सं.-194
12. पांडे, रामसकल. 'शिक्षा दर्शन'. विनोद प्रकाशन, आगरा. 1992. पृ.सं.-45
13. विवेकानंद साहित्य. खंड-2. संस्करण-1989. पृ.सं.-328
14. विवेकानंद साहित्य. खंड-3. संस्करण-1989. पृ.सं.-4

रवाई घाटी के लोक साहित्य में परिलक्षित धाड़ा परंपरा



प्रमोद प्रसाद

शोध-सार :

रवाई घाटी पुरातन काल से अपने लोक साहित्य सृजन, साहित्यिक समृद्धि तथा लोक परंपराओं के लिए प्रसिद्ध रही है। यहाँ के समाज के सामाजिक नियम, लोक परंपराएँ, लोक धर्म, लोक विश्वास, संस्कार, लोक गीत, लोक नृत्य आदि इस रवाई क्षेत्र को अन्य क्षेत्रों से विशिष्ट पहचान दिलाते हैं। रवाई घाटी उत्तराखंड राज्य के सीमांत जनपद उत्तरकाशी का वह क्षेत्र है, जहाँ लोक साहित्य अपने वैभव को परिलक्षित करता है। लोक साहित्य के माध्यम से इस क्षेत्र की जीवंतता अभिभूत की जा सकती है। सामाजिक परंपराओं के साथ-साथ यहाँ समाज में पारस्परिक संघर्ष, सामाजिक वर्चस्व की भावना भी परिलक्षित होती है, जिसको यहाँ धाड़ा परंपरा के नाम से जाना जाता है। धाड़ा परंपरा का उल्लेख रवाई घाटी के समृद्ध लोक गीतों में प्रतिबिंबित होता है, जिससे यहाँ के समाज का ताना-बाना दृष्टिगोचर होता है।

बीज शब्द :

रवाई, परंपरा, विश्वास, संस्कार, लोकगीत, सौंदर्य, धाड़ा, वर्चस्व, वैभव।

मूल आलेख :

‘हिमालय क ऊँच डांड, प्यारू मेरू गाँव,
रंगीली रवाई मेरी छबिली सिराऊ ।
धुमणक छन यख सू प्यारू पुरोला,
सईनी सिराई यख धार जरमोला ।
जरमोला न कनु देखे प्यारू गुंदियाटगाँव,
रंगीली रवाई मेरी छवीली सिराऊ’¹

शोधार्थी, हिंदी एवं आधुनिक
भारतीय भाषा-विभाग
हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल
(केंद्रीय) विश्वविद्यालय
श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखंड-246174
☎ 9458930957
✉ mbbsbobyuniyal1993@gmail.com

रवाई क्षेत्र वास्तव में अपनी प्राकृतिक सुंदरता के लिए साहित्य प्रेमियों एवं इतिहासकारों के लिए प्राचीन समय से ही शोध का प्रमुख केंद्र रहा है। रवाई उत्तरकाशी जिले के पश्चिमोत्तर क्षेत्र के अंतर्गत आता है। रवाई घाटी की रमणीकता को नजदीक से देखने एवं आत्मसात करने का प्रवेशद्वार पतित पावनी गंगा-यमुना के अंचल में बसी गंगा-यमुना घाटी को विभाजित करने वाला डांडा, राड़ी पर्वत को माना जाता है। रवाई के संपूर्ण क्षेत्र के अंतर्गत यमुना घाटी के तीन ब्लॉक आते हैं, जिसमें विकासखंड नौगांव, पुरोला, मोरी सम्मिलित हैं। भौगोलिक संरचना के आधार पर रवाई क्षेत्र को दो भागों में विभाजित किया गया है। एक रवाई का पर्वतीय भू-भाग, जो उत्तराखंड के पड़ोसी राज्य हिमाचल की सीमा को स्पर्श करता

है। इस क्षेत्र में पंचगाई, बडासू, अडोर पट्टी, फतेपर्वत, सिगतूर, गडूगाड़ एवं बंगाण क्षेत्र की पींगल, कोठीगाड़, मासमोर, पुरोला विकासखंड की बडियार, नौगाँव की ठकराल गीठ औजरी पट्टी शामिल है, दूसरा यमुना घाटी का क्षेत्र जिसमें रामा सिराई, कमल सिराई, मुगरसंती, बनाल बड़कोट गोडर तथा खाटल पट्टियाँ शामिल हैं। रवाई क्षेत्र ऋषि-मुनियों की तपोस्थली तथा पांडवों की क्रीड़ा स्थली के रूप में भी विख्यात है। यहाँ का पावन भू-भाग अपनी लोक संस्कृति के लिए संपूर्ण देश में विख्यात है। आधुनिक जीवन शैली के सोलह संस्कारों की परंपरा इस क्षेत्र की संस्कृति में साफ नजर आती है। यहाँ की संस्कृति के परिचायक लोक गीत, लोक नृत्य, लोक गाथाएँ एवं रीति-रिवाज, रहन-सहन, भाषा-शैली, उत्सव मनाने की परंपरा आधुनिक समय में भी इस क्षेत्र में विद्यमान है। यहाँ के ग्रामीण समाज के लोगों की दिनचर्या का आरंभ प्रातः बाजगी के ढोल की प्रभात बजाने तथा रात्रि का प्रारम्भ 'नमति' की ताल से गुँजायमान होने वाली मधुर ध्वनियों से होता है। इस क्षेत्र में महाभारतकालीन अवशेष अधिक मात्रा में देखने को मिलते हैं। मोरी विकास खंड के अंतर्गत आने वाले गाँव सिगतूर में कर्ण तथा गडूगाड़ पट्टी में वृषकेतु की पूजा की जाती है, जिससे यह प्रतीत होता है कि इस क्षेत्र में पांडवों ने भ्रमण किया होगा। कौरवों ने पांडवों के लिए लाक्षागृह का निर्माण इसी रवाई में स्थित लाखामंडल नामक स्थान पर किया था। अनेको गाँवों में होने वाली पांडवों की सराद भी पांडवों की संस्कृति की अनुभूति कराती है। रवाई क्षेत्र के अंतर्गत दो प्रमुख नदियों- यमुना तथा टौन्स का प्रवाह तंत्र होने के कारण इस क्षेत्र को यमुना एवं टौन्स घाटी में बाँटा गया है। स्कंद पुराण में तमसा नदी का उल्लेख मिलता है। संभवतः स्कंद पुराण के केदारखंड में वर्णित तमसा नदी को आधुनिक समय में टौन्स नदी माना जाता है। रवाई क्षेत्र का नाम रवाई कैसे पड़ा- इस संदर्भ में साहित्य तथा इतिहास में अनेक प्रकार के मत प्रचलित हैं- “इतिहासकार डॉ. सुभाष चन्द्र के कथनानुसार रवाई शब्द की व्युत्पत्ति ‘राई’ शब्द से हुई है। ‘राई’ गढ़वाल के प्रमुख गढ़ों में से एक गढ़ था।”² टिहरी रियासत के नरेश सुदर्शन शाह ने अपनी पुत्री को दहेज में वुशहर के राजा

को डोडरा क्वार क्षेत्र प्रदान किया, जिस कारण यह ‘राई’ गढ़ भी हिमाचल प्रांत में चला गया। इसी ‘राई’ गढ़ से सटा होने के कारण यह क्षेत्र का नाम ‘रवाई’ के नाम से विख्यात हो गया तथा कालांतर में यह क्षेत्र एक समृद्ध परगने के रूप में पहचाना जाने लगा। अन्य विचारकों के मतानुसार, रवाई नाम इस क्षेत्र में रंगाई का कार्य करने वाले लोगों के निवास करने के कारण प्रचलित हुआ। एक मत यह भी है कि इस क्षेत्र में बहादुर लोग निवास करते थे, जिन्हें रणबांकुरे कहा जाता था। ये लोग युद्ध कला में पारंगत होने के कारण रणवाले कहलाए और इसी रणवाले शब्द का अपभ्रंश होकर ‘रवाई’ हो गया।

उच्च हिमालय की शृंखलाओं के नजदीक बसे लोगों के लिए कृषि करने योग्य भूमि पर्याप्त नहीं होने के कारण तथा कुछ भू-भागों में अधिक शीत लहर पड़ने से खेती करने के लिए उचित जलवायु भी नहीं होती थी। ऐसे स्थानों पर निवास करने वाले लोगों को अपना जीविकोपार्जन करने के लिए कृषि कार्य के साथ-साथ पशुपालन एवं अन्य व्यवसाय भी अपनाना होता था- “रवाई क्षेत्र के लोगों के सम्मुख भी अनेकों प्रकार की पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हुआ करती थीं।”³ जीविकोपार्जन हेतु उत्पन्न होने वाली समस्याओं के कारण लोग पशुपालन से भी अपनी जीविका चलाया करते थे। उच्च हिमालय क्षेत्र में रहने वाले लोग स्वतंत्रता प्रेमी होते थे। यहाँ के निवासियों की प्रत्येक पट्टी के अपने-अपने लोक देवता होते हैं तथा ये लोग अपने आस-पास के लोगों की सहायता करने हेतु सदैव तत्पर रहते थे। अपने क्षेत्र विशेष में अन्य पट्टी के लोगों का हस्तक्षेप पसंद नहीं करते थे। अगर किसी कारणवश दूसरे ग्राम के लोगों द्वारा किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप किया जाता था तो ये लोग उसे अपने मान-सम्मान की मानहानी समझते थे तथा उसके उत्तर में उन हस्तक्षेप करने वाले लोगों के प्रति हिंसात्मक कार्यवाही करने के लिए भी तैयार रहते थे। “दूसरे क्षेत्र के लोगों द्वारा किए गए हस्तक्षेप के विरोध में उस क्षेत्र के लोगों द्वारा बदला लेने की कार्यवाही को उच्च हिमालयी क्षेत्र की रवाई घाटी में धाड़ा कहा जाता था।”⁴

धाड़ा शब्द का अर्थ आधुनिक समय में लूटपाट से समझा जाता है। जबकि ‘धाड़ा’ परंपरागत तरीके से प्रचलित



व्यवस्था थी, जिसका स्वरूप लूटपाट से अलग था। ‘धाड़ा’ शब्द का अर्थ बदला लेने की भावना से किसी वस्तु, धन या प्राणी को बलपूर्वक अपने अधिकार में करने से होता है। इस प्रक्रिया में लोगों के साथ लोक देवताओं का हस्तक्षेप भी होता था, अर्थात् कबायली संस्कृति के लोगों में किसी अन्य पक्ष से अपने अपमान का बदला लेने तथा अपने अधिकार क्षेत्र से छीनी गई वस्तु पर पुनः अधिकार करने की प्रक्रिया ‘धाड़ा’ कहलाती थी। ‘धाड़ा’ प्रक्रिया के स्वरूप को समझने पर प्रतीत होता है कि यह परंपरा दो प्रकार की होती थी। प्रथम प्रकार वह होता था, जिसमें संपूर्ण पट्टी या गाँव के लोगों के सामूहिक हित या मान प्रतिष्ठा के अपमान के संदर्भ में धाड़ा प्रक्रिया को पूर्ण किया जाता था, जिसे सामूहिक ‘धाड़ा’ कहा जाता था। दूसरा वह होता था, जिसमें किसी व्यक्ति के व्यक्तिगत मान-सम्मान, अहंकार, प्रतिष्ठा को आघात पहुँचाने पर बदला लेने की भावना से पूर्ण किया जाता था। पशुलूट एवं ‘धाड़ा’ लगाने की प्रक्रिया रवाई में ही नहीं, भारत वर्ष से बाहर- “उत्तरी पूर्वी युगांडा के

अधिकांश क्षेत्रों में पाई जाती थी, जहाँ लोग पशुलूट के माध्यम से अपना जीवन निर्वहन करते थे।”⁵

इस बात से स्पष्ट होता है कि सामाजिक प्रतिष्ठा के साथ-साथ संसाधनों की कमी, जलवायु परिवर्तन एवं गरीबी भी व्यक्ति को पशुलूट ‘धाड़ा’ लगाने की प्रक्रिया के लिये बाध्य करती थी। रवाई के समाज में धाड़ा मारने वाले समूह को दैवीय सहयोग भी प्राप्त होता था- “कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी पशुलूट का वर्णन मिलता है।”⁶

रवाई के महोच्च क्षेत्रों में पशुओं तथा महिलाओं के ऊपर ‘धाड़ा’ मारने की परंपरा विद्यमान थी। धाड़ा मारना व्यक्ति के गौरव, आत्मसमान के रूप में भी जाना जाता था। पशुचारकीय समाज में पशुओं के चरान के लिए जंगलों को विभिन्न भागों में लोगों में बाँटा गया होता था, जिसमें उत्तम प्रकृति के बुग्याल शामिल होते थे, प्रत्येक पट्टी के पशुचारकों को अपनी ही पट्टी के हिस्से में आए बुग्याल में अपने पशुओं को चराना होता था। अगर किसी अन्य गाँव, पट्टी के पशुचारक दूसरे गाँव के वनों में

हस्तांतरित हो जाते थे तो यह स्थिति पशुचारकों के बीच तनाव का कारण बनकर सामने आती थी, जो ग्रामीण लोगों में धाड़ा का रूप लेती थी। रवाई क्षेत्र में लोक देवता भी 'धाड़ा' लगाने के लिए अपनी प्रजा को आदेशित करते थे, जिसका स्थानीय लोकगीतों में निम्न वर्णन मिलता है-

“फूली जांदो केवा, फूली जांदी देवा।
ढाटमीर चउरीया क घूमी करो मेवा।
धूमी करो मेवा, कश बोल देवा।
चांदया लाई खई, चांदया लाई खई।
एसों बोल देवा, कटठे जाओ हई।
माटया पाती घड़ी, माटया पाती घड़ी।
देव लान्दो शमसू भेड़ू खाणकि अड़ी।”⁷

उपर्युक्त लोक गीत में लोक देवता अपनी प्रजा को इकट्ठा होकर अपने क्षेत्र विशेष में आई दूसरी पट्टी सरबड़ियार क्षेत्र के लोगों के भेड़, बकरियों पर धाड़ा मारकर अपने अधिकार में करने की आज्ञा दे रहे हैं। ग्राम लिवाड़ी के ग्रामीणों के द्वारा डोडरा-क्वार के भेड़ पालकों पर लगाए गए एक अन्य धाड़े का भी वर्णन मिलता है। इस धाड़े में धाड़ा लगाकर उनकी भेड़ तथा बकरियों को उनके बर्तन एवं देवता के प्रतीक चिन्ह भांड को फिताड़ी ग्राम के सोमेश्वर मंदिर में लाकर जश्न मनाने का वर्णन स्थानीय लोक गीत में मिलता है-

“घाघोरी को घेरा ले, घाघोरी को घेरा ले
उठदो कईना लेऊ ले, खा क्वारियों की भेड़ा ले।
अइंचाई कईंचाई, अइंचाई कईंचाई
क्वारियों को भाण्ड ले फिताड़ी पहुँचाई
सिंगे लाई बाकी, सिंग लाई बाकी
ओडीऊं का ले पहुँचे, पन्द्रह सों के ढाकी ले”⁸

लिवाड़ी ग्राम के ग्रामीणों द्वारा क्वार के भेड़ पालकों पर धाड़ा लगाया गया, जिसमें डोडरा-क्वार के पशुचारकों के लोक देवता का प्रतीक चिन्ह अपने अधिकार में लेकर फिताड़ी ग्राम में स्थित सोमेश्वर के मंदिर में स्थापित किया गया, जो वर्तमान समय में भी मंदिर के प्रवेश द्वार पर विद्यमान है। टिहरी रियासत के पट्टियों के मध्य धाड़ा लगाने में सरकारी कर्मचारी भी अपने क्षेत्र व जनसमुदाय

का सहयोग करते थे। लिवाड़ी ग्राम के ग्रामीणों से बदला लेने की प्रक्रिया के तहत “सन 1943 ई. 26 गते आषाढ़ सन 2000 को डोडरा-क्वार के ग्रामीणों द्वारा मांझीवन बुग्याल से भेड़-बकरियों को लूटा गया।”⁹

इस लूट में आलम सिंह, नारायण सिंह के कानों से स्वर्ण के आभूषण तथा राघवानंद के कानों एवं हाथों से स्वर्ण, चांदी के आभूषण बर्तन राशन, भेड़, बकरी, कुत्ते, लोक देवता का प्रतीक चिन्ह भांड लूट लिया गया, जिसे क्वार जाख मंदिर में स्थापित किया गया तथा बाद में एक समझौते के तहत समस्त लूटी गई सामग्री को सशर्त वापस कर दिया गया था। 1943 ई. के राजीनामा के पश्चात एक घटना ने पुनः दोनों पक्षों को विवादों में झोंक दिया। क्वार जाख के रहने वाले कर्जू मिस्त्री का, जो निम्न जाति का था- मिस्त्री कार्य हेतु (कासला) नामक गाँव में (पचंगाई पट्टी) की एक विवाहित स्त्री 'नारदेई' जो सवर्ण थी, के साथ प्रेम प्रसंग हो गया था। उस समय परंपरागत सामाजिक नियमों से बाहर विवाह करना सामाजिक बहिष्कार तथा प्रताड़ना का विषय था। परंतु प्रेम की इस प्रबल पराकाष्ठा ने सामाजिक बंधनों को तोड़कर कर्जू मिस्त्री नारदेई को (धाड़ा लगाकर) क्वार जाख मंदिर में ले गया, जिसका वर्णन निम्न लोक गीत में मिलता है -

“ताम कि ले पीठोणा, ताम कि ले पीठोणा,
क्या लागी कर्जू बाढ़ाई, लिवाड़ी ले हिंटोणा।
क्या लागी कर्जू बाढ़ाई, राला-कासला ले हिंटोणा।
काटी ती ले कुचाई, कुचाया क ले गोब,
राला-कासला हिंटोण, नारदेई क ले लोभ।
ढोलू लायो ले रूड़ो, ढोलू लायो ले रूड़ो,
नारदेई बाण ली रोटी, कर्जू चीणन्दो स कुड़ो।
होई प्यारे नारदेई, कर्जू चीणन्दो स कुड़ो।
डोखरो बायो ले ऊटो, डोखरो बायो ले ऊटी,
ताई खायो नारदेई, कर्जू बाढ़ाई को जूटो।
दूध की ले जमोणा, दूध की ले जमोणा,
घर नउंलो हउं नारदेई, क्या देली ले समोणा।
दौडी जाली ली ले घोड़ी, दौडी जाली ली ले घोड़ी
का मांग स समोणा, कासला दिंउ लो ले छोड़ी।

होई प्यारे कर्जू बाढ़ाई, कासला दिउं लो ले छोड़।
गाबलू लायो ले बाड़ो, गाबलू लायो ले बाड़ो,
पांचू नगरों माई के घिन्यों, क्वार ले भल धाड़ो।
अइंचोई ले कइंचाई, अइंचाई ले कइंचाई,
प्यारी नारदेई ले, क्वार ले पइंचाई।
पीतल ले पराता, पीतल ले पराता,
क्वार ले पइंचाई, नारदेई की बराता।”¹⁰

बाद में दोनों पक्षों के मुख्य व्यक्तियों द्वारा एक समझौता किया गया। इसके तहत कर्जू मिस्त्री को नारदेई को वापस लौटाकर दंडस्वरूप एक सौ चांदी के सिक्के मानहानि के रूप में देने पड़े थे। पंचगाई पट्टी के ग्रामीणों तथा क्वार-जाख जिस स्थान का रहने वाला कर्जू नामक मिस्त्री था के मध्य जो समझौता हुआ था, वह अधिक समय तक नहीं चल पाया। पंचगाई पट्टी के लोगों द्वारा नारदेई के ऊपर लगे धाड़े को अपने क्षेत्र के लोगों का अपमान समझकर अपमान की बलवती भावना से साजिश के तहत पुनः ग्रीष्मकाल में पित्रवाड़, धंदरवाड़ के कालीराम, पगूराम की पंद्रह सौ भेड़, बकरियों पर धाड़ा मारकर लिवाड़ी मंदिर में लाया गया, जिसका वर्णन प्रचलित लोक गीत में निम्नवत मिलता है -

“चान्दया लाई खई चान्दया लाई खई,
ऐसो बोल देना, कटले जाओ हई।
माट्या पाती घड़ी माट्या पाती घड़ी,
देउ लान्दो समेसु भेड़ खाणकी अड़ी।
सिग्यो तो चोतोर, सिब्यो तो चोतोर,
देउ दिन्दो समेसू, बाउली ओतारा।
बाइसूली क पात, बाइसूली क पात,
ढाल देओ डांगरी, पन्द्रह सौ मात।
चालोणी की ले भेरी, चालोणी की ले भेरी,
ढाटमीर मैटीण, काई कुमाऊं तेरी।
उड़ियाई जाली कोपी, उड़ियाई जाली कोपी,
बीजा मोरसिंहा, भेड़ा लाओ धोबी।
हियं क डूंकोरा, हियं क डूंकोरा,
भेड़ाई ना दिसन्दी, भूकन्द सी ले कुकुरा।
फूली जान्दो केवा, फूली जान्दो केवा।
भेड़ा ना दिसन्दी, दूल्काई लाग्यो मेवा।

चउंडिया लाये आडू चउंडिया लाये आडू
थातरू छूली पड़े, माखुवा मारयो खाडू।
बीजा मोरसिंहा, माखुवा मारयो खाडू।”¹¹

पंचगाई पट्टी के सोमेश्वर देवता अपने क्षेत्र के अपमान का बदला लेने हेतु समस्त क्षेत्र की प्रजा को आदेशित करके पुनः धाड़ा लगाने का संदेश दे रहे हैं। इस धाड़े में पंचगाई पट्टी के आस-पास की अन्य पट्टियाँ, जो सोमेश्वर देवता के क्षेत्र में आती थीं ने भी सहयोग करके सामूहिक धाड़े की कार्यवाही की, जिसमें रवाई की बड़ासु, अडोर भी शामिल हुई। ‘राता ढो पचवाडी’ नामक बुग्याल से डोडरा क्वार के “नरचन्द, हिरालाल की छह सौ पाँच भेड़-बकरियों पर पुनः धाड़ा मारकर अपने क्षेत्र के अपमान का बदला लिया था।”¹²

इस धाड़े में अधिक हिंसक कार्यवाही की गई थी तथा हिरालाल को बंधक बनाकर साथ ले गए थे। यह जवाबी कार्यवाही पूर्व में नारदेई के धाड़े के अपमान का बदला लेने हेतु की गई थी। कानूनी तौर पर भी सरकारी कर्मचारियों द्वारा इस धाड़े में हस्तक्षेप किया गया था तथा धाड़ा मारने वाले व्यक्तियों पर कार्यवाही की गई थी, जिसमें तत्कालीन रियासत-“टिहरी राज्य के उस समय के नियुक्त मुख्य सचिव द्वारा डिप्टी कलेक्टर रवाई (राजगढ़ी) को जाँच हेतु नियुक्त किया गया था।”¹³ कानून के हस्तक्षेप के बाद दोनों पक्षों में समझौता हो गया था, परंतु कुछ समय बाद कानूनी राजीनामा होने के बाद भी लोक अपमान की भावना से पुनः अपमानित क्षेत्र के लोगों का डर लिवाड़ी ग्राम के भेड़ पालकों के मन में सताने लगा तथा अपनी भेड़-बकरियों को माजीवन बुग्याल से हरकीदून बुग्याल के हाटा मणीदा नामक जगह पर चरान हेतु ले गए, परंतु अपमान की भावना से जल रहे डोडरा-क्वार के लोगों द्वारा पुनः इकत्तीस गते आषाढ़ संवत 2004-जुलाई 1947 हाटा, मणिदा कांठे में प्रवेश कर बड़ासू, पचगाई, अडोर- तीन पट्टियों की सोलह सौ भेड़-बकरियों पर धाड़ा लगाकर ले गया, जिसका वर्णन निम्न लोक गीत में मिलता है-

“निंगाली पौतरी, निंगाली पौतरी
धन्दराड़ी देउरक, देव रयो ओतरी।

चान्दया लाई खई, चान्दया लाई खई,
 दस सौं क्वारियों, कट्टे जाओ हई।
 फूली जांदो केवा, फूली जांदो केवा,
 कट्टे जाओ हई, कस बोल देवा।
 माट्या पाती घड़ी, माट्या पाती घड़ी,
 देव लान्दो क्वार-जाख, भेड़ू खाण की अड़ी।
 ढोल बजी गाई, ढोल बजी गाई,
 दस सौं क्वारियों, धोबो देओ लाई।
 उड़ियाई जाली कोपी, उड़ियाई जाली कोपी,
 अमरू राजीनन्दा, भेड़ा आणों धोबी।
 सुणक्या मारी शेड़ा, सुणक्या मारी शेड़ा,
 हाट मणिन्दा धोबी, खाउलाणू की भेड़ा।
 थातरू मउ लियो मोरा, थातरू मउ लियो मोरा,
 थातरू छूली पड़े, क्वारियों क छोरा।
 चउंडी लायो आडू चउंडी लायो आडू
 थातरू छूली पड़े, माखुवा मारयो खाडू।
 झिलकली जानी, झिलकली जानी,
 सैंजा को निकरामा, सांगला घिन्यो बानी।
 सुणक्या मारी शेड़ा, सुणक्या मारी शेड़ा।
 धन्दराड़ी देउरक, फिराई निकराम खाउलाणू की भेड़ा।”¹⁴

रवाई के अपने आस-पास की नजदीकी पट्टियों के मध्य भी पशुचारन के बुग्यालों के अधिकार क्षेत्र संबंधी विवाद हुआ करते थे और अपमान की भावना के कारण धाड़े भी लगाए जाते थे, जिसमें रवाई परगने की बड़ासू पट्टी तथा सिंगतूर पट्टी के मध्य धाड़ा लगाने का वर्णन मिलता है। जखोल गाँव के ग्रामीणों द्वारा कलाप के जंगल से (सिंगतूर पट्टी की 250 भेड़-बकरियों पर धाड़ा लगाकर जखोल मंदिर में लाया गया। यह धाड़ा सोमेश्वर देवता को सिंगतूर पट्टी के पशुचारको द्वारा भेंट स्वरूप दिए जाने वाले बकरे की परंपरा को तोड़ने के अपमान स्वरूप लगाया गया था, जिसका वर्णन निम्न लोकगीत में मिलता है -

“दले नुण क शाकीर, दले नुण क शाकीर
 दले को रोक़ी दले देवता क बाकीर
 दले ढोलू बजी गाई, दले ढोलू बजी गाई
 दले ताई रोक़ियो बाकिरो, दले आमे भेड़ा आणि खाई।
 दले लीची गाली पाटी, दले लीची गाली पाटी

दले भेड़ा खाई अब्दालु, दले भेड़ा पंचगाई बांटी।
 दले खरसल बोरू, दले खरसल बोरू
 दले भेड़ा खाई पंचगाई, तू चारे महिपतू का गोरू।”¹⁵

अडोर एवं सिंगतूर पट्टियों के मध्य हुए धाड़ा भी प्रचलित थे। सामूहिक एवं व्यक्तिगत धाड़ा में ग्रामीण जनसमुदाय के लोगों के साथ-साथ क्षेत्र के लोक देवता भी धाड़ों में हस्तक्षेप किया करते थे। ये लोक देवता अपने क्षेत्र में दूसरे क्षेत्र के लोक देवता का हस्तक्षेप करना अपनी मान-प्रतिष्ठा का अपमान समझते थे। सिंगतूर के देवता कर्ण एवं पंचगाई पट्टी के देवता सोमेश्वर के अपने क्षेत्र से संबंधित विवादों के कारण उत्पन्न हुए धाड़ा का वर्णन भी रवाई के लोक गीतों में मिलता है, जिसका उदाहरण निम्न है-

“अउंल पके भउंले, अउंल पके भउंले
 चल रे दादा रिसू, चोरया करद नउले।
 गराडू की हिला, गराडू की हिला,
 चोरया कर दे नउल, सिंगतूर की भीला।
 होई मोड़ा बनेउ, सिंगतूर की भीला,
 चालोणी को भेरो, चालोणी को भेरोर।
 साउणी को छूटो, कर्नू पड़यो डेरो,
 अउंल पके भउंले, अउंल पके भउंले।
 चल रे दादा रिसू, दउरक उब नउल,
 नाज क फूयाण, नाज क फूयाण।
 देउर उब दखे काकड़िउं क वाणा,
 ढोल बजी गाई, ढोल बजी गाई।
 त उपाड़ल डोटा, काकड़े करल खाई,
 नान्दली बाधिणा, नान्दली बाधिणा।
 दउरक जगाली, फन्दाटी ढाकिणा,
 ओखले लाई रिडी, ओखले लाई रिडी।
 फून्दाड़ी ढाकिणा, बाजनी लाई थिड़ी।
 लिची घाली पाटी, लिची घाली पाटी,
 त उपाड़ल डोटा, माख्या करल काटी।
 जड़या को कापू जड़या को कापू
 उपाड़दो कई डोटा, धनी हउं स आपू।
 झमकायो ले झाला, झमकायो ले झाला,
 थाती माथ के छूटयो, दउर माथ फाला।
 अइंचाई कईंचाई, अइंचाई कईंचाई,

उपाड़ी घिन्यो डोटा, फिताड़ी पहुँचायो।”¹⁶

रवाई घाटी में परिलक्षित इस अनोखी परंपरा के विश्लेषण से यह प्रतीत होता है कि धाड़े न सिर्फ पशुओं तथा चरवाहा स्थलों को अधिकृत करने तक सीमित थे, अपितु ग्रामीण अंचल में स्त्रियों, देवताओं, देव मंदिरों, देव मूर्तियों, फसलों, पानी के धारों तथा पुरुषों की मूँछों तक लगाए जाते थे, जिनका उद्देश्य आर्थिक कम, परंतु सामाजिक वर्चस्ववाद के साथ साथ क्षेत्रीय प्रतिष्ठा अधिक दृष्टिगत होती है। रवाई घाटी में प्रचलित धाड़ा का स्वरूप विश्व के अन्य पशुचारक संस्कृति के आयामों तथा उद्देश्यों से नितांत भिन्न था। जहाँ विश्व के संदर्भ में पशुओं को लूटना आर्थिक संपन्नता में

वृद्धि तथा संकटकाल जैसे भुखमरी, सूखा, प्राकृतिक आपदा, विवाह, दहेज तथा कन्या मूल्य की अदायगी आदि लूट के मूल में निहित थे, वहीं रवाई घाटी में चरवाहा समाज में लूट का स्वरूप पूर्णतः सामाजिक प्रक्रिया के रूप में प्रतिष्ठित होकर दैवीय नियंत्रण के आधार पर संचलित होने वाली प्रक्रिया थी। धाड़ों की परंपरा ऐतिहासिक विकासवाद की दृष्टि से दो रूपों में स्थापित थी। पहला- बुग्याली संस्कृति से जुड़े घुमंतू पशुचारकों के चरागाहों की सीमा संबंधी विवाद और दूसरा- ग्रामीण समाज के मध्य क्षेत्रीय प्रतिष्ठा, सामंतीय अहंकार तथा परंपरागत ग्रामीण परंपराओं पर बढ़ते हस्तक्षेप के कारण उत्पन्न होने वाले विवाद थे। □

संदर्भ ग्रंथ

1. रवाई क्षेत्र के लोक देवता एवं लोकोत्सव, दिनेश सिंह रावत, सुकृति प्रकाशन, करनाल रोड, हरियाणा, पृष्ठ संख्या 13
2. अप्रकाशित शोध ग्रंथ टिहरी रियासत में पशुचारण संबंधी विवाद सुभाष चंद्र, पृष्ठ संख्या 62
3. मध्य हिमालय की रियासत में ग्रामीण जनसंघर्षों का इतिहास, डॉ. राधेश्याम बिजल्वाण, पृष्ठ संख्या. 44 बिजल्वाण प्रकाशन पुरोला।
4. मध्य हिमालय की रियासत में ग्रामीण जनसंघर्षों का इतिहास, डॉ. राधेश्याम बिजल्वाण, पृष्ठ संख्या. 45 बिजल्वाण प्रकाशन पुरोला।
5. फेरल, जेनिफर, फी, बेट्टी, रॉस, ब्रायन एण्ड स्टोकर, क्लेयर- ए रिपोर्ट ऑन पासटरलिस्ट्स, पीस एण्ड लाईवलिहुड: इकोनॉमिक इन्टर्वीनंस टू बिल्ड पीस इन करमोजा, युगांडा, द जार्ज वॉशिंगटन यूनिवर्सिटी, द इलियट स्कूल ऑफ इंटरनेशनल अफेयर्स ड्राफ्ट, 25 मई 2011, पृ.सं.-06-08
6. अथर्ववेद & iii , 2.
7. साक्षात्कार श्री देवीप्रसाद उनियाल, ग्राम कोटगाँव, उम्र-73 वर्ष, दिनांक 7-10-2024
8. साक्षात्कार.श्री जयप्रसाद नौटियाल, ग्राम जखोल, उम्र 34 वर्ष, दिनांक 7-10-2024
9. अप्रकाशित शोध ग्रंथ टिहरी रियासत में पशुचारण संबंधी विवाद सुभाष चंद्र, पृष्ठ संख्या 179
10. सुभाष चंद्र पूर्वोक्त पृष्ठ संख्या 181
11. साक्षात्कार, श्री देवी प्रसाद उनियाल उम्र-73 वर्ष, दिनांक 7-10-2024
12. राज्य अभिलेखागार देहरादून-टिहरी गढ़वाल कलेक्ट्रेट टी. एस. आर. 1939-1949 डिपार्टमेंट नो. 06 फाईल नो.-डी. केस नो.-72(2)
13. अप्रकाशित शोध ग्रंथ टिहरी रियासत में पशुचारण संबंधी विवाद सुभाष चंद्र, पृष्ठ संख्या 186
14. साक्षात्कार, रामकृष्णी देवी ग्राम कोटगाँव, उम्र-64 वर्ष, दिनांक 20-10- 2024
15. साक्षात्कार, श्री देवी प्रसाद, दिनांक 20-10-2024
16. अप्रकाशित शोध ग्रंथ टिहरी रियासत में पशुचारण संबंधी विवाद सुभाष चंद्र, पृष्ठ संख्या 285

उत्तराखंड त्रासदी पर आधारित डॉ. निशंक के साहित्य का एक संक्षिप्त अवलोकन



परमेश्वरी

सारांश :

देवभूमि उत्तराखंड के यशस्वी शब्दसाधक साहित्यकार डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक, जो हिंदी साहित्य में विशिष्ट स्थान रखे हुए हैं, ने पर्वतीय जीवन और परिवेश को अपने शब्दों द्वारा रचनाओं में अभिव्यक्त स्थान किया है। पहाड़ों की धड़कन को महसूस करके पर्वतीय लोक जीवन तथा वहाँ की संस्कृति और संवेदनाओं की सुगंध से महकती उनकी रचनाओं ने समाज में अमिट छाप छोड़ी है। निशंक ने अपने साहित्य रचनाओं के माध्यम से उत्तराखंड में आई भीषण दैवीय आपदा से पीड़ित उन लोगों को नमन किया है, जिन्होंने इतने बड़े संघात के बाद भी अपने जीवन से हार नहीं मानी है। और आपदा से ग्रसित, पीड़ित परिवार आज भी खुश रहने तथा अपने जीवन को नए ढंग से जीने की कोशिश कर रहा है।

बीज शब्द:

आपदा, जनजीवन, संस्कृति, मानवीय मूल्य, घाटी, धर्म, समुदाय, त्रासदी।

मूल आलेख :

सुप्रसिद्ध लेखक, शिक्षक, कवि, कथाकार, उपन्यासकार हिंदी सेवी, राष्ट्रप्रेमी, समाज सुधारक व एक जनकल्याणकारी तथा सच्चे देशभक्त डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक अपने लेखन के माध्यम से समाज के यथार्थ का बखूबी चित्रण करते हैं। उनकी लेखन क्रिया अनुभवों की भूमि पर समाज व राष्ट्र के प्रति अगाध प्रेम की भावना को दर्शाने का काम करती है।

भारत देश विविधताओं का देश रहा है। यहाँ पर अनेक जाति व जनजाति, धर्म, संप्रदाय, संस्कृति, परंपराओं के लोग एक साथ निवास करते हैं। हिंदू संप्रदाय में पूजा-पाठ, जप-तप, दान इत्यादि का विशेष महत्व होता है। भारतीय संस्कृति विदेशियों को लुभाती है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति की विदेशों में भी ख्याति फैली हुई है। यही कारण है कि देश के साथ ही विदेश के श्रद्धालु भी भारत में अपनी भक्ति से ईश्वर को प्रसन्न करते हैं।

“केदार घाटी में जब वर्ष 2013 में यह त्रासदी आई तो मैं सबसे पहले वही पहुँचा था। प्रदेश की तत्कालीन सरकार के प्रतिबंध के पश्चात भी धारा 144 को तोड़कर मैं अपने दर्जन साथियों के साथ टूटे और ध्वस्त हुए कार्यों में गिरते-उठते किसी तरह केदारनाथ पहुँचा था। वहीं से देश के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री मनमोहन

शोधार्थी, हिंदी विभाग
भारती विश्वविद्यालय दुर्ग
(छत्तीसगढ़)
मोतीलाल नेहरू नगर, भिलाई
दुर्ग (छत्तीसगढ़) 490020
☎ 9131167166
✉ nishantbaghel14004@gmail.com

जी को आँखों देखा हाल सुनाया था। मैंने स्वयं देखा था किस तरह तबाही हुई, हजारों लोग हताहत हुए। लोग मोबाइल पर फोटो दिखा कर, पोस्ट बनाकर अपने परिजनों को पूछ रहे थे। उनकी बेचैनी और घबराहट व कशमकश को मैं अंदर तक महसूस कर रहा था। इस आपदा में ऐसी कई माताएँ थीं, जिनकी कोख हमेशा के लिए उजड़ गई थी। कई ऐसे बच्चे थे, जो अपने माता-पिता को खुशियाँ देने का सपना देखते थे, लेकिन नियति की मार ने उन्हें असमय बिछोह दे दिया। स्थान-स्थान पर पड़ों लाशें, केदारनाथ मंदिर के बाहर का मंजर- ऐसी कई घटनाएँ थीं, जो मेरे मन-मस्तिष्क में आज भी हर पल गूँजती रहती हैं।”¹

देवभूमि उत्तराखंड में 12 ज्योतिर्लिंगों में से एक प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंग है। केदारनाथ इन्हीं ज्योतिर्लिंगों में से एक है, जो केदारनाथ धाम नाम से प्रसिद्ध है। लाखों श्रद्धालु बड़ी आस और विश्वास से यहाँ प्रभु केदारनाथ के दर्शन के लिए आते हैं। केदारनाथ के अलावा यहाँ और भी प्रसिद्ध मंदिर एवं तीर्थ स्थल हैं। नदियों में प्रसिद्ध सरस्वती नदी, मंदाकनी, अलकनंदा जैसी पावन नदियों के दर्शन व गंगा स्नान कर मनुष्य अपनी अंतात्मा को शुद्ध बनाता है। वर्ष 2013 में उत्तराखंड में आए भीषण जलप्रपात ने हजारों श्रद्धालुओं को अपने कालचक्र में फँसा लिया। बड़ी क्रूरता के साथ हजारों श्रद्धालु काल के मुँह में समा गये। भारी बारिश और आँधी-तूफान के उपरांत सरस्वती और मंदाकनी सहित अन्य नदियों ने काफी उत्तेजित हो पूरे आस-पास के क्षेत्र को अपने प्रकोप से काल की गोद में सुला दिया, जिससे लाखों लोगों के घर उजड़ गए।

“आम जन-जीवन को पूरी तरह झकझोर कर रख देने वाली इस भीषण दैवीय-आपदा में वृद्ध, युवा, स्त्री-पुरुष और बच्चों की मृत्यु के कारुणिक दृश्य डॉ. निशंक ने स्वयं देखे और उनके कवि हृदय ने इस अपार पीड़ा को आत्मसात किया।”²

निशंक की रचनाओं का उद्देश्य आम-आदमी के दुःख-दर्द, पीड़ा तथा उनकी भावनाओं को शब्द रूप देकर समाज में महत्व देना है। निशंक जी की प्रत्येक रचना का समय के अनुसार अपना एक अलग महत्व होता है। यही कारण रहा है कि उनकी रचनाएँ सामाजिक रचना

दायित्व को एक-दूसरे से बाँध कर समाज को आपस में जोड़ने का काम करती हैं।

निशंक जी अपने बाल्यकाल से उत्तराखंड में पले-बढ़े हैं। वे वहीं के निवासी हैं, जिस कारण उन्होंने वहाँ के वातावरण तथा आर्थिक स्थिति तथा बेघर लोगों की समस्याओं को काफी नजदीक से देखा है। गरीब तथा गरीबी का दर्द क्या होता है, वे भली प्रकार समझते व जानते भी हैं। प्रत्येक वर्ष मानसून का कहर तथा लोगों की संघर्ष भरी दास्तान को उन्होंने अपने बचपन से भोगा है। केदारनाथ के साथ-साथ बद्रीनाथ जैसे आस-पास के इलाकों में हुए भूस्खलन से लोगों का आर्थिक, सामाजिक, जीवन अंधकारमय हो गया।

“याद मुझे उस कंटक वन की,
जिससे होकर मैं निकला हूँ।
विपदानल की पीड़ाओं में,
मैं सदा मोम-सा पिछला हूँ।”³

अपने उपन्यास ‘जिंदगी रुकती नहीं’ में साहित्यकार निशंक ने केदारनाथ त्रासदी पर अपनी संवेदना प्रस्तुत की। अपने भावों को आधार बनाकर यह उपन्यास उन लोगों पर समर्पित किया, जिन्होंने केदारनाथ आपदा में अपने परिवार वाले और अपने प्रियजनों को खो देने के बावजूद हार नहीं मानी। ऐसे जीवत व्यक्तियों की जीवटता को यह प्रणाम।

“जहाँ एक ओर पूरे विश्व को झकझोर देने वाली भीषण त्रासदी की सच्चाई से पाठकों को रूबरू कराया है, वहीं दूसरी ओर पर्वतीय समाज की परंपराओं को भी अनूठी अभिव्यक्ति दी है।”⁴

‘फ्लैश बैक’ शैली में रचे गए इस उपन्यास में डॉ. निशंक ने “गरीबी में संघर्ष करते युवा के रूप में विक्रम के पात्र के माध्यान से आज्ञाकारी, मेहनती और माता-पिता के आदर्श पुत्र के गुणों को अलंकृत किया है। साथ ही उनके सपनों को पंख देती उसकी अथक मेहनत की कहानी को भी बहुत ही संजीदगी से प्रस्तुत किया है। अभावों में पले-बढ़े विक्रम की मनोदशा का वर्णन जिस ढंग से डॉ. निशंक ने उपन्यास में किया है, वह अत्यंत कारुणिक और प्रासंगिक है।”⁵



केदारनाथ त्रासदी को साहित्यकार ने दो पात्रों को केंद्र बनाकर पाठकों के सम्मुख रखने का प्रयत्न किया है। वे दो पात्र हैं- विक्रम और लक्ष्मी।

मेहनती, आज्ञाकारी, ईमानदार विक्रम एक गरीब परिवार में पैदा हुआ था। विक्रम की सादगी एवं उसके आचरण को गाँव के सभी लोग खूब पसंद करते थे। विक्रम का पूर्व सहपाठी राघव उससे बहुत ईर्ष्या रखता था। विक्रम को जान से मारने के लिए वह दिन-रात षड्यंत्र रचता, किंतु राघव को ये नहीं पता था कि भीषण जलप्रपात से पूरा क्षेत्र जलमग्न हो जाएगा।

निशंक जी एक शब्द साधक हैं। उन्होंने केदारनाथ घाटी में भीषण जलप्रपात का सजीव चित्रण सहजता के

साथ प्रस्तुत किया है। उनके शब्द व भाषा को पढ़ने से ऐसा लगता है कि उस समय की घटित सारी घटनाएँ हमारे समक्ष घट रही हों। निशंक की शब्द शैली उनके कहानी व उपन्यास में जान डाल देती हैं। उपन्यास में निशंक जी ने विक्रम के द्वारा उपन्यास के तथ्य को प्रस्तुत किया। एक माँ को देखा, जिसने ठंड से बचने के लिए अपने बच्चे को सारे गर्म कपड़े ओढ़ा दिए। अभी भी उसका हाथ बच्चे के शरीर पर था, लेकिन दोनों बेजान। माँ सिर्फ एक सलवार-सूट में और बच्चे के ऊपर उसका उतारा हुआ स्वेटर शॉल भी पड़ा था।

“विक्रम भाव विभोर हो उठा। आँख में आँसू भर आए। कुछ पल वह वहीं बैठ गया, शॉल खींचकर दोनों

को ओढ़ा दिया, एक मौन श्रद्धांजलि की तरह दोस्तों ने उसे हौसला दिया, उसकी आँखें छलछला आईं।”⁶

यह उपन्यास पाठकों को भाव विभोर कर देने वाला है, क्योंकि एक तरफ तो विक्रम की मेहनत और उसकी ईमानदारी की चर्चा पूरे गाँव में फैली है, वहीं दूसरी तरफ आपदा के उपरांत लक्ष्मी नामक युवती के संघर्ष एवं उसके शौर्य एवं बहादुरी को साहित्यकार सलाम कर रहा है। लक्ष्मी अपनी माँ के साथ रसोई में थी। शाम का समय था तो खाने की तैयारी चल रही थी। कुछ समय पश्चात घर के बाहर लोगों की अफरा-तफरी मच गई। बाहर का दृश्य बहुत भयावह था। ऐसा प्रतीत हुआ मानो मंदाकनी नदी हमारे समक्ष प्रकट हो गई हो, तेज बिजली की कड़क, उफनती तेज नदी के पानी का बहाव, ऊपर से विशाल पहाड़ टूट रहे थे। नदी काल बनकर क्रोधित हो उठी और क्रोधित नागिन की भाँति, फूँफकार मार रही थी। देखते-ही-देखते लक्ष्मी की माँ घर के बाहर आई। दलदल में फँस गई। लक्ष्मी चिल्ला-चिल्लाकर कह रही थी, कोई तो मेरी माँ को बचाओ, किंतु सभी को अपनी जान के लाले पड़े थे। लक्ष्मी रोती बिलखती चीख-चीख कर पुकार रही थी माँ...माँ...माँ...।

कोई लक्ष्मी का हाथ खींचकर उसे पंचायत घर में ले आया। वहीं उसकी मुलाकात सुशीला भाभी से हुई, जो लक्ष्मी को समझा कर और अपना दुःख उससे साझा कर उसे सांत्वना दे रही थी।

“सुशीला अपने छह माह के बच्चे को छाती से चिपकाए थी। उसके पति का केदारनाथ में छोटा-सा होटल था। डेढ़ वर्ष पहले ही तो उसका ब्याह हुआ था। घर में सास, ससुर, जेट, जेठानी, देवर, ननद, भरा-पूरा परिवार। ससुर अपने बेटों सहित इस वक्त केदारनाथ में फँसे थे। घर में दो बहुएँ, सास और बच्चे थे। वे सभी यहीं मौजूद थे। ऐसी घोर विपत्ति के समय भी सुशीला का धीरज देख लक्ष्मी में भी धैर्य बँधने लगा।”⁷

जिस रात यह घटना घटी, वह रात काली रात की भाँति प्रतीत हो रहा थी। वह रात ज्यादा लंबी और दर्दमयी थी। पंचायत घर में जितने व्यक्ति थे, किसी ने भी एक क्षण के लिए भी पलक नहीं झपकाया, शिवाय छोटे-छोटे

बच्चों को छोड़कर। अगली सुबह हल्की-सी रोशनी आती प्रतीत हुई तो लक्ष्मी अपनी माँ को खोजने के लिए पंचायत घर से बाहर आ गई। बाहर आकर देखा तो मानो ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जिस तरह फिल्मों में तूफान आने के बाद चारों तरफ विनाश ही विनाश दिखाया जाता है, वह भयावह दृश्य हकीकत ही था और मंदाकिनी नदी फूँकार मार कई फुट ऊपर की ओर बह रही थी। एक पल के लिए लगा था कि पूरी धरती अब जलमग्न हो जाएगी, बड़े-बड़े पेड़-पत्थर, जीव-जानवर, घर-मकान, रास्ते सभी को वह अपने साथ बहा कर ले जा रही थी। उस स्थान पर अगर कुछ था तो वह ढेर सारा मलबा। जिधर देखो – उधर प्रलय-ही-प्रलय दिख रहा था। बड़े-बड़े चट्टानों का नामो-निशान ही नहीं था, पहाड़ दरक गए थे, कुछ घर मानो खिलौनों की भाँति टूटकर आधे जमीन में धँसे तो आधे झूले की भाँति हवा में लटक रहे थे।

इन सबको देखकर मानो लक्ष्मी को साँप सूँघ गया हो। एक पल के लिए उसकी साँसें रुक गईं। जैसे-तैसे हिम्मत जुटाकर अपने आप को सांत्वना देते हुए आगे बढ़कर उस जगह पर जाने की कोशिश की, जिस जगह रात को उसकी माँ से उसका हाथ छूट गया था। बहुत कठिन एवं दर्दभरा नजारा था।

कल तक तो चारों तरफ हरियाली, शांत माहौल और हरे-भरे खेतों की फसलें आपस में गुनगुना रही थीं। पक्षियों की चहचहाहट से पूरे उत्तराखंड स्वर्ग की भाँति लग रहा था और मंदाकिनी का शीतल जल प्रवाह मानो उस पर चार चाँद लगा रहा था। गाँव कितना खुशहाल और चारों तरफ-चहल पहल भी थी। किंतु आज गाँव शमशान में तब्दील हो चुका था। ऐसा लग रहा था की यहाँ पर कभी गाँव या बस्ती नहीं थी। गाँव का नामो-निशान मिट गया था। जगह-जगह पत्थरों के बहुत बड़े-बड़े बोल्टर और पेड़ों के टूँठ और मलबा चारों तरफ फैला हुआ था।

लक्ष्मी किसी तरह हिम्मत जुटाकर अपनी माँ को ढूँढ़ने उस स्थान पर गई और पगडंडी पर उतर कर माँ को ढूँढ़ने का प्रयास किया। लक्ष्मी की बहादुरी के आगे सब पीछे हट गए। प्रकृति की इस विनाश लीला को देखकर

लगने लगा था कि अब जीवन में कोई भी अंश शेष नहीं। लेकिन लक्ष्मी यह मानने को तैयार ही नहीं थी कि उसकी माँ का जीवित रहना अब संभव नहीं था। लक्ष्मी बड़ी आस और विश्वास के साथ माँ को पुकारने लगी। हो सकता है, मेरी माँ बेहोशी की हालत में कहीं फँसी हो। लक्ष्मी अपने आप को मलबे से बचाकर अपनी माँ को ढूँढ़ रही थी। किंतु कुछ दूर जाने के बाद अचानक उसका पैर मलबे में जा फँसा। जैसे ही वह अपना पैर बाहर की तरफ निकालने का प्रयास करती, वह नीचे की तरफ धँसता चला जा रहा था। सामने से एक बड़ा-सा पत्थर ऊपर से नीचे की तरफ उस पर गिरने ही वाला था... किसी तरह उसने बचने की कोशिश की, किंतु वह पत्थर उसके पैर पर आ गिरा। दर्द से बिलखती लक्ष्मी जोर-जोर से चिल्ला रही थी... अपना होश खो बैठी।

“केदारनाथ महाआपदा में बच निकले चंद भाग्यशालियों में एक लक्ष्मी भी थी। उसे हेलिकॉप्टर से रेस्क्यू करके लाया गया था अस्पताल में। अब तक उसका कोई अता-पता नहीं था। गाँव के चाचा कमल ने ही उसके घर परिवार की जानकारी दी थी। लक्ष्मी द्वारा पहचाने जाने पर नर्सों ने लक्ष्मी के बारे में कमल से पूरी जानकारी ली – आप पहचानते हैं, इन्हें?”⁸

लक्ष्मी बेहोश थी। उसे होश में लाने के लिए नर्सों ने आवाज लगाई कि देखो लक्ष्मी तुम्हारी माँ आ गई। बड़ी मशक्कत के बाद लक्ष्मी की आँखें खुलीं और अंत में इधर-उधर देखने लग गई। माँ? कहाँ है, मेरी माँ... फफकती लक्ष्मी की आँखों से आँसुओं की वर्षा होने लगी और फिर डॉक्टर व नर्सों ने राहत की साँस ली। इस आपदा के प्रकोप से कई लोग घायल अवस्था में अपने परिजनों को ढूँढ़ने निकले। अब भारत सरकार से भी पीड़ित और बेघर लोगों के लिए राहत सामग्री आनी शुरू हो गई। यह घटना देश तथा विदेश में आग की तरह फैल गई और विदेशों व ट्रस्टों, संस्थाओं से ट्रक भर-भर के लोगों के लिए राहत सामग्री भेजी जाने लगी। इनमें खाने-पीने से लेकर, चप्पल, टॉर्च, स्टोव, कपड़े, फल, सूखे मेवे, बिस्कुट, पीने का पानी इत्यादि सामग्री शामिल थी।

इस मुश्किल की घड़ी में हमारे देश के संत, महात्माओं ने भी अपना सहयोग राशि पीड़ितों को भेंट कर देश में एकता और भाईचारे की भावना को जगाए रखा। सिक्ख भाइयों ने जगह-जगह पर लंगर की व्यवस्था कर पीड़ितों की भरपूर मदद की।

राष्ट्रीय सेवा की भावना एक अनूठी चीज होती है, जहाँ हमारे देश के लोग दूसरे व्यक्ति को तकलीफ में देखकर मदद के लिए दौड़े चले आते हैं और अपना भरपूर समय व सहयोग देकर राष्ट्र की छवि को पूरा सम्मान देकर देश का नाम रौशन करते हैं। राष्ट्र एकता को बनाए रखने व आपदा से पीड़ित व्यक्ति के लिए निशंक जी देशवासियों से लिए आहवान करते हैं –

“विपदा में तुम डिगो नहीं

तूफानों में झुको नहीं

गूँज उठो तुम,

भारत की अब दिशा-दिशा में जाओ,

देश हमारा है विपदा में साथी तुम उठ जाओ।”⁹

हमारी संस्कृति ने हमें सिखाया है कि यह छटपटाहट अपने और अपनों के लिए ही नहीं, बल्कि सबके के लिए होनी चाहिए। हम सबको मिलकर यहाँ आपदा पीड़ितों की मदद करनी है। इसलिए नकारात्मक नहीं, संवेदनशील बनो। नकारात्मकता विध्वंस का प्रतीक है और संवेदनशील होना सृजन का। प्रकृति इसी संवेदना और सृजन से चलती है, नकारात्मक सोच से जिंदगी रुक जाती है और जिजीविषा एवं संवेदनशीलता से जिंदगी कभी रुकती नहीं, चलती रहती है, बढ़ती रहती है।¹⁰

निष्कर्ष :

इस त्रासदी ने पूरे विश्व को झकझोर कर दिया। डॉ. निशंक ने पाठकों को बताया कि आपदा में कितने घर उजड़ गए, परिवार बिखर गए, लाखों श्रद्धालु ईश्वर के श्री चरणों में हमेशा के लिए समाहित हो गए। केदारनाथ घाटी में आई इस आपदा ने पूरे क्षेत्र को तबाह कर दिया परंतु महाप्रभु केदारनाथ मंदिर का बाल भी बाँका नहीं हुआ।

‘जिंदगी रुकती नहीं’ उपन्यास के पात्रों द्वारा निशंक ने हमारी सांस्कृतिक धरोहर को बनाए रखा तथा बताया

कि जीवन में कितने भी संकट क्यों न आएँ, लक्ष्मी की तरह उनका मुकाबला करने हमें आना चाहिए। नायिका लक्ष्मी में मर्यादा, शालीनता व कर्मशीलता को बनाए रखा। लक्ष्मी अपने आत्मविश्वास के बल पर लोगों की सहानुभूति व सहयोग की प्रेरणा भी बनी।

इस त्रासदी से लोगों के हृदय तार-तार हो गए। परंतु हमारे देश में सदियों से चली आ रही विश्व कल्याण

विश्व बंधुत्व की भावना की ज्योति को कभी बुझने नहीं दिया। चाहे कितनी भी विपत्ति क्यों न आ जाए हम एक हैं। सदा-सर्वदा एक-दूसरे के कल्याण व हित की भावना सदैव अपने हृदय में जगाए रखेंगे।

अंततः हम कह सकते हैं कि निशंक जी आम जनता के प्रसिद्ध साहित्यकार हैं, जो अपनी कृतियों से लोगों की तकलीफ को पाठकों को अपनी सरल भाषा में महसूस करवाते हैं। □

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक, 'जिंदगी रुकती नहीं', वाणी प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2021, अपनी बात, पृ. नं.7-8
2. डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक, 'जिंदगी रुकती नहीं', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2021, पृ. नं. 1
3. डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा अरुण, डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक का साहित्य सृजन मनन एवं मूल्यांकन, सूरज सिंह चौहान, अनंग प्रकाशन (उ.प्र.), प्रथम संस्करण 2021, पृ.नं. 383
4. डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक, 'जिंदगी रुकती नहीं', डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा अरुण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, केदारनाथ त्रासदी का साक्षात्कार कराती डॉ. निशंक की बेजोड़ कृति, पृ.नं. 12.
5. डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक, 'जिंदगी रुकती नहीं', डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा अरुण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, केदारनाथ त्रासदी का साक्षात्कार कराती, डॉ. निशंक की बेजोड़ कृति, पृ.नं. 12.
6. डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक, 'जिंदगी रुकती नहीं', डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा अरुण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, केदारनाथ त्रासदी का साक्षात्कार कराती, डॉ. निशंक की बेजोड़ कृति, पृ.नं. 13.
7. डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक, 'जिंदगी रुकती नहीं', डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा अरुण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, केदारनाथ त्रासदी का साक्षात्कार कराती, डॉ. निशंक की बेजोड़ कृति, पृ.नं. 25.
8. डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक, 'जिंदगी रुकती नहीं', डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा अरुण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, केदारनाथ त्रासदी का साक्षात्कार कराती, डॉ. निशंक की बेजोड़ कृति, पृ.नं. 53.
9. डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा अरुण, डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक का साहित्य सृजन मनन एवं मूल्यांकन भाग-2, डॉ. अमरकांत कुमार, अनंग प्रकाशन (उ.प्र.), प्रथम संस्करण 2021, पृ.नं. 143
10. डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक, 'जिंदगी रुकती नहीं', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2021, पृ.नं. 166

हिंदी का राष्ट्रीय एवं वैश्विक परिदृश्य



जितेंद्र कुमार यादव

शोध सार :

स्वाधीनता आंदोलन के दौरान हिंदी ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। देश के विभिन्न भाषाओं और बोलियों के विद्वानों ने हिंदी को अपनी लेखनी का माध्यम बनाया। राजभाषा, संपर्क भाषा, मनोरंजन, ज्ञान-विज्ञान, उद्योग और व्यापार की भाषा के साथ-साथ हिंदी सांस्कृतिक भाषा भी है। हिंदी ने अपने विकास क्रम में भारतीय कला एवं संस्कृति के विकास और प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। हिंदी वर्तमान समय में विश्व की एक महत्वपूर्ण भाषा है। हिंदी विश्व के अनेक देशों में तेजी से प्रसार हुआ है। हाल ही में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने हिंदी को आधिकारिक भाषा के रूप में स्वीकार किया है। यह प्रमाण है कि हिंदी के वैश्विक भाषा बनने के सुनहरे द्वार खुले हैं। अब हिंदी को वैश्विक भाषा बनने से कोई रोक नहीं सकता है। आज हिंदी के सामने कई चुनौतियाँ भी हैं। वैश्विकरण के दौर में हिंदी की अन्य भाषाओं से प्रतिस्पर्धा है। उसे सूचना प्रौद्योगिकी और ज्ञान-विज्ञान के विविध विषयों की भाषायी क्षमता का विकास करना होगा। आधुनिक भारतीय भाषाओं की सहभागिनी बनकर ही हिंदी राष्ट्रभाषा के रूप में देश की उन्नति में अपना अहम योगदान कर सकती है।

बीज शब्द :

औपनिवेशिक दासता, भाषायी विविधता, राष्ट्र-राज्य, लोकभाषा, संपर्क भाषा, राजभाषा, राष्ट्रभाषा, मातृभाषा, संस्कृति, प्रवासी भारतीय, सामासिक संस्कृति, भाषानीति, आधुनिक भारतीय भाषाएँ।

मूल आलेख :

स्वाधीनता आंदोलन के दौरान औपनिवेशिक दासता से मुक्ति के साथ-साथ भाषा का सवाल भी महत्वपूर्ण था। स्वाधीन भारत में राष्ट्र की आशाओं और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति किस भाषा में होगी- यह राष्ट्र निर्माताओं के सामने एक प्रमुख समस्या थी। भारत जैसे बहुभाषी राष्ट्र में इस कार्य के लिए किसी एक भाषा को सुनिश्चित करना एक 'टेढ़ी खीर' से कम नहीं था। परंतु भारत में भारतीय भाषाओं और हिंदी को कोई राजकीय महत्व नहीं दिया गया, वह जनसामान्य की ही भाषा थी। मुगल शासन के दौरान फारसी राजकाज की भाषा थी तो अंग्रेजों ने अंग्रेजी को शासन की भाषा बनाया। भारत जैसे विशाल भाषायी विविधता वाले देश में एक ऐसी भाषा की जरूरत थी, जो नए युग में प्रवेश कर रहे भारत राष्ट्र-राज्य

पोस्ट डॉक्टोरल फेलो (ICSSR)
भारतीय भाषा केंद्र
जेएनयू, नई दिल्ली-110067
☎ 9968124622
✉ jite.jnu@gmail.com

को राजनैतिक एकता के साथ सांस्कृतिक एकता के सूत्र में भी बाँधकर रख सके। राष्ट्र निर्माताओं ने यह कार्य हिंदी को सौंपा। आजाद भारत में हिंदी ने देश के विभिन्न प्रदेशों में अपना तेजी से प्रसार किया। वह देश की राष्ट्रीय अस्मिता और एकता-अखंडता की प्रतीक बन गई।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 में हिंदी को राजभाषा का दर्जा प्राप्त है। वह संघ और राज्यों के बीच भाषायी अंतरसंबंध स्थापित करने का कार्य करती है। हमारे राष्ट्र निर्माताओं ने आधुनिक भारतीय भाषाओं में से हिंदी को राजभाषा के लिए चुना। सर्वप्रथम राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने 1917 में गुजरात के एक अधिवेशन में कहा कि *“हिंदी ही एकमात्र ऐसी भाषा है, जो राष्ट्रभाषा हो सकती है, क्योंकि इसके बोलने वालों की संख्या सर्वाधिक है। इसमें आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक गतिविधियों को अभिव्यक्ति करने की शक्ति भी है।”*¹ राजभाषा के रूप में हिंदी ने लगातार अपना विकास किया। एक भाषा के रूप में हिंदी (खड़ी बोली) बहुत ही कम उम्र की है। नवजागरण काल (1850 के बाद) से ही हिंदी ने उत्तर भारत के ‘पब्लिक स्फीयर’ में अपनी जगह बनाई। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान उसने देश को एक कड़ी में जोड़ने में भूमिका अदा की। देश की विभिन्न भाषाओं और बोलियों के विद्वानों ने हिंदी को अपनी लेखनी का माध्यम बनाया। हिंदी के प्रति भारतीय जनता का प्यार और विश्वास बढ़ता गया। इसका उदाहरण है कि *‘2001 की जनगणना में 40 करोड़ भारतीयों ने हिंदी को मातृभाषा के रूप में स्वीकार किया। हिंदी लगभग 41 प्रतिशत से ज्यादा लोगों के दैनिक प्रयोग की भाषा है। आज 60 प्रतिशत शहरी लोग भी सोशल मीडिया पर हिंदी का प्रयोग करते हैं।’*² हिंदी आम लोगों के बीच संपर्क भाषा के रूप में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है। हिंदी भाषी राज्यों के साथ-साथ गैर हिंदी भाषी भारतीय भी हिंदी को संपर्क भाषा एवं अन्य प्रयोजनों के लिए अपना रहे हैं। हिंदी ने उत्तर से लेकर दक्षिण तक और पूर्व से लेकर पश्चिम तक संपूर्ण भारतीय समाज को एकता के सूत्र में बांधने का कार्य किया है। हिंदी की राष्ट्रव्यापी स्वीकार्यता ने ही उसे विश्व की तीसरी सबसे

ज्यादा बोले जाने वाली भाषा के रूप में स्थापित किया है।

हिंदी, राजभाषा, संपर्क भाषा, मनोरंजन, ज्ञान-विज्ञान, उद्योग और व्यापार की भाषा के साथ-साथ संस्कृति की भी प्रमुख भाषा है। प्राचीन काल से भारतीय संस्कृति संस्कृत भाषा में संरक्षित रही है। आज भी भारतीय संस्कृति के मूल तत्व को जानने के लिए संस्कृत भाषा की जानकारी आवश्यक है। संस्कृत जन सामान्य के दैनिक प्रयोग के अभाव में आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से कट जाने के कारण दुरुह होती चली गई। कालांतर में हिंदी जनसामान्य की भाषा के साथ साथ ज्ञान-विज्ञान, साहित्य-संस्कृति की भाषा बनी। आधुनिक काल में संस्कृत साहित्य में संरक्षित भारतीय ज्ञान संपदा हिंदी भाषा के माध्यम से ही आमजन तक पहुँचा। वेद, उपनिषद, पुराण आदि संस्कृत ग्रंथों के मर्म को सामान्यजन हिंदी अनुवाद के माध्यम से ही समझता है। रामायण को गोस्वामी तुलसीदास ने लोक भाषा में लिखकर राम चरित को भारतीय जनता के हृदय का हार बना दिया। वर्तमान समय में भी भारतीय संस्कृति हिंदी भाषा के माध्यम से प्रचारित और प्रसारित हो रही है। *“भारत प्रारंभ से ही कला एवं संस्कृति की दृष्टि से बहुत ही समृद्ध राष्ट्र रहा है। भारतीय कला एवं संस्कृति की विकास यात्रा हजारों वर्षों की विरासत सँजोए आज भी अनवरत जारी है। प्राचीन समय में हमारे यहाँ कला, संस्कृति एवं भारतीय ज्ञान परंपरा के दस्तावेजीकरण का कार्य प्राच्य, पाली, संस्कृत आदि भाषाओं में हुआ था। इस परंपरा को हिंदी ने काफी आगे बढ़ाया। किसी भी देश की कला एवं संस्कृति का वहाँ की भाषा से गहरा रिश्ता होता है। हिंदी ने अपने विकास क्रम में भारतीय कला एवं संस्कृति के विकास और प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया।”*³ हिंदी वर्तमान समय में विश्व की एक महत्वपूर्ण भाषा है। हिंदी के भारत की राजभाषा होने के कारण विश्व के अनेक देशों में भी इसका तेजी से प्रसार हुआ है। हाल ही में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने हिंदी को आधिकारिक भाषा के रूप में स्वीकार किया है। यह इस बात का भी प्रमाण है कि हिंदी के वैश्विक भाषा बनने के सुनहरे द्वार खुले हैं। अब हिंदी को वैश्विक भाषा बनने से कोई नहीं रोक सकता है।

“आज अच्छी स्थिति यह है कि शैक्षणिक हिंदी का वास्तविक अंतर्राष्ट्रीय प्रसार यूरोप, अमेरिका और एशिया के अनेक देशों में भी हो रहा है। पश्चिमी और पूर्वी यूरोप में मिलाकर कम-से-कम एक दर्जन देशों में तीन दर्जन विश्वविद्यालय और संस्थानों में हिंदी शिक्षण की व्यवस्था है। कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका में अनेक विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जाती है। अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन और रूसी में हिंदी की अनेक कृतियों के अनुवाद हुए हैं। इन भाषाओं में हिंदी के द्विभाषी कोश, व्याकरण, इतिहास और समीक्षा संबंधी महत्वपूर्ण शोधपरक और परिचयात्मक प्रकाशन भी हुए हैं। प्राच्य शिक्षा और सम्मेलनों में हिंदी को स्थान मिलने लगा है।”⁴ भूमंडलीकरण के बाद राष्ट्र-राज्य की सीमाएँ शिथिल हो गईं। भूमंडलीकरण की इस परिघटना ने प्रत्येक राष्ट्र में प्रवासी नागरिकों की एक नई अस्मिता को जन्म दिया। प्रवासी नागरिक अपने जीवन स्तर में बदलाव के लिए अपने समाज और राष्ट्र को छोड़कर किसी अन्य राष्ट्र का सदस्य हो जाता है। परिवर्तन के इस क्रम में वह अपने सांस्कृतिक मूल्यों को सँजोकर रखना नहीं भूलता। “हमने भी देखा कि विदेशियों के शासन के दौरान हजारों भारतीयों को बंधक अथवा मजदूर बनाकर विभिन्न देशों में ले जाया गया, परंतु आज हम देखते हैं कि उन देशों में भी भारतीय संस्कृति, भारतीय भाषा, भारतीय परंपरा आगे बढ़ रही है। चाहे वह मॉरिसस, ट्रिनिदाद टोबैगो, सूरीनाम, फिजी, घाना, दक्षिण अफ्रीका अथवा इंग्लैंड या अन्य देश हों, हर जगह भारतीय संस्कृति अपनी जड़ें बनाकर विकसित हो रही है।”⁵ औपनिवेशिक काल में विभिन्न देशों में गिरमिटिया मजदूर बनकर बड़ी संख्या में गए भारतीय आज भी अपने-अपने देश में भारतीय संस्कृति और सभ्यता की लौ को जलाए हुए हैं। वे आज भी बड़ी श्रद्धा से गीता का पाठ करते हैं, तुलसी की पूजा करते हैं और विभिन्न व्रत-उपवास का पालन करते हैं। वैश्विक स्तर पर “वर्तमान में भारत सरकार द्वारा हिंदी के विकास के क्षेत्र में सार्थक एवं प्रभावी प्रयास किए गए हैं। विश्व हिंदी सम्मेलनों द्वारा लिए गए निर्णयों को क्रियान्वित किया गया है। राष्ट्रीय स्तर पर जन जागरूकता एवं जन सहभागिता फैलाई गई

है। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय गैर सरकारी संगठनों एवं अन्य संस्थाओं की भूमिका भी हिंदी के विकास में उल्लेखनीय है। भारत सरकार द्वारा द्विपक्षीय एवं बहुपक्षीय संस्कृति विनिमय संधियाँ अनिवार्य रूप से हिंदी भाषा में भी की जाती हैं। उदारीकरण और वैश्वीकरण, भारत की आर्थिक संपन्नता एवं प्रौद्योगिकी क्षमता, विश्व में बढ़ते कुशल श्रमिकों की माँग, भारत में विश्व के सर्वाधिक युवा बल का होना, हिंदी के क्षेत्र में सूचना एवं प्रौद्योगिकी के उन्नयन और विकास, प्रवासी भारतीय दिवस की भी अहम भूमिका है। प्रवासी भारतीय दिवस के माध्यम से विश्व के तमाम देशों से प्रवासी भारतीय नागरिक एकत्रित होते हैं तथा अपनी भाषा में अपनी अभिव्यक्ति को प्रकट कर हिंदी को बढ़ावा देते हैं।”⁶ भारतीय त्योहारों को यूरोप और अमेरिका में भी प्रवासी भारतीयों द्वारा इकट्ठा होकर धूमधाम से मनाया जाता है। होली, दीपावली और छठ पूजा ने वैश्विक रूप ले लिया है। इन सांस्कृतिक उत्सवों में एकत्र प्रवासी भारतीय बहुतायत हिंदी का ही प्रयोग करते हैं। हिंदी सिनेमा और हिंदी गानों की लोकप्रियता पूरी दुनिया में पहले से ही है।

योग और आयुर्वेद ने पूरी दुनिया को एक नई जीवन पद्धति सिखाई है। योग के प्रति नई पीढ़ी का आकर्षण देखा जा सकता है। हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत की भी धूम पूरी दुनिया में है। भारतीय कलाकार दुनिया के विभिन्न देशों में अपनी कलाओं का प्रदर्शन कर रहे हैं। भारतीय संस्कृति के विविध पक्षों को प्रचारित और प्रसारित करने में हिंदी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। भारतीय समाज और संस्कृति को जानने के लिए हिंदी को जानना अति आवश्यक है। इसीलिए दुनिया के अधिकांश देश अपने यहां हिंदी भाषा शिक्षण के केंद्र खोले हैं। भारत में भी प्रतिवर्ष लाखों युवा हिंदी सीखने के लिए आते हैं। हिंदी वैश्विक स्तर पर व्यापार और मनोरंजन की एक महत्वपूर्ण भाषा है। दुनिया के तमाम देशों ने हिंदी के इस महत्व को समझा है।

“हिंदी एक बहुत ही सरल और सहज भाषा है। यह सरलता ही हिंदी की आत्मा है। भाषायी रूप में हिंदी अपने विराट व्यक्तित्व को समेटे हुए है।”⁷ इसमें

विद्यापति के गीत और मैथिली संस्कृति, अवध की संस्कृति, श्रीराम की मर्यादा और तुलसीदास का काव्य मर्म, गोपियों के साथ कृष्ण की लीला और सूर का वत्सल, मीरा की अनन्य भक्ति के साथ-साथ भारतीय जीवन मूल्य और संस्कृति का मर्म है। हिंदी भाषा न केवल उत्तर भारत, बल्कि पूरे भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है। संस्कृत और भारतीय भाषाओं से प्राण वायु लेने वाली हिंदी आधुनिक भारतीय भाषाओं से भी नाभि-नाल बद्ध है। यह भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति की सहज भाषा है।

हिंदी को संस्कृत का अनुगामी वाले विचार ने हिंदी के प्रचार-प्रसार में बाधा पैदा की है। हिंदी की अपनी भी प्रकृति है। हिंदी की आत्मा को समझे बिना हिंदी का व्याकरण और शब्दकोश गढ़ने से एक प्रकार की जटिलता ही पैदा होती है। हिंदी एक जनभाषा है, सरलता ही उसकी शक्ति है। उसकी इसी ताकत ने उसे राष्ट्रीय भाषा की मान्यता प्रदान की।

आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और तकनीकी की पाश्चात्य देशों पर निर्भरता के कारण इससे जुड़े शब्दों का अभाव हिंदी में दिखाई देता है। हिंदी तकनीकी और वैज्ञानिक शब्दावली के लिए अन्य भाषाओं की तरफ देखती है। हिंदी अपने शब्दकोश, व्याकरण और काव्यशस्त्रीय नियमों के लिए संस्कृत की मुखापेक्षी रही है। लेकिन इसका परिणाम हुआ कि वह लोक सामान्य के लिए क्लिष्ट

होती गई। समाज विज्ञान, विज्ञान और तकनीकी की नवरचित संस्कृतनिष्ठ शब्दावलियाँ सामान्य बोलचाल में स्वीकृत नहीं हो पा रही हैं। मसलन कंप्यूटर को संगणक, हवाई अड्डा के बदले विमानपत्तनम, एजेंसी का अभिकरण, ट्रांसफर का स्थानांतरण, रेल का लौह पथ गामिनी जैसे शब्द हिंदी को संकुचित ही करते हैं। शब्दकोश को गढ़ने की प्रवृत्ति के कारण हिंदी में अनुवाद भी एक विशेष प्रकार की कृत्रिमता से लदे रहते हैं।

संविधान निर्माताओं ने हिंदी के संबंध में अनुच्छेद 351 में स्पष्ट लिखा है कि “यह संघ का काम होगा कि वह हिंदी भाषा के प्रसार को बढ़ावा दे और इसे इस प्रकार विकसित करे ताकि यह भारत के सामासिक संस्कृति की सारी बातों को व्यक्त कर सके, और इसकी समृद्धि को इसके ठेठ हिंदी के ठाठ से छेड़छाँ किए बिना हिंदुस्तानी और आठवीं अनुसूची में दी गई अन्य भारतीय भाषाओं के रूपों, शैलियों और पदों को इसमें आत्मसात कराते हुए तय करे।”⁸ संस्कृतनिष्ठता के आग्रह के कारण हिंदी अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं से जुड़ नहीं पाई। पंजाबी निष्ठ हिंदी, गुजराती निष्ठ हिंदी, बंगाली-माराठी निष्ठ हिंदी, असमिया-उड़िया निष्ठ हिंदी से ही राष्ट्रभाषा के रास्ते खुलते हैं। हिंदी को आधुनिक भारतीय भाषाओं मलयालम, तमिल, तेलगू, कन्नड़ आदि भाषाओं से भी प्रभावित होना चाहिए था, जो नहीं हो पाया। हिंदी के विकास में इस प्रकार की भाषानीति ने बहुत ही नुकसान पहुँचाया है।



महात्मा गांधी इन्हीं अर्थों में हिंदी को हिंदुस्तानी कहते थे। अर्थात् हिंदुस्तान के लोग जिस बोल चाल की भाषा का इस्तेमाल करते हैं, वही उनकी हिंदी थी। यह हिंदी अपने ठेठपन के साथ विभिन्न देशज, विदेशज भाषाओं की खुशबू लिए हुए थी। वह अरबी-फारसी के प्रचलित शब्दों को भी अपने अंदर समेटे हुए थी। राष्ट्रभाषा के सवाल पर पुरुषोत्तमदास टंडन से एक पत्र व्यवहार में उन्होंने लिखा कि- “सम्मेलन की दृष्टि से हिंदी ही राष्ट्रभाषा हो सकती है, जिसमें नागरी लिपि को ही राष्ट्रीय स्थान दिया जाता है, जब कि मेरी दृष्टि में नागरी और उर्दू लिपि को यह स्थान दिया जाता है और उस भाषा को जो न फारसीमयी है, न संस्कृतमयी।”⁹ भाषायी स्तर पर गांधी जी का यह विचार हिंदी को विस्तृत फलक प्रदान कर हिंदी को जन भाषा के पद पर आसीन करता है। अर्थात् ऐसी हिंदी, जो पंडितों के हाथ चढ़कर न संस्कृतमयी हो जाय और न ही मौलवियों के साँचे में ढल कर फारसीमयी।

निष्कर्ष :

आज हिंदी के सामने कई चुनौतियाँ हैं। वैश्वीकरण के दौर में हिंदी को अन्य भाषाओं से प्रतिस्पर्द्धा है। उसे सूचना प्रौद्योगिकी और तकनीकी की नई भाषायी क्षमता का विकास करना होगा। हिंदी को अकादमिक जगत में प्रतिष्ठा और लोकप्रियता भी एक बहुत प्रमुख मुद्दा है। देश के युवाओं और दुनिया के अध्येयताओं को अपनी तरफ आकर्षित करने की क्षमता विकसित करनी होगी। आज भी अंग्रेजी ही उच्च शिक्षा का माध्यम बनी हुई। इसके कारण क्षेत्रीय विश्वविद्यालयों और उनके अध्येयताओं के साथ दोयम दर्जे का वर्ताव देखने को मिलता है। औपनिवेशिक मानसिकता के कारण हम आज भी अंग्रेजी वर्चस्व से दबे हुए हैं। दुनिया के अधिकांश देशों ने अपनी भाषाओं में ही अपना विकास किया है। यूरोप के देश भी भाषा के मामले में हमसे कम ही अंग्रेजिदाँ हैं। वे भी जर्मन, स्पेनिश, फ्रेंच आदि अपनी भाषाओं को प्रमुखता देते हैं। चीन की तो पूरी अर्थव्यवस्था ही अपनी भाषा के दम पर टीकी हुई है। दुनिया के ये तमाम उदाहरण हिंदी के दावे को मजबूत करते हैं। □

संदर्भ सूची :

1. सेनगुप्ता, पापिया, ईपीडब्ल्यू, भारत के लिए साझा भाषा पर गांधीजी के विचारों की जांच, 9 नवंबर, 2019
2. <https://indianexpress.com/article/india/more-than-19500-mother-tongues-spoken-in-india-census-5241056/>
3. चौबे, संतोष, भारतीय कला और संस्कृति के प्रसार में हिंदी की भूमिका, आउटलुक, 28 अक्टूबर, 2022
4. राव, के. श्रीनिवास राव, भारतीय साहित्य और संस्कृति, भावना प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023, पृ. 121
5. पाण्डेय, डॉ. विजय कुमार, भारतीय संस्कृति : इतिहास, वर्तमान एवं भविष्य, यूनियन सृजन, भारतीय संस्कृति एवं परंपरा विशेषांक, अप्रैल-जून, 2019, पृ. 11
6. कुमार, राजेश, <https://ravivardelhi.com/hindi-and-indian-culture/>
7. शर्मा, देवेन्द्रनाथ, राष्ट्रभाषा हिंदी, समस्याएँ और समाधान, लोकभारती, नई दिल्ली, 2017, पृ. 22
8. भारतीय संविधान, भारत सरकार विधि एवं न्याय विभाग, 2011, पृ. 178
9. राजभाषा का प्रश्न, गांधी जी और टंडन का पत्र व्यवहार, संकल्पना, राजभाषा अनुभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, अंक-2019, पृ. 20

स्वामी विवेकानंद : भारत में नारीवादी विचार के अग्रदूत



डॉ. ब्रजेश कुमार प्रसाद

शोध-संक्षेप :

स्वामी विवेकानंद का नाम भारतीय धार्मिक और सामाजिक सुधार के अग्रदूतों में शुमार है, लेकिन उनकी नारीवादी दृष्टि पर कम ही चर्चा होती है। विवेकानंद ने भारतीय महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया और उनके विचार आज भी प्रासंगिक हैं। उन्होंने महिलाओं की शिक्षा, स्वतंत्रता, और आत्मनिर्भरता पर जोर दिया, जो उस समय के समाज में क्रांतिकारी विचार थे। विवेकानंद का मानना था कि किसी भी समाज की प्रगति महिलाओं की स्थिति पर निर्भर करती है। उन्होंने भारतीय संस्कृति में महिलाओं की गरिमा और सम्मान को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया। इस शोध पत्र का उद्देश्य स्वामी विवेकानंद के नारीवादी विचारों का अध्ययन करना और यह दिखाना है कि वे कैसे भारतीय समाज में महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए एक प्रेरणास्रोत बने। विवेकानंद की शिक्षाओं ने न केवल महिलाओं को उनके अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक किया, बल्कि समाज को भी यह समझने के लिए प्रेरित किया कि महिलाओं का सशक्तिकरण समाज की समग्र प्रगति के लिए आवश्यक है। उनके विचार आज भी महिलाओं के अधिकारों और समानता की दिशा में महत्वपूर्ण प्रेरणा का स्रोत हैं।

बीज-शब्द :

स्वामी विवेकानंद, नारीवाद, भारतीय समाज, महिलाओं का सशक्तिकरण, शिक्षा, सामाजिक सुधार, धार्मिक जागरण, महिला अधिकार, आत्मनिर्भरता, समानता, भारतीय संस्कृति, सामाजिक न्याय, महिला शिक्षा, महिला स्वतंत्रता, प्रेरणास्रोत, नारीवादी आंदोलन, महिला गरिमा, समाज सुधारक, 19वीं शताब्दी, राष्ट्र निर्माण।

प्रस्तावना :

स्वामी विवेकानंद का नाम भारतीय इतिहास में एक महान धार्मिक नेता, समाज सुधारक, और प्रेरणादायक वक्ता के रूप में प्रमुखता से उभरता है। उनके विचार और कार्य भारतीय समाज को गहराई से प्रभावित करने वाले साबित हुए हैं। विशेष रूप से उनका नारीवादी दृष्टिकोण अद्वितीय और प्रेरणादायक रहा है, जिसने भारतीय महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया।

19वीं शताब्दी का भारतीय समाज सामाजिक और धार्मिक बंधनों से बँधा हुआ था, जिसमें महिलाओं की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। उस समय में महिलाओं की शिक्षा और सामाजिक स्वतंत्रता की बातें करना भी एक चुनौतीपूर्ण कार्य था। ऐसे समय में स्वामी विवेकानंद ने महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए अपने

सहायक प्रोफेसर, इतिहास विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय,
वाराणसी, उत्तर प्रदेश - 221005
☎ 9559561761
✉ brajeshk.prasadv@bhu.ac.in

विचार प्रस्तुत किए, जो न केवल क्रांतिकारी थे, बल्कि भविष्य के लिए मार्गदर्शक भी बने।

स्वामी विवेकानंद का मानना था कि समाज की वास्तविक प्रगति तभी संभव है, जब महिलाओं को समान अधिकार और सम्मान प्राप्त हो। उन्होंने महिलाओं की शिक्षा, आत्मनिर्भरता, और सामाजिक स्वतंत्रता पर जोर दिया। उनके विचारों ने महिलाओं को उनके अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति जागरूक किया और समाज को यह समझने के लिए प्रेरित किया कि महिलाओं का सशक्तिकरण समाज की समग्र प्रगति के लिए आवश्यक है।

इस शोध पत्र का उद्देश्य स्वामी विवेकानंद के नारीवादी विचारों का विश्लेषण करना है। इसमें विवेकानंद के जीवन, उनके विचारों और उनके द्वारा किए गए कार्यों का अध्ययन किया जाएगा, जिससे यह समझा जा सके कि उन्होंने भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए कैसे महत्वपूर्ण योगदान दिया। साथ ही, उनके विचारों की वर्तमान समय में प्रासंगिकता और प्रभाव का भी विश्लेषण किया जाएगा। स्वामी विवेकानंद के नारीवादी दृष्टिकोण ने भारतीय महिलाओं को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और आज भी उनके विचार समाज को प्रेरणा देने का कार्य कर रहे हैं।

हम लोग इतिहास के उस मोड़ पर हैं, जहाँ कोरोना वायरस, जातीय युद्ध, परमाणु संकट तथा विभेदकारी आर्थिक व्यवस्था की छाया मँडरा रही है। मानव सभ्यता की समस्याएँ उपभोक्तावादी जीवन-पद्धति तथा अन्य समस्याएँ शासन एवं शक्ति की विचारधारा की देन हैं। किसी सभ्यता व समाज की भावना को समझने के लिए उसकी उपलब्धियों के सही आकलन के लिए तथा कमियों को जानने के लिए उस सभ्यता और समाज में स्त्रियों की दशा एवं परिस्थिति का अध्ययन सर्वश्रेष्ठ उपाय है। भारत में स्त्रियों ने सामाजिक जीवन में तथा इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। उच्चकोटि की विद्वता से लेकर रणक्षेत्र में शौर्य प्रदर्शन तक, राष्ट्रीय गतिविधि के प्रत्येक क्षेत्र में उनकी समान भूमिका रही है। पुराणों तथा प्राचीन भारतीय इतिहास में इस बात के सुस्पष्ट प्रमाण उपलब्ध हैं कि समाज में स्त्रियों को समुचित सम्मान

प्राप्त था।

‘स्त्री’ मानव-शक्ति की जननी और दो पीढ़ियों को जोड़ने वाली एक कड़ी है। भारतीय संस्कृति में समाज के इस वर्ग को अधिक महत्व दिया गया है, इसलिए स्त्रियों के धैर्य, सहनशक्ति, प्रेम अनुराग, सहानुभूति और उदारता आदि कुछ आदर्शभूत और अनुकरणीय गुणों को ध्यान में रखते हुए भारत को ‘भारतामाता’ का प्रतिरूप माना गया है जैसा कि पंडित नेहरू ने स्पष्ट किया था कि लोगों में जागृति लाने के लिए हमें पहले स्त्रियों को जागृत करना होगा। स्त्रियों के आगे बढ़ने से परिवार भी आगे बढ़ेगा, गाँव आगे बढ़ेंगे और राष्ट्र भी आगे बढ़ेगा। दूसरे देशों की भाँति ही भारतीय नारी भी संस्कृति के कई स्तरों से गुजरी है। लेकिन 17वीं और 18वीं शताब्दी के बीच उसकी स्थिति कुछ ऐतिहासिक कारणों से दयनीय हो गई थी। वैदिक काल के प्रारंभ में स्त्रियों का स्तर काफी ऊँचा था। उन्हें देवी का पद दिया जाता था। स्त्री परिवार में अपने पति के साथ समान अधिकार और उत्तरदायित्वों की अधिकारिणी होती थी। ऐसा स्पष्ट होता है कि व्यक्तिगत संपत्ति की विचारधारा के विकास के साथ ही स्त्रियों ने अपनी स्वतंत्र स्थिति को धीरे-धीरे खो दिया। शारीरिक दुर्बलता और कुछ अन्य ऐसे ही दोष स्त्रियों के स्तर गिराने के मुख्य कारण बन गये, धीरे-धीरे परतंत्रता और असहायता के स्तर की ओर बढ़ती हुई वह मनु के द्वारा स्त्रियों के लिए निर्धारित श्रेणी में आ गई।

समाज सुधारकों का युग भारत में उन्नीसवीं शताब्दी से प्रारंभ होता है। लेकिन इन सुधारकों से अलग 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में महिलाओं के संबंध में स्वामी विवेकानंद का दृष्टिकोण भिन्न था। श्री सीता के प्रसंग में स्वामी विवेकानंद ने कहा था- “उन्होंने अविचलित भाव से ऐसे महादुःख का जीवन व्यतीत किया, वही नित्य साध्वी, सदा शुद्धस्वभाव सीता, आदर्श पत्नी सीता, मनुष्य लोक की आदर्श, देवलोक की भी आदर्श नारी पुण्यचरित्र सीता सदा हमारी राष्ट्रीय देवी बनी रहेंगी। सीता का प्रवेश हमारी जाति की अस्थि मज्जा में हो चुका है, प्रत्येक हिंदू नर-नारी के रक्त में सीता विराजमान हैं, हम सभी सीता की सन्तान हैं।”¹ भारतीय नारी ने चिरकाल से जिस

आदर्श पर चलने का प्रयास किया है, स्वामी विवेकानंद ने कई बार बड़ी उद्दीप्त भाषा में उसके प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है। सच पूछिए तो संन्यास-जीवन के समान ही नारी-जीवन भी बाह्य अभिव्यक्ति की वस्तु नहीं है। इसका मूल लक्ष्य है- आंतरिक जीवन को समृद्ध बनाना और भारतीय नारी ने त्याग, पवित्रता, धैर्य, दया, संतोष तथा सेवा आदि सद्गुणों का विकास करके राष्ट्र की सांस्कृतिक उदात्तता और आध्यात्मिकता के उच्च स्तर को अक्षुण्ण बनाए रखा है।

परंतु वर्तमान युग में भारतीय नारी एक दोराहे पर खड़ी है। उसके सम्मुख आज दो विपरीत आदर्श उपस्थित हैं- एक तो परंपरागत आदर्श और दूसरा आधुनिक नागरिक आदर्श। प्रत्येक सामाजिक विकास की पृष्ठभूमि में स्थित आदर्श में ही उसका सक्रिय तत्व निहित और प्रत्येक उद्यम उस आदर्श को ही सबल बनाता है। यदि भारतीय नारी को अन्य सभी देश की नारियों के साथ आगे बढ़ना है, एक अभिनव समाज गढ़ने के बारे में विचार करना है तो उसे यह निर्णय लेना होगा कि इनमें से कौन-सा आदर्श अपनाया जाए।

स्वामी विवेकानंद की विविध उक्तियाँ इन दो तरह के आदर्शों पर थोड़ा प्रकाश डालती हैं। भारतवर्ष में प्राचीन काल से परिवार आदि का ही प्राबल्य रहा है। परिवार यद्यपि समाज की लघुतम इकाई है, परंतु भारतीय जीवन-पद्धति में इसकी भूमिका सबसे महत्वपूर्ण रही है, क्योंकि व्यक्ति के जीवन को गढ़ने वाली सभी मार्गदर्शक एवं नियामक प्रेरणाएँ परिवार से ही आती प्रतीत होती हैं। जाति की शुद्धता, विवाह बंधन की पवित्रता, मातृत्व, आदि सभी विचारों का लक्ष्य है परिवार के संघटन को सुरक्षित रखना। इन आदर्शों के क्रियान्वयन में जो महत्वपूर्ण भूलें हुईं, स्वामीजी ने कभी-कभी उनकी ओर हमारा



ध्यान आकृष्ट किया, पर उन आदर्शों को उन्होंने पूरी तरह से उड़ा नहीं दिया। उदाहरणार्थ- जाति के पतन एवं नर-नारियों की शारीरिक दुर्बलता के लिए उन्होंने बाल विवाह को दोषी ठहराया, पर साथ ही उन्होंने इस कुप्रथा को भी यह कहकर मान्य किया कि इसने हमारी जाति में पवित्रता का उच्च स्तर बनाए रखा है। उन्होंने हमारे विवाह व्रत और मातृत्व के आदर्शों की भूरि-भूरि प्रशंसा की एवं अन्य जातियों एवं राष्ट्रों से अनुरोध किया कि इस क्षेत्र में वे भारत का अनुसरण करें, “मेरे विचार से पूर्ण ब्रह्मचर्य

के आदर्श को प्राप्त करने के लिए किसी भी जाति को मातृत्व के प्रति परम आदर की धारणा दृढ़ करनी चाहिए, और वह विवाह को अच्छे एवं पवित्र धर्म संस्कार मानने से ही हो सकती है।”² और पुनः वे अमेरिकी माताओं से कहते हैं- “माता के रूप में अमेरिकन स्त्री कहाँ है? उस तपस्विनी एवं ओजस्विनी माता का, जिसने हमें जन्म दिया तुमने क्या सम्मान किया है? जिसने हमें अपने शरीर में नौ मास

तक वहन किया, वह माता क्या है? जो हमारे जीवन के लिए यदि प्राणों की आहुति देने की आवश्यकता हो, तो बीस बार भी देने को उद्यत है, वह माता कहाँ है? कहाँ है वह, जिसका प्रेम कभी नहीं मरता- मैं कितना ही दुष्ट और अधम क्यों न हो जाऊँ?... हे अमेरिका की स्त्रियों, वह माता कहाँ है? मेरे माता-पिता ने कितने दिनों तक भगवान से प्रार्थना की थी और व्रत रखा था कि उन्हें एक संतान प्राप्त हो। प्रत्येक बच्चे के लिए माता-पिता को प्रार्थना करनी चाहिए। अमेरिका की माताओ! इस पर जरा विचार कीजिए। हृदय के अंतःस्थल में जरा सोचिए, क्या आप सचमुच नारी होना चाहती हैं? इसमें किसी जाति या किसी देश का प्रश्न नहीं, किसी प्रकार के राष्ट्रीय गौरव के मिथ्या गर्व का स्थान नहीं। आप सबसे आज रात मैं एक महत्वपूर्ण प्रश्न पूछना चाहता हूँ। क्या आप अपनी संतान

की प्राप्ति के लिए ईश्वर से हार्दिक प्रार्थना करती हैं? क्या आप माता होने के लिए कृतज्ञ हैं? क्या आप यह समझती हैं कि मातृत्व प्राप्त करके आप पावित्र्यपूर्ण गौरव को प्राप्त करती हैं? आप अपना हृदय टटोलें और पूछें। यदि नहीं, तो आप का विवाह मिथ्या है, आपका नारीत्व मिथ्या है, और आपकी शिक्षा एक ढकोसला है, और यदि आपके बच्चे प्रार्थना के बिना जन्म लेते हैं, तो वे संसार के लिए अभिशाप सिद्ध होंगे।”³

जनसेवा को बढ़ावा देने वाले नागरिक आदर्शों की महिमा-गान में भी स्वामीजी पीछे नहीं रहे। नागरिक आदर्श में सामुदायिक एकता की तुलना में पारिवारिक स्वार्थ को नजरअंदाज किया जाता है। समुदाय के भीतर पुरुष और नारी दोनों को ही व्यष्टि का दर्जा मिलता है और वे नागरिक जीवन के आदर्श को रूपायित करने के लिए सचेत प्रयास करते हैं। सभी प्रकार के सामाजिक सामंजस्य इसी सामुदायिक विकास की ओर केंद्रित हैं। पारिवारिक जीवन के स्थान पर सामुदायिक कल्याण की प्रतिष्ठा हो जाती है और इसके फलस्वरूप कभी-कभी परिवार का विघटन हो जाता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी आर्थिक एवं सामाजिक अवस्था की रक्षा में तत्पर हो जाता है। जब स्वामी विवेकानंद अमेरिका में थे तो वे वहाँ की शिक्षित, साहसी और दयालु महिलाओं को ‘पक्षियों के समान स्वाधीन’ देखकर दंग रह गए थे। उन लोगों ने बड़े आत्मसम्मान के साथ अपने समुदाय के नागरिक जीवन को कायम रखा था। विस्मय एवं प्रशंसा के साथ उन्होंने अमेरिका से एक मित्र को लिखा- “मैंने जैसी शिष्ट और शिक्षित महिलाएँ यहाँ देखीं, वैसी कभी नहीं देखीं। हमारे देश में शिक्षित पुरुष हैं, परंतु अमेरिका जैसी महिलाएँ मुश्किल से कहीं और दिखाई देंगी... मैंने यहाँ हजारों महिलाएँ देखीं, जिनके हृदय हिमालय के समान पवित्र और निर्मल हैं। अहा! वे कैसी स्वतंत्र होती हैं। सामाजिक और नागरिक कार्यों का नियंत्रण करती हैं। पाठशालाएँ और विद्यालय महिलाओं से भरे हैं और हमारे देश में महिलाओं के लिए राह चलना भी निरापद नहीं!” और इसके बाद ही वे लिखते हैं- “यहाँ लोग स्त्रियों को इसी रूप (शक्ति) में देखते हैं... और इसीलिए ये इतने

सुखी, विद्वान, स्वतंत्र और उद्योगी हैं और हम लोग स्त्री जाति को नीच, अधम, महा हेय एवं अपवित्र कहते हैं। फल हुआ- हम लोग पशु, दास, उद्यमहीन और दरिद्र हो गए।”⁴

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामीजी ने एक-एक कर दोनों आदर्शों की ही प्रशंसा की है। परंतु दोनों के प्रति उनकी समालोचना भी उतनी ही कठोर है। भारतीय महिलाओं की हालत के बारे में एक बार उन्होंने कहा था- “अब तक तो उन्होंने केवल असहाय अवस्था में दूसरों पर आश्रित हो जीवन-यापन करना, और थोड़ी-सी भी अनिष्ट या संकट की आशंका होने पर आँसू बहाना ही सीखा है।”⁵ दूसरी ओर उन्होंने न्यूयार्क में अमेरिकी महिलाओं को सुस्पष्ट और कठोरतापूर्वक कहा- “मैं बहुत चाहता हूँ कि हमारी स्त्रियों में तुम्हारी बौद्धिकता होती, परंतु यदि वह चारित्रिक पवित्रता का मूल्य देकर ही आ सकती हो, तो मैं उसे नहीं चाहूँगा। तुमको जो कुछ आता है, उसके लिए मैं तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ, लेकिन जो बुरा है, उसे गुलाबों से ढंककर उसे अच्छा कहने का जो यत्न तुम करती हो, उससे मैं नफरत करता हूँ। बौद्धिकता ही परम श्रेय नहीं है। नैतिकता और आध्यात्मिकता के लिए हम प्रयत्न करते हैं। हमारी स्त्रियाँ इतनी विद्वान नहीं, परंतु वे अधिक पवित्र हैं।”⁶

इस प्रकार अपने देश से बिल्कुल ही भिन्न आदर्श पर चलने वाली महिलाओं के एक वर्ग के संपर्क में आने के बाद से इन दोनों आदर्शों तथा दोनों समाजों में महिलाओं की दशा का भेद उनके मनचक्षु के सामने उदित होने लगा। परवर्ती काल में जब उनके मन में अपने देश की महिलाओं के उत्थान के लिए कार्य करने की तीव्र आकांक्षा हुई तो स्वाभाविक रूप से ही उनके मन में यह प्रश्न उठा कि भारतीय महिला किस हद तक अपने आदर्शों से समझौता करके अन्यदेशीय आदर्शों को अपना सकती है। इस विषय पर स्वामीजी ने जगत को जो गहन और सर्वांगीण विचार दिए थे, उन्हें प्रायः सौ वर्ष से ऊपर हो गए, पर वे अब भी यथावत प्रेरणास्पद हैं।

स्वामी विवेकानंद कभी भी प्राचीन आदर्शों को तिलांजलि देकर नवीन आदर्शों को अपनाने के पक्ष में

नहीं थे। बल्कि इसके विपरीत ही उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि हमारे राष्ट्रीय आदर्श जिन ठोस सिद्धांतों की नींव पर खड़े हैं और प्रथा, परंपरा एवं विधि के द्वारा शताब्दी-पर-शताब्दी स्वीकृत हुए हैं, उनका कभी त्याग नहीं होना चाहिए। उन्होंने कहा- “यह सच है कि हम लोग इस समय इन भावों को पूर्ण रूप से कार्य में परिणत नहीं कर सकते, यह भी संपूर्ण सत्य है कि हम लोगों ने इस सब महान भावों में से कुछ की हास्यापद बना दिया है...। किंतु व्यावहारिक रूप में दोषों के आ जाने पर भी वह मूल तत्व बड़े ही महत्व का है और यदि उसका कार्यान्वित होना सदोष है, यदि इसके लिए कोई खास तरीका नाकामयाब हुआ है तो उस मूल तत्व को लेकर ऐसी चेष्टा करनी चाहिए, जिससे वह अच्छी तरह काम में आ सके। मूल तत्व को नष्ट करने की चेष्टा क्यों?... वह सदा ही रहेगा। ऐसा पुनः प्रयत्न करो जिससे वह ठीक-ठीक भाव से काम में लाया जा सके।” उनका ऐसा मत था कि यह संशोधित उपयोग दोनों ही आदर्शों के बीच एक महत्वपूर्ण सम्मिलन उत्पन्न करेगा। उनके इस विचार को और भी स्पष्ट करते हुए उनकी शिष्या भगिनी निवेदिता ने लिखा है- “वे भविष्य की भारतीय नारी को प्राचीन शक्ति से अलग करके कल्पना तक नहीं कर पाते थे। महिलाएँ आधुनिक विज्ञान अवश्य सीखें, पर प्राचीन आध्यात्मिकता को त्याग कर नहीं। उन्होंने स्पष्ट रूप से समझा कि वही शिक्षा आदर्श होगी, जो संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के प्रत्यक्ष परिवर्तन को कम-से-कम प्रभावित करेगी। इसके फलस्वरूप प्रत्येक महिला अतीत भारत की समस्त नारियों की महानता को अपने आप में पूर्णरूपेण भिदा लेने में समर्थ होगी।”⁸

स्वामी विवेकानंद जब कभी भारतीय नारी तथा उसकी समस्याओं के बारे में बोलते थे, तब वे एक तीसरे आदर्श के बारे में भी सचेत रहते थे और वह था आध्यात्मिक आदर्श। भारतीय जीवन, चिंतन एवं संस्कृति में आध्यात्मिकता इतनी ओतप्रोत है कि आध्यात्मिक आदर्श को एक अलग आदर्श के रूप में मान्य नहीं किया जा सकता। अतः हम अपने राष्ट्र के सामाजिक-धार्मिक इतिहास में संन्यासी एवं गृही दोनों ही प्रकार की अनेक महान विभूतियों का उल्लेख पाते हैं।

राष्ट्र की आध्यात्मिकता के इस उच्च स्तर को बनाए रखने में महिलाओं का योगदान पुरुषों के समकक्ष ही रहा है। अति प्राचीन वैदिक काल से लेकर वर्तमान काल तक महिलाओं ने अपने ढंग से इस आदर्श को जीवंत रखा है। मैत्रेयी से लेकर श्री शारदा देवी तक यह सांस्कृतिक विरासत पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती आई है। ऋषि याज्ञवल्क्य ने संसार त्यागकर वन में जाने से पूर्व (अपनी पत्नी) मैत्रेयी के जीवन निर्वाह हेतु अपनी संपत्ति का एक अंश उन्हें देने की इच्छा व्यक्त की थी। इस पर मैत्रेयी ने कहा था- “जो संपदा मुझे अमृत नहीं प्रदान कर सकती, उसे लेकर मैं क्या करूँगी?” इस पर याज्ञवल्क्य बड़े प्रसन्न हुए थे और उन्हें आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान किया था। श्रीरामकृष्ण ने जब श्री शारदा देवी से पूछा कि क्या तुम पत्नी के रूप में अपने अधिकार का दावा करने आई हो तो उन्होंने उत्तर दिया था, “नहीं, मैं तुम्हें संसार में खींचने को नहीं, तुम्हारे धर्मपथ में सहायता करने आई हूँ।” उसी समय से वे श्रीरामकृष्ण की प्रमुख शिष्या के रूप में स्वीकृत हुईं।

मानव का वास्तविक स्वरूप दिव्य है और संपूर्ण जगत ब्रह्म की ही अभिव्यक्ति है- वेदांत की यह अनुभूति ही उपर्युक्त आदर्शवाद की पृष्ठभूमि है। स्वामी विवेकानंद निर्भीक वेदांती थे और उन्होंने महिलाओं की स्वाधीनता एवं अधिकार का खुले तौर पर समर्थन किया, जिससे वेदांत का यह तत्व पूर्ण रूप से व्यवहार में लाया जा सके।

उनका मन इन विचारों से इतना परिपूर्ण रहा करता था कि अपने काल की नारी-समस्याओं पर चर्चा के दौरान वे अचानक ही आविष्ट होकर कहने लगे- “परमतत्त्व ब्रह्म में लिंगभेद नहीं। हमें मैं-तुम की भूमि में लिंगभेद दिखाई देता है।” उन्होंने और भी कहा- “इस देश में पुरुष और स्त्रियों में इतना अंतर क्यों समझा जाता है, यह समझना कठिन है। वेदांतशास्त्र में तो कहा है, एक ही चित सत्ता सर्वभूतों में विद्यमान है।”⁹

इसी कारण उन्होंने महिलाओं के उच्चतर आध्यात्मिक प्रशिक्षण के विरोध में उठाई गई आवाज को सुनने से इनकार कर दिया- “किस शास्त्र में ऐसी बात है कि स्त्रियाँ ज्ञान-भक्ति की अधिकारिणी नहीं होंगी?... इन

सब आदर्श विदुषी स्त्रियों (यथा मैत्रेयी, गार्गी) को जब उस समय अध्यात्म ज्ञान का अधिकार था, तब फिर आज भी स्त्रियों को वह अधिकार क्यों न रहेगा? एक बार जो हुआ है, वह फिर अवश्य ही हो सकता है। इतिहास की पुनरावृत्ति हुआ करती है।¹⁰ और इसीलिए वे चाहते थे कि हमारे देश की महिलाएँ श्री शारदा देवी की प्रत्यक्ष प्रेरणा एवं देखरेख में, त्याग एवं सेवा के राष्ट्रीय आदर्शों के अनुसार जीवन गठन करें।

आधुनिक भारत की महिलाएँ, जो प्रगति के नाम पर वस्तुतः अपने रूपांतरण पर चल रही हैं, को चाहिए कि वे प्राचीन आदर्शों के आधार पर ही अपनी उन्नति एवं प्रगति करें और साथ ही नागरिक कार्यों के क्षेत्र में भी अपने प्रभाव का विस्तार करें। इसके फलस्वरूप उनका पारिवारिक जीवन सुखी होगा, नागरिक जीवन सहायक होगा और आध्यात्मिक जीवन समृद्ध होगा। और साथ ही स्वामीजी का यह आदेश भी स्मरण रखना होगा— “इस देश की नारियों को ही क्यों, मैं उनसे भी वही बात कहूँगा, जो पुरुषों से कहता हूँ। भारत में विश्वास करो और भारतीय धर्म में विश्वास करो। शक्तिशाली बनो, आशावान बनो और संकोच छोड़ो, और याद रखो कि यदि हम बाहर से कोई वस्तु लेते हैं तो संसार की किसी अन्य जाति की तुलना में हिंदू के पास उसके बदले में देने को अनंत गुना अधिक है।”¹¹

निष्कर्ष :

स्वामी विवेकानंद ने भारतीय समाज में नारीवादी विचारों को प्रगति के एक अनिवार्य तत्व के रूप में प्रस्तुत किया। उनकी शिक्षाएँ और दृष्टिकोण न केवल महिलाओं के अधिकारों और गरिमा की रक्षा के लिए महत्वपूर्ण रहे, बल्कि उन्होंने समाज के अन्य वर्गों को भी जागरूक किया। विवेकानंद का मानना था कि किसी भी समाज की वास्तविक प्रगति महिलाओं की स्थिति पर निर्भर करती है। उन्होंने शिक्षा को नारी के सशक्तिकरण का मुख्य साधन माना और समाज में समानता के सिद्धांत को बढ़ावा दिया।

उनकी विचारधारा ने न केवल स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की सक्रिय भागीदारी को प्रेरित किया, बल्कि भविष्य के नारीवादी आंदोलनों को भी गहराई से प्रभावित किया। आज भी, स्वामी विवेकानंद के नारीवादी विचार समाज में महिलाओं के सशक्तिकरण की दिशा में एक प्रेरणा स्रोत बने हुए हैं। उनका संदेश आज भी प्रासंगिक है, और यह दर्शाता है कि महिलाओं का सशक्तिकरण न केवल एक सामाजिक आवश्यकता है, बल्कि यह समाज की समग्र प्रगति के लिए आवश्यक है। स्वामी विवेकानंद का योगदान भारतीय नारीवादी आंदोलन में अमिट छाप छोड़ता है। □

संदर्भ-ग्रंथ :

1. विवेकानंद, स्वामी. विवेकानंद साहित्य : खंड 5. प्रथम संस्करण. पृ. 150. कोलकाता : अद्वैत आश्रम, 1990.
2. विवेकानंद, स्वामी. विवेकानंद साहित्य : खंड 8. प्रथम संस्करण. पृ. 394. कोलकाता : अद्वैत आश्रम, 1990.
3. विवेकानंद, स्वामी. विवेकानंद साहित्य : खंड 1. प्रथम संस्करण. पृ. 310-12. कोलकाता : अद्वैत आश्रम, 1990.
4. विवेकानंद, स्वामी. विवेकानंद साहित्य : खंड 2. प्रथम संस्करण. पृ. 314-15. कोलकाता : अद्वैत आश्रम, 1990.
5. विवेकानंद, स्वामी. विवेकानंद साहित्य : खंड 8. प्रथम संस्करण. पृ. 277. कोलकाता : अद्वैत आश्रम, 1990.
6. वही, पृ. 216
7. विवेकानंद, स्वामी. विवेकानंद साहित्य : खंड 5. प्रथम संस्करण. पृ. 299. कोलकाता : अद्वैत आश्रम, 1990.
8. निवेदिता, सिस्टर. दी मास्टर एज आइ सॉ हिम. आठवां संस्करण. पृ. 283. कोलकाता : उद्बोधन ऑफिस, 1959.
9. विवेकानंद, स्वामी. विवेकानंद साहित्य : खंड 6. प्रथम संस्करण. पृ. 185. कोलकाता : अद्वैत आश्रम, 1990.
10. वही, पृ. 181-82
11. विवेकानंद, स्वामी. विवेकानंद साहित्य : खंड 4. प्रथम संस्करण. पृ. 269. कोलकाता : अद्वैत आश्रम, 1990.

छत्तीसगढ़ में संत गुरु घासीदास का सामाजिक प्रभाव



चंद्रकांत सोनवानी

शोध-सार :

भारतीय संस्कृति में गौतम बुद्ध के पश्चात पहली बार 'धम्मचक्र प्रवर्तनाय' का सूत्रपात अक्षर ज्ञान से शून्य गिरि कंदराओं के मध्य गुरु घासीदास ने आरंभ किया। सतनाम-आंदोलन मानव पीड़ा की मुक्ति हेतु एक अभियान या मिशन के रूप में किया। नव दीक्षित सतनामियों में साटीदार, भंगरी, महंत पद देकर तथा आचार-विचार में सात्विकता को प्रमुखता से सम्मिलित करवाकर उन्होंने एक ऐसा चमत्कार कर दिखाया कि जनम-जनम का सोया मानव सद्गुरु के दिव्य प्रकाश से अवलोकित हो उठा। उन्होंने सामाजिक सुधार अर्थात् सतनाम जागरण के तहत लोगों को आत्म सचेत किया कि एक मनुष्य - दूसरे मनुष्य को जाने, उसके भीतर विराजमान आत्मा को पहचाने, मैं और तुम की भावना का परित्याग करे और 'हम सब' के विचार को बढ़ाए। इस प्रकार उन्होंने आत्म अवलोकन तथा मानव एकात्मवाद के सामाजिक दर्शन को जन-जन में फैलाया - "सबो परानी में आत्मा सबो के तन म समाय, सबो के पीरा एक हे कोनो ल झन सताव।" सतनाम-जागरण मानवता को स्थापित करने का पर्याय बन गया।

'मनखे-मनखे एक बरोबर' रूपी सृष्टिसार का संदेश देने वाले गुरु घासीदास बाबा के संपूर्ण जीवन दर्शन पर यदि आलोक डालें तो वे सही मायनों में संपूर्ण मानव समाज के आदर्श मार्गदर्शक प्रतीत होते हैं। यह अतिशयोक्ति नहीं होगी कि यदि विश्व समुदाय उनके सिद्धांतों व संदेशों को यदि अपने में आत्मसात कर ले व जीवन, आचरण और व्यवहार में शामिल कर ले तो संपूर्ण विश्व समाज सामाजिक, आर्थिक व लैंगिक भेदभाव और सामाजिक विसंगियों से मुक्ति पा सकता है। गुरु घासीदास के उपदेशों एवं वचनों के चिंतन से प्रगतिशीलता एवं अनुभवजन्य विचारधारा की अनुभूति होती है। छत्तीसगढ़ वासियों के लिए गुरु घासीदास बाबा एवं उनकी जन्म स्थली गिरौदपुरी धार्मिक श्रद्धा का केंद्र है।

बीजशब्द :

सतनाम, सामाजिक आंदोलन, ज्ञान एवं शिक्षा, अंधविश्वास, लैंगिक भेदभाव।

मूल आलेख :

भक्ति परंपरा, जिसे भक्ति आंदोलन के नाम से भी जाना जाता है, एक महत्वपूर्ण आध्यात्मिक और सांस्कृतिक आंदोलन है, जिसकी शुरुआत भारत में हुई, खासतौर मध्यकाल के दौरान। 'भक्ति' एक संस्कृत शब्द है, जिसका अनुवाद 'भक्ति' या 'प्रेम' होता है, जो आध्यात्मिक प्राप्ति और मोक्ष प्राप्त करने के साधन के रूप में एक व्यक्तिगत ईश्वर के प्रति प्रेमपूर्ण भक्ति के मार्ग पर जोर देता है। इस

शोधार्थी, हिंदी विभाग
भारती विश्वविद्यालय, दुर्ग
छत्तीसगढ़-4935 599

☎ 8462951655

✉ sonwani245@gmail.com

आंदोलन ने पारंपरिक पुरोहिती अनुष्ठानों से जुड़ी विशिष्टता और श्रेष्ठता को कम करते हुए ईश्वर के साथ सीधे और व्यक्तिगत संबंध की वकालत करके सामाजिक असमानताओं को चुनौती देने और सामाजिक सद्भाव को बढ़ावा देने में भूमिका निभाई।

कबीर, रैदास और गुरुनानक की भक्ति परंपरा को आगे बढ़ाने वाले ऐसे ही एक संत थे गुरु घासीदास, जिनका जन्म 18 दिसंबर, 1756 को छत्तीसगढ़ राज्य के बलौदा बाजार जिले के गिरौदपुरी गाँव में हुआ था। उनका जन्म एक चमार परिवार में हुआ था, जिसे निम्न जाति माना जाता था और अधिकांश निम्न जाति के परिवारों की तरह वे भी गरीबी से त्रस्त पृष्ठभूमि से थे, जो आजीविका चलाने के लिए खेतिहर मजदूर के रूप में काम करते थे। उन्होंने कम उम्र में शादी कर ली और उनके चार बच्चे हुए। उनके समय समाज अंधविश्वास, अज्ञानता और जातिगत कठोरताओं में गहराई से जकड़ा हुआ था। इन सामाजिक प्रथाओं से त्रस्त होकर उन्होंने लोगों को जागृत करने के लिए छत्तीसगढ़ की यात्रा करने का फैसला किया। एक दिन अपनी यात्रा के बीच में वे 'छाता' पहाड़ नामक स्थल पर ध्यान करने लगे। उन्होंने उस जगह का नाम सतनामी रखा, जहाँ उन्होंने लोगों को उपदेश दिए और संस्कृति का प्रचार किया। अपनी शिक्षाओं में उन्होंने अंधविश्वास से घृणा और दलितों के उत्थान को अपना जीवन लक्ष्य बनाया। हालाँकि राममोहन राय को भारतीय पुर्नजागरण का श्रेय दिया जाता है। लेकिन गुरु घासीदास ने उनसे पहले सतनामी संस्कृति के माध्यम से मानवता को कलंकित करने वाली सदियों पुरानी परंपराओं को त्यागने का आह्वान किया।

गुरु घासीदास के नैतिक दर्शन में भाग्य का कोई स्थान नहीं है। कर्म के सिद्धांत को उन्होंने वरीयता दी है। सती, टोनही का वध, नरबलि, अंधविश्वास के खिलाफ उन्होंने ताउम्र आवाज बुलंद की। गुरु घासीदास जी ने अपने सामाजिक सुधार के मिशन में पहला लक्ष्य दलितों के उद्धार को बनाया। इनके प्रभाव से लगभग सभी जातियों के लोग सतनामी बने, जिसमें चमार, सुनार, लोहार, गड़रिया, यादव, अहीर, तेली, कुम्हार, जाट,

कुर्मी, बड़ई आदि की विशेष रूप से भागीदारी थी। हीवेट के उक्त कथन की पुष्टि अधोलिखित सतनामी गीत से भी होती है।

ब्राह्मण क्षत्री बनिया शूद्र चारों वरन के लोग।

तब बनिन सतनामी, टोरिन भेद-भरम के रोग।।

गुरु घासीदास ने अपने अनुयायियों को सतनाम पंथ का बोध कराया, जिन्होंने ईमानदारी से इस पंथ में आगे बढ़ाया, उन सभी को सवर्णों के अत्याचार सहने पड़े। असम समय की सामाजिक, आर्थिक सांस्कृतिक तथा धार्मिक परिस्थितियाँ विषमतापूर्ण थीं। गुरु घासीदास का जीवन इतिहास शोषित और शोषक वर्ग उभारता है। वे जन्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को नहीं मानते थे। पंथी गीतों में वर्णित -

एक पेड़ अंवरा, दूसरा पेड़ धवरा साहब।

चारों वरन नयें अमरित पियाये साहब।।

में उनका यही भाव परिलक्षित होता है। वे व्यक्तियों के प्रकार को मानते थे। उनके अनुसार ब्राह्मणों में भी शूद्र पैदा होते हैं और शूद्रों में भी ब्राह्मण पैदा होते हैं। क्षत्रियों में वैश्य पैदा हो जाते हैं और वैश्यों में भी क्षत्रिय पैदा हो जाते हैं। वे वर्णों के इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को समझते थे और जातीय भेदभाव मिटाने का प्रयास करते थे। सतनामी संस्कृति गुरु घासीदास के अनुयायियों और सतनामी संप्रदाय से जुड़ी हुई है। यह एक ऐसा आंदोलन है, जो गुरु घासीदास के जन्म से पहले उत्तर भारत में शुरू हुआ था। सतनामी संस्कृति का एक मुख्य सिद्धांत सामाजिक समानता को बढ़ावा देना है। गुरु घासीदास ने जाति के आधार पर भेदभाव के खिलाफ उपदेश दिया और अपने अनुयायियों से सभी व्यक्तियों के साथ सम्मान और गरिमा के साथ व्यवहार करने का आग्रह किया। गुरु घासीदास ने समाज में सामाजिक समानता, एकता, भाईचारा और समरसता का संदेश दिया :-

● गुरु घासीदास का मानना था कि सभी लोग सामाजिक रूप से समान हैं। उन्होंने जातिविहीन समाज की स्थापना की बात कही।

● उन्होंने छुआछूत और उच्च-नीच के व्यवहार को खत्म करने की बात कही।



● गुरु घासीदास ने पशुओं से प्रेम करने की सीख दी।

● उन्होंने समाज में सतनाम पंथ चलाया और जात-पात निषेध पर जोर दिया।

● उन्होंने समाज में एकता, भाईचारा और समरसता का संदेश दिया।

● गुरु घासीदास के संदेशों और उनकी जीवनी का प्रसार पंथी गीत और नृत्यों के जरिए हुआ।

● गुरुघासीदास के सिद्धांतों का छत्तीसगढ़ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम सेनानी वीर नारायण सिंह पर भी गहरा प्रभाव था।

गुरु घासीदास का बहुआयामी व्यक्तित्व, सुदर्शन स्वरूप एवं सारगर्भित मृदुवाणी का व्यापक प्रभाव समस्त पर पड़ा। नारनौल मेवात क्षेत्र में क्रूर औरंगजेब के अत्याचार से पीड़ित शरणागत सतनामी परिवार में जन्म लेकर सतगुरु घासीदास अपने जीवनकाल में ही जनसाधारण के देवतुल्य पूजनीय होकर किंवदंती बन गए थे। यहाँ तक कि लोग उनके पाए अपनी वैयक्तिक पीड़ा निवारणार्थ आते एवं उनके निदान हेतु अनुनय-विनय कर आरती-पूजा आदि करने लगते। जनमानस की इस अगाध श्रद्धा को देख वे कहते कि “कोनो मोला काकरो से बड़े झन कैयही न त हुदेसना म हुदेसन आय।” उनकी यह मृदु और विनम्रवाणी

पीड़ित लोगों का दुःख निवारण करने के पश्चात उन्हें और अधिक प्रभावित करती। साथ ही बाबा जी के प्रति श्रद्धा भाव जागृत होने लगा। इस तरह वे लोगों के अंतःकरण में बसते चले गए। गुरु घासीदास केवल वाणी द्वारा ही लोगों को उपदेश देकर उन्हें सांत्वना नहीं देते, अपितु उनकी समस्याओं के मूल में जाकर संत समूह की सलाह लेकर उनके निदान का कारण ढूँढ़कर स्वयं नेतृत्व या पहल करते। वे जब तक समस्या का समाधान नहीं कर लेते, तब तक अनवरत प्रयास करते रहते। उन्होंने संपूर्ण क्रांति कर तत्कालीन समय में आमूल-चूल परिवर्तन किया। डॉ. आई.आर. सोनवानी लिखते हैं—“बाबा गुरु घासीदास सामाजिक क्रांति के जनक और मानवता के सजग प्रहरी थे। उन्होंने सतनाम आंदोलन के द्वारा मानवता, आत्मसम्मान और मानवीय संवेदना को जनमानस में जगाया। इस दृष्टि से अठारहवीं सदी के जगत में संत गुरु घासीदास मानववाद के अग्रदूत थे। यदि उनके विराट सतनाम दर्शन को विश्व दृष्टिवादी-चिंतन कहें तो अनुपयुक्त नहीं होगा।”

बाबा जी ने सत्य अहिंसा और प्रेम का पाठ पढ़ाया। उन्होंने एक-एक लोगों को जोड़कर अनेक किया और अनेकता में एकता स्थापित करके सुविधा भोगियों द्वारा किए जा रहे शोषण के खिलाफ आंदोलन करने हेतु

जनमानस को जागृत किया। बाबा जी ने चरणबद्ध तरीके से इस आंदोलन को गतिमान किया। उन्होंने मत-मतांतरों के मध्य शाक्त मत में प्रचलित हिंसा से पंचमकार की विकृति साधना का विरोध कर सतनाम पंथ का प्रचार हेतु राजमहंतों, साटीदारों एवं भंडारियों की नियुक्ति कर उनको साथ लेकर छत्तीसगढ़ में स्थित शक्ति संप्रदाय के चारों शक्ति पीठों चन्द्रसेनी चन्द्रपुर (पूर्व में), बमलाई डोंगरगढ़ (पश्चिम), महामाया रत्नपुर (उत्तर) एवं दंतेश्वरी (दक्षिण) में जाकर पशुबलि एवं नरबलि का अंत किया। साथ ही चिरई पदर, कांकेर, दंतेवाड़ा, पानाबरम, डोंगरगढ़, भंवरदाह, भोरमदेव, रतनपुर, मंडला, बालाघाट, जबलपुर, दलहा पहाड़ आदि में रामत व रावटी लगाकर अमृत वाणियों, उपदेशों एवं दृष्टान्तों द्वारा पीड़ित, उपेक्षित व भ्रमित लोगों का दुःख निवारण कर उनमें सतनाम पंथ का प्रचार किया। लोगों ने बाबाजी के प्रवचनों एवं शिक्षाओं को आत्मसात कर अपना मत बदला और अपनी जाति-धर्म को त्यागकर सतनामी बनते गए। इस प्रकार सतनाम-जागरण स्वतःस्फूर्त आंदोलन में परिणित होकर व्यापक रूप में प्रसारित हो रहा था। छत्तीसगढ़ के गाँव-गाँव में सतनाम का प्रभाव परिलक्षित हो रहा था। गुरु घासीदास के प्रभाववश इनके अनुयायी न टूटे, न झुके, बल्कि अपने स्वाभिमान एवं अस्तित्व रक्षार्थ और भी अधिक सुदृढ़ व संगठित हुए तथा आत्मनिर्भरता की ओर कदम बढ़ाते रहे। गुरु घासीदास ने केवल आध्यात्मिक एवं धार्मिक शिक्षा प्रदान कर लोगों को धर्म या आध्यात्म में ही नहीं जोड़ा, अपितु इसकी साधना से लोगों के अंदर उच्च नैतिक शक्ति एवं आत्मबल को प्रबलता प्रदान की। सामाजिक सुदृढ़ता एवं आर्थिक निर्भरता उनकी प्रारंभिक प्राथमिकता थी, जिन्हें अर्जित कर व्यक्ति समृद्ध व सुखी बने। तत्पश्चात वे आत्मकल्याण हेतु धर्म आध्यात्म की ओर प्रवृत्त हुए। उनका यह क्रांतिकारी विचार उनकी अमृत वाणियों में मुखरित है।

इस तरह सतनाम-पंथ का प्रवर्तन सर्वांगीण विकास के लिए किया गया। गुरु घासीदास ने छत्तीसगढ़ एवं उसके बाहर संगठित रूप में इसका प्रचार व विस्तार किया। वे साथ सैकड़ों, हजारों प्रचारकों सहित सुनियोजित

चरणबद्ध तरीके से गाँव-गाँव रामत करते रावतियाँ लगाते। उन्होंने धार्मिक व सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वास, जादू-टोना, तंत्र-मंत्र, दैवीय स्थलों में प्रचलित बलि प्रथा का विरोध कर आम लोगों को पंडे-पुजारियों, मालगुजारों, जमींदारों के आतंक से मुक्त कराया। स्त्रियों की दयनीय दशा तथा उनमें प्रचलित टोनही प्रथा, विधवा प्रथा, सतीप्रथा का भी उन्होंने विरोध कर नारी उत्थान किया। गुरु घासीदास के विराट व्यक्तित्व व तेजस्वी स्वरूप के कारण सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ तथा समाज में उच्च स्तरीय आध्यात्मिक व धार्मिक संस्कार आया। धर्म के प्रारंभिक रूप टोटम या मूर्तिपूजा के स्थान पर व्यक्ति के सद्गुणों को धारण कर सत्य, अहिंसा, परोपकार, समानता जैसे भावों की पूजा की जाने लगी व वास्तविक धर्म की प्रतिस्थापना हुई।

नवजागरण से संदर्भित गुरु घासीदास के योगदान को रेखांकित करते हुए डॉ. हीरालाल शुक्ल लिखते हैं- “गुरु घासीदास भारत के सांस्कृतिक नवजागरण के आदि गुरु थे (ग्रांट 1870 भूमिका XXIX) और उनके पश्चात राजा राम मोहन राय (1858) में ब्रह्म समाज की स्थापना की थी। जबकि गुरु घासीदास ने 1795 में सतनाम पंथ प्रवर्तन कर सतनाम-समाज की स्थापना की थी।) आदि के प्रयासों से भारतीय नवजागरण पल्लवित हुआ।” गुरु घासीदास का नवजागरण भारतीय लोक-परंपरा से संबद्ध था, जबकि राजा राममोहनराय का नवजागरण पश्चिमी परंपरा से प्रेरित था।

गुरु घासीदास के सामाजिक प्रभाव का मूल्यांकन करते हुए छत्तीसगढ़ के प्रथम मुख्यमंत्री अजीत जोगी लिखते हैं, “गुरु घासीदास वास्तव में छत्तीसगढ़ के नैतिक, सामाजिक और धार्मिक प्रवर्तक हैं। आज भी उनके द्वारा प्रारंभ किया गया सतनाम आंदोलन छत्तीसगढ़ के सामाजिक सुधार का केंद्र बिंदु है। वे आधुनिक युग के आध्यात्मिक जीवन के सबसे प्रभावी प्रवर्तकों में से एक हैं।”

निष्कर्ष :

मानव अपने शाश्वत मूल्यों को हटकर मार्ग बदलता है और उसके सामने असमंजस की स्थिति निर्मित होती है तो कहीं-न-कहीं हमारे बीच पुनः शाश्वत मूल्यों को

जागृत करने के लिए संतों, महात्माओं का अवतरण होता है। इन्हीं संतों में गुरु घासीदास का नाम अविस्मरणीय है। निरक्षर होने के उपरांत भी उन्होंने ज्ञान ज्योति जलाकर समाज को नई चेतना प्रदान कर गुरु की महत्ता प्राप्त की। भटकाव की स्थिति में सत्यमार्ग पर जनमानस को गतिमान किया “भटकत हंसा ल सत् मार्ग बताये गुरु”। महान तपस्वी गुरु घासीदास ने अपने मार्ग से विचलित मानव जाति को सत् मार्ग बताया। पीड़ित मानवता के ऊपर हो रहे अत्याचार के खिलाफ धर्मयुद्ध में विजय श्री हो श्वेत ध्वज फहराया।

गुरु घासीदास के उपदेशों एवं अमृत वाणियों का प्रभाव इतना असरकारी था कि अन्य संप्रदाय एवं समाज के लोग भी उनसे गुरु दीक्षा लेकर उनके शिष्य बनने लगे। बाबा घासीदास की आध्यात्मिक ख्याति से तत्कालीन सामंतवादियों के चूल्हे हिलने लगे। गुरु घासीदास जी के

उपदेशों एवं अमृत वाणियों में मानव समाज के सभी आयामों व विषयों में अनुशासन तथा शुचिता के भाव विद्यमान हैं।

इनके साथ ही उनके विचारों में शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक एवं सामाजिक अनुशासन के साथ उपाय नीति निहित है। इसीलिए संत गुरु घासीदास के संदेशों को सतनामी समाज ही नहीं, वरन छत्तीसगढ़ के सर्वसमाज ने आत्मसात किया है। हिंदू एवं जैन धर्माचार्यों ने जीव हत्या, मांसाहार एवं शराब सेवन को सामाजिक रूप में वर्जित किया, वहीं सत्यनाम, मूर्तिपूजा विरोध, जात-पात निषेध सतनाम के प्रमुख सिद्धांत हैं। इन उपदेशों में “बहुजन हिताय बहुजन सुखाय” का मूलमंत्र भी प्रतिध्वनित होता है। गौरतलब है कि अक्षर ज्ञान न होते हुए भी गुरु घासीदास जी समाज को अमृत संदेश दे गए। □

संदर्भ सूची :

1. डॉ. अनिल कुमार भतपहरी, गुरु घासीदास और उनका सतनाम पंथ, बुक पब्लिशिंग, बी.डी. कॉम्प्लेक्स तिफरा, बिलासपुर (छ.ग.)।
2. डॉ. जे. आर. सोनी, सतनाम पंथी, वैभव प्रकाशन, रायपुर छत्तीसगढ़, 2006।
3. टी.आर.खुटे, सतनाम दर्शन, सतनाम कल्याण एवं गुरु घासीदास चेतना संस्थान डी.134, कोण्डली, दिल्ली-110096।
4. साक्षात्कार, श्री अमित जोगी, सुपुत्र स्व. श्री अजीत जोगी (पूर्व विधायक मारवाही छ.ग.), दिनांक - 22.12.2024।
5. साक्षात्कार, माणिकदास साहेब, महाबली टंडन, ग्राम-पीपरडुला (जिला-सारंगढ़-बिलाईगढ़), दिनांक - 31.12.2024।
6. पारंपरिक पंथी गीत सुमरन सारवी, जय सतनाम पंथी पार्टी जुनवानी में प्राप्त।
7. दासश्यामसुंदर, कबीर वाणी, कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ 17, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2010।
8. शुक्ल डॉ. हीरालाल, गुरु घासीदास संघर्ष समन्वय व सिद्धांत, पृष्ठ 206, म.प्र., हि.ग्र. अकादमी, भोपाल।
9. बंजारे देवदास, पारंपरिक पंथी गीत, धनोरा दुर्ग।
10. सुखीराम, चौका आरती, अमरताल जांजगीर, छ.ग.।
11. घृतलहरे, भाऊराम सतनाम दर्शन, भारत प्रिंटिंग प्रेस, बिलासपुर (छ.ग.)।

असमिया और ब्रज के लोकगीत : एक अध्ययन



डॉ. कल्पना साईकीया

शोध सार :

भारतीय संस्कृति बहुत ही समृद्ध है। यहाँ भाषा, परंपराएँ, रीति-रिवाज अनेक प्रकार के हैं। समाज के अनुसार अलग-अलग तीज-त्योहार, लोक परंपराएँ, लोक व्यवहार, लोक गीत हैं, यद्यपि सभी भाषाओं में एक आत्मीय जुड़ाव है, यह जुड़ाव हमारी सांस्कृतिक एकता का प्रतीक है। लोकगीत, लोकसाहित्य का एक प्रमुख अंग है। लोक गीतों में भावनाओं, कल्पना, अलंकार सौंदर्य और गीतात्मकता की सुंदरता की अधिक विविधता होती है। प्राचीन काल से ही, विभिन्न धुनों में गाने की क्षमता लोकगीत का मुख्य आकर्षण रही हैं, जो जनसाधारण के मन को मोहित और आनंदित करती है। लोकगीतों की संरचना अत्यंत सरल है, जो सीधे मन पर प्रभाव डालती है। असमिया और ब्रज के लोकगीत बहुत समृद्ध हैं। साहित्यिक सुंदरता और आनंद प्रदान करने के अलावा, ये गीत जन्म से लेकर मृत्यु तक विभिन्न अनुष्ठानों का अंग रहा हैं।

दोनों भाषाओं के लोकगीतों में मानवीयता, सहानुभूति, परोपकार, भक्ति, सहिष्णुता आदि के भाव विद्यमान हैं। चूंकि मेरा विषय असमिया और ब्रज के लोक गीत है इसलिए मैं अपने अपने इस शोध पत्र में चुनिंदा असम और ब्रज के लोकगीत को यहां प्रस्तुत करूंगी और उनमें किन-किन भावों की अभिव्यक्ति हुई है, उन्हें उजागर करने का प्रयास करूंगी।

बीज शब्द :

लोक साहित्य, संस्कृति, परंपरा, लोक गीत, समाज, रीति-रिवाज आदि।

प्रस्तावना :

लोकगीतों में मानव सभ्यता एवं संस्कृति के विभिन्न चित्र अंकित रहते हैं। लोकगीतों का संबंध प्रायः किसी घटना या विशिष्ट अवसर से होता है। विभिन्न अवसरों पर विभिन्न प्रकार के गीत गाए जाते हैं, जिनमें मानव हृदय की प्रकृत भावनाओं एवं विभिन्न राग वृत्तियों की अभिव्यक्ति होती है। डॉ. श्याम परमार ने लोक गीतों के संबंध में कहा है कि-‘लोकगीत का सृजन संगीत के माध्यम से लोक-रंजक होकर परंपरा में सम्मिलित होने के क्रम में व्यष्टि और समष्टि के भेद को नष्ट कर देता है। किसी व्यक्ति-विशेष द्वारा निर्मित कोई गीत जनमानस को आन्दोलित कर उसके स्पर्दन के स्वरों में मेल खाने लगे और कालांतर में उसी भाँति अथवा थोड़े परिवर्तन के साथ जीवित रहे तथा निरंतर प्रयोग में आता रहे तो वह गीत लोकगीत ही कहलाएगा। उसे लोकगीत की संज्ञा इतिहास और प्रयोग के सहारे प्राप्त होगी। मूल में कोई गीत लोकगीत नहीं कहा जायगा। परिस्थितिवश

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
गुवाहाटी महाविद्यालय
☎ 7002270759
✉ Kalpu21.ghy@gmail.com

समाज में आनुष्ठानिक अथवा औपचारिक मूल्य पाकर विशेष संस्कृति की पृष्ठभूमि में ही वह लोकगीत बनता है।¹

अध्ययन का उद्देश्य :

प्रस्तुत विषय के अध्ययन के पीछे निहित उद्देश्य को निम्नलिखित बिंदुओं में रेखांकित किया जा सकता है।

(क) लोकगीतों में प्रतिफलित मानवीय मूल्यों को दर्शाना।

(ख) लोकगीतों में निहित भावनाओं, अनुभूतियों, संवेगों के महत्व पर प्रकाश डालना।

(ग) लोकगीतों में अभिव्यक्त परंपरागत जीवन एवं चिंतन प्रणाली के विविध रूपों को प्रतिपादित करना।

असमिया और ब्रज के लोकगीत :

लोक-गीत प्रत्येक समाज में पाये जाते हैं। लोकगीतों का संबंध लोक जीवन के सुख और दुख से है। इनमें जन-जीवन के भाव अभिव्यक्त होते हैं। लोकगीतों के संबंध में 'डॉ. भगीरथ मिश्र लिखते हैं- किसी भी जाति के लोकगीत उसकी संस्कृति की धरोहर हैं। वैदिककाल से आज तक के लोकगीतों में हमारी जाति और हमारे समाज का स्वभाव स्पष्ट है। यह वह स्वभाव है कि जिसके बनाने में किसी ने कोई प्रयत्न नहीं किया, यह वह भावना है जो प्राकृतिक जीवन के साथ हमारे अन्तर्गत प्रवेश कर गयी है, यह वह संस्कृति है, जिसका शिक्षा से कोई संबंध नहीं फिर भी लोक-गीतों में प्राप्त संस्कृति के द्वारा हमारा जातीय बल-वैभव, आकांक्षाएँ, लालसाएँ, हृदय की उदारता और करुणा, अत्याचार पर असंतोषादि भावना, प्रकृति के साथ जीवन का लगाव, पशु-पक्षियों से प्रेम, पारस्परिक, पारिवारिक और सामाजिक व्यवहार आदि भली-भाँति स्पष्ट होते हैं।'²

लोकगीत के साथ हमारी आस्थाएँ और परंपराएँ जुड़ी हुई हैं। लोकगीत के संबंध में डॉ. पूरनचंद टंडन कहते हैं 'सामान्य जन की विशेष परिस्थिति में, स्थल, कर्म, संस्कार, भाव-विचार आदि में संबद्ध अनुभूतियों की लयात्मक अभिव्यक्ति से 'लोकगीतों' का सृजन होता है। इसमें रीति-रिवाज, सुख-दुख, परंपराएँ, घात-प्रतिघात, सामाजिक घटनाएँ सभी कुछ साहित्य में रहता है। लोक-

सभ्यता, आचार-विचार, ऋतु वर्णन, व्रत आदि का माहात्म्य, जाति-गीत, श्रम गीत, वीरता के गीत, पूजा के गीत, भक्ति एवं स्तुति के गीत इनमें शामिल रहते हैं। इन्हें लोक-अनुभूतियों की शेष एवं संगीतात्मक अभिव्यक्ति कहा जा सकता है।'³

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि लोकगीतों को उनमें प्राप्त सहजता, रसमयता, मधुरता आदि गुणों के लिए जाना जाता है। भारतीय संस्कृति की विविधता में लोकगीतों का महत्वपूर्ण स्थान है। ये गीत न केवल मनोरंजन का साधन हैं, बल्कि विभिन्न समुदायों की जीवन शैली, परंपराएँ और भावनाओं का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। असमिया और ब्रज लोकगीत, दोनों ही अपनी-अपनी सांस्कृतिक धरोहर को समर्पित है। इस लेख में हम इन दोनों भाषाओं के कुछ लोकगीतों पर चर्चा करेंगे।

पर्व-त्योहारों, ऋतु, एवं अनुष्ठान संबंधी गीत :

लोकगीतों का उद्गम स्थान लोकमानस है और उनकी अभिव्यक्ति लोक भाषा के माध्यम से होती है। असमिया और ब्रज के लोकगीतों में सामान्य जनता के मनोभाव, आकांक्षा, सहानुभूति आदि का चित्रण मिलता है। असमिया समाज का जातीय उत्सव बिहु है। बहाग बिहु में हुसोरी गाने की प्रथा है। हुसोरी लोगों का दल-समुह है, जो घर-घर जाकर नृत्य-गीत करते हैं और गृहस्थ को आशीर्वाद देते हैं। हुसोरी दलवाले कुछ इस प्रकार से गाते हैं-

‘देउतार पदुलित गोंधार् से माधुरी
केतेकी मलेमलाइ ओई गोबिन्दाई राम।’⁴

हुसोरी समास होते ही बिहु नाम गाया जाता है जो इस प्रकार से हैं-

‘एटा बाटित नहरू एटा बाटित पनरू
एटा बाटित खूतरा शाक,
मुरर सुलि सिगी आशीर्वाद करिसू
गृहस्थ कुखले थाक।’⁵

बिहु-नाम के माध्यम से असमिया समाज के लोग अपने सुख-दुःख, आनंद-उल्लास तथा आंतरिक अभिव्यक्ति को वाणी प्रदान करते हैं। प्रेमी-प्रेमिकाएँ भी बिहु नाम के जरिए, एक-दूसरे से अपने प्रेम का निवेदन कुछ इस प्रकार से करते हैं-

‘ऊजाई सालु मई भटीयाई सालु मई
तोरे मान सुवनी नाई,
देवे ओई मारिब मनसे मारिब
तोके जानो अकलोई पाई।’⁶

ब्रज के लोकगीतों में श्रावण, कार्तिक मास के गीत तथा होली के अवसर पर गाय जाने वाले गीत ही प्रमुख हैं। होली का त्योहार ब्रज में हर्षो उल्लास के साथ मनाया जाता है। होली के समय ‘होली खेलो कृष्णा सँग’ जैसे लोकगीत गाए जाते हैं, जो रंगों और उत्साह का प्रतीक होते हैं। होली के समय गाए जाने वाले लोकगीतों की कुछ पंक्तियाँ—

‘होरी तौ खेलूंगी हरि सौ,
कहौ कोई श्यामसुंदर सौ।
आयौ बसंत सभी बन फूले, खेतन फूली है सरसों।
मैं पीरी भई श्याम के विरह में निकसत प्राण अधर-सौं
कहौ जाय बंशीधर सौं।
होरी तौ फागुन में सब होरी खेलत हैं,
अपने अपने वर सौं।’⁷

‘ब्रज प्रदेश के श्रावण गीतों का नामकरण उनमें वर्णित नायिका के नाम के आधार पर किया जाता है जैसे निहालदे, चंदना, चंद्रावती आदि।’⁸ ‘निहालदे नामक गीत का कुछ अंश यहाँ पर लिया गया है—

‘राखियों जी लाज मेरी सरनि गहे की ॥ टेक ॥
बाग हिंडोले अम्मा मेरी परि रहे (जी कोई)
म्हाई पै खिचि रहीं रेशम डोरि (कोई म्वाई पै खिचि रही)
(रेसम डोरि) धरई धढ़ई देऊँ रतन खटोलना (जी कोई)
घरई खिचाई देऊँ रेसम डोरि (कोई धरई खिचाई देऊँ।’⁹

विवाह संबंधी गीत :

असमिया विवाह उत्सव जैसे पानी तुला, गोसाईं पुजा, दुल्हे- दुल्हन का आदर- सत्कार आदि विभिन्न समाहरोहों के दौरान कई प्रकार के गीत गाए जाते हैं। विवाह एक सामाजिक संस्कार है। विवाह के समय पालन किए जानेवाले हर रस्म के साथ जुड़े हुए गीत हैं। जोरन के दिन लड़की के घर मेहमानों एवं रिश्तदारों का तांता लगा रहता है। औरते मिलजुल कर %जोरा नाम% (हास-परिहास) का गीत गाती है—

‘मारार अलंकार
थोआँ काति करि
देउतारार अलंकार थोआँ
तोमार निजाघरर
अलंकार आनिसे
हात जोरे करि लोआँ।’¹⁰

असमिया समाज में विदाई के गीतों में माता-पिता तथा भाई के रोने का बड़ा ही कारुणिक तथा सजीव वर्णन किया गया है—

मरमर मा ओ राखा सोन मोक
केनेकै राखिम मइ जियरी तोक
मरमर देउताओ राखा सुन मोक
राखिव नोवारु जियारी तोक।

ब्रज प्रदेश में भी विवाह जैसे मांगलिक कार्य के समय विभिन्न प्रकार के लोकगीत गाए जाते हैं, जैसे भात गीत, सगाई के गीत, लगन के गीत, बरात आगमन के गीत, गाली गीत, कन्या विदाई के गीत आदि। ये गीत पारंपारिक होते हैं और ब्रज संस्कृति और रीति-रिवाजों को दर्शाते हैं। वर और वधु पक्ष के सभी गीत उत्साह और उल्लास से युक्त होते हैं। इन लोकगीतों में वर और वधू के परिवार की खुशी, उनकी परंपराएँ, और विवाह समारोह की रौनक का वर्णन होता है। जैसे कि भात के गीत, जिनमें भाई से वस्त्र-भूषण माँगने, भाई के अभाव में वधू की चिंता का उल्लेख, बहिन द्वारा गरीब भाई की सहायता आदि अनेक भावों का हृदयस्पर्शी वर्णन मिलता है। भात गीत की कुछ पंक्तियाँ—

‘लड़नी भौजइया मेरे भात में मत लइयो रे भैया
लड़नी भौजइया का टीका मत लइयो रे भैया
मोसे लड़ेंगे, तेरे जीजा से लड़ेंगी भैया.....।’¹¹

विवाह के समय केवल खुशी का ही माहौल नहीं होता, बल्कि परिवारों के बीच विदाई का दुख भी होता है। विदाई के समय गाए जाने वाले गीतों में वधू के परिवार की पीड़ा का वर्णन होता है। कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार से हैं—

बाबुल मोरा नैहर छूटो ही जाय
चार कहार मिल, मोरी डोलि सजावें

मोरा अपना बेगाना छूटो जाये
बाबूल मोरा..... ।

तुलसी-पूजन के गीत :

लोकजीवन में तुलसी के पौधे की पूजा की जाती है। ऐसा माना जाता है कि तुलसी के बिना विष्णु पूजा नहीं होती हैं। इसलिए असमिया लोक कवियों ने तुलसी के प्रति श्रद्धा का भाव रखते हुए कुछ गीतों की रचना की हैं जे इस प्रकार से हैं-

तुलसी तले तले मृग पहु चढ़े
ताके देखि रामचंद्र शर धनु धेरे ।

ठीक इसी प्रकार ब्रज प्रदेश में भी तुलसी के पौधे को भगवान कृष्ण की पत्नी मानकर स्त्रियां सोमवती अमावस्या के दिन मधुर गीत गाती हुई उसकी पूजा करने के लिए जाती हैं। इन गीतों में तुलसी पौधे में श्रद्धा, उसके पूजन से प्राप्त परिणाम, तथा कृष्ण और तुलसी के प्रणय की भावना समाहित है -

‘तुलसी महारानी नमो नमो, हरि की पटरानी नमो नमो ।
जो तुलसी ऐ सबेरे पुगै, भगवान के दरसन पोवे ।’¹²

भक्तिमूलक गीत :

लोकगीतों में धार्मिक भावनाओं, भजन, पूजन आदि धर्म संबंधी विषयों को स्थान दिया गया है। ऐसे तो कई प्रकार के भक्ति गीत हैं परंतु यहां पर हम विशेष रूप से नौ देवी के गीत पर चर्चा करेंगे। असमिया समाज में दुर्गा पूजा के अवसर पर दुर्गा देवी की स्तुति की जाती है। इसका उद्देश्य लोगों की कल्याण की भावना है। कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार से हैं-

‘ओ आई भगवती, ए मंडपे नामिला
सुवर्नर पंचघरे पूजा ओरभीला ।’¹³

ब्रज प्रदेश में भी देवी दुर्गा की पूजा चैत्र और आश्विन मास के शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से नवमी तक उसके भक्त पूजते हैं। इस अवसर पर देवी संबंधी गीत गाया जाता है जो इस प्रकार से हैं :

‘कंद कुठारी डांहुरी औ, चली ओ नंदन वन जाइ,
भवन में गरजति आदिम भवानी ।

कहां उपजी ओ डांहुरी, और कहां मरूअरे के खम्भ
भवन में गरजति ।’¹⁴

कार्य संबंधी गीत :

किसी भी कार्य को आसानी और आनंद के साथ करने के लिए श्रमिक जो गीत गाते गाते हैं, वे ही कार्य संबंधी गीत कहलाते हैं। किसी भी मुश्किल कार्य को आसान बनाने के उद्देश्य से श्रमिक ये गीत गाए जाते हैं- ‘हे जोर, ओहे दे आदि कहते हैं, तो इससे श्रम कम हो जाता है और उन्हें आगे बढ़ने का प्रोत्साहन मिलता है। असम प्रदेश के कृषक भी खेतों में कार्य करते समय कई प्रकार के श्रम गीत गाते हैं, जो उनमें स्फूर्ति का संचार करते हैं। हल जोतते समय कृषक कुछ इस प्रकार से गीत गाते हैं-

‘ओ बूढ़ा हालुआ ओए
हालत हाथिव नरा, कथाई बागरि फुरा,
मन बूढ़ा पागला ओए ।’¹⁵

ब्रज प्रदेश में भी कृषक श्रम-परिहार के लिए गीत गाते हैं। श्रमरत वातावरण में श्रमपूर्ण व्यस्त जीवन बिताते हुए श्रम गीतों का जन्म अनायास ही हो जाता है। श्रम गीतों के माध्यम से कठिन से कठिन कार्यों की नीरसता एवं कठोरता को दूर करने का प्रयास किया जाता है। खेत बोते समय का एक गीत कुछ इस प्रकार से है-

‘हरौ, हरौ, भैया हरौ,
गंगा माई ने करो, महादेव बावा ने करो । हरौ.....
धना भगत को हरि ते हेत, बिना बीज ऐ उपजौ खेत,
बीज भात सब सन्तन बत्तियौ, धना कौ खेत हरी है
आयौ, हरौ.....’¹⁶

लोरियाँ :

माँ का अपने बच्चे से विशेष लगाव होता है, बच्चों के लालन-पालन में इन गीतों को गाया जाता है। इन गानों का मुख्य उद्देश्य बच्चों को मीठी नींद सुलाना, रोना बंद करवाना आदि है। इसलिए इन गीतों में अक्सर पुरानी कहानियों या लोक कथाओं का वर्णन होता है। ये गीत न केवल बच्चों को सुलाने में मदद करते हैं, बल्कि उनमें प्यार, सुरक्षा और सांस्कृतिक मूल्यों का संचार भी करते हैं। असमिया समाज में माँ द्वारा कुछ इस प्रकार से लोरी (निचूकनी गीत) गुनगुनाई जाती हैं-

‘जुनवाई ए, एटि तरा दिया

एटि तरा नालागेदूटि तरा दिया
पात नाई सूत नाई
किहतकोई दिम¹⁷

इसी प्रकार ब्रज प्रदेश में भी छोटे बच्चों को सुलाने के लिए गायी गई लोरी प्रस्तुत है:

‘नींदरिया री नींदनिया, कल्लि कटै तेरी मूँडरिया।’¹⁸

निष्कर्ष :

असमिया और ब्रज के लोकगीतों में भारतीय सांस्कृतिक विरासत को पूर्णरूप से उजागर किया गया है। दोनों क्षेत्र के लोकगीत अपनी-अपनी विशेषताओं के साथ समाज, संस्कृति और परंपराओं को जीवित रखते हैं। असमिया लोकगीत प्राकृतिक सौंदर्य और कृषि जीवन को दर्शाते हैं, वहीं ब्रज के लोकगीतों में भी परंपरा,

संस्कृति, भक्ति और प्रेम का वर्णन मिलता है। लोकगीतों के माध्यम से दोनों क्षेत्रों की संस्कृति को भली-भांति समझा जा सकता है।

आज हमें अपनी संस्कृति को सशक्त बनाने हेतु लोकगीतों के संरक्षण के लिए शोध कार्य करने की आवश्यकता है। मौखिक रूप से प्रचलित लोकगीत को संग्रहित करने के साथ-साथ, आज की नयी पीढ़ी को भी लोकगीतों के प्रति जागरूक करना है। वर्तमान समय में व्यक्तिगत रूप से कार्य करने के अलावा, संस्थागत रूप से भी इसके संरक्षण हेतु कार्य करने की आवश्यकता है। इन दोनों प्रकार के गीतों का अध्ययन हमें हमारी सांस्कृतिक विविधता को समझने में मदद करता है और हमें अपनी जड़ों से जोड़ता है, क्योंकि इसमें हमारी भावनाएं एवं संस्कृति अन्तर्निहित हैं। □

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. डॉ श्याम परमार, मालवी लोकसाहित्य, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 1969. पृष्ठ सं0 41-42
2. डॉ0 भगीरथ मिश्र, ‘अध्ययन’ लखनऊ विश्वविधालय 2005 .पृष्ठ सं0 41-42
3. संपादक डॉ सुरेश गौतम, आलेख, डॉ पुरानचंद टंडन : भारत के लोक साहित्य कोश भाग-1 संजय प्रकाशन, दिल्ली, 2010 , पृष्ठ सं0 395
4. डॉ लीला गोगोई, नोई बोई जाए, बनलता प्रकाशन डिब्रुगढ़, 2006, पृष्ठ सं0 67
5. वहीं पृष्ठ सं0 69
6. वहीं पृष्ठ सं0 25
7. <http://kavitakosh.org/kk>
8. डॉ श्रीराम वर्मा, लोकसाहित्य : सिध्दांत और प्रयोग, श्री विनोद पुस्तक मंदिर, 2020, पृष्ठ सं0 262
9. वहीं पृष्ठ सं0 263
10. डॉ लीला गोगोई, नोई बोई जाए, बनलता प्रकाशन डिब्रुगढ़, 2006, पृष्ठ सं0 205
11. <https://youtu.be/s-8uU8fjc0w?si=ih57Yt-jgAqbcwyn>
12. डॉ श्रीराम वर्मा, लोकसाहित्य : सिध्दांत और प्रयोग, श्री विनोद पुस्तक मंदिर, 2020, पृष्ठ सं0 260
13. हेमन्त कुमार शर्मा, असमिया लोकगीति संचयन, वीणा लाइब्रेरी गुवाहाटी, 2006, पृष्ठ सं0 10
14. डॉ श्रीराम वर्मा, लोकसाहित्य : सिध्दांत और प्रयोग, श्री विनोद पुस्तक मंदिर, 2020, पृष्ठ सं0 262
15. हेमन्त कुमार शर्मा, असमिया लोकगीति संचयन, वीणा लाइब्रेरी गुवाहाटी, 2006, पृष्ठ सं0 240
16. डॉ श्रीराम वर्मा, लोकसाहित्य: सिध्दांत और प्रयोग, श्री विनोद पुस्तक मंदिर, 2020, पृष्ठ सं0 271
17. डॉ लीला गोगोई, नोई बोई जाए, बनलता प्रकाशन डिब्रुगढ़, 2006, पृष्ठ सं0 134
18. डॉ श्रीराम वर्मा, लोकसाहित्य: सिध्दांत और प्रयोग, श्री विनोद पुस्तक मंदिर, 2020, पृष्ठ सं0 301
19. डॉ श्रीराम वर्मा, लोकसाहित्य: सिध्दांत और प्रयोग, पृष्ठ सं0 260

किन्नर समुदाय का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

शोध सार :



ग्लोरी जॉनसन सिंह

शोधार्थी, लवली प्रोफेशनल
विश्वविद्यालय, फगवाड़ा, पंजाब

☎ 9937179956

✉ glory.johnson89@gmail.com

इस शोध आलेख में किन्नर समुदाय को एक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने की कोशिश की गई है। इस समुदाय को सामाजिक उपेक्षा, पारिवारिक अस्वीकृति, और आर्थिक असुरक्षा जैसी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है, जो उनके मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव डालती हैं। कई अध्ययनों में देखा गया है कि किन्नर समुदाय में अवसाद, चिंता और आत्महत्या की प्रवृत्ति बढ़ी है। इस लेख के माध्यम से किन्नर समुदाय के मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर ढंग से समझने के लिए मनोवैज्ञानिक पहलू की महत्ता को रेखांकित किया गया है। किन्नर समुदाय को मानसिक रूप से तथा सामाजिक स्तर पर मजबूत बनाने के लिए एक विस्तृत दृष्टिकोण की आवश्यकता पर जोर दिया गया है ताकि उन्हें समाज में सम्मान और समानता के साथ जीवन व्यतीत करने की आशा उत्पन्न हो सके। इस शोध लेख के द्वारा कोशिश की गई है कि समाज में किन्नर समुदाय के प्रति हमारी सोच और दृष्टिकोण दोनों को ही विस्तृत करने की आवश्यकता है ताकि हमारे समाज में सामंजस्य और समानता का भाव बना रहे।

बीज शब्द :

किन्नर, मानसिक स्वास्थ्य, भेदभाव, अवसाद, सामाजिक सुधार, परामर्श एवं सहायता, आत्मसम्मान, भारतीय संस्कृति, शोषण।

विश्लेषण :



डॉ. बृजेंद्र कुमार अग्निहोत्री

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय
फगवाड़ा, पंजाब

☎ 9918695656

✉ brijendra.26912@lpu.co.in

भारतीय समाज का किन्नर समाज विशेष अंग है। किन्नर, जिसे अक्सर लोग हिजड़ा, छक्का या अंग्रेजी में कहें तो ट्रांसजेंडर जैसे नामों से संबोधित किया जाता रहा है। विभिन्न संस्कृतियों और सभ्यताओं में किन्नर समुदाय को विभिन्न नामों और स्वरूपों में देखा गया है, लेकिन ज्यादातर समाज में इन्हें हाशिए पर रखा गया है। यह एक वैश्विक समस्या है, जहाँ किन्नरों को उनकी पहचान के आधार पर भेदभाव और अन्याय एवं कलंकित होने का सामना करना पड़ता है। मगर देखा जाए तो यह वर्ग हमारे समाज में ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान धारण किए हुए है। भारतीय साहित्य, मिथकों और धार्मिक ग्रंथों में उनके उल्लेख भी मिलते हैं। महाभारत, रामायण और अन्य पुराणों में किन्नरों के जीवन और उनके समाज में स्थान का वर्णन किया गया है। इसका जिक्र पवती कुमारी अपनी किताब 'तीसरी ताली : किन्नर समाज' में लिखती हैं-

“इतिहास में दर्ज किन्नरों की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थिति का मूल्यांकन करें तो हम पाते हैं कि इनकी सामाजिक उपयोगिता केवल शासकों

अथवा नवाबों के हरमों तक थी। इनका सामाजिक अस्तित्व केवल इतना ही था। मुख्यधारा के लोगों में व्याप्त परंपरागत धारणाओं के कारण आज 21वीं सदी में भी उनकी दशा और दिशा ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। यह वैश्विक समाज में स्त्री-पुरुष से इतर तीसरी योनि के लोगों की ऐसी दुनिया है, जो शहर में रहकर हाशिए पर जिंदगी जीते हैं। यह तबका अस्तित्वहीन जीवन जीता है और एक दिन गुमनामी की मौत मर जाता है।¹

किन्नर समुदाय समाज में दोहरे संकट का सामना करते दिखता है। पहला, वह समाज में किन्नर पहचान को लेकर तिरस्कारित होता है। दूसरी ओर अपने अस्तित्व की स्वीकृति को लेकर संघर्ष करता है। यह संघर्षपूर्ण जिंदगी उनके मानसिक स्तर पर बहुत गहरा असर करती है, जिसके फलस्वरूप किन्नर समुदाय का जीवन अवसादपूर्ण होता जा रहा है तथा आत्महत्या की ओर बढ़ रहा है। किन्नर समुदाय की मनःस्थिति और उसके संघर्ष का अध्ययन ही किन्नर मनोविज्ञान है। किन्नर मनोविज्ञान का अध्ययन हमें यह समझने में मदद करता है कि कैसे समाज, संस्कृति और व्यक्तिगत अनुभव उनके मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालते हैं, जिसके कारण उनका जीवन अवसादपूर्ण बन जाता है।

मनोविज्ञान का परिचय : विलियम जेम्स की किताब *The Principles of Psychology* अनुसार— “मनोविज्ञान की सर्वोत्तम परिभाषा यह हो सकती है कि यह चेतना की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन और व्याख्या करता है।” किन्नर समुदाय के लोग अपने अस्तित्व, पहचान तथा समाज में उपेक्षित जीवन जीने और इससे जुड़े मानसिक और भावनात्मक पहलुओं को किस प्रकार से अनुभव करते हैं। इसे विस्तार से समझते हैं :-

(1) लिंग पहचान और उसका प्रभाव : किन्नर समुदाय की मनोस्थिति को समझने के लिए सबसे पहले उनकी लिंग पहचान को समझना महत्वपूर्ण है। किन्नर, समुदाय को ‘तीसरे लिंग’ के रूप में पहचाना जाता है, यह न तो मूल्य रूप से पुरुष होते हैं और न ही महिला। उनकी लिंग पहचान को लेकर समाज में भ्रम और उलझन है। समाज के लोग इनसे संबंध या बोलचाल करने में भी

बड़ी हेय नजरों से देखते हैं। किन्नर पहचान के कारण समाज के कई क्षेत्रों में उनसे भेदभाव का व्यवहार किया जाता रहा है, जिसके कारण उनके आत्मसम्मान पर गहरा प्रहार होता है और अपने आप को वह कलंक के रूप में देखने लगते हैं। समाज में नकारात्मक प्रतिक्रियाओं या व्यवहार से डर के किन्नर समुदाय अपनी पहचान को छुपाने की कोशिश करता है। इससे उनके मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जिससे अवसाद, अपराधबोध जैसी समस्याओं का सामना करते हैं। डेविड मेयर अपनी किताब *Psychology* में लिखते हैं :-

“*The anxiety disorders are marked by distressing, persistent anxiety or dysfunctional anxiety-reducing behaviors. Let's take a closer look at three of them: Generalized anxiety disorder, in which a person is unexplainably and continually tense and uneasy. Panic disorder, in which a person experiences panic attacks—sudden episodes of intense dread—and fears the unpredictable onset of the next episode. Phobias, in which a person is intensely and irrationally afraid of a specific object, activity, or situation*”²

चिंता विकार ऐसी मानसिक समस्या होती है, जिसमें व्यक्ति को जरूरत से ज्यादा डर और चिंता महसूस होती है। इसमें कुछ प्रकार हैं — सामान्य चिंता, अचानक डर लगना (पैनिक), लोगों से मिलने-जुलने में घबराहट (सोशल एंग्जायटी) और किसी खास चीज से बहुत ज्यादा डर (फोबिया)। इसके लक्षणों में मन में बेचैनी के साथ-साथ शरीर में भी असर होता है, जैसे - दिल तेज धड़कना, पसीना आना, और घबराहट महसूस होना। वैज्ञानिकों का मानना है कि इन समस्याओं के पीछे हमारे शरीर की बनावट, सोचने का तरीका और हमारे आसपास का माहौल जिम्मेदार हो सकता है।

(2) सामाजिक अस्वीकृति और मानसिक स्वास्थ्य : किन्नर समुदाय की मानसिक स्थिति पर समाज की अस्वीकृति का गहरा असर पड़ता है। मेयर अपनी किताब *Prejudice, Social Stress, and Mental*

Health in Lesbian, Gay, and Bisexual Populations में कहते हैं :-

*“Researchers preferred explanation for the cause of the higher prevalence of disorders among LGB people is that stigma, prejudice, and discrimination create a stressful social environment that can lead to mental health problems in people who belong to stigmatized minority groups”*³

जब कोई अल्पसंख्यक समूह बार-बार भेदभाव झेलता है और उनके पास समझने या सहायता करने वाला कोई नहीं होता तो उन्हें डिप्रेशन, चिंता जैसी मानसिक समस्याएं हो सकती हैं। किन्नर समुदाय को भी ऐसा ही सामना करना पड़ता है। बहुत से किन्नरों को उनका अपना परिवार, समाज और कई बार खुद का समुदाय भी अपनाने से इनकार कर देता है। जब किसी को अपने ही घर से तिरस्कार मिले तो उसका दिल टूट जाता है और मानसिक रूप से बहुत असर होता है। इस अस्वीकार की वजह से किन्नर खुद को अकेला, असुरक्षित और परेशान महसूस करते हैं। समाज उन्हें पूरी तरह से नहीं अपनाता, जिससे वे अंदर से टूट जाते हैं। यही वजह है कि किन्नर लोग अक्सर अपने भावनाओं से जूझते रहते हैं और उनका मानसिक स्वास्थ्य कमजोर होता चला जाता है।

(3) आर्थिक असुरक्षा और उसका मानसिक प्रभाव : किन्नर समुदाय के लोगों को अक्सर ट्रेन, बस, ट्रैफिक सिग्नल पर भीख माँगते ही देखा जाता है। वह इसलिए, क्योंकि उनको शिक्षा और रोजगार के अवसरों से वंचित कर दिया जाता है। उनकी किन्नर पहचान ही समाज में उनके भेदभाव का सबसे बड़ा कारण होता है। समाज की नकारात्मक प्रतिक्रियाओं के कारण उन्होंने अपने लिए एक पूर्वाग्रह स्थापित कर लिया है कि समाज उनको हर आगे बढ़ने वाले मौके से वंचित ही रखेगा। इसीके फलस्वरूप बहुत से किन्नर भीख माँगना ही मुनासिब समझते हैं। कम उम्र में ही घर को छोड़ देने के कारण उनकी शिक्षा पूरी नहीं हो पाती है। कई कॉलेज एवं स्कूल में भी इनसे अमानवीय व्यवहार किया जाता रहा है, जिसके कारण अधिकतर किन्नर व्यक्ति अपनी शिक्षा पूरी

नहीं करते और अपने किन्नर समुदाय के डेरे में शामिल होने का फैसला लेते हैं। फलस्वरूप आर्थिक असुरक्षा का डर उनके मानसिक स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव डालता है। जब कोई व्यक्ति अपने भविष्य को लेकर असुरक्षित महसूस करता है तो वह नकारात्मक सोच से ग्रस्त हो जाता है, जैसे-अयोग्यता, असहायता या निराशा की भावनाएँ, आत्म-सम्मान की कमी को जन्म दे सकती है, जिससे उनका मानसिक स्वास्थ्य और अधिक बिगड़ सकता है। डॉ. सुहानी ठाकोर अपनी किताब 21वीं सदी के हिंदी उपन्यास में किन्नर जीवन का यथार्थ में लिखती हैं :-

“शिक्षा से बड़ी कोई संपत्ति नहीं है। जो शिक्षित नहीं, पशु समान ही माना जाता है। हिजड़ों की शिक्षा हेतु कोई स्कूल नहीं है। इसलिए हिजड़े ज्यादातर अशिक्षित होते हैं। हिजड़ा बच्चा है, इसलिए सामान्य बच्चों जितनी सुख-सुविधा नहीं मिलती। स्कूल में भी उसके लिए कोई अलग से व्यवस्था नहीं है। कभी-कभी शिक्षकों द्वारा भी भेदभाव भरा बर्ताव किया जाता है।”⁴

(4) धार्मिक और सांस्कृतिक प्रभाव : धार्मिक और सांस्कृतिक मान्यताएँ भी किन्नर समुदाय की मनोस्थिति को प्रभावित करती हैं। ऐतिहासिक रूप से, किन्नरों को भारत में विशेष दर्जा प्राप्त था और उन्हें समाज में एक विशिष्ट स्थान दिया जाता था। मगर सन 1871 ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार के अंतर्गत आपराधिक जनजाति अधिनियम के भाग II के तहत उनका अपराधीकरण किया गया, जिसका विवरण Historical Evolution of Transgender Community in India में किया गया है।

“Through the onset of colonial rule from the 18th century onwards, the situation changed drastically. Accounts of early European travelers showed that they were repulsed by the sight of Hijras and could not comprehend why they were given so much respect in the royal courts and other institutions. In the second half of the 19th century, the British colonial administration vigorously

*sought to criminalize the hijra community and to deny them the civil rights. Hijras were considered to be separate caste or tribe in different parts of India by the colonial administration. The Criminal Tribes Act, 1871, this included all hijra who were concerned in kidnapping and castrating children and dressed like women to dance in public places. The punishment for such activities was up to two years imprisonment and a fine or both. This pre-partition history influences the vulnerable circumstances of hijra in this contemporary world."*⁵

इस अधिनियम भाग II के अंतर्गत हिजड़ों को उस अपराधिक रूप में दिखाया गया है, जो बच्चों का अपहरण करते हैं, उनके जननांग को काट कर उन्हें नपुंसक बनाते और औरतों की तरह कपड़े पहना कर उनको चौराहों में नचाया जाता था। जब एक व्यक्ति विशेष अपनी सामान्य जीवन को छोड़कर किन्नर समुदाय में शामिल होने का फैसला लेता है तो किन्नर समुदाय द्वारा ही कई प्रकार की रूढ़िवादी रस्में कराई जाती हैं, जिसे हर किन्नर व्यक्ति को निभाना अनिवार्य होता है। रेनू बहल के उपन्यास 'मेरे होने में क्या बुराई है' में किन्नर समुदाय की कई रस्मों और उनकी संस्कृति का जिक्र किया गया है, जैसे-ताली कैसे बजाना है, लोगों से खुशामद कर के कैसे पैसे निकलवाने हैं और पैसे नहीं दिए जाएँ तो उनको कैसे तंग करना है और हर किन्नर को बधाई लेने जाना अनिवार्य है, तभी वह किन्नर डेरे में आने के योग्य होगा तथा निरवाना जैसे दर्दनाक रस्में, जिसमें जननांग अलग करने की प्रक्रिया होती है, करनी पड़ेगी। ऐसे रूढ़ि मान्यताओं को मनना जरूरी होता है।

हिजड़ों को ट्रेनिंग दी जाती है कि ताली किस तरह बजानी है, ताली बजाने का एक खास अंदाज होता है। हथेलियों को जोड़कर बजाते हैं। किस तरह लोगों की खुशामद करके उनकी जेब से पैसे निकलवाने हैं और अगर वे जेब हल्की नहीं करते तो किस तरह उन्हें तंग करना है, ताकि वे पैसे देने पर मजबूर हो जाएँ। 'मुझे इस सबकी कोई जरूरत नहीं।' मैंने कन्धे उचकाकर लापरवाही से कहा। 'जानती हूँ तुम पढ़ी-लिखी हो, तुम्हें इनकी

जरूरत नहीं, मगर तुम्हें ये सब रीति-रिवाज सीखने होंगे। ताली किस तरह बजाते हैं और बधाई में किस तरह नाचते-गाते हैं। कम-से-कम सात बार तुम्हें बधाई पर जाना होगा, तब कहीं जाकर तुम पूरी तरह हिजड़ा कुबूल की जाओगी।' ⁶

जो किन्नर व्यक्ति पढ़े-लिखे होते हैं, उन्हें घर-घर जाकर बधाई लेना बड़ा ही अपमानित महसूस होता होगा, मगर हर किन्नर व्यक्ति को इन सारी चीजों को निभाना अनिवार्य है तथा अपनी कमाई का आधा हिस्सा किन्नर डेरे की गुरु माँ को देना होता है। इस प्रकार का दायित्व तथा एक उपेक्षित जीवन किन्नर के लिए बोझ-सा प्रतीत होता है, जिसके कारण अक्सर किन्नर व्यक्ति मानसिक तनाव तथा समाज की प्रताड़नाओं से हार जाता है और आत्महत्या जैसे निर्णय ले लेता है।

(5) शारीरिक एवं मानसिक स्थिति : किन्नर समुदाय अक्सर अंतर-व्यक्तिगत संबंधों में जुड़े रहते हैं। समाज द्वारा नकारा गया किन्नर व्यक्ति सच्चे प्रेम से वंचित रहता है। मगर जब वह किसी से प्रेम संबंध स्थापित करते हैं तो समाज उनके रिश्ते को अक्सर असामान्य या हेय दृष्टि से देखता है। जो लोग किन्नर व्यक्ति से रिश्ता भी बनाते हैं, उनको यह रिश्ता समाज के सामने लाने में डर लगा रहता है। इसलिए किन्नर व्यक्तियों के संबंध स्थायी नहीं रहते। वह कई अंतर व्यक्तिगत संबंध में जुड़े रहते हैं। इससे सीधे उनके मनोभाव को ठेस पहुँचती है। साथ ही साथ कई बीमारियाँ जैसे एड्स उनके जीवन को घर कर लेती हैं।

पारू मदन नाईक की उपन्यास 'मैं क्यों नहीं?' में एड्स का चित्रण किया गया है:-

"अभी तुमने कहा ना कि, हमारा जीवन एड्स से अधिक भयानक है। सच कहा तुमने। हमारा जीवन है ही एड्स से अधिक भयानक, परंतु इसका ये मतलब तो नहीं कि जानबूझकर एड्स को आमंत्रण दिया जाए? एड्स का स्पर्श नहीं होता तब तक तुम्हें ऐसा लगेगा! एक बार खुली आँखों से एड्स के मरीजों को देखो। आँखें खुली की खुली रह जाएँगी। आज तुम्हें अपने रूप पर गर्व है। तुमसे अधिक रूपवानों की क्या अवस्था हुई है, मैंने

अपनी आँखों से देखा है। एक बड़ी बहन के नाते इस कड़वे सच को तुम्हारे सामने रख रही हूँ। अब इसके आगे जैसा तुम चाहो।”⁷

किन्नर समुदाय को मूलभूत इलाज पाने के लिए भी उन्हें संघर्ष करना पड़ता है। कई अस्तपतलों में उनके इलाज को लेकर भेदभाव भी किया जाता रहा है। किन्नर व्यक्तियों की जिंदगी के हर पहलू में उन्हें धिक्कारा जाता रहा है। इनके मानसिक स्थिति अक्सर तनावपूर्ण और अवसाद से भरी हुई रहती है। जिंदगी की हर दिशा में नकारात्मकता इन्हें अपने जिंदगी से समाप्त करने के लिए अक्सर उत्तेजित करती है। जो इस संघर्ष से हार जाते हैं वह अक्सर अपनी जिंदगी को मौत के हवाले कर दिया करते हैं।

निष्कर्ष :

इस लेख के माध्यम से यह समझने की कोशिश की गई है कि किन्नर समुदाय केवल सामाजिक तौर पर ही नहीं, बल्कि मानसिक, भावनात्मक और आर्थिक स्तर पर भी गहरे संघर्षों से गुजरता है। समाज की अस्वीकृति, पारिवारिक तिरस्कार, शिक्षा और रोजगार की कमी और

प्रेम संबंधों में उपेक्षा जैसी कई समस्याएँ उनके मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा असर डालती हैं।

किन्नर व्यक्तियों को न केवल बाहरी दुनिया से लड़ना पड़ता है, बल्कि अपने अस्तित्व को स्वीकार कराने के लिए भी निरंतर संघर्ष करना पड़ता है। यह संघर्ष उन्हें भावनात्मक रूप से तोड़ देता है और कई बार उन्हें अवसाद, चिंता और आत्महत्या जैसे खतरों की ओर ले जाता है।

ऐतिहासिक अन्याय, धार्मिक रूढ़ियाँ और सामाजिक भेदभाव ने किन्नर समुदाय को हाशिए पर पहुँचा दिया है। लेकिन इसके बावजूद वे आज भी अपनी पहचान और अधिकारों के लिए आवाज उठा रहे हैं। समाज की यह जिम्मेदारी बनती है कि वह किन्नर समुदाय को केवल ‘दया’ की दृष्टि से नहीं, बल्कि बराबरी और सम्मान की दृष्टि से देखे। उनके मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा के लिए ऐसी व्यवस्था बननी चाहिए, जो किन्नर लोगों की मदद कर सके। जब तक हमारी सोच नहीं बदलेगी, तब तक किन्नर समुदाय का संघर्ष खत्म नहीं होगा। यह लेख इस बात पर जोर देता है कि हमें अपने नजरिए में बदलाव लाना होगा, तभी एक समावेशी, न्यायसंगत और संवेदनशील समाज की स्थापना संभव हो पाएगी। □

संदर्भ :

1. पवर्ती, कुमारी, तीसरी ताली : किन्नर समाज, वाणी प्रकाशन, 2019, पृष्ठ-38.
2. Meyer, G. David. and DeWall, Nathan. Psychology. Worth Publisher, 2015. Pg 4-5.
3. Meyer, Illan. Prejudice, Social Stress, and Mental Health in Lesbian, Gay, and Bise&ual Populations: Conceptual Issues and Research Evidence. Psychol Bull September. 129(5), 2003, Pg: 674-97.
4. ठाकुर, डॉ. सुहानी. 21 वीं सदी के हिंदी उपन्यास में किन्नर जीवन का यथार्थ, विकास प्रकाशन, 2025. पृ. 170.
5. M. Michel Raj. Historical Evolution of Transgender Community in India, y ASIAN REVIEW OF SOCIALSCIENCES 18, 2022. पृ. 17-19.
6. बहल, रेनू. मेरे होने में क्या बुराई है, सामयिक प्रकाशन, 2020, पृ.-36.
7. नाईक, पारू मदन. मैं क्यों नहीं ?, राजकमल प्रकाशन, 2012, पृ.- 53

तेजेंद्र शर्मा के कहानी संग्रह 'मौत एक मध्यांतर' में बाजारवाद



पूर्णमा सिंह

शोधार्थी, हिन्दी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय

☎ 8638611129

✉ purnimaraisingh@gmail.com

शोध-सार :

प्रवासी साहित्य में बहुचर्चित नाम है तेजेंद्र शर्मा, जो अपनी कहानियों के लिए चर्चा में बने रहते हैं। उन्होंने कविता, गजल, शायरी इत्यादि पर अपनी लेखनी चलाई है, परंतु विशेष रूप से वे अपनी कहानियों के लिए जाने जाते हैं। तेजेंद्र शर्मा द्वारा रचित कहानी संग्रहों में से एक महत्वपूर्ण संग्रह 'मौत एक मध्यांतर' है, जिसका प्रकाशन 2019 में हुआ। इस संग्रह में तेरह कहानियां हैं। इस संग्रह के माध्यम से पाठकों को वर्तमान परिवेश से परिचित करवाने का प्रयास किया है, जिसमें मुख्यतः बाजारवाद है। इस शोधपत्र द्वारा उन्हीं सच्चाइयों को समाज के सामने लाने का प्रयास किया गया है, जिनका सामना व्यक्ति कर रहा है, परंतु उस कटु सत्य को स्वीकारने में संकोच करता है, जिस तरह से मनुष्य अपनी भावनाओं में बहकर कुछ ऐसे निर्णय ले लेता है, जिसका असर उस पर पड़ता है, साथ ही उससे जुड़े रिश्ते भी प्रभावित होते हैं। मृत्यु और जीवन यथार्थ है। इस पर किसी का कोई बस नहीं है। इस विषय को लेकर मनुष्य की सोच किस प्रकार की है। इसका सूक्ष्म वर्णन इस शोध पत्र में किया गया है।

बीज शब्द :

जीवन, संघर्ष, बाजारवाद, संवेदना, यथार्थ।

प्रस्तावना :

जीवन अनमोल है, और उसके साथ जुड़े रिश्ते भी, परंतु बाजारवाद के प्रभाव से रिश्तों पर काफी प्रभाव पड़ा है। जो कुछ देश-विदेश में घटित हो रहा है। सभी में मनुष्य आधार स्वरूप है और उनकी भावनायें एवं परिस्थितियां, कुछ परिस्थितियां एवं घटनाओं को लेखक कभी नहीं भूल पाता। वहीं घटनाएँ जब कहानी का स्वरूप लेती हैं। जिनके प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से मनुष्य परिचित हैं, परंतु उनके भयानक परिणाम से अंजान हैं। वर्तमान परिवेश में मनुष्य के जीवन में आधुनिकता का प्रभाव जिस तेजी से पड़ रहा है, उसका असर रिश्तों पर देखने को मिल रहा है। साथ ही एक दूसरे की भावनाओं के प्रति उदासीनता देखने को मिलती है। जिसके कारण रिश्ते प्रभावित हो रहे हैं। संग्रह की कहानियों के नाम इस प्रकार हैं 'बुशी का भूत' हथेलियों में कंपन, सुनो -तुम सच कह रही हो ... ?, गंध, जिंदगी और मौत के बीच की चुप्पी, विलज्जिन जंक्शन, प्यार की इंटेलेक्चुअल जुगाली, अंधेरे - उजाले, पशु -धन -पशु, कशमकश, शवयात्रा...!, मौत एक मध्यांतर।



डॉ. कुसुम कुंज मालाकार

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, कॉटन विश्वविद्यालय

☎ 9864023568

✉ kusumkunja@gmail.com

उद्देश्य :

शोधपत्र का मूल उद्देश्य है मनुष्य को उन तथ्यों से अवगत करवाना जिनका सामना वह अपने दैनिक जीवन में करता है परंतु उनके भयानक परिणाम से अंजान है। लेखक के इस संग्रह द्वारा इस गूढ़ विषय पर विचार रखने का प्रयास किया गया है। तेजेंद्र शर्मा के शब्दों में 'कहानियां ऐसी हो जो आम आदमी से लेकर खास आदमी तक की जिंदगी का सही आंकलन करें।' उनका कहानियां शहरी जीवन से संबंधित है। जीवन में घटित होने वाली उन घटनाओं का वर्णन किया है। जिससे केवल वही व्यक्ति प्रभावित नहीं होता। उनसे जुड़े व्यक्तियों को भी प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से प्रभावित करता है। एक समय था जब काल्पनिक घटनाएँ कहानियों की विषय-वस्तु होती थी परंतु अब कहानी का विषय यथार्थ घटनाएँ हैं। उन यथार्थ से व्यक्ति विमुख नहीं हो सकता।

बाजारवाद और मानवीय संवेदना :

वैश्विकता के दौर में मनुष्य को भौतिकता के सभी साधन सहजता से उपलब्ध हो रहे हैं, परंतु रिश्तों में गहरा खोखलापन आ गया है। जीवन सभी ओर से संकुचित होते जा रहा है। इस संग्रह की कहानी प्यार की इंटेलेक्चुयल जुगाली की नायिका ममता आध्यात्मिक प्यार में भविष्य देखती है वही उसका दोस्त मानव प्यार की यथार्थ तस्वीर से परिचित करवाता है। ममता कहती है 'सच तो यह है जब से आप से इश्क हुआ है मैं अपने आप में रहती हूँ कहाँ हूँ ... पति बच्चे परिवार सब पराए से लगने लगे हैं... लगता है कि यह पूरी कायनात आपसे शुरू हो कर आप पर ही खत्म हो जाती है।' अपने पारिवारिक जीवन से नाखुश ममता जो खुशी मानव में खोजने का प्रयास करती है, उसके हाथ मायूसी लगती है। सच्चे प्यार की खोज के लिए बाह्य परिदृश्य का सहारा लेती है। मानव जीवन के उन पहलुओं से परिचित करवाता है, जिससे ममता अंजान है। इस तरह की घटनाएँ मनुष्य के पारिवारिक जीवन में घटित होती रहती हैं। उनका प्रभाव मनुष्य की मानसिक स्थिति पर पड़ता है। जैनेंद्र के अनुसार 'घटना होती है। अपने आप में न वह अश्लील होती है, न शिष्ट। हमारा उस घटना के साथ क्या नाता है, उसके प्रति क्या

वृत्ति है - अश्लीलता इस पर निर्भर करती है' ³ 'सुनो तुम सच कह रही हो' की नायिका गृहस्थी की गाड़ी को चलाने के लिए वेश्यावृत्ति का रास्ता चुनती है, पुरुष अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए बाजार की ओर आकर्षित होता है। कुछ परिस्थितियाँ मनुष्य को सहजता से अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं, परंतु यह बाजार नायक के मन में अनगिनत सवाल खड़े कर देता है। 'तुमने कभी सोचा है कि तुम्हारे परिवार को अगर पता चल जाए कि तुम क्या नौकरी करती हो तो उन पर क्या बीतेगी। बच्चों के भविष्य का क्या होगा?' ⁴ इतनी सहजता से नायिका उत्तर देती है, लगता है इस काम को करने का उसे कोई अफसोस नहीं है। वह अपने कर्तव्य का पालन कर रही है परन्तु पुरुष की मानसिक स्थिति पर उसका गहरा प्रभाव पड़ता है। 'हथेलियों में कंपन' के नरेन मौसा अपने रिश्तेदारों की अस्थियाँ विसर्जित करते समय पंडितों से कुछ पैसों को लेकर उलझ पड़ते, 'परंतु आज उनके हाथ में उनके पुत्र की अस्थियाँ हैं। तीस वर्षीय पुत्र... हमारे घरों में शायद सभी पुत्रों को काका ही कहा जाता है ...' ⁵ नरेन मौसा का इकलौता पुत्र कैंसर को हरा नहीं पाता। इस दुर्घटना से नरेन मौसा पूरी तरह से टूट चुके थे इस घटना के कंपन को लेखक ने अपनी जिंदगी में अनुभव किया था।

आज आवश्यकता के अनुरूप बाजार में साधन उपलब्ध है परंतु व्यक्ति की मानसिक स्थिति को समझने वाला कोई नहीं है। इसका मार्मिक चित्रण तेजेंद्र शर्मा की कहानियों में मिलता है।

रिश्तों का खोखलापन :

मनुष्य का प्रकृत स्वभाव है किसी के दुख में दुखी होना, किसी के सुख में सुखी होना। उनके विचारों का सम्मान करना यह भारतीय परंपरा है। आपसी रिश्तों में प्रेम, स्नेह, करुणा, सहानुभूति और एक दूसरे के प्रति सम्मान की भावना मानवीय संवेदना है। यांत्रिक युग के प्रभाव ने व्यक्ति के जीवन को काफी प्रभावित किया है। लोगो की भावना से खेलना व्यक्ति का स्वभाव हो गया है। शवयात्रा कहानी का पात्र 'हमारे प्यारे लेखक नरेन जी को कैंसर जैसे घातक रोग ने घेर लिया है। हम सब

दुआ करते हैं कि वे अस्पताल से पूरी तरह ठीक हो कर लौटे।'⁶ लोगो से व्हाट्सप और फेसबुक पर सहानुभूति पाने की इच्छा ने नरेन का झूठा नाटक कब सच में परिवर्तित हो गया। मीडिया के प्रभाव से व्यक्ति का जीवन बुरी तरह प्रभावित होता है, इसका यथार्थ वर्णन इनकी कहानियों में मिलता है। मृत्यु जैसे संवेदनशील विषय को लेकर मजाक बनाने में व्यक्ति संकोच नहीं करता। भावनाओं को समझने के लिए किसी के पास समय नहीं है। पात्रों के माध्यम से लेखक उन विषयों से परिचित करवाते हैं इस संग्रह की प्रथम कहानी 'बुशी का भूत' के नायक की मन:स्थिति का यथार्थ जिसका नाम फिलिप है। वह अपनी नौकरी के बीस वर्षों में कभी छुट्टी नहीं लेता। अपने काम को भगवान की सेवा मानता है। लोग यह सुनकर हैरान होते हैं। लोगो का प्रश्न फिलिप से होता है, तब सहजता से जवाब होता है 'शादी नहीं की न'⁷ पारिवारिक दायित्व न होने के कारण फिलिप ने बीस वर्षों में कभी छुट्टी नहीं ली। जिस बात को वह इतने फक्र से कहकर लोगो का मुंह बंद कर देता था। उसी दौरान फिलिप को निकल एलर्जी नाम की भयानक बीमारी हो जाती है, जिस कारण उसकी नौकरी पर खतरा मंडराने लगता है। फिलिप भयभीत होता है, उसे लगता है, मैनेजमेंट उसे नौकरी से निकाल देगा, परंतु उसके सोच के विपरीत घटना घटित होती है। मैनेजमेंट फिलिप के सर्विस रिकॉर्ड और उसकी कर्मठता से काफी प्रभावित था। उसे स्टेशन के अन्य काम में व्यस्त कर दिया जाता है। उनकी सहानुभूति फिलिप के प्रति रहती है। इस घटना का फिलिप की मानसिक स्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ता है। संवेदनशील व्यक्ति घटना की गहराई को आम लोगों की अपेक्षा इतनी अधिक तीव्रता से अनुभव करता है कि वे सारी अनुभूतियाँ उसकी 'अपनी' हो जाती हैं जिसे वह साहित्य की विभिन्न विधाओं के माध्यम से संप्रेषित करता है। कुछेक परेशानियों से लेखक का जीवन भी प्रभावित हुआ है। पत्नी की मृत्यु का असर उनकी कहानियों में दिखता है। जिंदगी और मौत के बीच की चुप्पी, शव यात्रा, मौत एक मध्यांतर की कहानियों में मिलता है। कुछ घटनाएँ मनुष्य का जीवनपर्यंत पीछा नहीं छोड़ती। मौत एक मध्यांतर का पात्र पुनीत पैनक्रियाज के कैंसर से पीड़ित है, परंतु पत्नी को समझाता

है मौत एक हादसे से बढ़ कर कुछ भी नहीं पुनो... हमारा तुम्हारा रिश्ता ऐसा नहीं कि आंख ओझल तो पहाड़ ओझल ... मैं तुम्हारे दिल में रहता हूँ ... यह केवल एक मध्यांतर है ... मौत जिंदगी का अंत नहीं है... याद रखना ...'⁸ हरजीत परिवार की हर जरूरतों को पूर्ण करने में कुछ हद तक सफल हो जाता है, परंतु अपने जीवन की लड़ाई में हार जाता है। यह जीवन का कड़वा सच है। 'मृत्यु न जाने कितने रंगों, रूपों, कितनी छवियों, अंतर्दृष्टियों से तेजेंद्र की कहानियों में झांकती है। ऐसा लगता है कि तेजेंद्र शर्मा जीवन के ही नहीं मृत्यु के भी शोधार्थी है।'⁹ व्यक्ति अपने जन्म के साथ भाग्य लेकर आता है कुछ अपने भाग्य के साथ जीने को मजबूर हो जाते हैं और कुछ उन परिस्थितियों के सामने नतमस्तक हो जाते हैं। तेजेंद्र की रचनाएँ किसी विचारधारा से नहीं, वरन जीवन के सत्य से खुराक लेती हैं।'¹⁰ तेजेंद्र जी की कहानियों में विचार की प्रमुखता है साथ ही उनकी कहानियों में वह विचार है, जोकि मनुष्य को बहुत कुछ सोचने को मजबूर करते हैं, और पाठकों के मन में अनगिनत सवाल छोड़ देते हैं। जीवन के साथ-साथ दुख और सुख चलते रहते हैं रचनाकार ने जिन घटनाओं का उल्लेख किया है। उनका सामना प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप में उन्होंने अपने जीवन में किया है। धर्मवीर भारती ने तेजेंद्र शर्मा के विषय में 'तेजेंद्र के पास समस्याओं को उठाने का साहस है, पात्र निर्माण करने की शक्ति है, कथानक का निर्वाह है ...।'¹¹ जिन समस्याओं को अपनी कहानियों के माध्यम से उठाया है, उसको समाज के सम्मुख रखना उतना सहज नहीं था परंतु लेखक ने उन परिस्थितियों को स्वयं अनुभव किया है। 'गंध' कहानी की नायिका भूमि नीच जाति से है और उसने प्रेम एक ब्राह्मण से किया। घर वालों के विरुद्ध जाकर दोनों ने विवाह कर लिया। मन में स्थायी खुशी नहीं रही। विवेक ने अपने तरफ से कोई कमी नहीं रखी। परंतु वह अपने जाति-पाति के बंधन से पूर्णरूपेण मुक्त नहीं हो पायी। वह विवेक से कहती है 'हम दलित यह भी चाहते हैं कि लोग हमें दलित न कहें... न समझे ... मगर हम अपनी सुविधाओं को खोना भी नहीं चाहते... हमें आरक्षण भी चाहिए और सम्मान भी।'¹² कहानीकार ने इस कहानी की नायिका के द्वारा अंतरजातिय

विवाह और आरक्षण के मुद्दे को जिस प्रकार से समाज के समुक्ख रखा है यह विचारणीय है। साथ ही भूमि की मानसिक अंतर्द्वंद को पाठक के सामने रखा है। समाज में जिस गति से मानव के हाव-भाव में परिवर्तन और मानव मूल्यों का पतन देखने को मिल रहा है। इस विषय पर नंददुलारे वाजपेयी का कथन 'यथार्थवाद वस्तुओं की पृथक-पृथक सत्ता का समर्थक है। वह समष्टि की अपेक्षा व्यष्टि की और अधिक उन्मुख रहता है। यथार्थवाद का संबंध वस्तुजगत है।'¹³ बाजार द्वारा सभी साधन सहजता से उपलब्ध हो रहे हैं फिर भी मनुष्य बेचैन है। अपनी भावनाओं के घेरे में घिरा हुआ है, वह अपने अतिरिक्त किसी के विषय में सोचना नहीं चाहता। 'मौत एक मध्यांतर' संग्रह की कहानियों में जिन पात्रों का वर्णन मिलता है वह सभी विदेश में रहने वाले नागरिक हैं। कुछ भारत से काम के सिलसिले में विदेश की ओर पलायन करते हैं। उस दौरान जिन परिस्थितियों का सामना पात्र करते हैं, जिन संघर्षों से जूझते हैं, उनका वर्णन मिलता है। कहानियों के माध्यम से मानव मन की बारीकी और उनकी विवशता का वर्णन है। तेजेंद्र जी की कहानियों में जीवन के विविध रंग हैं, विविधता कई प्रकार की हैं। लेखक के शब्दों में 'मेरे लिए लेखन केवल अपने भीतर का सत्य खोजने का नाम नहीं है। मेरे लिए लेखन का अर्थ पाठक के साथ संवाद स्थापित करना।'¹⁴ पात्र हमारे निजी जीवन में भी दिखाई देते हैं। उनकी कहानियों को पढ़ने के बाद पाठक के मन में विभिन्न सवाल उठते हैं। मौत का भय मनुष्य को प्रभावित करता है, साथ ही उससे सगे-संबंधी भी प्रभावित होते हैं। परिवार को हिम्मत देने वाला उस संकट की घड़ी में मरहम का काम करता है। नरेन मौसा अपने पुत्र की अस्थि को विसर्जन करने पहुंचते हैं, उस समय उनको जिस वेदना से गुजरना पड़ता है। उनके मन में एक सवाल था कि कल को उनकी आस्थियाँ कौन लाएगा ... कौन संभालेगा उनका उतरदायित्व। इन परिस्थितियों को लेखक ने अपने जीवन में अनुभव करते हैं। नरेन मौसा... बस... आजसे आपको आपकी जिम्मेदारियों से रिटायर कर रहा हूँ... अब परिवार की यह जिम्मेदारी मेरी है ... जब तक जीवित हूँ ... मैं हूँ न...'¹⁵ नरेन मौसा इस हादसे से पूरी तरह से टूट चुके

थे। इन परिस्थितियों में सहारा देने वाला ईश्वर स्वरूप बन जाता है। उसी प्रकार सुख एवं दुख समयानुसार अपना रंग दिखाते रहते हैं। पति-पत्नी के रिश्ते में खट्टास आ जाती है तो जीवन को ऐसे मोड़ पर ला देती है। जिसका परिणाम 'विल्जडन जंक्शन' में देखने को मिलता है। कहानी का नायक नरेन सहज एवं सरल स्वभाव का आदमी है। पहली पत्नी पूनम की मृत्यु के बाद ममता से शादी कर लेता है। पूनम से दो बच्चे थे। जिनकी फिक्र नरेन को हमेशा रहती थी। पत्नी के साथ रहते हुए भी उसे अपने बच्चों के खाने-पीने की चिन्ता लगी रहती थी। दूसरी पत्नी ममता को यह पसंद नहीं था। इन्हीं बातों को लेकर दोनों में बहस छिड़ गयी। ममता ने जो शब्द कहे शट-अप यू बास्टर्ड।'¹⁶ इस वाक्य ने नरेन को रात भर सोने नहीं दिया। उसका असर उसके काम पर भी पड़ रहा था। नरेन काम पर था, मन में ममता द्वारा कहे शब्द बाण का काम कर रहे थे। नरेन को गार्ड द्वारा कुछ सूचित किया गया। नरेन मुझे कंट्रोलरूम के द्वारा फोन आया था कि हमारी गाड़ी रिचमण्ड ना जा कर यही से वापिस नॉर्थ बुलीच जाएगी। आगे कुछ इंजिनियरिंग का काम चल रहा है। नरेन गार्ड कि बात सुन जरूर रहा था, परंतु ममता द्वारा कहे अपशब्द ने पूरी तरह झकझोर दिया था जिसके कारण नरेन का मन मस्तिष्क और कुछ सुनने की अवस्था में नहीं था।

निष्कर्ष :

अतः कह सकते हैं तेजेंद्र जी की इस कहानी संग्रह में जो विषय वर्णित हुए हैं, वह बाजारवाद से प्रभावित है। कहानी का मूल विषय समाज में घटित घटनाओं से संबंधित है। कुछ व्यक्ति समय के साथ उन घटनाओं को भूल जाते हैं, परंतु वही घटनाएँ लेखक के लिए विशेष बन जाती हैं। वहीं घटनाएँ लेखक के मन में अनगिनत सवाल छोड़ती हैं, और वह उन घटनाओं के पीछे का रहस्य जानने को उत्सुक रहता है। मनुष्य रिश्तों के प्रति संवेदनहीन होते जा रहा है इसके पीछे का मूल कारण व्यक्ति की सोच और उसका परिवेश दायीं है। कहानी में मानवीय संवेदनाओं का जो स्वरूप देखने को मिलता है, उसका स्वरूप समाज में दिखता है। तेजेंद्र जी ने उन यथार्थ अनुभव को अभिव्यक्त किया है, जिनका सामना लेखक ने अपने निजी-जीवन में किया है। 'मौत एक

मध्यांतर' संग्रह की कहानियों में जीवन और मौत से जूझते पात्रों का सजीव चित्रण पाठकों को झकझोर देता है। समाज में रहने वाला व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों के साथ जुड़ता है तब उसके मन में विभिन्न भावों की अनुभूति होती है। यह भावनाएं मनुष्य की जीवंतता, सजगता और चेतनता का आधार और प्रमाण है साथ ही संवेदनशीलता मनुष्य को सुख-दुःख उनके हार-जीत इत्यादि में प्रभावित करती है। कहानियों में जिन विषयों का वर्णन हुआ है। वह लेखक का निजी अनुभव है अधिकतर समय स्टेशन

की नौकरी में व्यतीत हुआ, साथ ही असंख्य लोगो से मुलाकात होती थी और उनके विचारों को जानने का अवसर मिला। जिसमे दूर देशों में इनका आना-जाना लगा रहता है, विभिन्न लोगो से उनकी मुलाकात होती है साथ ही उनके विचारों से उनके व्यवहार का सजीव चित्र लेखक के सम्मुख आता है। जो बुद्धिजीवी वर्ग के मन में विभिन्न सवाल छोड़ देता है। तेजेंद्र जी की कहानियों के पात्र समस्याओं से जूझते हैं और पाठक के सम्मुख सवाल छोड़ते हैं और एक जिज्ञासा का भाव पाठकों के मन में छोड़ जाते हैं। □

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. शर्मा तेजेन्द्र : मेरे साक्षात्कार, संपादक पूनम सभरवाल, पृ-12
2. शर्मा तेजेन्द्र : प्यार की इंटेलेक्चुअल जुगाली, पृ-91
3. कुमार जैनेन्द्र : साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृ-225, पूर्वोदय प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002
4. शर्मा तेजेन्द्र : सुनो तुम सच कह रही हो, पृ -40
5. शर्मा तेजेन्द्र : हथेलियों में कंपन, पृ-41
6. शर्मा तेजेन्द्र : शवयात्रा पृ -124
7. शर्मा तेजेन्द्र : बुशी का भूत, पृ-21, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली-110032
8. शर्मा तेजेन्द्र : मौत एक मध्यांतर, पृ-10, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली-110032
9. शर्मा तेजेन्द्र : मुद्दे और चुनौतियाँ, पृ-41, संपादिका कमलेश कुमारी
10. शर्मा तेजेन्द्र : मेरे साक्षात्कार, पृ -35
11. नीना पॉल : हिंदी की वैश्विक कहानियाँ, पृ -199
12. शर्मा तेजेन्द्र : गंध, पृ -60, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली-110032
13. शास्त्री उमेश, हिंदी साहित्य का निबंधात्मक इतिहास, पृ-265
14. शर्मा तेजेन्द्र : मेरे साक्षात्कार, पृ-14, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली-110032
15. शर्मा तेजेन्द्र : हथेलियों में कंपन, पृ-42, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली-110032
16. शर्मा तेजेन्द्र : विल्जडन जंक्शन, पृ -86, यश पब्लिकेशंस, दिल्ली-110032

असम में हिंदी भाषा का प्रयोग और विकास



डॉ. अर्चना हजारिका

शोध सार :

असम में हिंदी सर्वथा अपरिचित भाषा नहीं है। पिछले पाँच सौ वर्षों से उसके किसी-न-किसी रूप से यहाँ के साहित्यकार और विद्वान परिचित रहे हैं। असम में वैष्णव मत के प्रचारक और धर्मगुरु श्रीमंत शंकरदेव और उनके परवर्ती कवियों की रचनाएँ इसका प्रमाण हैं। मूलतः असम में हिंदी प्रचार का कार्य वैदिक काल से ही प्रारंभ हो गया था। वर्तमान शती में हिंदी का विधिवत प्रचार कार्य हरिजन आंदोलन से (महात्मा गांधी जब असम आए थे) से माना जाता है। महात्मा गांधी के बाद असम में हिंदी प्रचारक के रूप में सबसे प्रमुख नाम बाबा राघवदास का ही लिया जाता है। उन्होंने असम में कुछ प्रमुख व्यक्तियों को हिंदी प्रचार का कार्य सौंपा और उन्हें हिंदी अध्ययन हेतु उत्तर भारत भेजा गया। इसी तरह सन 1926 से ही असम में हिंदी शिक्षण की नींव डाला गई। बाबा राघवदास के प्रयत्नों से असम में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना हुई। इससे हिंदी प्रचार को गति मिली और इस गति को आगे बढ़ाने के लिए अनेक असमिया लोगों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

बीज शब्द :

असम, हिंदी, प्रयोग, विकास, भाषा प्रचार।

अध्ययन का महत्व :

असम एक अहिंदी भाषी प्रदेश है। असम के विद्यालयों में हिंदी भाषा की शिक्षा तृतीय भाषा के रूप में दी जाती है। असम में हिंदी भाषा का प्रचार और प्रसार का कार्य कोई अचानक से शुरू होने वाला कार्य नहीं है। प्रायः प्राचीन काल से ही संत-महापुरुषों के प्रयत्नों से शुरू होकर आज तक असम में हिंदी प्रचार का कार्य चल रहा है। तब से लेकर अब तक अनेक असमिया लोगों ने हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्रस्तुत शोधालेख के द्वारा असम में हिंदी का प्रथम प्रयोग और उसकी विकास यात्रा को संक्षेप रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जिसका अध्ययन महत्वपूर्ण है।

अध्ययन की सीमा :

असम में हिंदी भाषा का विकास एक बहुत ही विस्तृत विषय है, परंतु इस अध्ययन में विषय तथा शब्द की सीमाबद्धता को ध्यान में रखते हुए असम में हिंदी भाषा का प्रचार कार्य को ही अध्ययन का केंद्रबिंदु बनाया गया है।

अध्ययन हेतु तथ्य संग्रह एवं व्यवहृत पद्धति :

आलेख प्रस्तुतिकरण का एक अहम पड़ाव सामग्रियों का संकलन है। इस अध्ययन के दौरान विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के साथ साथ प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक स्रोतों से प्राप्त सामग्रियों का संकलन कर उनका विस्तार-विश्लेषण किया गया है। इस अध्ययन में व्याख्यात्मक एवं विश्लेषणात्मक शोध-पद्धति के माध्यम से विवेचन किया गया है।

सहायक प्राध्यापिका, हिंदी विभाग
नॉर्थ लखीमपुर कॉलेज (स्वशासी)
लखीमपुर, असम
☎ 8638558401
✉ archana.h.ghy@gmail.com

विषय-विश्लेषण :

भूमिका : संपूर्ण भारतवर्ष में हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में साधु-संतों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। असम में वैष्णव मत के प्रचारक तथा धर्मगुरु शंकरदेव ने विभिन्न प्रकार के धर्मावलंबियों को अपने वैष्णव धर्म के माध्यम से एक सूत्र में बाँधने का प्रयास किया था। जब भी असम में हिंदी के प्रयोग की बात आती है तो सबसे पहला नाम शंकरदेव जी का ही आता है। कहा जाता है कि उन्होंने अपने अनुयायियों के साथ मिलकर असम में हिंदी भाषा का प्रचार-प्रसार का कार्य शुरू किया। बाद में असम के कई सारे विद्वानों ने इस कार्य में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। असम जैसे अहिंदी भाषी प्रदेश में हिंदी भाषा ने एक लंबी यात्रा तय करके आज की स्थिति को प्राप्त की है।

असम में हिंदी भाषा का प्रयोग और विकास : असमिया और हिंदी दोनों भाषाओं में ध्वनि, अर्थ और रूप की दृष्टि से कई सारी समानताएँ मिलती हैं। यद्यपि प्राचीन असमिया भाषा में यह समानता अधिक थी, लेकिन परवर्ती समय में यह समानता कुछ हद तक कम होने लगी। असमिया और हिंदी भाषा की इसी समानता के कारण ही असम जैसे हिंदी प्रांत में निवास करने वाले व्यक्ति हिंदी भाषा को आसानी से समझ और बोल लेते हैं। असम में हिंदी भाषा के प्रयोग और विकास के संबंध में डॉ. प्रदीप शर्मा जी का कथन इस प्रकार है- “असम में हिंदी साद से संबंधित रही है। हिंदी के श्रेष्ठ भक्तिमूलक कवियों से असम के प्रबुद्ध-वर्ग का परिचय रहा है। हम नरेश कामेश्वर सिंह के दिनों में तुलसीदास के ‘रामचरितमानस’ का अनुवाद श्रीकांत सूर्यबिप्र ने किया था। तुलसीदास की तरह विद्यापति, कबीर एवं मीरा की रचनाओं ने भी असमिया साहित्यकारों की रचनाओं में स्थान पाया है। लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा ने ‘जयमती कुँवरी’ नाटक में मीरा के भजनों को स्थान दिया है। असमिया एवं हिंदी भाषा साहित्य का यह आदान-प्रदान असम में हिंदी को एक आधार प्रदान करता है।”¹

आज से लगभग छह सौ साल पहले ही असम के साधारण जन को महापुरुष शंकरदेव ने हिंदी शब्द के साथ परिचय कराया था। श्रीमंत शंकरदेव ने अपने अनुयायियों

के साथ उत्तरी भारत के विभिन्न धार्मिक स्थलों की पदयात्रा की थी। इस पदयात्रा में उन सभी क्षेत्रों की सभ्यता, संस्कृति, साहित्य तथा जन-जीवन से संपर्क किया था, जिसके कारण विभिन्न क्षेत्रों के लोगों के साथ भावनात्मक एकता को सुदृढ़ बनाने के लिए मैथिल-ब्रज-असमिया मिश्रित एक नई भाषा को जन्म दिया था, जिसे ‘ब्रजबुली’ नाम दिया गया। महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव के द्वारा रचित एक बरगीत का कुछ अंश यहाँ उल्लेखित है, जिससे हिंदी से ब्रजावली की निकटता प्रमाणित की जा सकती है-

“मन मेरी राम चरणहि लागु।

तइ देखुना अंतक आगु।।

मन आयु क्षणे क्षणे टूटे।

देखू प्राण कोन दिने छूटे।।”²

प्रस्तुत पद में हिंदी भाषा के कई सारे शब्दों का प्रयोग किया गया है। जो व्यक्ति हिंदी भाषा को जानते हैं वे बरगीत भी आसानी से समझ पाएँगे। इसीलिए ब्रजावली भाषा में रचित शंकरदेव के बरगीतों में हिंदी का प्रथम प्रयोग माना जा सकता है।

डॉ. परेशचंद्र देववर्मा ने लिखा है कि- “असम में ब्रजावली में अनेक कवियों ने कविताएँ लिखी थीं। श्रीमंत शंकरदेव की कविता इसका प्रमाण है।”³

अनेक विद्वानों ने इस नई भाषा को संतों की भाषा नाम दिया। यह भाषा केवल सुबोध ही नहीं था, बल्कि उस समय के संपूर्ण उत्तर भारत के लोग इस भाषा को आसानी से समझने के साथ साथ बोलने में भी समर्थ थे। असम में हिंदी के कर्मनिष्ठ प्रचारकों में अग्रणी रजनीकांत चक्रवर्ती ने इस संदर्भ में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है - “यह सच है कि भारत की पूर्वी सीमा असम राज्य में आज से करीब पाँच सौ वर्ष पहले ही महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव ने साधारण लोगों में हिंदी भाषा की नींव डाली थी। उनके ‘बरगीत’ तथा ‘अंकिया नाट’ इसके प्रमाण हैं।”⁴

इसका अर्थ यह है कि शंकरदेव ने ‘बरगीत’ और ‘अंकिया नाट’ की रचना में साधारण लोगों के लिए की थी।

मध्ययुग में भक्ति आंदोलन के समय साधु-संतों ने ब्रजभाषा को उत्तर भारत की प्रधान काव्य भाषा बना दिया था। उस समय ब्रजभाषा का प्रचार गुजरात से लेकर असम तक था। असम और बंगाल में ब्रजभाषा के ही एक रूप 'ब्रजावली' में अनेक कवियों ने कविताएँ लिखी थीं। शंकरदेव और माधवदेव के गीत ही इसका सबसे प्रमुख प्रमाण हैं। इन दोनों महापुरुषों के 'बरगीतों' और 'नाटकों' में ही प्रयुक्त ब्रजावली (जिसे असमिया में ब्रजावली कहा जाता है) नामक विशेष भाषा को आगे इतनी लोकप्रियता मिली कि उस समय के खुले रंगमंच की यही एकमात्र नाट्य भाषा बन गई थी। यह ब्रजावली भाषा मूलतः मैथिली- ब्रज-भोजपुरी और असमिया मिश्रित भाषा है। इस प्रकार शंकरदेव के समय से ही असमिया और हिंदी भाषा एक दूसरे के समीप आए। इस दृष्टि से हम हिंदी भाषा को असम के लिए एक नई भाषा नहीं कह सकते। हिंदी और असमिया का संबंध तो काफी पुराना है, जिसकी शुरुआत वैष्णव काल में ही शंकरदेव द्वारा हो गई थी। शंकरदेव के इस अवदान को प्रसिद्ध असमिया साहित्यकार देवकांत बरुवा ने इस प्रकार कहा है-
 “शंकरदेव ने असम को भारत में विलीन कराया और भारत को असम के समीप पहुँचाया।”⁵

इस प्रकार 15वीं सदी में ही शंकरदेव ने एक आदर्श भाषा की रचना की थी। उनके इस आदर्श भाषा परंपरा का निर्वाह आगे माधवदेव, गोपाल आता, रामचरण ठाकुर, भूषण द्विज, दैत्यारि ठाकुर, श्रीराम आता, रामानंद आदि से लेकर कैवल्यानंद तक ने किया। सिर्फ यही नहीं, हिंदी से असमिया में आदान-प्रदान के भी पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं। मृगावती, मधुमालती आदि हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानों के आधार पर असमिया में भी प्रेमाख्यानों की रचना की गई। “डॉ. दशरथ ओझा ने अपनी 'हिंदी नाट्य साहित्य का उद्भव और विकास' नामक ग्रंथ में ब्रजावली भाषा में असम के संतों द्वारा रचित नाटकों को ही हिंदी का आदि नाटक माना है।”

वर्तमान शती में हिंदी भाषा के प्रचार कार्य को गति देने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान महात्मा गांधी का ही माना जाता है। उनके नेतृत्व में दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार को लेकर एक आंदोलन का सूत्रपात हुआ और यह आंदोलन धीरे-धीरे पूर्व की ओर उन्मुख हुआ। असम प्रांत भी इस आंदोलन से प्रभावित हुए। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान गांधी जी के आह्वान पर भारत के अन्य प्रांत के लोग जिस प्रकार हिंदी के विकास कार्य में जी-जान से जुट गए थे, उसी प्रकार असम के भी अनेक कर्मठ और देश प्रेमी कार्यकर्ता इस कार्य में जी-जान से जुड़ गए। महात्मा गांधी के आदर्शों से प्रभावित होकर सन 1918 में शिवसागर जिले के एक निःस्वार्थ देशप्रेमी भुवनचंद्र गोगोई ने 'असम पॉलिटेक्निक इंस्टीट्यूशन' नामक एक विद्यालय की स्थापना की थी और इसी विद्यालय में उन्होंने सन 1926 में हिंदी को अनिवार्य पाठ्य विषय के रूप में स्थान दिया। इस प्रकार असम में सन 1926 में विधिवत पहली बार हिंदी का प्रचार कार्य अध्यापन के द्वारा प्रारंभ हुआ। आरंभ में समुचित पाठ्य पुस्तकों की अनुपलब्धता तथा हिंदी



शिक्षकों के अभाव के कारण हिंदी के पठन-पाठन में बाधा बनती जा रही थी। सन 1928 में काशी तथा बिहार से योग्य हिंदी शिक्षक नियुक्त किए गए, जिससे हिंदी शिक्षण का कार्य ठीक से चलने लगा।

शिवसागर में हिंदी प्रचार का ऐसा वातावरण हुआ था कि केवल भिन्न-भिन्न विद्यालय की छात्र-छात्राएँ ही नहीं, बड़े बूढ़े भी हिंदी कक्षा में आया करते थे। वर्धा समिति का परीक्षा केंद्र भी असम में पहली बार यहीं स्थापित हुआ था। इस प्रकार इंस्टीट्यूशन में तीसरी श्रेणी से आठवीं श्रेणी तक हिंदी को अनिवार्य रूप से पढ़ाने की व्यवस्था कर दी गई। साथ ही कक्षा 9 से 10वीं में हिंदी को ऐच्छिक रूप से पढ़ाने और पढ़ाने का प्रावधान कर दिया गया। इस संदर्भ में डॉ. सी. ई. जीनी ने अपने ग्रंथ 'पूर्वांचल प्रदेश में हिंदी भाषा और साहित्य' नामक ग्रंथ में कहा है—“असम राज्य में भुवनचंद्र गोगोई के प्रयत्नों से असम पॉलिटेक्निक इंस्टीट्यूशन में हिंदी के अनिवार्य और ऐच्छिक रूप में अध्ययन-अध्यापन का शुभारंभ हुआ, जिसे हिंदी प्रचार की दृष्टि से आद्यावस्था कह सकते हैं।”⁶

इस प्रकार देखा जाता है असम में हिंदी भाषा के प्रचार और प्रसार तथा उसके अध्यापन का सूत्रपात करने का श्रेय भुवनचंद्र गोगोई को ही दिया जाता है।

असम में हिंदी प्रचार कार्य का दूसरा पर्व आरंभ होता है सन 1934 से। महात्मा गांधी की प्रेरणा से सन 1934 ई. में उत्तर प्रदेश के लोकप्रिय देशभक्त बाबा राघवदास ने उत्तर प्रदेश के बरहज आश्रम से हिंदी के प्रचार कार्य हेतु असम की यात्रा की। उन्होंने स्थानीय लोगों को हिंदी के प्रचार-प्रसार में शामिल किया। उसी समय डिब्रूगढ़ में श्री सूर्यवंशी मिश्र, जोरहाट में श्री अंबिका प्रसाद त्रिपाठी एवं ग्वालपाड़ा में पं. ध्यानदास जी ने हिंदी के प्रचार का कार्य आरंभ किया। सन 1934-35 से 1937 तक असम में हिंदी के प्रचार-प्रसार को बढ़ते हुए देखकर नगांव, गुवाहाटी, शिवसागर और गोलाघाट में हिंदी प्रचारकों को हिन्दी का प्रचार कार्य सौंप दिया। सन 1937 में ही असम के तीन तरुण रजनीकांत चक्रवर्ती, नवीन चंद्र कलिता एवं हेमकांत भट्टाचार्य प्रशिक्षणार्थ हेतु

वर्धा समिति गए और वहाँ पर प्रशिक्षित होकर हिंदी प्रचारक बनकर नवीन उत्साह के साथ असम लौट आए।

हिंदी भाषा के प्रचारार्थ की गई असम की यात्रा में बाबा राघवदास को असम के अनेक गणमान्य नेताओं, विद्वानों आदि द्वारा काफी प्रोत्साहन मिला। उन्हीं के प्रयास से सन 1936 में वर्धा समिति ने असम में हिंदी के प्रचार कार्य की देखरेख हेतु 'असम हिंदी प्रचार समिति' की स्थापना गुवाहाटी में की। इस समिति के प्रतिष्ठाता अध्यक्ष थे लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै। उनकी अध्यक्षता में इस समिति की पहली बैठक कॉटन कॉलेज, गुवाहाटी में 11 दिसंबर, 1938 ई. में हुई थी।

समिति की दूसरी बैठक में काका साहेब कालेलकर के प्रस्ताव को ध्यान में रखते हुए 'असम हिंदी प्रचार समिति' का नाम 'असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' में परिवर्तित कर दिया गया। 'असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' प्रारंभिक वर्षों में वर्धा की समिति द्वारा नियंत्रित थी, पर सन 1942 ई. में इसे पूर्ण स्वायत्तता प्रदान कर दी गई। फलतः असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी के कंधों पर गुरुतर भार आ पड़ा। सन 1948 से इस समिति ने अपनी स्वतंत्रता का लाभ उठाते हुए परीक्षा संचालन, पाठ्य पुस्तकों का चयन और उनका निर्माण आदि का निर्णय लिया। जिस असम प्रदेश में हिंदी का कोई भी पत्र नहीं था, उसी राज्य में असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की लगन और सूझ-बूझ तथा सहयोग से कई साप्ताहिक हिंदी पत्र निकाले जाने लगे। इनके मुख्य पत्र 'द्विभाषी राष्ट्रसेवक' का हिंदी-असमिया भाषा साहित्य और संस्कृति के प्रचार में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आज असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति असम का एक ऐसा संस्थान है, जो हिंदी के प्रचार-प्रसार में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

असम राष्ट्र भाषा प्रचार समिति के साथ-साथ केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा के अधीन गुवाहाटी के हेदातपुर में केंद्रीय हिंदी संस्थान, गुवाहाटी केंद्र भी असम में हिंदी शिक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

सन 1952 से असम सरकार ने कक्षा चार से अनिवार्य हिंदी शिक्षण की व्यवस्था लागू कर दी।

परिणामस्वरूप आज असम जैसे अहिंदी प्रदेश में कक्षा चार से दसवीं तक हिंदी शिक्षण का कार्य हो रहा है। हालाँकि कक्षा चार से सातवीं तक हिंदी पढ़ना अनिवार्य है, लेकिन कक्षा आठ से दसवीं तक यह ऐच्छिक विषय बना हुआ है। केवल विद्यालय में ही नहीं, महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालयों में भी आज हिंदी शिक्षण कार्य प्रचलित है। सन 1969 में उत्तर गुवाहाटी में असम सरकार ने केंद्र सरकार की योजना के आधार पर एक हिंदी प्रशिक्षण महाविद्यालय की स्थापना की। आज असम राज्य के हर प्रांत के हिंदी शिक्षक इससे लाभ उठा रहे हैं। सन 1970 में गुवाहाटी विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग स्थापित करके छात्र-छात्राओं के लिए असम में ही हिंदी में स्नातकोत्तर और शोध कार्य करने की सुविधा दी गई। इसके साथ-साथ

कॉटन विश्वविद्यालय, तेजपुर विश्वविद्यालय, असम विश्वविद्यालय में भी हिंदी स्नातकोत्तर की पढ़ाई के साथ-साथ शोध कार्य करने की भी सुविधा है।

निष्कर्ष :

अतः निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि असम में हिंदी प्रचार का कार्य वैदिक काल से ही प्रारंभ हो गया था। परंतु सन 1938 में असम रास्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना से असम में हिंदी प्रचार को एक नई गति मिली। कई सारी कठिनाइयों के बाद आज हिंदी भाषा को शिक्षा के क्षेत्र में सम्मानजनक स्थिति प्राप्त है और हिंदी भाषा को इस स्थिति तक पहुँचाने के लिए अनेक असमिया लोगों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। □

संदर्भ सूची :

1. शर्मा, प्रदीप कुमार- असम में हिंदी, 2006, पृष्ठ-14।
2. राय चौधरी, प्रो. भूपेंद्र, असमिया साहित्य निकष, गौहाटी विश्वविद्यालय प्रेस, संस्करण 2021, पृष्ठ-56।
3. चौधरी, डॉ. सुशील, मेघालय दर्पण, मेघालय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, मार्च, 2014, पृष्ठ 55।
4. राय, डॉ. रामचंद्र, पूर्वोत्तर में हिंदी, राजभाषा हिंदी, जुलाई-सितंबर, 2015, पृष्ठ-3।
5. वही, पृष्ठ-3।
6. जीनी, डॉ. सी.ई., पूर्वांचल प्रदेश में हिंदी भाषा और साहित्य, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ-73।

ममता कालिया की कहानियों में सांस्कृतिक महत्ता



ममता देवी

शोधार्थी, लवली प्रोफेशनल
विश्वविद्यालय, फगवाड़ा, पंजाब
☎ 8360514460
✉ mamtadhanda78r@gmail.com



डॉ. बृजेंद्र कुमार अग्निहोत्री

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय
फगवाड़ा, पंजाब
☎ 9918695656
✉ brijendra.26912@lpu.co.in

शोध-सार :

ममता कालिया एक प्रमुख भारतीय लेखिका हैं। ये कहानी, नाटक, उपन्यास, निबंध, कविता और पत्रकारिता अर्थात साहित्य की लगभग सभी विधाओं में हस्तक्षेप रखती हैं। ये एक संवेदनशील साहित्यकार हैं। इनके लेखन में भारतीय समाज और संस्कृति के विभिन्न आयामों की झलक मिलती है। ये अपनी कहानियों के पात्रों के माध्यम से और उनकी परिस्थितियों के माध्यम से समाज के विविध पहलुओं को चित्रित करती हैं। भारत विभिन्न धर्मों, वर्गों, संप्रदायों तथा विभिन्न भाषाओं का देश है। अतः यहाँ प्रत्येक धर्म और वर्ग की अपनी अलग-अलग मान्यताएँ, परंपराएँ और विश्वास हैं। भगवान के प्रति श्रद्धा, विश्वास, व्रत, त्योहार, मान्यताएँ व परंपराएँ यहाँ की संस्कृति की प्रमुखता है। ममता कालिया ने अपने कहानी साहित्य में भारतीय संस्कृति की इन सभी मान्यताओं, धर्मों तथा रीतियों-कुरीतियों व विश्वासों का विस्तृत चित्रण किया है। इन्होंने अधिकतर हिंदू धर्म व संस्कृति को उजागर किया है। विभिन्न भाषाओं के साथ इन्होंने अपनी कहानियों में विभिन्न प्रयोग किए हैं। ममता कालिया ने स्त्री-पुरुष संबंध, पारिवारिक संबंध, वैवाहिक जीवन आदि पर अपने विचार विस्तृत रूप में प्रकट किए हैं, क्योंकि यह स्वयं भी एक हिंदू परिवार से हैं। इनके पति रवींद्र कालिया पंजाबी परिवार से थे, जिससे इनका विवाह ही दो संस्कृतियों का मेल रहा है। बचपन से पिता के एक शहर से दूसरे शहर तबादलों के कारण और विवाह उपरांत अपने जीवन सफर के दौरान ये कई शहरों में रहीं और वहाँ के जीवन और संस्कृति को गहराई से जान-समझ पाई, जो इनकी कहानियों में देखने को मिलता है। इनकी कहानियाँ मेला, लैला-मजनून, आपकी छोटी लड़की, लड़के, देवदास तथा इनके उपन्यास दुःखम-सुखम, नरक-दर-नरक आदि रचनाओं में भारतीय संस्कृति के उत्कृष्ट नमूने मिल जाते हैं। ममता कालिया की कहानियाँ संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को दर्शाती हैं।

बीज शब्द :

संस्कृति, साहित्य, समाज, दर्शाया, विश्वास, परंपरा, धर्म, मनुष्य।

मूल आलेख :

किसी भी समाज में वहाँ की संस्कृति का विशेष महत्व होता है। संस्कृति जिस समाज की होती है, निरंतर विकास और बदलाव के उपरांत एक कार्य प्रणाली या समाज के लिए नियमों का रूप ले लेती है, जो उस समाज के लोगों को सामाजिक जीवन-जीने के लिए एक पहचान का कार्य करती है। संस्कृति समाज के

लोगों के लिए परंपराओं, रीति-रिवाजों, विश्वासों, जीवन जीने की शैली, आध्यात्मिक व भौतिक जीवन से सीधी जुड़ी हुई होती है। समाज को जीवन, अर्थ और तरीका सिखाती है। संस्कृति को सीखा जाता है। मनुष्य अपने जन्म स्थान से, अपने परिवार, परिवेश तथा समाज से संस्कृति का व्यवहार सीखता है। संस्कृति जन्म से मनुष्य के साथ नहीं आती और न ही वह कहीं से या अंदर से प्रकट होती है। यह मनुष्य जन्मोपरांत धीरे-धीरे समाज से सीख कर उसकी आदत डाल लेता है और वह सभ्य और सुसंस्कृत कहलाता है। प्रत्येक समाज की अपनी एक संस्कृति होती है, जो जीवन में गहराई से जुड़ी होती है और उस समाज की पहचान होती है। संस्कृति उस विधि का प्रतीक है, जिसके आधार पर हम सोचते हैं और कार्य-व्यापार करते हैं।

भारतीय संस्कृति एक प्राचीन समन्वयवादी, विविधतापूर्ण और आध्यात्मिक होने के साथ ही इसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी शामिल है। यहाँ की संस्कृति सभी को साथ लेकर चलने वाली संस्कृति है। भारतीय संस्कृति आधुनिकता के साथ प्राचीन मूल्यों को भी स्वीकार करती है। भारतीय संस्कृति विविधता के लिए दुनिया भर में जानी जाती है। यहाँ कई संस्कृतियों के लोग अपनी अलग-अलग संस्कृतियों के साथ शांतिपूर्वक रहते हैं। संस्कृति वह ज्ञान, कला, विश्वास, नैतिकता, कानून, नीति और अच्छी आदतें हैं, जो लोगों द्वारा समाज के सदस्य के रूप में अर्जित की जाती हैं। अतः मनुष्य की आवश्यकता और ज्ञान सांस्कृतिक आधार हैं। ममता कालिया के कहानी साहित्य में भारतीय संस्कृति के महत्व को दर्शाया गया है। इनकी कहानियों में यत्र-तत्र संस्कृति के दर्शन मिल जाते हैं। इनकी कहानियों में समाज के विभिन्न पहलुओं को समझने का प्रयास किया गया है। इनकी कहानी समाज की सांस्कृतिक विविधता तथा यथार्थ के जटिल रूपों को समझने का महत्वपूर्ण माध्यम है। इनके



लेखन में जीवन की वास्तविकताओं को न केवल दर्शाया जाता है, बल्कि पाठकों के सम्मुख इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है कि जिससे पाठक समाज के विभिन्न पहलुओं पर विचार कर सके। ममता कालिया ने अपनी कहानियों में भारतीय संस्कृति के विविध रूपों का वर्णन किया है। यहाँ अनेक रीति-रिवाज, परंपराएँ, मान्यताएँ, सांप्रदायिकता जैसी अनेक विविधाएँ हैं। ये सभी समाज के लोगों की भगवान के प्रति श्रद्धा, विश्वास और जीवनचर्या का हिस्सा हैं। ममता कालिया की रचनाओं में संस्कृति के कई उदाहरण मिलते हैं। इनकी लड़के, मेला, दुःखम-सुखम, निर्मोही, आपकी छोटी लड़की आदि कहानियों में सांस्कृतिक मान्यताओं का चित्रण है तो बड़े दिन की पूर्व साँझ, वे, जितना मैं तुम्हारा हूँ, अपत्नी, बीमारी, लैला-मजनूँ आदि कहानियों में नैतिक मूल्यों पर आधारित हैं। 'दो जरूरी चेहरे' कहानी में इन्होंने भारतीय संस्कृति के पारिवारिक

मेलजोल के यथार्थ को दर्शाया है। इस कहानी में दर्शाया गया है कि एक स्त्री के लिए अपने पति के साथ भाई भी जीवन में उतनी ही अहमियत रखता है। नायिका को भी दोनों से उतना ही प्यार और स्नेह मिलता है। "भाई शाम को आते। खूब से फूल लेकर। जब तक डॉक्टर एक बार नहीं आ लेता, भाई नहीं जाते। श्याम से दफ्तर के बारे में बात करते रहते। फिर वे लोग साथ ही उठ जाते।"¹ ममता कालिया की अधिकतर कहानी पारिवारिक संबंधों को दर्शाने वाली है। भारतीय संस्कृति में संयुक्त परिवार की परंपरा रही है। इनकी कहानियों में आपसी प्यार-प्रेम भी दिखाया गया है। 'खाली होता हुआ घर' में पिता-पुत्र के प्रेम का चित्रण किया गया है, तो 'एक पत्नी के नोट्स', में दिखाया कि किस प्रकार एक लड़की दो परिवारों की चिंता करती है और मायका तथा ससुराल दोनों परिवारों को जोड़ कर रखती है। 'आपकी छोटी लड़की' और 'बिटिया' इनकी सामाजिक और पारिवारिक

व्यवस्था को दर्शाने वाली कहानियाँ हैं। “कोलीन सुबह-शाम आती है, डेसिटिंग करती है, कपड़े इस्तरी करती है और रसोई में खाना बनाने के पूर्व की तैयारी। खाना उससे नहीं बनवाया जाता। ममी कहती हैं वह पकाएगी तो छूत लग जाएगी। दुनिया को यह जरा भी समझ नहीं आता कि यह छूत कैसे लगती है। जैसे कोलीन आटा गूँथे, सब्जी काट दे तो ठीक, लेकिन वही सब्जी यदि छौंक दे तो छूत, वही आटा अगर सेंक दे तो छूत।”² ‘अट्टावनवाँ साल’ कहानी में दिन-रात दफ्तर में व्यस्त रहने वाले अवकाशप्राप्त गैर-सरकारी अफसर और उसके जीवन को खुशहाल बनाने वाली पत्नी की कहानी है। यह प्यार और संस्कार भारतीय मानवीय मूल्यों का प्रतीक है।

‘बोलने वाली औरत’ कहानी संग्रह की सभी कहानियाँ पारिवारिक व्यवस्था को दर्शाने वाली कहानियाँ हैं। ‘परदेश’ कहानी में ममता कालिया ने पाश्चात्य एवं भारतीय सभ्यता का तुलनात्मक चित्रण किया है। इस कहानी में कनाडा से आए परदेसी रिचर्ड ने कहा, “तुम्हारे भाई को उसका एहसास है। आपके घर में अभी डिनर के समय तीन पीढ़ियाँ एक साथ खाना खा रही हैं। अरे! दुर्लभ सुख है। यह ऐसा दृश्य देखे मुझे बरसों हो गए कि बच्चों के माँ-बाप अपने माँ-बाप के सामने आज्ञाकारी बच्चे बन जाएँ। तीन पीढ़ियाँ एक छत के नीचे एक कमरे में प्रेम से बैठी हैं। कहीं कोई तनाव नहीं, आपके बच्चे को एक नॉर्मल लड़कपन मिल रहा है। बहुत बड़ी बात है यह! इसे कभी कम करके मत देखिएगा।”³ इन्होंने अपनी कहानियों में खान-पान की विविधताओं को भी प्रदर्शित किया है। बड़े दिन की पूर्व साँझ का यह दृश्य देखिए “वह दुखी हो गया था, मैं ज्यादा नहीं पी सकता। हमारे मेस में सिर्फ ड्रिंक्स की पार्टियाँ होती हैं तो बड़ी असुविधा होती है। मैंने कहा, तुमने घर पर कभी नहीं पी होगी। उसने घमंड से बताया कि उसके घर में अंडा भी नहीं खाया जाता। जब से वह एयर फोर्स में आया तभी से उसने पहली बार यह सब देखा। घर पर उसने घरवालों को सिर्फ दूध, चाय या पानी पीते देखा था।”⁴ भारतीय संस्कृति में खानपान शुद्धता का विशेष उल्लेख या मान्यता है। यहाँ खाने से लेकर पीने तक – क्या खाना है, कैसे

खाना है, कब खाना है, यह सब महत्व रखता है। ममता कालिया की कहानियों में इसका वर्णन भी यत्र-तत्र मिल जाता है।

ममता कालिया ने समाज के साथ पारिवारिक प्रेम पर भी सफल लेखनी चलाई है। इनकी कहानी ‘ऐसा ही था वह’ में पिता-पुत्र के प्रेम और पिता की पुत्र के लिए भविष्य की चिंता दिखाई गई है। पिता पुत्र की नौकरी और व्यवसाय की अंतिम क्षण तक कामना करता है। पिता की मृत्यु के बाद पुत्र को उनके शव के पास बैठ कर ऐसा लगता है कि “यह सारी रस्सियाँ तोड़कर अभी उठ बैठेंगे और चिल्लाएँगे, फिर तू बैठ गया यहाँ आकर, काम में दीदा नहीं लगता तेरा, फौरन वापस जा।”⁵ इस कहानी में ममता कालिया ने समाज की व्यावसायिक, आर्थिक, सामाजिक जटिलताओं के यथार्थ को उकेरा है। ‘सफर में’ कहानी में लेखिका ने सामाजिक मूल्य और विश्वास को दर्शाया है। कहानी की नायिका को एक अजनबी महिला से इतना लगाव और अपनापन मिलता है कि उसे अपनी माँ का प्यार स्मरण हो आता है। इस कहानी में इन्होंने मातृ प्रेम की स्मृतियों को यथार्थ रूप में चित्रित किया है। इसी प्रकार ‘मान लो कि’ कहानी में रिश्तों का मान और मूल्यों को चित्रित किया गया है। जहाँ अपनी पुत्री की उम्र की लड़की में एक पिता अपनी पुत्री की छवि देखा है, तो वहीं नायिका भी पिता की उम्र वाले व्यक्ति में अपने पिता की छवि देखी है। इनकी कहानी ‘वे’ समाज के नैतिक मूल्यों और इंसानियत को उजागर करने वाली कहानी है और साथ ही समय के साथ स्त्री-पुरुष संबंधों को दर्शाती है। “अरुणा ने समझदारी से घर की एकमात्र चारपाई पर सोने लायक तैयारी कर ली। गुसलखाने से आकर उसने कुछ नहीं माँगा, पानी भी नहीं। कमरे में उसकी उपस्थिति उसे उतनी ही सहज और अनाटकीय लग रही थी, जितनी अपनी। अरुणा के वहाँ होने से उसे जरा भी असुविधा नहीं हो रही थी। इस बात का आश्चर्य उसे खुशी दे रहा था। इस नई उपस्थिति में उतनी भी असुविधा नहीं थी जितनी अकस्मात माँ के उज्जैन से आ जाने पर होती थी। तब उसे जल्दी-जल्दी ‘सेक्सोलाजी’ और ‘वुमन’ की प्रतियाँ बिस्तर के नीचे

डालनी पड़ती थीं, सीढ़ियों पर बल्ब लगाना पड़ता था और सिगरेट के टुकड़ों को कोट की जेब में जमा करते जाना होता था। वह कहाँ सोएगा, इस पर अरुणा ने कोई उत्सुकता नहीं दिखाई। उसने कहा, उसके पास यही एक कमरा है। अरुणा ने स्वीकार किया, इंदौर में मकान की तंगी बढ़ती जा रही है।”⁶ ममता कालिया ने धार्मिक अनुष्ठान, व्रत और स्नान के महत्व का उल्लेख अपनी कहानियों में किया है। दूर-दूर से लोग नदियों के तट पर और खास स्थान पर स्नान के लिए विशेष तौर पर भारी संख्या में पहुँचते हैं। दूसरा देवदास का एक दृश्य देखिए— “भीड़ लड़के ने दिल्ली में भी देखी थी, बल्कि रोज देखता था। दफ्तर जाती भीड़, खरीद-फरोख्त करती भीड़, तमाशा देखती भीड़, सड़क क्रॉस करती भीड़। लेकिन इस भीड़ का अंदाज निराला था। इस भीड़ में एकसूत्रता थी। न यहाँ जाति का महत्व था, न भाषा का, महत्व उद्देश्य का था और वह सबका समान था, जीवन के प्रति कल्याण की कामना। इस भीड़ में दौड़ नहीं थी, अतिक्रमण नहीं था और भी अनोखी बात यह थी कि कोई भी स्नानार्थी, किसी सैलानी की तरह आनंद में डुबकी नहीं लगा रहा था। बल्कि स्नान से ज्यादा समय ध्यान पर दे रहा था। दूर जलधारा के बीच एक आदमी सूर्य की ओर उन्मुख हाथ जोड़े खड़ा था। उसके चेहरे पर इतना विभोर, विनीत भाव था मानो उसने अपना सारा अहम त्याग दिया है, उसके अंदर ‘स्व’ से जनित कोई कुंठा शेष नहीं है, वह शुद्ध रूप से चेतन स्वरूप, आत्माराम और निर्मलानंद है।”⁷ लोग विभिन्न विशेष मौकों और त्योहारों पर नदी में स्नान कर अपने आप को धन्य समझते हैं। भारतीय नदियों में गंगा नदी का विशेष स्थान है। गंगा से सभी प्रकार के पापों का नाश होता है और पुण्य की प्राप्ति होती है, जो ईश्वर प्राप्ति और मोक्ष प्राप्ति के लिए अनिवार्य है। ऐसा भारतीय लोगों का विश्वास है। ममता कालिया ने अपने कहानी साहित्य की कई कहानियों में गंगा स्नान का वर्णन किया है। लड़के, मेला, दूसरा देवदास, निर्मोही आदि कहानियों में भारतीय संस्कृति के स्नान के महत्व को ममता कालिया ने विस्तार से दर्शाया है। गंगा नदी भारतीय संस्कृति की पहचान है। इस नदी का उल्लेख ग्रंथों में भी मिलता है। गंगा नदी को माँ की तरह पूजा

जाता है और इसको मोक्षदायिनी समझा जाता है।

विभिन्न विशेष अवसरों पर गंगा स्नान पवित्र और विशेष आस्था का प्रतीक होता है। कुंभ मेला इन्हीं अवसरों में से एक है। गंगा स्नान का ममता कालिया ने अपनी कई कहानियों में वर्णन किया है। गंगा घाट का, वहाँ के सुबह के स्नान अवसर का और मेले में उमड़ती आस्था, विश्वास, अंधविश्वास तथा पाखंडों का वर्णन इन्होंने अपनी कहानी ‘मेला’ में विस्तार से किया है। इस कहानी में इलाहाबाद के कुंभ मेले का चित्रण किया गया है। ममता कालिया की ‘मेला’ कहानी इनके स्वयं के जीवन की यथार्थ घटना पर आधारित कहानी है। इस कहानी में इन्होंने चित्रित किया है कि मौनी अमावस्या पर किस प्रकार लोग दूर-दूर से देश और विदेश से गंगा स्नान के लिए इलाहाबाद पहुँचते हैं। मेले में धर्म के साथ धार्मिक आडंबरों का भी खूब बोल-बाला रहता है। इसका वर्णन ममता कालिया ने कहानी ‘मेला’ में विस्तार से किया है। इस कहानी की नायिका चारु के पति सत्य प्रकाश की मासी जालंधर से इलाहाबाद कुंभ के अवसर पर गंगा स्नान करने आती है। मासी तीर्थ यात्रा के लिए इतनी समर्पित है कि उसे माघ के महीने में भी ठंड का एहसास नहीं होता है और न अपनी उम्र का। उनको लगता है कि पाप वही नहीं होते, जो हम जानबूझकर कर गलत काम करते हैं, बल्कि हम अनजाने में भी कुछ गलत करें, तब भी हमें पाप लगता है और वह पाप गंगा स्नान से और तीर्थ यात्रा करने से धुल जाते हैं। “स्टेशन से चौक के, रिक्शे वाले ने माँगे चार, मासी ने दे डाले पाँच रुपये। तीरथ पर आई हैं, किसी का दिल दुखी न हो। पुत्र कमा लें। इतनी ठंड में दो सवारी खींच कर लाया है रिक्शेवाला। चाय पानी के बाद उनके लिये कमरे का एक कोना ठीक किया गया तो बोली रहने दे घन्टे भर बाद स्वामी जी के आश्रम में जाना है।”⁸

सत्य ने कहा, थोड़े दिन घर में रह लो मासी, वहाँ बड़ी ठंड है। तीरथ करने निकली हैं, गृहस्थ विच नहीं रहना। अच्छा मासी यह बताओ आप तीरथ पर क्यों निकली हो? ले मैं क्या पहली बार निकली हूँ। सारे तीरथ कर डाले मैंने—हरद्वार, ऋषिकेश, बद्रीनाथ, केदारनाथ, पुष्करजी, गयाजी, नासिक, उज्जैन। बस प्रयाग का यह कुम्भ रह गया था, वह भी पूरा हो जाएगा। मासी आप

इतने तीरथ क्यों करती हो ? ले पाप जो धोने हुए। भानजे की आँखों में शरारत चमकी, कौन से पाप आपने किये हैं ? सत्ते (सत्य प्रकाश) मासी से सिर्फ छह साल छोटा था। नानके में उसका बचपन इसी मासी को छकाते, खिझाते बीता था। चरनी मासी हँस पड़ी, एकदम स्वच्छ दाँतों वाली भोली-भाली निष्पाप हँसी। जब वे निरुत्तर होने लगती हैं तो स्वामी जी की भाषा बोलने लगती हैं, “पाप सिर्फ वही नहीं होता, जो जानकर किया जाय। अनजाने भी पाप हो जाता है, उसी को धोने। अनजाने पाप में उनके स्वामी जी के अनुसार बुरा बोलना, बुरा देखना, बुरा सुनना जैसे गांधीवादी निषेध हैं।”⁸ ममता कालिया ने अपनी कहानियों के माध्यम से यदि भारतीय संस्कृति के धर्म, विश्वास, रीतियों और मान्यताओं को दर्शाया है तो वही समाज के अंधविश्वास और रीतियों के नाम पर कुरीतियाँ बन चुकी मान्यताओं को भी उजागर

किया है, क्योंकि विश्वास और अंधविश्वास में बहुत महीन फर्क होता है। आपकी छोटी लड़की में एक वाक्य देखिए— “टुनिया रानी, अलग से सोचो, क्या हमारे देश में कभी ईश्वर से विश्वास खत्म हो सकता है ? अभी मैं चौराहे के बीचोबीच एक बौड़म-सा पत्थर रख दूँ सिंदूर में रंगकर और खुद उस पर जाकर दो फूल चढ़ा आऊँ। फिर देखना तुम, अपने लोगों की कितनी आस्था है। दस में से नौ आदमी यहाँ रुकेंगे, मत्था टेकेंगे, फूल-फल चढ़ाएँगे। इसे कहते हैं आस्था। अंधविश्वास नहीं, विश्वास। वैसे विश्वास और अंधविश्वास में बड़ा महीन-सा फर्क होता है। तुम अभी बहुत छोटी हो, वरना तुम्हें समझाता।”⁹ इस प्रकार हम देख सकते हैं कि ममता कालिया ने अपने कहानी साहित्य में अपने सांस्कृतिक यथार्थबोध से भारतीय संस्कृति की विविधता, विश्वास, अंधविश्वास तथा अनेकता में एकता का उदाहरण सफल रूप से दिया है। □

संदर्भ-सूची :

1. कालिया, ममता. छुटकारा. लोक भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.सं. 125
2. कालिया, ममता. मेरी प्रिय कहानियाँ. राजपाल एण्ड सन्स प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ.सं. 73
3. कालिया, ममता. प्रतिनिधि कहानियाँ. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023, पृ.सं. 102
4. कालिया, ममता. छुटकारा. लोक भारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ.सं.11
5. कालिया, ममता. काके दी हट्टी. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017, पृ.सं. 77
6. कालिया ममता. छुटकारा. लोक भारती प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृ.सं. 96
7. कालिया, ममता. मेरी प्रिय कहानियाँ. राजपाल एंड सन्स प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ.सं. 118
8. कालिया, ममता. निर्माही. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.सं. 53
9. कालिया, ममता. प्रतिनिधि कहानियाँ. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2023, पृ. स. 37

हिंदी विज्ञान कथा का उद्भव : आलोचनात्मक मूल्यांकन



डॉ. आशीष कुमार यादव

शोध-सार :

हिंदी विज्ञान कथाएँ मुख्यतः पाश्चात्य विज्ञान कथाओं से प्रेरित व प्रभावित हैं। लेकिन यह स्वीकार करना ही होगा कि निश्चय ही पुरावैज्ञानिक कथाएँ भी हिंदी विज्ञान कथाकारों को प्रेरित व मार्गदर्शित करने में बहुत कुछ भूमिका का निर्वहन करती दिखाई पड़ती हैं।

बीज शब्द :

क्लोनिंग, टाइम मशीन, सर्जरी, पुराकथा, सेक्स-ट्रांसफॉर्मेशन, संजीवनी, वैज्ञानिक तथ्य, ट्रांसप्लांट।

विश्लेषण :

किसी भी विधा का जन्म देशकाल व वातावरण की परिस्थितियों से होता है। कोई भी विधा एकाएक उत्पन्न नहीं होती है। उसका भी एक इतिहास होता है, जिसे हम कारण या परिस्थितियाँ भी कह सकते हैं। आधुनिक युग का आरंभ अठ्ठारहवीं शताब्दी से होता है। विज्ञान कथाओं की शुरुआत सर्वप्रथम यूरोप में होती है। यहाँ पर धर्म-सुधार आंदोलन के फलस्वरूप चर्च और पोप की प्रभुसत्ता का अंत हुआ था। पुनर्जागरण का दौर शुरू हुआ, जिसके फलस्वरूप वैज्ञानिक युग की शुरुआत हुई और कालांतर में यह समाज और मानव जीवन का प्रमुख अंग बन गया। वर्तमान सदी में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास बहुत तेजी से हुआ है। विज्ञान कथाएँ आधुनिक युग की देन हैं। इन कथाओं का जन्म पाश्चात्य देशों में हुआ, जिसका श्रेय मेरी शैली, जूलस बर्ने, आइजक आसिमोव, एच.जी. वेल्स, एडगर एलन पो आदि को है।

विज्ञान कथा के उद्भव सूत्र के तार कई जगह से जुड़े हैं, जिससे प्रेरित होकर यह विधा वर्तमान स्वरूप ग्रहण करती है। हिंदी विज्ञान कथाएँ मुख्यतः पाश्चात्य देशों की विज्ञान कथाओं से प्रेरित हैं, जबकि इसके वर्तमान स्वरूप के निर्धारण में अन्य भारतीय भाषाओं की विज्ञान कथाएँ एवं हिंदी साहित्य के वेदों, पुराणों में निहित विषय के रूप में व्याप्त पुरा वैज्ञानिक कथाओं आदि का महत्वपूर्ण योगदान है। आरंभिक हिंदी विज्ञान कथा साहित्य पाश्चात्य विज्ञान कथा साहित्य से बहुत प्रभावित है। बाबू केशव प्रसाद सिंह की 'चंद्रलोक की यात्रा' हिंदी की पहली मौलिक रचना है। यद्यपि कालक्रम की दृष्टि से देखा जाए तो पं. अम्बिकादत्त व्यास की 'आश्चर्य वृत्तांत' पहली विज्ञान कथा है। यद्यपि यहाँ पर शिल्प व शैली की दृष्टि से देखने पर 'चंद्रलोक की यात्रा' हिंदी की पहली विज्ञान कथा प्रतीत होती है। इसकी कथावस्तु में भारतीय समाज, परिवेश आदि का वर्णन बेहद खूबी के हुआ है।

(पोस्ट डॉक्टरल फेलो स्कॉलर)
संपर्क : ग्राम-लखौवां,
पोस्ट-फतेहगंज, जिला-जौनपुर
उत्तर प्रदेश - 222132
☎ 9818813985
✉ asheeshdu8@gmail.com

तथा इसके साथ-साथ भारतीय समाज की गरीबी, बेरोजगारी आदि का वर्णन हुआ है, जो हिंदी प्रदेशों के समाज की मुख्य विशेषताएँ हैं। लेकिन यह विज्ञान कथा जूल्स बर्ने की 'फाइव वीक्स इन ए बैलून' से प्रभावित है। 'चंद्रलोक की यात्रा' का नायक मलमल और सूती कपड़ों से गुब्बारे का निर्माण करता है और इसी गुब्बारे से पृथ्वी से चंद्रमा तक की रोमांचक यात्रा पूरी करता है। ठीक इसी प्रकार 'फाइव वीक्स इन ए बैलून' का नायक गुब्बारे का निर्माण करके अफ्रीका महाद्वीप के पश्चिमी तट से पूर्वी तट तक की रोमांचक यात्रा पूरी करता है। डॉ. राजकुमारी उपाध्याय का कहना है कि *“‘चंद्रलोक की यात्रा’ जूल्स बर्ने की ‘फाइव वीक्स इन ए बैलून’ की अत्यंत ऋणी है।”*¹

जूल्स बर्ने एक फ्रांसीसी विज्ञान कथाकार थे। अंतरिक्ष को अपनी विज्ञान कथा की विषय-वस्तु चुनने में वे सर्वाधिक प्रसिद्ध हुए। जूल्स बर्ने ने वैज्ञानिक तथ्यों को अतिरंजित करके कई वैज्ञानिक उपन्यासों की रचना की, जो किशोरों में बहुत प्रसिद्ध हुई। जूल्स बर्ने की रचना चाहे पनडुब्बी की परिकल्पना हो या उपग्रहों की स्थापना, ये वैज्ञानिकों के लिए प्रेरक रही हैं। जूल्स बर्ने की अनेक विज्ञान कथाएँ हैं, जैसे - 'फाइव वीक्स इन ए बैलून', 'ए जर्नी इन टू दि सेंटर ऑफ अर्थ', 'एराउण्ड द मून' आदि। इन विज्ञान कथाओं से प्रेरित होकर हिंदी विज्ञान कथाकारों ने अनेक रचनाएँ की हैं। डॉ. ओमप्रकाश शर्मा की हिंदी विज्ञान कथा 'मंगलग्रह की पहली यात्रा' के साथ-साथ बहुत से हिंदी विज्ञान कथाकारों की हिंदी विज्ञान कथाएँ जूल्स बर्ने की विज्ञान कथाओं से प्रभावित हैं।

एच.जी. वेल्स का पदार्पण विज्ञान जगत में उस समय हुआ, जब विज्ञान कथाओं के पितामह जूल्स बर्ने अवसान पर थे। ये हिंदी विज्ञान कथाकारों को प्रभावित करने वाले दूसरे प्रसिद्ध यूरोपीय विज्ञान कथाकार हैं। इनका प्रथम विज्ञान गल्प 'टाइम मशीन' 1995 ई. में प्रकाशित हुआ, जो विश्व स्तर पर बहुत प्रसिद्ध हुआ था। 'टाइम मशीन' की संकल्पना यह है कि इसमें उपस्थित होकर आप काल की परिधि को लाँघ कर किसी भी काल समय आगे के वर्षों में या पीछे के वर्षों में जा सकते

हैं।

'टाइम मशीन' की संकल्पना से प्रभावित होकर डॉ. अरविंद मिश्र की कहानी 'राज करेगा रोबोट' और हरीश गोयल की कहानी 'काल यंत्रा' आदि हैं। इसी तरह कई हिंदी के विज्ञान कथाकारों ने विज्ञान कथाएँ लिखी हैं। डॉ. संपूर्णानंद ने 'टाइम मशीन' पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि *“‘इसमें काल के आवरण को छेदने की प्रवृत्ति है। यह आशा व्यक्त की जाने लगी है कि स्यात् विज्ञान इसका कोई सुलभ उपाय निकाल सके।’”*²

आइजक आसिमोव आधुनिक विज्ञान कथा का जन्मदाता कहे जाते हैं। आइजक आसिमोव ने 'फाउंडेशन' तथा 'रोबोट' सीरीज की रचना कर अमेरिका में विज्ञान कथाओं का स्वर्णिम युग लाने में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया है। इनकी रचनाओं से प्रभावित होकर कई हिंदी विज्ञान कथाकारों ने 'रोबोट' को कथावस्तु बनाकर विज्ञान कथाएँ लिखी हैं। रोबोट सर्वगुण संपन्न मशीनी मानव के रूप में कार्य करता है। हरीश गोयल की 'बायो रोबोटिका का सपना', शुकदेव प्रसाद की 'रोबो मेरे दोस्त', डॉ. कल्पना कुलश्रेष्ठ की 'अपराधी', डॉ. अरविंद मिश्र की 'राज करेगा रोबोट' आदि बहुत से विज्ञान कथाकारों ने रोबोट पर आधारित विज्ञान कथाएँ लिखी हैं।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि पाश्चात्य विज्ञान कथा साहित्य से हिंदी विज्ञान कथाएँ प्रेरित व गहरे रूप से प्रभावित हैं। दोनों के विषय-वस्तु के चुनाव में काफी समानताएँ मिलती हैं।

अन्य भारतीय भाषाओं से प्रेरित व प्रभावित होकर भी कई हिंदी विज्ञान कथाएँ लिखी गई हैं, लेकिन पाश्चात्य विज्ञान कथाओं के अनुपात में इनकी संख्या कम है। इसके कई कारणों में से प्रमुख कारण भाषागत विविधता है। दूसरा कारण, गुणवत्ता का स्तर निम्न होना है। मराठी भाषा की विज्ञान कथाओं के अलावा किसी अन्य भाषा की विज्ञान कथाएँ हिंदी विज्ञान कथाकारों को विशेष रूप से प्रभावित नहीं कर सकी हैं।

यदि गौर से देखा जाए तो डॉ. अरविंद मिश्र की विज्ञान कथा 'धर्मसूत्र' और हरीश गोयल की विज्ञान कथा 'ऑपरेशन पुनर्जन्म' पर मराठी विज्ञान कथाकार बाल फोंडके की विज्ञान कथा 'बहुरूपिया' का प्रभाव दिखता है। इन विज्ञान कथाओं में स्मृति कोशिकाओं के 'ट्रांसप्लांट' से व्यक्तियों के व्यवहार में परिवर्तन दिखाया

गया है। कैलाश साह की विज्ञान कथा 'मृत्युंजयी' मराठी विज्ञान कथाकार लक्ष्मण लोढे की विज्ञान कथा 'दूसरा आईस्टीन' से प्रेरित है। इस प्रकार देवेन्द्र मेवाड़ी, हरीश गोयल, जयंत विष्णु नालीकर, डॉ. राजीव रंजन उपाध्याय ने मराठी विज्ञान कथाओं से प्रेरित व प्रभावित होकर कई हिंदी विज्ञान कथाओं का सृजन किया है।

इस प्रकार देखा जा सकता है कि हिंदी विज्ञान कथाओं पर अन्य भारतीय भाषाओं की विज्ञान कथाओं का प्रभाव है, लेकिन मराठी विज्ञान कथाएँ अन्य भाषाओं के अनुपात में अधिक प्रभावित करती हैं।

भारत के वेदों व पुराणों में अनगिनत ऐसी उर्वर कल्पनाएँ हैं, जिनसे हिंदी विज्ञान कथाएँ प्रेरणा ले सकती हैं और ली भी हैं। कई हिंदी विज्ञान कथाएँ ऐसी हैं, जिनकी 'विषय-वस्तु' को उनसे जोड़ कर देखा जा सकता है। विभिन्न विज्ञान कथाकार आलोचकों के बीच

यह विवाद का विषय रहा है कि वेदों और पुराणों की उर्वर कल्पनाएँ विज्ञान कथाओं के अंतर्गत आती हैं या नहीं? कुछ विज्ञान कथाकार इसके पक्ष में हैं और कुछ विरोध में। डॉ. अरविंद दुबे का कहना है - “आप जब उस समय के विज्ञान की परिसीमाओं की दुहाई देकर ठेठ अवैज्ञानिक और असंभाव्य फ्रैंकस्टीन 1818 ई. मेरी शैली और मार्शियन क्रॉनिकल्स 1950 ई. रे ब्रेडनरी जैसे कथानकों को सिर्फ विज्ञान कथा ही नहीं, वरन विश्व के सर्वप्रथम विज्ञान कथा साहित्य और कालजयी विज्ञान कथा की श्रेणी में रख सकते हैं तो हमारी धार्मिक पुस्तकों में वर्णित इन वृत्तांतों को क्यों नहीं?”³

इसी तरह से प्रसिद्ध विज्ञान कथाकार डॉ. राजीव रंजन उपाध्याय ने इन कथाओं को पुरावैज्ञानिक कथाएँ

कहा है। उनका मानना है कि इससे आधुनिक विज्ञान कथा लेखकों को एक नयी दृष्टि और प्रेरणा मिलती है। उनके अनुसार- “हमारे वैदिक साहित्य सार्थवांहा की व अश्विनद्वय के चिकित्सकीय चमत्कारों की चर्चाओं से परिपूर्ण हैं। इस प्रकार की अनेकों विज्ञान कथाएँ आधुनिक विज्ञान कथाओं की आदि जननी कही जा सकती हैं।”⁴

कुछ धार्मिक आस्थावान व्यक्ति इन्हें सत्य मानकर 'विज्ञान कथा' कहते हैं तो कुछ संदेहवादी इन्हें कपोल कल्पना मानते हैं।



इन विवादों के बीच यदि तटस्थ रहकर मूल्यांकन किया जाए तो हमारे वेदों, पुराणों में अनेक ऐसी विशेषताएँ मिलती हैं, जो विज्ञान कथा के निर्धारक मापदंडों को पूरा करती हैं, जैसे-उर्वर कल्पनाएँ, मिथकीय वैज्ञानिक तथ्य, वैज्ञानिकों को प्रेरित करना, मनोरंजन

करना आदि। लेकिन फिर भी इन्हें पारिभाषिक शब्दों और अर्थों में 'विज्ञान कथा' नहीं कह सकते, क्योंकि विज्ञान कथाओं की अनेक महत्वपूर्ण विशेषताएँ उनमें नहीं मिलती हैं। एक तो भविष्य चित्रण नहीं होता है और उनमें भविष्य की चर्चा न के बराबर होती है। दूसरे वैज्ञानिक तथ्यों की विश्वसनीयता का कोई तार्किक आधार नहीं मिलता है।

प्रसिद्ध विज्ञान कथाकार देवेन्द्र मेवाड़ी का मानना है कि “प्रायः पौराणिक आख्यानों और विविध रोचक शैलियों में लिखे गए निबंधों को भी विज्ञान कथा साहित्य में शामिल किया जाता रहा है। यह उचित नहीं है। अपने पुरखों की उर्वर कल्पना शक्ति की सराहना तो हमें करनी ही चाहिए, लेकिन वैज्ञानिक आधार के बिना उनके पक्षियों

के बल पर उड़ने वाले उड़नखटोलों, मंत्रशक्ति से संहार करने वाले अग्नि या वर्षा बाणों और मनुष्य व पशु के मिलेजुले रूप वाले देवताओं को अंग प्रत्यारोपण के सटीक उदाहरण मानने से बचना चाहिए। हमें इस बात से संतोष होना चाहिए कि उन्होंने जो सोचा, विज्ञान ने कर दिखाया।”⁵

विज्ञान कथा के कुछ तत्व पाए जाने के कारण इन्हें हम ‘आभासी विज्ञान कथाएँ’ या ‘पुरावैज्ञानिक कथाएँ’ कह सकते हैं, जो अनजाने में विज्ञान कथा के कुछ मापदंडों को पूरा करती हैं और ‘विज्ञान कथा’ होने का भ्रम पैदा करती हैं।

प्राचीन भारतीय ऋषियों द्वारा यह सत्य जाहिर है कि उनकी उर्वर कल्पनाओं के माध्यम से वेदों और पुराणों की रचना हुई, जिनसे हिंदी विज्ञान कथाकार प्रेरणा ले सकते हैं। लेकिन अधिकांशतः हिंदी विज्ञान कथाएँ पाश्चात्य जगत की विज्ञान कथाओं से प्रभावित हैं। यह दुर्भाग्य की बात है। यद्यपि कुछ पाश्चात्य जगत के विज्ञान कथाकार यह स्वीकारने में कोई गुरेज नहीं करते हैं कि भारतीय वेदों और पुराणों के आख्यानो में वैज्ञानिक तथ्य नहीं हैं। प्रसिद्ध विज्ञान कथाकार कार्ल सागान का कहना है – “मिथकों में विज्ञान ढूँढ़ना हो तो भारत के पुराणों को पढ़ना चाहिए।”⁶

यद्यपि हमारे वेदों और पुराणों के साहित्य में अनेक पुराकथाएँ हैं, जिन्हें हिंदी विज्ञान कथाओं का आदि बिंदु कहा जा सकता है। हिंदी विज्ञान कथा और पाश्चात्य की पहली विज्ञान कथा अंतरिक्ष से संबंधित है। लेकिन यह अंतरिक्ष की कल्पना सिर्फ पाश्चात्य का नहीं है, जबकि हमारे ‘रामायण’ और ‘महाभारत’ में ऐसे कई वृत्तांत मिलते हैं, जो अंतरिक्ष से संबंधित हैं। ‘रामायण’ में इच्छामात्र से चलने वाले ‘पुष्पक विमान’ और ‘महाभारत’ के वनपर्व में एक प्रलयकारी मारक विमान की भी चर्चा है, जिस पर सवार होकर राजा शाल्व कृष्ण की अनुपस्थिति में द्वारका को तहस-नहस कर देते हैं। इन विमानों की तुलना आधुनिक मिसाइल से की जा सकती है। जबकि यदि वैज्ञानिक दृष्टि से उस पुष्ट वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर इनका मूल्यांकन किया जाए तो यह निराधार प्रतीत होती है, क्योंकि धातु से बना यान विश्व में 19वीं सदी के बाद

आया है।

डॉ. राजीव रंजन उपाध्याय की पुस्तक ‘वैज्ञानिक पुराकथाएँ’ 2012 ई. इस बात की पुष्टि करती नजर आती है कि हमारे पौराणिक साहित्य में अनगिनत कथाएँ उर्वर कल्पना से युक्त बिखरी पड़ी हैं। इनके सूक्ष्म तथ्य विज्ञान सम्मत प्रतीत होते हैं और वे विज्ञान के ज्ञान का आभास देते हैं। इस पुस्तक में ‘संजीवनी’, ‘द्रोणाचार्य’, ‘महर्षि च्यवन’ आदि जैसी चालीस पुराकथाएँ हैं, जो इस तथ्य की पुष्टि करती प्रतीत होती हैं और हिंदी विज्ञान कथाएँ पाश्चात्य से प्रेरित न होकर भारतीय वेदों-पुराणों से प्रेरित-प्रभावित हैं।

पुरावैज्ञानिक कथा संग्रह की ‘शिखंडी तथा इला’ पुराकथा राजा द्रुपद की रानी के पुत्र-कामना से संबंधित है। भगवान आशुतोष के आशीर्वाद के परिणामस्वरूप उनको जो पुत्र प्राप्त हुआ, वह पहले स्त्री के रूप में था। बाद में उसी आशीर्वाद के अनुरूप वह पुत्र के रूप में परवर्तित हो जाता है। इसको वर्तमान में घटित सेक्स-ट्रॉसपफॉर्मेशन की घटनाओं से जोड़ कर देखा जा सकता है। लेकिन इन दोनों में कोई वैज्ञानिक संबंध बनता प्रतीत नहीं होता है।

भारत का आयुर्वेद विज्ञान और सर्जरी कितनी विकसित थी, इसका वर्णन ‘चरक संहिता’ और ‘सुश्रुत संहिता’ व अन्य आयुर्वेद ग्रंथों में उपलब्ध है। आज भी प्रयोग में लाई जा रही विविध आयुर्वेदिक औषधियों के साथ-साथ ‘महर्षि च्यवन’ को पुनर्यौवन प्रदायक च्यवनप्राश के प्रयोग से यह स्पष्ट होता है कि कुछ ज्ञान आज भी प्राचीन काल से चले आ रहे हैं, जो वर्तमान समय में किसी-न-किसी रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहे हैं। इसीलिए आइजक आसिमोव ने कहा है कि “हमारे भारतीय आदि चिंतक भौतिकी के नवोद्घाटित रहस्यों तथ्यों को पहले से ही जानते थे। हम ऐसे ही नहीं मानेंगे, बल्कि इसे विज्ञान की कसौटी पर रखेंगे।”⁷

‘महाभारत’ में कृष्ण के पास ‘सुदर्शन चक्र’ एवं ‘रामायण’ में राम के पास ऐसे बाण थे, जो लक्ष्य का भेदन करने के बाद वापस अपने स्थान पर आ जाते थे। इनकी तुलना आज के गाइडेड मिसाइल से की जा सकती

है। 'महाभारत' के 'भीष्म पर्व' में ब्रह्मास्त्र के प्रयोग से भूकंप आ जाता है और नदियों का पानी सूख जाता है। इसकी तुलना हिरोशिमा व नागासाकी पर गिराए गए परमाणु बम से की जा सकती है।

क्लोनिंग के विषय में पुराकाल के ऋषियों को कोई जानकारी नहीं थी। वे इस प्रौद्योगिकी की आधुनिक विद्या से परिचित नहीं थे। परंतु उनके उर्वर मस्तिष्क में संभवतः इस विद्या के भविष्य में विकसित हो जाने के बिंब थे, जिसके कारण आदिमानव व पशु की कल्पना उन्होंने 'नृसिंह' के रूप में की थी। यदि पुराणों में उपस्थित पुराकथाओं को देखा जाए तो उनकी उर्वर कल्पनाएँ आज के वैज्ञानिक प्रगति के समरूप दिखाई पड़ती हैं। लेकिन

उनमें अतिरंजनाएँ भी बहुत हैं, जिन्हें धार्मिकता के कलेवर में प्रस्तुत किया गया है। हमारे ऋषियों-मुनियों की सोच बहुत उच्च स्तर की थी। लेकिन यह दुर्भाग्य की बात है कि वे अपनी उर्वर कल्पनाओं को वैज्ञानिक आधार नहीं दे पाए। इसी कारण वे विज्ञान कथा की श्रेणी में नहीं आती हैं।

अतः उपरोक्त तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि हिंदी विज्ञान कथाएँ मुख्यतः पाश्चात्य विज्ञान कथाओं से प्रेरित व प्रभावित हैं। लेकिन यह स्वीकार करना ही होगा कि निश्चय ही पुरावैज्ञानिक कथाएँ भी हिंदी विज्ञान कथाकारों को प्रेरित व मार्गदर्शित करने में बहुत कुछ भूमिका का निर्वहन करती दिखाई पड़ती हैं। □

संदर्भ :

1. भविष्य विज्ञान कथा संग्रह, देवेन्द्र मेवाड़ी, प्रकाशक : नेशनल बुक पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, संस्करण : प्रथम
 2. यमुनादत्त वैष्णव अशोक : जीवन और साहित्य लेखक, डॉ. राजकुमारी उपाध्याय, प्रकाशक : प्रयाग विज्ञान परिषद, प्रयाग, संस्करण : 1983, पृष्ठ 3
 3. विज्ञान कथा, त्रैमासिक पत्रिका, संपादक : डॉ. राजीव रंजन उपाध्याय, प्रकाशक : भारतीय विज्ञान समिति, फैजाबाद, अंक : सितंबर-नवम्बर 2010 ई., पृष्ठ 20
 4. आधुनिक ययाति विज्ञान कथा संग्रह, डॉ. राजीव रंजन उपाध्याय, प्रकाशक : ग्रंथ विकास, जयपुर, संस्करण : 2009, पृष्ठ 2
 5. भविष्य विज्ञान कथा संग्रह, देवेन्द्र मेवाड़ी, प्रकाशक : नेशनल बुक पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, संस्करण 1998, पृष्ठ 141
 6. उत्तरी आकाश गंगा में, डॉ. राजीव रंजन उपाध्याय, प्रकाशक : मलिक एंड कंपनी, जयपुर, संस्करण : 2012, पृष्ठ 165
 7. 'भारतीय मिथकों में भविष्य दर्शन', विज्ञान पत्रिका में संपादित लेखक, प्रकाशक : प्रयाग विज्ञान परिषद, प्रयाग, संस्करण : 1998, पृष्ठ 5
-

पूर्वोत्तर भारत की आदिवासी कहानियाँ : सामाजिक यथार्थ एवं परंपराएँ



जेरेलडिना मुचवार

शोध सार :

विश्व के लगभग सभी क्षेत्रों में आदिवासी रहते हैं। भौगोलिकता एवं समुदाय विशेष की दृष्टि से उनमें कई विविधताएँ हैं। इन विविधताओं के कारण ही उनकी संस्कृति एवं परंपराओं का फलक काड़ी विस्तृत हुआ है। जब हम पूर्वोत्तर भारत की बात करते हैं, यह क्षेत्रीय जनसंख्या की दृष्टि से आदिवासियों का गढ़ है। पूर्वोत्तर भारत को सिर्फ भौगोलिक दृष्टि से आंकना वहाँ के लोगों की वास्तविक पहचान को उपेक्षित करना है, क्योंकि यह क्षेत्र विविध भाषाओं, संस्कृतियों एवं वेशभूषा वाले लोगों का घर है। हिंदी साहित्य लेखन में पूर्वोत्तर भारत हमेशा से उपेक्षित ही रहा है। 90 के दशक से पूर्वोत्तर के आदिवासियों ने लेखन शुरू किया। उनकी रचनाओं में आदिवासी जीवन बारीकी से उभर कर सामने आया। आदिवासियों के अस्तित्व एवं अस्मिता के प्रश्नों को उठाया गया साथ ही समाज की मुख्य समस्याओं के अलावा उनकी आकांक्षाओं को भी अभिव्यक्ति मिली है।

बीज शब्द :

आदिवासी, अस्तित्व, सामूहिकता, परंपरा, चेतना, बाजारवाद, संस्कृति, अलगाववाद, असुरक्षाबोध, शरणार्थी, उग्रवाद।

मूल आलेख :

भारत देश 28 राज्य और 8 संघ राज्य से मिलकर बना है। सभी राज्यों की संस्कृति, वेशभूषा, त्यौहार, भाषा और इतिहास आदि अलग-अलग हैं। अगर पूर्वोत्तर की बात करें तो यह राज्य विभिन्न भाषा, संस्कृति और कलाओं का संगम क्षेत्र है। पूर्वोत्तर भारत में आठ राज्य (सिक्किम, असम, अरुणाचल प्रदेश, त्रिपुरा, मेघालय, मिजोरम, मणिपुर और नागालैंड) स्थित हैं। इनकी समृद्ध और विविध संस्कृति, प्राकृतिक सौंदर्य एवं प्राकृतिक संसाधन बाकी भारत के लिए आकर्षण का केंद्र हैं। इनकी सीमाएं भूटान, चीन, बांग्लादेश और म्यांमार से होकर गुजरती हैं इसलिए इन क्षेत्रों का राजनीतिक महत्व भी है। 400 से अधिक आदिवासी समुदाय और उनकी विशिष्ट संस्कृतियां इनकी गोद में पोषित हो रही हैं। आदि, खाम्ती, शेरदुकपेन, कार्बी, खासी, गारो, जयंतियां, रेंगमा, अंगामी, अपातानी, नीशी, मिजो, नागा, बोड़ो, भुटिया, लेप्चा, लिम्बु ऐसे कई समुदायों के दर्शन यहाँ होते हैं। पूर्वोत्तर की रचना में रचनाकारों ने अपने समुदाय की परंपरा और सामाजिक यथार्थ को दर्ज किया है। उनकी समस्याएं, आकांक्षाएं एवं संघर्षों के ऐसे कई मामले शामिल हैं जो

शोधार्थी, हिंदी विभाग
उत्तर बंग विश्वविद्यालय
7384348436
jereldina436@gmail.com

बाकी भारत से भिन्न है। इस क्षेत्र के आदिवासी आखिरकार क्या सोचते हैं? उनकी रचनाओं में जीवन के यथार्थ का चित्रण किस रूप में मिलता है इन सभी प्रश्नों का हल कहानियों में मौजूद है जिन्हें ढूँढने का प्रयास किया गया।

पूर्वोत्तर भारत संस्कृति एवं कला के क्षेत्र में बहुरंगी राज्य है। यहाँ की परम्पराओं में निरंतरता और आधुनिकता पायी जाती है जो लोगों के मौलिक अधिकार के नए आयाम को तलाशती है। मेघालय के विजोया सावियाना की 'कठ-बाप' कहानी बड़ी मार्मिकता से चित्रित की गई है। जहाँ एक बच्चा और सौतेला पिता का प्रेम और वार्तालाप पाठक के संवेदनशील मन को पूरी तरह विचलित कर देता है। बाल मनोविज्ञान के कई पक्ष सामने आते हैं। इस कहानी में पिता को लेकर बच्चे के मन में कई तरह के प्रश्न उठते हैं। बच्चे की माँ अपने दूसरे पति को छोड़कर पुराने प्रेमी से विवाह करना चाहती है, जिससे यह बच्चा जन्मा था। बच्चा (वैन) को जब अपने सौतेले पिता से पता चलता है कि- 'जिससे तुम्हारी माँ शादी कर रही है वही तुम्हारे पिता है। मुझसे पहले इनसे शादी नहीं हो सकी थी।' तब वैन अपने आप को बस्टर्ड कहते हुए

रोने लगता है। इस पर सौतेले पिता (बोरिस) ने उसे समझाते हुए कहा - 'हमारे समुदाय में जन्म की वैधता हर बच्चे का अधिकार है। तुम्हें नए पिता मुबारक हो।' जन्म की वैधता की बात की जाए तो गैर आदिवासी समाज में इसके लिए एक मापदंड तैयार किया गया है। जायज बच्चा ही अधिकार के साथ जी सकता है जबकि नाजायज बच्चे को सामाजिक उपेक्षाओं का शिकार बना दिया जाता है। जिससे बाल मन को आघात पहुँचता है। इसके विपरीत आदिवासी समुदाय में प्रत्येक बच्चे की जन्म की वैधता को स्वीकार किया गया है। वहाँ जायज-नाजायज वाली मानसिकता या हीन भावना प्रचलित नहीं है। वे बच्चे उतने ही अनमोल हैं जितने दूसरे बच्चे हैं। आदिवासियों के वैवाहिक परंपरा पर दृष्टि डाला जाए तो यह अप्रतिबंधित परंपरा है। कोई किसी रिश्ते में जबरदस्ती बंधे रहने को बाध्य नहीं है। हांग मिली हान्से की मुर्गी कहानी इसी तरह की स्थिति को दर्शाती है। कहानी की नायिका कासांग स्वावलंबी स्त्री है। विवाह के पश्चात पति (सारमेन) जब उसे छोड़कर चला जाता है। वह अकेली मुर्गी पालन कर अपने परिवार की देखभाल करती हैं।



मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि जीवन को व्यवस्थित बनाने के लिए एक ऐसा साथी का चुनाव करे जो हर पल उसका साथ दे। कासांग की इच्छा होती है कि 'अगर ऐसे ही हर भारी बोझ को उठाने वाला होता तो!..... सारमेन तो बस उसे मधुमक्खी की तरह चूस कर उड़ गया। इस भारी पिंजरे की तरह ही अगर मेरे हर बोझ को भी ये बुद्धू हेमाई उठाता.....।' ² ऐसा सोचने मात्र से ही कासांग को राहत का एहसास होता है। हेमाई भी कासांग से प्रेम करता है। वह हर समय कासांग के मनोबल को बढ़ाता है। परिवार का भरण-पोषण करने में उसकी मदद करता है। वह कहता है- 'जिस तरह एक घर में एक नारी की जरूरत होती है उसी प्रकार एक मुर्गीशाला में मुर्गी रहनी चाहिए।' ³ हेमाई का मानना है कि एक स्त्री परिवार की नींव है। जिस पर परिवार की जिम्मेदारी टिकी है इसलिए एक स्त्री के लिए उसका स्वाभिमान और स्वतंत्रता काड़ी मायने रखती है। यह इस कहानी के माध्यम से दिखाया गया है। तेमसुला आओ की कहानियों में आदिवासी स्त्री पात्र बहुत ही मजबूत और सशक्त रूप में उभर कर सामने आती है। जो अपनी बुद्धिमत्ता से पूरे गाँव को नष्ट होने से बचाती है। 'जंगल मेजर' और 'एक मामूली सवाल' ऐसी ही कहानियाँ हैं जहाँ आदिवासी औरतों ने शक्तिशाली भारतीय सेनाओं के योजनाबद्ध ऑपरेशन को नाकाम कर अपने गाँव की रक्षा की। 'जंगल मेजर' कहानी में खतिला का पति पुनबा दमनकारी दल का नेतृत्व करता है। वह भारतीय सेनाओं के जुल्मों एवं मनमाने अत्याचारों का विरोध करता है। उसे पकड़ने के लिए सेनाओं ने एक योजना बनाया। लेकिन खतिला ने उनके योजनाओं को नाकाम कर दिया। इस सन्दर्भ में तेमसुला लिखती है- 'उस विशेष सुबह को अपने पति की बदसूरती के लिए ज्यादा आभारी हो सकती थी, जिसने न केवल उन्हें बल्कि पूरे गाँव को बचा लिया था। अगर वह उस सुबह मारा जाता या पक ? लिया जाता, तो पूरे गाँव को एक कुख्यात विद्रोही को शरण देने और सरकारी बलों को गाँव में मौजूदगी की सूचना न देने के लिए दण्डित किया जाता। जैसा कि अन्य गाँवों के साथ हुआ था, उनके खलिहान में आग लगा दी गई होती, उनके घरों को नष्ट कर दिया जाता और लोगों

को 'सामूहिक शिविर क्षेत्र' में ले जाया जाता। लेकिन खतिला की चालबाजी और दुस्साहस के बदौलत पूरा गाँव ऐसी नीयति से बच गया।' ⁴ इस तरह आदिवासी समाज में स्त्रियों की उपस्थिति महत्वपूर्ण है।

एच इबोमचा की 'रंग अबीर का फीका हुआ' कहानी समुदाय की विशिष्ट परम्परा को चित्रित करने वाली मार्मिक कहानी है। जहाँ परिवार के मुखिया तोमल और पत्नी कोबोक्लेई दोनों चिंतित हैं। घर में सिर्फ एक पहर के लिए चावल बचा है। तोमल घर के पांच प्राणियों का पेट पालने के संकट से जूझ रहा था और 'याओशा ?' (होली) त्यौहार के आने से वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो चुका था। 'याओशाड़' में आने वाले बच्चों को भिक्षा देने से माना नहीं किया जा सकता है इसलिए तोमल जो समाधान निकालता है वह सामाजिक विशिष्टता को दर्शाता है। उन्होंने फैसला लिया- 'उन दोनों के हिस्से का चावल अगले दिन 'याओशा ?' की भिक्षा देने में इस्तेमाल किया जाएगा।' ⁵ इस तरह आर्थिक दरिद्रता में भी वे अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं। तोमल के फैसले से आदिवासी समाज की विशिष्टता को देखा जा सकता है।

पूर्वोत्तर की आदिवासी साहित्य में अन्य आदिवासी साहित्य की तरह सामूहिक चेतना उनकी परम्परा में अन्तर्निहित है। परम्पराओं का मुख्य स्रोत समाज की लोक संस्कृति में है। उनके हर्ष-उल्लस, दुख-पीड़ा, संघर्ष-प्रतिरोध आदि सभी समाज के साथ ही जुड़ी हुई हैं। व्यक्ति का समाज से अलग कोई अस्तित्व नहीं है। मनुष्य समाज का प्रतिनिधि होता है। और समाज सापेक्ष साहित्य का स्वरूप भी बनता है। पूर्वोत्तर का साहित्य, कला एवं परम्परा के मामले में काड़ी धनी है। यहाँ के आदिवासियों की जीविका पूरी तरह से खेती और वन पर आश्रित है। चूँकि प्रकृति के साथ उनका अंतर्संबंध काड़ी मजबूत है इसलिए वे प्रकृति का सम्मान करते हैं। 'आदिवासी समाज धरती, प्रकृति और सृष्टि के ज्ञात-अज्ञात निर्देश, अनुशासन और विधान को सर्वोच्च स्थान देता है।' ⁶ जब लोग खेत जाते या जंगल में शिकार करने जाते हैं। तो सबसे पहले देवता से प्रार्थना की जाती है। रेमोन लोंगकी की 'उस शिकार का शिकार' कहानी में बूढ़ी महिला, रेहाप और लुनवांग को पुरखों से चली आ

रही इस परंपरा को बताती है- 'ज्यादा शिकार करने से वन रक्षक नाराज हो जायेंगे। एक बात तुम दोनों याद रखना वहाँ वन में वन रक्षक के लिए अनुमति का गीत जरूर गाना, ताकि रोज-रोज शिकार करने के कारण वह कही नाराज न हो जाए।' ⁷ इन कहानी में समुदाय का सृष्टि के साथ के सामंजस्य को देखा जा सकता है। इसके अलावा रेमोन लोंगु की और एक कहानी 'शापित झील' कहानी लोक कथा सुनने और सुनाने की शैली में है। जहाँ दादी अपनी पोती मुंचु को लोक कथा सुनाते हुए आदिवासी परम्परा के संदर्भ में कहती है, क्योंकि हमारे समुदाय में परंपरा है कि कोई भी गाँव के व्यक्ति या लोग अगर जल जंगल से शिकार करते हैं तो उन्हें पूरे गाँव वालों को हिस्सा देना पड़ता है। नहीं तो जल रक्षक नाराज हो जाता है। ऐसा मान्यता रहा है। पशु-पक्षियाँ केवल एक ही व्यक्ति के लिए नहीं होता। यह समस्त मानव के लिए हैं इसलिए हमारी संस्कृति में मान्यता है कि शिकार किए गए वस्तु सभी को बांटना चाहिए। ताकि हमारे गाँव या समुदाय में एकता और प्रेम भावना बरकरार रहे। ⁸ लोक कथा सुनाने के पीछे दादी का मुख्य उद्देश्य था कि लोक कथाओं से भाषा, संस्कृति, मान्यता, परंपरा और इतिहास आदि को ज्ञान के रूप में संग्रहित करना। इसलिए वर्तमान में लोककथा और लोकगीतों को संकलित करने का कार्य जारी है।

आधुनिक युग में नव युवापीढ़ी में धैर्य, संयम और दृढ़ता जैसे गुणों का लोप हो रहा है। आदिम संस्कृति को संजोय रखने वाली पीढ़ी के विपरीत आज की युवापीढ़ी का स्वभाव है। दोनों पीढ़ी के लोगों में सामंजस्य नहीं बैठ रहा है। सेमसोन सिंह हांसे की 'अमावास की रात' कहानी में कबीले-कबीले की आपसी लड़ाई में अलग राज्य व अलग स्वायत्त शासित क्षेत्रों की माँग ने क्षेत्रीय हिंसा को बढ़ावा दिया। आपसी लोगों की लड़ाई में कई लोगों की जान चली गयी। नई पीढ़ी जिस तरह अंगारे बन कर उभरे सभी को झुलसा दिया। पुरानी पीढ़ी भी नई पीढ़ी के इस उग्र रूप को देख कर हक्का-बक्का रह गयी। कहानी के नायक मुखिया बारिम कहता है, 'लगता है देश में अब कोई दूषित हवा बहने लगी है। हर दिशा में अलग राज्य बनाने की हवा चल रही है। पुराने समय में

भी अलग जिले की माँग पर लोग सामूहिक रूप से इकट्ठा हुए थे पर उन दिनों हर समय लड़ाई-झगडा, गाली-गलौज, मार-पीट नहीं होती थी..... सोमसान ने कहा - अगर जिला मिल जाने के बाद कार्बी समाज में उजाला फैल जाएगा। पर बारिम को लगता है कि नई पीढ़ी के लोग जिस प्रकार अंगारा बन कर उभरे हैं, वह सब को झुलसा देगा। ⁹ कहानीकार वर्तमान के इन समस्याओं को बारीकी से रेखांकित किया है। इन परिवर्तनों से वे चिंतित तो हैं, लेकिन आशा की किरण अब भी है कि कभी न कभी हर तरफ शांति फैल जाएगी। अमावास के बाद उजास का दिन जरूर फैलेगा।

वर्तमान में आदिवासी समाज की पारंपरिक चेतना में काड़ी उतार-चढ़ाव हो रहे हैं। युवा पीढ़ी पढ़-लिख कर कहीं-न-कहीं स्वार्थ प्रेरित होकर कदम उठाने लगे हैं। रमाकांत बसुमतारी की 'वापसी' कहानी ऐसे ही युवक पर आधारित है। इस कहानी की अन्य पात्र (सानसुमा और रामोंदा) में अपनी जमीन और गाँव के प्रति कर्तव्यबोध इतना गहरा है कि वे गाँव को सुविधा-संपन्न बनाने के लिए काफी मेहनत करते हैं। सानसुमा कहता है- 'अगर हमारी जाति इस दुनिया में अपना परिचय देना चाहती है, अपने अधिकार तथा आजादी प्राप्त करना चाहती है, तो हमें इसके लिए पूरी निष्ठा से एक आंदोलन छेड़ने की आवश्यकता है। तभी हमारा अस्तित्व बच पाएगा।' ¹⁰ रिमोन्दा उनकी बातों को बढ़ाते हुए कहता है। 'अधिकार के आंदोलन के साथ-साथ सही विचार, विश्वास तथा संस्कृति के प्रतिष्ठापन के लिए भी प्रयत्न करना होगा।' ¹¹ आज की युवा पीढ़ी भले व्यक्तिगत प्रगति और उन्नति के लिए भूमि से दूर जाता है लेकिन वह अधिक दिन तक अपनी जड़ से कट कर जीवित नहीं रह सकता है। कथा का नायक अपने स्वार्थ-प्रेरित निर्णय पर शर्मिंदा होता है। वह अब अपने गाँव में रहकर गाँव की उन्नति करना चाहता है। असली प्रगति और उन्नति सामूहिकता में है जो आदम रीति- रिवाज और संस्कारों की धरोहर है। नेचुरियाजो चुचा की 'जड़ें' कहानी भी व्यक्ति के अस्तित्व को जड़ से बांधती है। इस कहानी में अलगाव और अपनेपन की तलाश को बड़ी बारीकी से प्रस्तुत किया गया है। कहानी के नायक विदेश से पढ़ाई करने के बाद

नौकरी करने बड़ा शहर जाता है। वहां उसे दूसरे दर्जे के नागरिक सा व्यवहार किया जाता है। उसे अपनेपन की कमी खलने लगी वह तुरंत अपना सामान लेकर गाँव वापस आ गया। वह कहता है। 'मैं समझ गया हूँ कि शिक्षा का अर्थ दुनिया जहाँ का ज्ञान समेटना भर नहीं है। असली शिक्षा तो यह है कि हम अपनी भाषा, परंपरा और रस्म-रिवाजों को जाने। भला अपनी जड़ों से कटकर कोई कितने समय जीवित रह सकता है?'¹² किसी भी व्यक्ति का अस्तित्व भाषा, संस्कृति और जमीन से जुड़ा होता है।

आज यही अस्तित्व का संकट मंडरा रहा है। पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव युवा पीढ़ी में अधिक दिखाई दे रहा है। वे अपनी जड़ से कट कर उस संस्कृति को अपना लेते हैं पर उनमें पूरी तरह फिट नहीं हो पाते। पूर्वोत्तर के आदिवासियों के सामने घुसपैठ की समस्या भी संस्कृतिकरण की समस्या को बढ़ावा देती है। इस घुसपैठ के कारण स्थानीय लोग स्वदेशी शरणार्थियों की तरह जीवन जीने को मजबूर हो गए। उनकी संस्कृति, परंपराएं और भाषाएं हीन भावना से देखे जाने लगी। 'एक और भयंकर परिणाम निकला इस बाहरी घुसपैठ का। मूल्यों का आदर करने वाली अपनी संस्कृति को बचाने के लिए कुर्बान हो जाने वाली आदिवासी जमातों का एक हिस्सा, जो आधुनिक होने की होड़ में अंग्रेजों बन रहा है अपनी संस्कृति को हेय समझने लगा। उसके मन में हीन भावना पलने लगी। वह पुराने मूल्यों से नफरत करता, नए मूल्यों को अपनाने की समझ न रखने वाला तबका, बस नकल करने लगा; सिर्फ नकल उन बाहरी लोगों की संस्कृति की, जो उन्हें लूटने और खरीदने आते थे।'¹³ विद्यासिंह रोंगपी की 'प्रतीक्षा' कहानी में घुसपैठ की समस्या को बारीकी से दर्शाया गया है। इस कहानी में लोंगी के मामा जो गाँव का मुखिया था। अपने निजी स्वार्थ के कारण अपने गाँव में नेपालियों को बसाने का अधिकार दिया था। लेकिन आज ये घुसपैठियों ने उनकी सांस्कृतिक धरोहर को हिला कर रख दिया है। रोंगबोंग कहता हैं- 'प्रदेश में नेपालियों की संख्या बढ़ जाने पर बाद में कठिनाइयाँ तो कार्बी जनता को ही भोगनी पड़ेगी।'¹⁴ वे लोग गाँव से बाहर अपना घर बनाने को मजबूर हो गए।

भविष्य में कार्बी जनता के समक्ष उपस्थित होने वाली समस्याओं के बारे में सोचकर ही रोंगबोंग बहुत दुखी था। पूर्वोत्तर की कई कहानियों में घुसपैठ की समस्याओं को चिन्हित किया गया है।

अवैध घुसपैठ के साथ-साथ सरकार की रीति की वजह से भी गरीब लोगों को काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। आदिवासियों को देशी-विदेशी ठेकेदारों और सरकार दोनों के शोषण का शिकार होना पड़ता है। गाँववासियों को अपना गाँव, अपनी जमीन, अपना घर में रहने के लिए बेवजह जुर्माना लिया जाता है। इस तरह पूर्वोत्तर में लोगों के अधिकारों का हनन हो रहा है। बेवजह सिपाहियों द्वारा पूरा का पूरा गाँव जलाया जा रहा है। सरकार के इस नीति के कारण आदिवासी अपने ही देश में भगोड़े बन कर रह गए। सिबैस्तिन जुमवू 'भूमिपुत्र' कहानी में इस देश की मौजूदा स्थिति को दिखाते हैं- 'तीन महीनों तक वन्य पशुओं की तरह चुपके से भोजन की व्यवस्था के लिए शिकार की जुरत में हम जंगल की खाक छानते रहे। फिर ऐसा हुआ कि जिला प्रशासन ने हम पर जुर्माना लगा दिया और हमें अपने गाँव लौटने की अनुमति दे दी। मुझे आज भी यह बात समझ में नहीं आई कि यह जुर्माना हम से किस अपराध के लिए वसूला गया है।'¹⁵ सरकारी नीतियों के वजह से भी आम जन को कई दफे समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

बाहरी लोगों के घुसपैठ के कारण स्थानीय लोगों की सुविधाओं में बंटवारा होता है। रोजगार की कमी लोगों में असुरक्षाबोध को जन्म देती है। अर्थव्यवस्था की लागत अधिकतर गैर-आदिवासियों के हाथ में होती है। यह समस्या आज की प्रमुख समस्या बन गई है। वे अपने में सिकुड़ते जाते हैं और अलगाववाद की प्रकृति पनपती है इसी का फायदा उठाते हैं उग्रवादी संगठन। आज की युवा पीढ़ी इसके चंगुल में फंसकर अपने हाथ में बंदूक थामने के लिए मजबूर है। कहानीकार रेमोन लोंगु की 'डर' कहानी में उग्रवाद के दहशत के कारण लोगों के अन्दर बैठने वाले डर को दर्शाया गया है। कहानी में रोइबुल की मां लोप्पी से कहती हैं- 'तुमने सुना है? पड़ोस गाँव में कुछ उग्रवादी लोग आए थे। वे लोग उस गाँव से कुछ युवकों को जबरदस्ती अपने दल में शामिल

करने ले गए हैं। सुनने में ये आया है कि वे लोग नए दल का निर्माण कर रहे हैं। इसलिए अपने दल को बढ़ाने के लिए गाँव के लड़कों को जबरदस्त उठा कर ले जा रहे हैं।¹⁶ कहानीकार बिजोया सवियाना की 'बरसात की एक रात' कहानी में युवक के मन में उग्रवाद के पनपने की पीड़ा को अभिव्यक्त किया गया है। वहीं दूसरी ओर 'भूमिपुत्र' कहानी में जंगल और रोजगार के छिनते अवसर के कारण युवा पीढ़ी रुद्ध होकर हथियार उठाने को मजबूर है। कहानी का नायक कहता है- 'अगली सुबह मैंने अपने पैसे गिना तो पाया मेरे पास बस तीन सौ रुपये बचे थे। इतने पैसे कितनी देर चलते? मुझे फटाफट पैसे उगाहने की कोई योजना बनाना जरूरी था। हफ्तों में योजनाएं बनाने, उन्हें परखने और फिर नाकाम हो जाने से जूझता रहा। कोई भी ऑफिस वाला मेरे जैसे आदमी पर दोबारा दृष्टि डालने को तैयार नहीं था। मदद करने की बात तो छोड़ ही दीजिए। फिर भी योजनाएं बनाने का मेरा काम बंद नहीं हुआ। मैं हताश से उठा और ऐसे में मैंने जो करने की ठानी उसे कुछ लोग 'हताशग्रस्त योजनाएं' कहते हैं।'¹⁷ इस तरह हताश युवा को अपराध का मार्ग चुनना पड़ता है। कहानीकार ख्वालकुंगी की कहानी 'कोउबाँय ला बैल जींस' में बच्चों की आकांक्षाओं को दर्शाया गया है। यदि बच्चों के प्रति माता-पिता के उपेक्षा भरे व्यवहार हो तो बच्चों का अपराधियों के चंगुल में फंसने का खतरा अधिक है। इन सभी कहानियों में युवा पीढ़ी के भटकने के पीछे की सच्चाई को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

पूर्वोत्तर के आदिवासी साहित्यकारों ने समाज की दयनीय स्थिति के लिए सिर्फ सरकार और वर्चस्ववादी को जिम्मेवार नहीं मानते हैं। बाहरी संघर्ष के साथ-साथ आन्तरिक संघर्ष भी है जिनसे जीतना है। समाज में कई तरह की रूढ़ियाँ, कुरीतियाँ और अंधविश्वास है जिसपर आदिवासी रचनाकार प्रहार करते हैं। आदिवासियों के पतन का मुख्य कारण नशा का अत्यधिक सेवन करना। आदिवासी समाज में हिया का प्रयोग करने के कुछ तार्किक आधार हैं। पहला, आदिवासी समुदाय कठिन श्रम करने के पश्चात शरीर में ताजगी लाने के लिए हजिया का सेवन करते हैं। दूसरा, अतिथियों के आदर सत्कार में हजिया का

सेवन करना परम्परिक रस्म बन गया है। तीसरा, किसी भी पर्व- त्यौहार में भगवान को चढ़ाया जाता है। किंतु वर्तमान में हजिया बाजारवाद का अंग बन गया है जिसके कारण इसका क्रय-विक्रय अधिक बढ़ गया। बाढ़ारवाद की इस प्रक्रिया के चपेट में सभी आदिवासी गाँव समा गया। अत्यधिक नशे की लत के कारण अन्य समुदाय की अपेक्षा अधिक पिछड़े रह गए और परिवार भी टूटता चला गया। 'सूर्यास्त' कहानी में नायक जैसे-जैसे नशे की गिरफ्त में जाने लगा परिवार से उसका सम्बन्ध भी टूटने लगा। अंततः एक दिन वह अपनी पत्नी और बच्चों को हमेशा के लिए खो बैठता है। वह बिलखते हुए कहता है- 'ओह चावल की शराब! तूने मेरी पत्नी और मेरे प्यारे बच्चे मुझ से छीन लिए।'¹⁸ इसके अलावा 'अमावास की रात' और 'बरसात की वह रात' कहानी के माध्यम से समाज की कमजोरियों को सामने लाया गया है।

समाज में स्त्रियों की स्थिति पर जब बात करते हैं तो यह पाया जाता है कि पूर्वोत्तर भारत की स्त्रियों को अन्य समाज की अपेक्षा अधिक स्वतंत्रता एवं अधिकार प्राप्त हैं। लेकिन इस बात से भी इंकार नहीं कर सकते कि समाज कोई भी हो अधिकांशतः परम्परा की प्रयोगशाला में औरतें ही झोंकी जाती हैं। जमुना बीनी की 'नालाइ' कहानी की नायिका रस्मों-रिवाज की ऊँची मीनार पर इठलाती हुई चढ़ गयी आदर्श 'वांग्चा' की तरह लेकिन परम्परा के नाम पर इतनी बड़ी आहुति देने के बावजूद जीवन भर पत्नी-रूप की स्वीकृति के लिए तरसती रही। कहानीकार लिखती है- 'ये रीति-रिवाज कब और किसकी निर्मितियाँ हैं। क्या ये पुरुषों की देन हैं! जाहिर है इसकी नियंता तो कोई स्त्री नहीं होगी, वरना हम औरतों पर ही क्यों सारे रिवाजों का प्रयोग होता! जैसे हम औरतें न होकर कोई प्रयोगशाला हो। समाज के हर रवायतों के प्रयोग का बीजा हम औरतें ही क्यों उठाती हैं। सत्ता के ऊँचे पायदान पर चढ़ने के लिए पुरुष को सीढ़ी के रूप में औरतों के कोमल कंधे की आवश्यकता क्यों!'¹⁹ वांचो समुदाय में विवाह के पूर्व ल?की की प्रजनन क्षमता की जाँच करना परंपरा है। कहानी का नायक आधुनिक विचारों वाला है वह ऐसी परम्परा का विरोध करता है। इसलिए वह नालाइ, जो इस परम्परा

के अनुसार गर्भवती होती है, उसे कभी पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं कर पाता है। इस कहानी के माध्यम से परम्परा के नाम पर स्त्री के प्रति होने वाले अन्याय और शोषण की पीड़ा को दिखाया गया है। कहानीकार जमुना बीनी का मानना है – ‘प्रत्येक समाज में जहाँ स्वस्थ परम्पराएँ होती हैं, वहीं कुछ ऐसी परम्पराएँ भी हैं जिसकी सार्थकता, औचित्य और प्रासंगिकता पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता है। ऐसी कोई परम्परा चाहे कितनी भी पुरातन क्यों न हो, जो मानवीय गरिमा को ठेस पहुँचाये, वह निश्चित ही त्याज्य है।’²⁰

उपरोक्त सभी कहानियों में आदिवासी समाज के आन्तरिक एवं बाहरी संघर्ष पर दृष्टिपात किया गया है। एक तरफ आधुनिकता है तो दूसरी ओर परंपराएँ। आदिवासी रचनाकार गतिशील एवं आधुनिक परंपराओं के पक्ष में दिखाई देते हैं एवं मानवीय गरिमा को ठेस पहुंचाने वाली परंपराओं का विरोध करते हैं। इसी अंतर्द्वंद्व से जूझता आदिवासी समाज को बचाव और रचाव के सामाजिक बोध की ओर अग्रसर करने का प्रयास किया गया है। □

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

1. सं. रमणिका गुप्ता, पूर्वोत्तर की आदिवासी कहानियाँ, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया प्रकाशन, चौथा संस्करण- 2013, पृ. 128
2. वही, पृ. 71
3. वही, पृ. 72
4. तेमसुला आओ, गाँवबु ? और कहानी वाली बु ?या, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, प्रथम संस्करण-2023, पृ. 39
5. सं. रमणिका गुप्ता, पूर्वोत्तर आदिवासी सृजन स्वर, अनन्य प्रकाशन, प्रथम संस्करण- 2018, पृ. 178
6. वंदना टेटे, वाचिकता आदिवासी दर्शन, साहित्य और सौन्दर्यबोध, राधाकृष्ण प्रकाशन, पहला संस्करण 2020, पृ. 15
7. रेमोन लोंगकु, कोंगकॉंग- फांगफांग, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, पहला संस्करण- 2022, पृ. 10
8. वही , पृ. 77
9. सं. रमणिका गुप्ता, पूर्वोत्तर की आदिवासी कहानियाँ, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया प्रकाशन, चौथा संस्करण- 2013, पृ. 50
10. वही, पृ. 32
11. वही, पृ. 33
12. सं. रमणिका गुप्ता, पूर्वोत्तर आदिवासी सृजन स्वर, अनन्य प्रकाशन, प्रथम संस्करण- 2018, पृ. 287
13. सं. रमणिका गुप्ता, पूर्वोत्तर आदिवासी सृजन स्वर, अनन्य प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2018, पृ. 15
14. सं. रमणिका गुप्ता, पूर्वोत्तर की आदिवासी कहानियाँ, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया प्रकाशन, चौथा संस्करण- 2013, पृ. 102
15. वही, पृ. 130
16. रेमोन लोंगकु, कोंगकॉंग- फांगफांग, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, पहला संस्करण- 2022, पृ. 47
17. सं. रमणिका गुप्ता, पूर्वोत्तर की आदिवासी कहानियाँ, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया प्रकाशन, चौथा संस्करण- 2013, पृ. 141
18. सं. रमणिका गुप्ता, पूर्वोत्तर आदिवासी सृजन स्वर, अनन्य प्रकाशन, प्रथम संस्करण- 2018, पृ. 249
19. जमुना बीनी, अयाचित अतिथि और अन्य कहानियाँ, समय साक्ष्य प्रकाशन, देहरादून, दूसरा संस्करण-2022, पृ. 4
20. वही, पृ. 14

हिमाचल प्रदेश के पंगवाल जनजातीय समाज के संस्कारों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

शोध सारांश :



केहर सिंह

शोधार्थी, इतिहास विभाग
हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय
देहरा, जिला काँगड़ा,
हिमाचल प्रदेश-177101
☎ 9459837514
✉ kehar.singh66@gmail.com

हिमाचल प्रदेश के जिला चम्बा में पंगवाल जनजाति निवास करती है यह जनजातीय क्षेत्र अपनी भौगोलिक दुर्गमता, सामाजिक समरसता व सांस्कृतिक विरासत की निरंतरता के कारण आज देश-विदेश के लोगों को पर्यटन एवं अध्यात्म के लिए अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। इस जनजातीय क्षेत्र में आज भी संस्कार परम्पराओं के प्रति विश्वास व श्रद्धा विद्यमान है। संस्कार भारतीय संस्कृति तथा इसकी उप-संस्कृतियों के अभिन्न अंग हैं। शुद्धता, पवित्रता, धार्मिकता, एवं आस्तिकता संस्कार की प्रमुख विशेषताएँ हैं। संस्कारों के माध्यम से मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण एवं विकास होता है। मानव जीवन में नैतिकता, संयम और त्याग के साथ उल्लास एवं सौंदर्य का भी संरक्षण हो सके इसके लिए भारतीय ऋषि मुनियों ने मनुष्य के जीवन में संस्कारों को स्थापित किया। पांगी जनजातीय समाज में हिंदू एवं बौद्ध परम्पराओं के अनुयायी निवास करते हैं, इनकी सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराएं कई समानताएं एवं मिश्रित स्वरूप लिए हुए हैं जिनमें जन्म से लेकर मृत्यु उपरांत तक विविध संस्कारों का आयोजन शास्त्र विधि से संपन्न किया जाता है। प्रस्तुत शोध आलेख में पांगी जनजातीय समाज में प्रचलित हिंदू समाज के महत्वपूर्ण संस्कारों जैसे मुण्डन संस्कार, विवाह संस्कार, मरण संस्कार आदि का अध्ययन किया गया है।

संकेत शब्द :

पंगवाल, संस्कार, मंडे, व्याह, बहाणौही, शूणेत, लियूंती, कुई, बतारणी।

भूमिका :

हिंदू जीवन में संस्कारों को बहुत महत्व दिया जाता है। संस्कार कुछ विशिष्ट अवसरों पर आयोजित होने वाले ऐसे धार्मिक तथा सामाजिक कार्य हैं, जो विभिन्न समाजों में सामान्य रूप से प्रचलित होते हैं, किंतु भौगोलिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के कारण इनमें स्वाभाविक रूप से भेद पाया जाता है। यह इतिहास के प्रारंभ से ही सांस्कृतिक तथा सामाजिक एकता के प्रभावकारी माध्यम रहे हैं। उनका उदय सुदूर अतीत में हुआ था, और कालक्रम से अनेक परिवर्तनों के साथ वे आज भी जीवित हैं।¹ भारतीय समाज की कुछ विशिष्ट परंपरा रही है, जो विश्व की किसी अन्य सामाजिक संस्था में दिखाई नहीं देती है। इस कारण हमारे जीवन के आदर्श अन्य देशों के आदर्शों से पूर्णतया भिन्न रहे हैं। जहां भारत में आध्यात्मिकता पर बल दिया जाता है, वहीं विशेष रूप से पश्चिमी समाजों



प्रो. कंवर चंद्रदीप सिंह

विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग,
हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय,
देहरा, जिला काँगड़ा
हिमाचल प्रदेश-177101
☎ 9531804179
✉ kanwar.chanderdeep@gmail.com

में भौतिकता को प्रधान माना गया है। मनुष्य के व्यक्तिगत विकास में समाज तथा संस्कृति का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। प्रत्येक मानव का जीवन तथा व्यवहार उसके सामाजिक परिवेश एवं उससे प्राप्त नैतिक, भावात्मक तथा परम्परागत संस्कारों पर आधारित रहता है।

महर्षि जैमिनि के अनुसार संस्कार वह है, जिससे कोई व्यक्ति या वस्तु किसी कार्य के योग्य हो जाता है, संस्कारो नाम स भवति यस्मिञ्जाते पदार्थो भवति योग्यः कस्यचिदर्थस्य।² इस प्रकार हिंदू व्यवस्था में संस्कारों का उद्देश्य मनुष्य के शरीर को पवित्र बनाना है ताकि व्यक्ति को सामाजिक विकास के लिए उपयुक्त बना सके।³ वेद, पुराणों तथा धर्मशास्त्रों में संस्कारों की आवश्यकता बतलायी गई है। वास्तविक रूप में संस्कारों का विधान सूत्र-साहित्य विशेषतया गृहसूत्रों में पाते हैं। संस्कारों की संख्या के संदर्भ में भारतीय विद्वानों ने भिन्न-भिन्न मत प्रकट किए हैं। गौतम धर्मसूत्र में आठ आत्मगुण सहित चालीस संस्कारों का उल्लेख मिलता है। वहीं महर्षि वेदव्यास ने सोलह संस्कार माने हैं।⁴

स्मृतिग्रंथों में जन्म से मृत्यु पर्यंत मुख्य रूप से सोलह संस्कार माने गए हैं। यद्यपि पंगवाल जनजातीय समाज में गर्भाधान, पुसवन एवं सीमन्तोन्नयन जैसे जन्म से पूर्व के संस्कारों को नहीं मनाया जाता है, लेकिन निष्क्रमण, नामकरण, चुडाकर्ण, विवाह तथा अंत्येष्टि संस्कारों का प्रचलन आज भी विद्यमान है। यहां के हिंदू समाज में मनाये जाने वाले संस्कारों में पण्डित की भूमिका कम रहती है। हालांकि, मृत्यु सम्बन्धी संस्कारों में पण्डित की भूमिका जरूर देखने को मिलती है। कई संस्कार पण्डित के बिना घर का मुखिया या गाँव के वरिष्ठ व्यक्ति ही सम्पन्न करते हैं। पांगी जनजातीय क्षेत्र के सामाजिक एवं सांस्कृतिक विश्लेषण की दृष्टि से यहां के संस्कार परंपरा को मुख्य रूप से तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं- 1. जन्म संबंधी, 2. विवाह संबंधी एवं 3. अंत्येष्टि संबंधी।

भौगोलिक स्थिति :

पांगी जनजातीय क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति अति विकट है। यह गहरे नदी-नालों, घाटियों एवं पर्वतों से आवेष्टित प्राकृतिक सौंदर्य संपन्न क्षेत्र है। सम्पूर्ण पांगी जनजातीय क्षेत्र नवंबर से मार्च माह तक बर्फ से ढका

रहता है जिसकारण यहां जीवन यापन करना कठिन तथा परिश्रमसाध्य है। भौगोलिक रूप से चंबा जिला के उत्तर दिशा में स्थित पांगी जनजातीय क्षेत्र उत्तरी अक्षांश 32° 33'-33°19' और पूर्वी देशांतर 76°15'-77°2' के बीच अवस्थित है।⁵ पांगी घाटी का कुल क्षेत्रफल लगभग 1503 वर्ग किलोमीटर है जिसमें 82 प्रतिशत क्षेत्रफल पर वन, नदियां, नाले व पहाड़ हैं। शेष 18 प्रतिशत क्षेत्र आवासीय, कृषि योग्य एवं घासनियां हैं।⁶

पंगवाल जनजाति चम्बा जिले के उपमंडल पांगी की स्थाई निवासी है। इस घाटी में हिंदू समाज की जनसंख्या 94.92 प्रतिशत है।⁷ यहां हिंदू समाज दो वर्गों में विभक्त है। प्रथम वर्ग के अंतर्गत राजपूत, ठाकुर, राठी, ब्राह्मण, राणा व चौहान अनुसूचित जनजातियाँ हैं। राजपूत चंद्रवंशी तथा ब्राह्मण मार्कंडेय और कश्यप गोत्र के हैं।⁸ जबकि दूसरा वर्ग आर्य (चनाल), और लोहार (डूम) अनुसूचित जातियों की श्रेणी में आती है। 2011 की जनगणना के आधार पर पंगवाल जनजातीय समुदाय की कुल जनसंख्या 18,868 है। यह जनजातीय क्षेत्र वृहत् हिमालय में स्थित एक शुष्क अर्द्ध-मरुस्थलीय क्षेत्र है इस क्षेत्र की जलवायु शीतल एवं स्वास्थ्यवर्धक है। इस घाटी में इनका मुख्य व्यवसाय कृषि और पशुपालन है।

शोध के उद्देश्य :

- पंगवाल जनजातीय समाज में प्रचलित संस्कारों के सांस्कृतिक पक्ष का अध्ययन करना।
- संस्कारों के प्रति सम्मान और सामंजस्य स्थापित करने की प्रक्रिया का अध्ययन करना है।
- पंगवाल जनजातीय समाज में निष्पादित संस्कारों की प्रासंगिकता का विश्लेषण करना।

शोध प्रविधि :

प्रस्तुत शोध पत्र हिमाचल प्रदेश के चंबा जिला की पंगवाल जनजातीय समाज में प्रचलित संस्कारों पर आधारित है। इस शोध में ऐतिहासिक विश्लेषणात्मक एवं विवरणात्मक पद्धति का उपयोग किया गया है। विषय की गहन जानकारी के लिए प्राथमिक व द्वितीय शोध सामग्री का उपयोग किया गया है। प्राथमिक स्तर की जानकारी

स्थानीय निवासियों से साक्षात्कार और सामूहिक चर्चा के माध्यम से एकत्रित की गई है। जबकि द्वितीयक सामग्री में भारतीय संस्कारों पर लिखित पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों की सहायता ली गई है।

पंगवाल जनजाति में प्रचलित प्रमुख संस्कार

जन्म संस्कार

गर्भाधान : पांगी घाटी में गर्भवती महिला को 'गब्रोल्ली' कहा जाता है। महिला के गर्भाधान पर परिवार अपने कुल-देवी व देवता की पूजा अर्चना कर माता व शिशु के स्वास्थ्य की कामना करता है। गर्भवती महिला को गांव के बाहर आने-जाने, भारी वजन का कार्य करने, सूर्य और चंद्रग्रहणदेखने और मृत व्यक्ति के पार्थिव शरीर को देखने की मनाही रहती है। प्रायः ऐसा गर्भस्थ शिशु की सुरक्षा हेतु किया जाता है। प्रसव आसानी से हो इसके लिए एक सप्ताह पूर्व से ही स्थानीय दाई गर्भवती स्त्री के शरीर में मालिश करती है। वर्तमान समय में पांगी जनजातीय क्षेत्र में स्वास्थ्य केंद्र खुलने से लोग अस्पताल में भी प्रसव करवा रहे हैं।

गृह शुद्धि : प्रसव होने के पश्चात् बारह दिनों तक प्रसूति घर अपवित्र माना जाता है। इन दिनों घर पर कोई शुभ कार्य नहीं किया जाता है। प्रसव काल को स्थानीय भाषा में सूतक कहते हैं। सूतक अवधि लड़के के जन्म पर नौ तथा लड़की के जन्म पर बारह दिनों तक रहती है। प्रसूति के कपड़े महिलाओं द्वारा त्रियोला (तीसरे), छोला (छठे), नाओ (नवें) तथा बारोह (बारहवें) दिन धोये जाते हैं।⁹ कपड़े धोने की परंपरा को टियो कहा जाता है। घर की शुद्धि के लिए शाऊ (लाल मिट्टी) व गाय के गोबर का कुश (लेप) लगाया जाता है जिसके बाद पूरे घर में गौमुत्र छिड़का जाता है। बच्चे को गोमूत्र मिलाए हुए पानी से नहलाया जाता है। शुद्धि के बाद पिता पूजा-पाठ करने के उपरान्त बच्चे को वस्त्र, आभूषण व कुछ रुपये उपहार देता है।

निष्क्रमण : नवजात शिशु के जन्मोपरांत शुभ तिथि को भगवान भास्कर के दर्शन करवाये जाते हैं। जिसे पांगी घाटी में 'सूर्ज फूल' कहते हैं। इस दिन जातक के माता-पिता नवजात शिशु को मुख्य द्वार पर ले जाकर लोटे में

स्वच्छ जल भरकर पुष्प से अर्घ्य अर्पित करते हैं। भगवान भास्कर के लिए मीठा भोग बनाया जाता है। जननी अपने जातक को गोद में बिठाकर सूर्य दर्शन करवाती है।¹⁰

अन्नप्राशन : इस संस्कार को पांगी घाटी में 'खीड' कहा जाता है। वर्तमान समय में इस संस्कार के अंतर्गत जन्म के समय शिशु को शहद चटाया जाता है। उसके उपरांत शिशु माता के स्तनपान से ही पोषण ग्रहण करता है। पांगी में यह बच्चे के जन्मके तीसरे से छह माह के बीच में किया जाता है। इस दिन घर में हलवा-लुच्ची बनाई जाती है। विधि-विधान से देवी-देवताओं का पूजन किया जाता है फिर बालक के मुंह में चुटकी भर हलवा आदि डाला जाता है।

मुंडन : पांगी घाटी में मुंडन संस्कार को 'शिखा वधेई' भी कहते हैं। शिखा वधेई का शाब्दिक अर्थ है शिखा यानी चोटी, वधेई अर्थात् काटना।¹¹ मुंडन से पूर्व घर पर महिलाओं के द्वारा गेहूं के आटे को तरलावस्था में करके पत्थर के तौवे (मनोटी) पर मण्डे पकाये जाते हैं। मुंडन के दिन परिवार का मुखिया कुल देवता एवं नवग्रह की पूजा है, उसके बाद थाली में मण्डे, कैंची रख कर मामा को सौंपी जाती है। मामा के द्वारा मण्डे को तीन जगह से छिद्र करके बालक के बाल बाहर निकाल कर काटने की रस्म पूर्ण की जाती है।¹² इस अवसर पर मामा जातक को कुछ पैसे या सोने का आभूषण उपहार में देता है। वर्तमान समय में मुण्डन संस्कार त्रिलोकी नाथ (लाहौल-स्पिति), वैष्णोदेवी (जम्मू), तथा मणिमहेश (चम्बा) में करवाने की भी परंपरा प्रचलित है। पंगवाल समाज में यह संस्कार लड़के और लड़की दोनों के लिए किया जाता है। बच्चे के बालों को एकत्रित कर गांव से दूर गोठ (अधवारी) में दफना दिया जाता है। इस अवसर पर ग्रामवासियों को रात्रिभोज अवश्य दिया जाता है।

पन्हेई : पंगवाल समाज में धरती पूजन के रूप में यह संस्कार केवल लड़के के निमित्त पूर्ण किया जाता है। चार से पांच वर्ष की आयु के उपरांत बालक को धरती पूजन हेतु गाँव के पास जंघलाटी (धरती पूजन का निश्चित स्थान) पर लाया जाता है। इस अवसर पर आटे के प्रसादरूप में बकरु, हलवा, लुच्ची तथा मण्डे पकाये जाते हैं, तथा दोपहर या शाम के समय ग्रामवासियों को प्रीतिभोज

दिया जाता है।

विवाह संस्कार : पंगवाल जनजातीय समाज में विवाह प्रथाओं का अपना विशेष स्थान है। इस जनजातीय क्षेत्र में उच्च जातियां (राजपूत तथा ब्राह्मण) आपस में विवाह करती हैं हालांकि कुछ अंतर्जातीय विवाह भी हुए हैं, परंतु समाज में इस प्रकार के विवाह स्वीकृत नहीं हैं। यहां प्राचीन समय में प्राजापत्य, गंधर्व और राक्षस विवाह का समिश्रण विद्यमान था। चूंकि जिस प्रकार मंडी, सिरमौर तथा कुल्लू जनपद में हरण प्रथा का प्रचलन है, उसी प्रकार पांगी घाटी में पिठचुक (पीठ पर उठा कर ले जाना) का प्रचलन था।¹³ सामान्यता पिठचुक कन्या की सहमति से होती थी, लेकिन वर्तमान समय में पिठचुक की प्रथा समाप्त हो चुकी है। वर्तमान समय में मंगवाली विवाह (Arrange Marriage) ही इस क्षेत्र में प्रमुख है जिसकी तीन अवस्थाएँ हैं- 1. पिलम, 2. छक्क एवं 3. ब्याह

पिलम : पिलम पंगवालों में मंगवाली विवाह की प्रथम अवस्था है। इस अवस्था के प्रारंभ में वर पक्ष द्वारा कन्या के घर रिश्ता भेजा जाता है। जिसमें किसीरिश्तेदार या विश्वास पात्र व्यक्ति को मध्यस्थ बनाया जाता है। जिसे 'दयान' की संज्ञा दी जाती है। पिलम के दिन लड़का, दयान और परिवार के कुछ सदस्य लड़की के घर मिष्ठान व अन्य खाद्य सामग्री भेंट स्वरूप लेकर जाते हैं। यह छोटे स्तर का कार्यक्रम होता है, पिलम के उपरांत लड़का कानूनन लड़की का पति बन जाता है।

छक्क : पिलम के बाद मंगवाली विवाह की अगली रस्म 'छक्क' है जिसमें एकनिश्चित तिथि को लड़का, दयान सहित अपने रिश्तेदार साथियों के साथ लड़की के घर हलवा, सतू, लूच्ची, अराख (देसी शराब) एवं आभूषण लेकर जाता है इस अवसर पर लड़की के घर पर ग्रामवासी व सगे-संबंधी आमंत्रित होते हैं। कन्या का मामा वर पक्ष द्वारा लाए हुए पदार्थों का पूजन करके उपस्थित लोगों में वितरित करने के लिए देता है। रात्रि के समय लड़का लड़की एक-दूसरे को अंगूठी पहना कर बंधन की रस्म पूरी करते हैं।

ब्याह : विवाह की अंतिम अवस्था 'ब्याह' (जानी)

है। इस दिन दूल्हा परम्परागत वेशभूषा में सज-धज कर बारात के साथ लड़की के घर आता है। बारात में केवल तीन व्यक्तियों के जाने की परंपरा है। पहला व्यक्ति दयान, दूसरा व्यक्ति वर का चचेरा भाई 'पठमहाराज' (रक्षक रूप में) तथा तीसरा व्यक्ति 'धाणी' (वर) स्वयं होता है। पंगवाल जनश्रुति में इस बारात को त्रेता युग के राम, लक्ष्मण एवं सीता का प्रतीक रूप माना जाता है।¹⁴ शाम को छः से सात बजे बारात लड़की के घर प्रवेश करती है। लड़की के घर पर ग्रामवासी व रिश्तेदार शामिल रहते हैं। अगले दोपहर वधू का श्रृंगार कर घर से विदा किया जाता है। वधू के साथ दिवैते (परिवार के सदस्य व अन्य रिश्तेदार) जाते हैं। शाम को छः से सात बजे वधू का गृह प्रवेश होता है। गृहप्रवेश के समय द्वार पर एक बकरे की बलि भी दी जाती है। इस दिन ग्रामवासियों एवं सगे-संबंधियों को रात्रि भोज पर आमंत्रित किया जाता है। पूजा-पाठ के बाद देर रात तक सांस्कृतिक कार्यक्रम चलता है। अगली दोपहर को लड़की के साथ आए दिवैते वापिस चले जाते हैं। इसके पश्चात रात्रि के समय गांव की महिलाओं के साथ दुल्हन नचाने की परंपरा प्रचलित है। इस अवसर पर ग्रामवासियों एवं सगे-संबंधियों द्वारा दुल्हन को शगुन में रुपये दिये जाते हैं। विवाह समाप्ति के कुछ दिन बाद फरौणी की रस्म निभाई जाती है। इसमें दूल्हा सतू, हलवा आदि लेकर दुल्हन के मायके जाता है। कुछ दिन बाद ससुराल वापसी पर पुनः ग्रामवासियों एवं सगे-सम्बन्धियों को रात्रिभोज दिया जाता है।

मरण संस्कार : पांगी जनजातीय क्षेत्र में अंत्येष्टि संस्कार को पूरे रीति-रिवाज एवं परंपरा से संपन्न किया जाता है। मृतक को स्नान के उपरांत उत्तर दिशा की ओर सिर करके लिटाया जाता है। मृतक के मुंह में घी डाल कर उसके पास दीप जलाया जाता है। यदि मृतक स्त्री हो तो उसका पूरा हार श्रृंगार किया जाता है। स्त्री के मायके पक्ष से पूरी प्रजा क्रियाकर्म में सम्मिलित होती है। पांगी घाटी में व्यक्ति की मृत्यु होने पर सर्वप्रथम कुछ कार्यकर्ताओं को नियुक्त किया जाता है, जिसमें- शूणेत, लियून्ती, बहाणौही तथा कुई प्रमुख हैं-

शूणेत : इनका कार्य सगे-संबंधियों और आस-पड़ोस के लोगों को मृत्युकी सूचना देना है।

लियूँती : इनका कार्य शव ले जाने के बाद चूल्हा चौका करना, पुरोहित के लिए पूलें (घास के जूते) तथा कपड़े धुलाई का कार्य रहता है, इसमें केवल महिला रहती है।

बहाणौही : इनका कार्य पंडित (ब्राह्मण) के साथ क्रियाकर्म को पूरा करने में सहयोग करना रहता है।

कुई- कुई का उस समय तो कोई कार्य नहीं होता लेकिन आगे नौ महीने तक मृत्यु संस्कारों को सम्पन्न करवाने में प्रमुख भूमिका रहती है।

मृतक का शव उठाने के लिए लकड़ी का विमाण बनाया जाता है। शव को घर के द्वार पर विमाण में रख कर मसरू (सफेद कपड़ा) से ढक दिया जाता है। शव के साथ बहाणौही द्वारा देवदार की लकड़ी का जलता हुआ मशाल भी साथ लिया जाता है। बतारणी में अरथी को कुछ समय के लिए रखा जाता है, जहाँ शव के सिर के बालों का कुछ अंश जलाया जाता है। तथा वहां तक शव के साथ भेड़ लेकर जाते हैं, जिसे मृतक के उपर घुमा (गुदाण) कर छोड़ दिया जाता है। भेड़ को प्रतीकात्मक रूप से मृतक की आत्मा का वाहन माना जाता है, जो उसे परलोक तक पहुंचाने में मदद करती है। इस भेड़ को वापिस मृतक के घर पर नहीं, बल्कि गांव के किसी परिवार को उपहार यह मूल्य लेकर दे दिया जाता है।¹⁵ यहां से शव को पूर्ण रूप से लाल रंग के कपड़े से ढक दिया जाता है। स्थानीय लोग घंटी, शंख, नशाण आदि बजाते हुए पंक्तिबद्ध शमशान घाट की ओर प्रस्थान करते हैं। शमशान घाट पर मृतक को अरथी से निकालकर 'ची' (चिता) पर लेटा दिया जाता है। अंतिम संस्कार के समय मृतक का सिर उत्तर दिशा की तरफ रखा जाता है। शव को मुखाग्नि में परिवार के सदस्यों के साथ गांव के लोग शामिल रहते हैं। चिता ठंडी होने के उपरांत कुछ अस्थियां गंगा विसर्जन के लिए रख ली जाती हैं। बाकि अवशेष को चंद्रभागा नदी अथवा स्थानीय स्वच्छ जल स्रोत में बहा दिया जाता है।

अंतिम संस्कार में गांव की सम्पूर्ण टज' (प्रजा) का भाग लेना अनिवार्य है। अनुपस्थित सदस्यों को जुर्माना भरना होता है। दाह संस्कार के बाद तीन दिन तक पिंडदान

की परंपरा है। पिंडदान करने वाला व्यक्ति दिन में एक समय खाना खाता है। मृतक परिवार के सदस्य एवं सगे-सम्बन्धी तीन दिन तक उपवास रखते हैं, जिसमें दूध का प्रयोग वर्जित रहता है।

कट्टी : क्रियाकर्म के चौथे दिन 'कट्टी' की रस्म निभाई जाती है। इस अवसर पर गाँव के प्रत्येक घर का एक सदस्य एवं सगे-संबंधी प्रभावित परिवार के घर सहभोज में भाग लेते हैं, इस दिन घी, रोटी, कड़ी आदि का भोज दिया जाता है।

धाच्च स्थापना : नवें दिन पुरोहित, बहाणौही तथा परिवार का कोई सदस्य पानी के पनियारे के पास पत्थर पर मृत व्यक्ति का चित्र उकेरता है जिसे धाच्च कहा जाता है।¹⁶

इस समयावधि में मृतक परिवार एक माह तक मांस, दूध तथा मदिरा आदि का सेवन नहीं करता है। सुहागिन स्त्रियाँ बिंदी एवं सिंदूर नहीं लगाती हैं। मृतक के तेरहवें दिन हरिद्वार में अस्थियां प्रवाहित की जाती हैं। एक माह पूर्ण होने पर क्रिया कर्म की दूसरी रस्म 'मासवार' निभाई जाती है इस अवसर पर घर की लिपाई-पुताई के उपरांत मण्डे तथा खीर पकाई जाती है। इस दिन ग्रामवासियों एवं सगे संबंधियों को भोज दिया जाता है। तत्पश्चात् मृतक के घर पर लगभग नौ माह तक कोई शुभ कार्य सम्पन्न नहीं किया जाता है। नौ माह के उपरांत ग्रामवासियों एवं सगे सम्बन्धियों को प्रीति भोज देकर मृतक का शोक समाप्त किया जाता है। स्त्री की मृत्यु पर मायके व ससुराल वालों द्वारा भी यही संस्कार लगभग छह से नौ महीने तक सम्पन्न किए जाते हैं। नवजात शिशु (दो से तीन वर्ष) की मृत्यु होने पर उन्हें दफनाया जाता है।

उपसंहार : संस्कार परंपरा पंगवाल समाज को एकता के सूत्र में पिरोने का कार्य करती है। इस घाटी में जन्म से लेकर मृत्यु तक के कार्यों में ग्रामवासियों का सहयोग रहता है। जो भारतीय संस्कृति की एक धरोहर है। पंगवाल समुदाय में प्रचलित संस्कार न केवल स्थानीय परंपराओं को दर्शाते हैं, बल्कि व्यापक भारत की सांस्कृतिक एकता को भी उजागर करते हैं। पंगवाल समुदाय में प्रचलित नामकरण, विवाह, मृत्यु आदि सामाजिक अनुष्ठान

भारत के अन्य प्रदेशों में प्रचलित परंपराओं से जुड़े हुए हैं। यह भारत की भू-सांस्कृतिक एकता को प्रदर्शित करता है, जहां भौगोलिक विविधता के बावजूद सांस्कृतिक मूल्यों और परंपराओं में सामंजस्य बना रहता है। हिमाचल के इस दुर्गम क्षेत्र से लेकर दक्षिण भारत तक, संस्कार और परम्पराएं भारत को एक 'सांस्कृतिक राष्ट्र' के रूप में परिभाषित करते हैं। यह परंपराएं दिखाती हैं कि विविधता

में भी भारत की आत्मा एक ही है, जो हमें 'वसुधैव कुटुंबकम्' के आदर्श के समीप ले जाती है। इस प्रकार, पंगवाल समुदाय के संस्कार और परंपराएं भारत के अन्य हिस्सों के साथ एक अद्वितीय सांस्कृतिक को संजोने का कार्य करती हैं। इनकी प्रथाएं यह दर्शाती हैं कि भौगोलिक बाधाओं के बावजूद, भारत की संस्कृति और परंपराएं सभी क्षेत्रों में समान भावना और मूल्यों से प्रेरित हैं। □

संदर्भ :

1. पाण्डेय, राजबली, हिंदू संस्कार, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, 2019, पृ. 19
2. संस्कार अंक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृ. 220
3. शर्मा, ओम प्रकाश, भारतीय संस्कृति, ठाकुर जगदेव स्मृति शोध संस्थान नेरी, हमीरपुर, 2014, पृ. 56
4. व्यासस्मृति, 1.13-15
5. Verma, V, Pangi A Tribal Habitat in Mid Himalaya, K. K Publishers, New Delhi, Page-7
6. शर्मा प्रभात, मनमोहक देवधरा पांगी, काँगड़ा, AUROUS PUBLICATIONS, 2016, पृ. 18
7. Census Report, 2011
8. रणपतिया, अमर सिंह, पांगी, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी, शिमला, 2010, पृ-25-26
9. शर्मा केदार, पांगी घाटी में संस्कार पद्धति, सोमसी, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी, शिमला, अंक 03, जुलाई 2002, पृ. 78-82
10. साक्षात्कार, प्रेम सिंह, आयु 70 वर्ष, गावं प्रेग्रा, डाकघर करयास, तहसील पांगी, दिनांक 04/07/2023
11. शर्मा केदार, 2002, पूर्वोक्त, पृ. 78-82
12. रणपतिया, अमर सिंह, पंगवाल जनजाति के संस्कार, सोमसी, हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी, शिमला, अंक 70, मार्च 1994, पृ. 18-22
13. शर्मा केदार, 2002, पूर्वोक्त, पृ. 78-82
14. साक्षात्कार : अमर नाथ, गावं परघवाल, आयु 80 वर्ष, डाकघर करयास, तहसील पांगी, दिनांक 30/06/2023
15. साक्षात्कार, ध्यान सिंह, आयु 70 वर्ष, गावं प्रेग्रा, डाकघर करयास, तहसील पांगी, दिनांक 04/07/2023
16. रणपतिया अमर सिंह, 2010, पूर्वोक्त, पृ. 55

हिंदी दलित पत्रकारिता में दलित समाज का वर्तमान परिदृश्य



अभिषेक कुमार

शोध-सार :

भारत में पत्रकारिता की शुरुआत 19वीं शताब्दी से मानी जाती है। नवजागरण के दौर में हिंदू समाज के बीच जो कुरीतियाँ (जैसे सती प्रथा, बाल विवाह प्रथा, पर्दा प्रथा, बलि प्रथा, विधवा विवाह आदि) प्रमुख थीं। इन सभी कुरीतियों को समाप्त करने के लिए अनेक समाज सुधारक संस्थाओं का निर्माण किया गया। जिनमें राजा राम मोहन राय द्वारा 1828 ई. में ब्रह्म समाज, स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा 1815 ई. में आर्य समाज, भारतेन्दु हरिश्चंद्र द्वारा 1813 ई. में तदीय समाज और आत्मा राम पांडुरंग द्वारा 1861 ई. में प्रार्थना समाज की स्थापना किया था। इन सभी समाज सुधारों ने हिंदू समाज के अंतर्गत व्याप्त बुराईयों को समाप्त करने के लिए कार्य किया परंतु दलितों की वेदना और दुःखों को समाप्त करने के लिए न तो इन संस्थाओं ने और न ही इस दौर की पत्रकारिता ने दलित समाज के लिए कोई विशेष कार्य किया, तेज सिंह कहते हैं- 'तथाकथित हिंदी नवजागरण भी हिंदू नवजागरण ही था जो सवर्ण जातियों के सामाजिक-सांस्कृतिक उत्थान के प्रति समर्पित था। उस दौर के अनेक पत्र हिंदू व हिंदू-जाति के नामों से निकले थे और उनके मालिक और लेखक भी हिंदू ही होते थे, जो आज भी हैं।' ¹ वहीं श्यामराज सिंह बेचैन का भी मानना है कि उस दौर की हिंदी पत्रकारिता पक्षपाती बनी। दलित वर्ग की लोकतांत्रिक भागीदारी खुद दलितों की असंभव थी। ² इसके साथ-साथ एक अन्य वजह भी थी कि शिक्षा, साहित्य और पत्रकारिता के केंद्रों पर दलित विरोधी तत्वों का वर्चस्व कायम था।

बीज शब्द :

पत्रकारिता, हिन्दू, दलित, अस्पृश्यता, समता, विषमता, असमानता, छुआछूत, सामाजिक, राजनीतिक, शुद्ध, वर्णव्यवस्था आदि।

मूल आलेख :

आजादी से पूर्व 1916 ई. में कांग्रेस पार्टी ने दलितों के 'अछूतपन' को समाप्त करने की शुरुआत की। प्रसिद्ध समाजशास्त्री 'गेल ओमवेट' इस विषय में कहती हैं 1911-18 के पश्चात अस्पृश्यता के विरुद्ध राष्ट्रीय आन्दोलन की शुरुआत हो गई। द्वितीय विश्व युद्ध के अंत तथा मांटैग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारों के लागू होने से दलितों तथा गैर-ब्राह्मणों के नवजागरण उनके द्वारा दिए गए सामाजिक सुधार संभव नहीं हो पाया। 'अस्पृश्यता के विरुद्ध पहला संकल्प 1916 में कांग्रेस के पहला कलकत्ता अधिवेशन के दौरान पारित हुआ। हिंदू महासभा जैसी संस्थाओं में भी इस विषय पर विचार-मंथन शुरू हो गया।' ³

शोधार्थी, हिंदी विभाग,
तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर
सोनितपुर, असम - 784028
☎ 6202364465
✉ ak6540538@gmail.com

कांग्रेस और हिंदू महासभा के अतिरिक्त संस्थाओं ने भी दलितों के अछूतपन को सुधारने की पहल की बात की थी परंतु वर्णाश्रम-व्यवस्था और जातिवाद सुधारने की नहीं। इनका मुख्य उद्देश्य दलितों को हिंदूवादी व्यवस्था में ही बनाये रखने का था उससे परे कुछ भी नहीं। मजेदार बात यह थी इन संस्थाओं का संचालन कांग्रेस और हिंदू महासभा शक्तिशाली समाज सुधारक संगठन था 'डिप्रेस्ड क्लासिज मिशन' इसका नेतृत्व उच्च जाति के मराठा विद्वान तथा समाज सुधारक विठ्ठल रामजी शिंदे के हाथों में था और इसे प्रार्थना समाज के ब्राह्मण सुधारकों का भी समर्थन था। 'कांग्रेस समर्थक शिंदे ने 'डिप्रेस्ड क्लासिज मिशन' की स्थापना 1906 ई. में की थी जिसका ध्यान शिक्षा तथा बेहतर हिंदुवाद के प्रचार-प्रसार पर था। वे उसे महाराष्ट्र में रखने के लिए प्रयासरत थे। इस प्रकार शिंदे द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में किए जाने वाले प्रयास का उद्देश्य अछूतों को हिंदूवादी राजनीतिक एवं सांस्कृतिक ढांचे में बनाए रखना था।'⁴ हिंदूवादी राजनीति से परे बाबा साहब अछूतों को सवर्णों के समान नागरिक अधिकार दिलाने की बात को प्रमुखता दे रहे थे। उनके द्वारा किये गए सामाजिक आन्दोलन 'चाबदार आन्दोलन', 'काला मंदिर आन्दोलन', 'मजदूर-किसान आन्दोलन' महिलाओं और दलितों को शिक्षा, रोजगार आन्दोलन आदि आंदोलन को लेकर वर्तमान राजनीतिक पार्टियों, संस्थाओं और प्रभुत्वशाली नायकों की उनके प्रति और उनके आन्दोलन के प्रति कोई खास रूचि नहीं थी। वह तो अछूतों को वर्णाश्रम व्यवस्था के अंतर्गत 'शूद्र-हरिजन' बनाकर रखने के हिमायती थे उससे ज्यादा कुछ नहीं। इसलिए बाबा साहब डॉ आंबेडकर को अपने विचार और आन्दोलन को जनता में पहुँचाने के लिए अपनी पत्रकारिता की आवश्यकता पड़ी।

हिंदी पत्रकारिता की सवर्ण मानसिकता का वास्तविक विकल्प पत्रकारिता ही हो सकती थी। क्योंकि हिंदी पत्रकारिता जातिवाद-वर्णव्यवस्था से उत्पन्न सामाजिक-विषमता, उत्पीड़न और वंचितों के अधिकारों के बजाय राजनीतिक सरोकारों को ही सर्वोपरि मानकर चल रही थी। सवर्ण मानसिकता के हिंदू पत्रकारों ने उसका कारण यह बताया की 'स्वतंत्रता आन्दोलन के समय की पत्रकारिता

एक राष्ट्रीय ध्येय के प्रति समर्पित थी। उसकी वजह दलितों के प्रति अमानवीय व्यवहार नहीं थी बल्कि यह थी कि हिंदी पत्रकारिता मिशनरी के ध्येय से ज्यादा व्यावसायिक रूख अपना रही थी। जबकि डॉ आम्बेडकर की पत्रकारिता मिशनरी के तहत दलितों-वंचितों की पत्रकारिता में भागीदारी के लिए निश्चित भूमिका बना रही थी।

डॉ. तेज सिंह डॉ आंबेडकर के पत्रकारिता को लेकर कहते हैं कि मूकनायक के बाद 3 अप्रैल 1921 को 'बहिष्कृत भारत' का प्रकाशन और फिर 4 सितम्बर 1921 को 'समाज समता संघ' की स्थापना के उपरांत 29 जून 1928 में 'समता' पत्र के प्रकाशन के साथ ही डॉ आंबेडकर ने अपने मुख्य लक्ष्य को सामने रखते हुए महाड सत्याग्रह, मंदिर प्रवेश, अस्पृश्यता उन्मूलन, स्त्री-समता, अछूतों को शिक्षा, अन्तर्जातीय व अंतर्धर्मीय-विवाह आदि प्रश्नों पर बड़े आन्दोलन खड़े करके दलित पत्रकारिता को समाजोन्मुखी बनाया और विकसित किया। डॉ आंबेडकर और गाँधी के लड़ाई राजनीतिक-सामाजिक चिंतन की भी लड़ाई थी जो जातिप्रथा-वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध अस्पृश्यता-उन्मूलन की बन गई। गाँधी जी जहाँ 'अस्पृश्यता उन्मूलन' कार्यक्रम चला रहे थे वही डॉ आंबेडकर 'जाति उन्मूलन' का आंदोलन चला रहे थे। डॉ आंबेडकर जानते थे कि गाँधी जी का छुआछूत दूर करने का कार्यक्रम वह भी हिंदूवादी मानसिकता से ग्रसित लोगों का हृदय परिवर्तन नहीं किया जा सकता। वह यह भी जानते थे कि गाँधी जी कभी नहीं चाहते थे कि हिन्दू धर्म में जातियां समाप्त हो बल्कि वह तो उसे और मजबूत करना चाहते थे।'⁵

महात्मा गाँधी ने 11 फरवरी 1933 को 'हरिजन' के अंक में लिखें हैं 'मैं वर्ण-व्यवस्था से भिन्न जातिप्रथा को भी पापपूर्ण और घृणित प्रथा नहीं मानता। अस्पृश्यता जाति-प्रथा की उपज नहीं, ऊँच-नीच के भेदभाव की उपज है।' ⁶ महात्मा गाँधी ने कुछ वर्ष पश्चात कहा था कि 'अस्पृश्यता के साथ जाति-व्यवस्था को नष्ट करना वैसा ही है जैसे शरीर के बड़े हुए किसी भेद अंग के साथ शरीर को ही नष्ट करना है। इसलिए 'वर्ण-व्यवस्था के विरुद्ध लड़ने का कोई कारण नहीं है।'

आधुनिक भारत में भारतीय दलित साहित्य को विश्व मंच पर लाने में दलित पत्रकारिता की विशेष भूमिका रही है। दलित संपादकों द्वारा संपादित साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं ने दलित समाज का साहित्य, संस्कृति, समाजशास्त्र, इतिहास, धर्म, दर्शन, कला, नृत्य, लोकगीत आदि विषयों को पाठकों तक पहुँचाने में अग्रसर भूमिका निभायी।

दलित पत्रकारिता की शुरुआत को लेकर विद्वानों में मतभेद है परंतु दलित पत्रकारिता की शुरुआत 'बेसिक पत्रकारिता' की शुरुआत के साथ ही शुरू हो गयी थी। लेकिन उसका प्रचार-प्रसार बेसिक पत्रकारिता की तरह नहीं था। इसी कारण भारतीय दलित साहित्य को विश्व मंच पर आने में अधिक समय लगा। पत्रकारिता ने शुरुआत से ही सामाजिक आंदोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया और समाज के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्नीसवीं शताब्दी में शुरू हुए विभिन्न सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक आंदोलन में साहित्यकार और पत्रकार का सम्बन्ध दामन-चोली की तरह था। दोनों में अंतर करना मुश्किल था। जहाँ एक तरफ पत्रकार ब्रिटिश साम्राज्यवाद, नशा, बहु-पत्नी विवाह, बाल-विवाह, दहेज प्रथा, सती-प्रथा, विधवा जीवन, तथा धन की लोलुपता आदि के खिलाफ बढ़-चढ़कर लिख और बोल रहे थे जबकि दूसरी तरफ साहित्यकार उपर्युक्त समस्याओं को कविता, नाटक, निबंध आदि विषय को साहित्य में प्रमुखता से उठा रहे थे। परंतु हम पाते हैं कि वर्णव्यवस्था से उत्पन्न जातिप्रथा को समाप्त करने पर पत्रकारों और साहित्यकारों का नजरिया गौण रूप में था। जातिप्रथा की जड़ वर्णव्यवस्था को समाप्त करने के बजाय अस्पृश्यता को समाप्त करने की बात की जा रही थी। दयानंद सरस्वती ने 'आर्य समाज' के द्वारा विभिन्न जातियों में बंटे समाज को जहाँ जोड़ने की कोशिश की, जबकि मोहनदास करमचंद गाँधी ने सवर्णों से हृदय परिवर्तन के द्वारा अछूतों को गले लगाकर अस्पृश्यता को समाप्त करने की बात कही। गाँधी जी 'हरिजन सेवक संघ' पत्र के द्वारा अपनी बात जनता तक पहुँचाते रहें। गाँधी से प्रभावित होकर उस समय की पत्रकारिता ने अस्पृश्यता को समाप्त करने की बात तो की परंतु वर्णव्यवस्था को समाप्त करने की बात को प्रमुखता नहीं दी।

सत्यशोधक समाज' के प्रवर्तक महात्मा ज्योतिबा फुले ने गुलाम भारत में वर्णव्यवस्था की जड़ तक पहुँचने और उसको समाप्त करने की नई शुरुआत की। शूद्र और अतिशूद्र समाज के साहित्य, राजनीति, कला, संस्कृति, इतिहास, परंपरा को गुलाम भारत में ज्योतिबा फुले ने 'दीनबंधु' और सत्यशोधक समाज' के द्वारा किया जबकि गोपाल बाबा वलंकर, संत गाडगे, दक्षिण में ई.वी. रामास्वामी परियार, कुरुप्पन. उत्तर भारत में स्वामी अछूतानन्द और सबसे मजबूत रूप में डॉ. आंबेडकर ने 'मूकनायक' 'बहिष्कृत भारत' 'जनता' 'समाज समता संघ' 'समता' आदि पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा देश-विदेश के वंचित, गरीब, दलित, बहुजन जनमानस तक न्याय, स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व की आवाज को पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाया।

डॉ. आंबेडकर के परिनिर्वाण के उपरांत महाराष्ट्र के साथ-साथ देश और विश्व मंच पर दलित पत्रकारिता, उसमें भी खासकर साहित्यिक पत्रिकाओं की आंधी आ गई। इन पत्रिकाओं को प्रकाशित करने में 'दलित पैथर' भारतीय दलित लेखक संघ, दलित लेखक संघ आदि दलित साहित्यिक संगठनों की भूमिका रही है। 'दलित पैथर' जिसका जन्म 1912 में हुआ था। इस संगठन के कार्यकर्ताओं सामाजिक आन्दोलन के साथ-साथ साहित्यिक आंदोलन को भी चलाया। जिसका प्रभाव सम्पूर्ण भारतीय भाषाओं के दलित साहित्य को उत्पन्न करने में सहायक हुआ। मराठी दलित साहित्य को साहित्यिक पत्रिकाओं ने मुकम्मल पहचान दिलायी। दलित साहित्यकारों की प्रारंभिक कविताएँ, कहानियाँ, नाटक, आलोचन लघु साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होती थी, जिनमें प्रमुख हैं 'अस्मितादर्श', निकाय बाद में कई और भी पत्रिकाएँ आयीं जिनमें 'रमाई' जो महिलाओं पर केंद्रित पत्रिका आदि है।

साहित्य और पत्रकारिता का संबंध महत्वपूर्ण है। दुनिया को समझने के लिए पत्रकारिता आवश्यक उपकरण जुटाती है, जबकि साहित्य मनुष्य को करुणा, बंधुत्व, अहिंसा, स्नेह और आत्मीय बनाकर जीवन में विविध रस घोलता है, अतः साहित्य और पत्रकारिता का अच्छा संबंध मनुष्य के बेहतर भविष्य के लिए आवश्यक है। 'बच्चन सिंह ने कहा है कि 'पत्रकार का यथार्थ' 'प्रमाणिक यथार्थ'

होता है और साहित्यकार का यथार्थ 'एक नया यथार्थ' एक संभव यथार्थ हो सकता है। दोनों ही सत्य को उद्घाटित करना चाहते हैं और मनुष्य और समाज को चेतना से भरना चाहते हैं। जिससे समाज विकास के पथ पर अग्रसर हो सके।' ⁸

दलित साहित्यिक पत्रकारिता का भारतीय समाज पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है। प्रारंभ में गैर दलित पत्रिकाएँ दलित साहित्यकारों की रचनाओं को प्रकाशित करने से हिचकती थी। दलित साहित्यकारों की रचनाओं की भाषा, शिल्प और कथ्य को कमजोर मानकर अक्सर नकार देती थीं। जबकि बाद में कुछ पत्रिकाओं ने चंद दलित रचनाकारों को प्रकाशित करना शुरू किया। उसमें भी वह संपादक दलित रचनाओं को कांट-छांट कर प्रकाशित करते थे। ओमप्रकाश वल्मीकि, सूरजपाल चौहान आदि रचनाकारों के अनुभव इस बात के प्रमाण हैं। इन सबके बावजूद भी दलित साहित्यकारों ने हिम्मत नहीं हारी। उन्होंने स्वयं की पत्रिकाओं को प्रकाशित किया।

भारतीय दलित साहित्य पत्रिकाओं और उनके संपादकों ने आर्थिक समस्या होने के बावजूद चंदा इकट्ठा करके स्वयं की पत्रिकाओं को प्रकाशित किया। शुरू में इन पत्रिकाओं को कोई भी सरकारी और गैर सरकारी विज्ञापन भी नहीं देता था। क्योंकि सवर्ण समाज को दलित साहित्य से ज्यादा सरोकार नहीं था। वह तो साहित्य को दलित ही नहीं मानते। जबकि हिंदूवादी वर्णाश्रम व्यवस्था जातिवाद को जन्म देती है। जब व्यक्ति दलित हो सकता है तो साहित्य क्यों नहीं? अस्सी के दशक के बाद दलित पत्रकारिता साहित्यिक पत्रकारिता के रूप में सक्रिय हो गई।

सदियों से दलित समाज सोया हुआ था। उसको जगाने का काम बहुजन चिन्तक कर चुके थे। परंतु उसको मुक्तमल पहचान दलित पत्रकारिता ने प्रदान की। नब्बे के दशक के बाद जो दलित सरकारी नौकरी में आये उनमें से कुछ ने कलम को पकड़ा। और देखते-देखते दलित साहित्य देश और विदेश में अपनी उपस्थिति दर्ज करने लगा।

दलित साहित्यिक पत्रकारिता की सबसे बड़ी खूबी नव-रचनाकारों को पाठकों के सामने लाने में रही है।

नव-दलित साहित्यकारों को कोई गैर दलित संपादक अपनी पत्रिका में जगह नहीं देता था। उनको दलित पत्रिकाओं ने जगह प्रदान की। इसके फलस्वरूप दलित पत्रिकाएँ शहर से लेकर गाँवों तक में पहुँच बनाने में सहायक हुई। दलित संपादकों ने स्वयं गाँवों से लेकर शहरों तक की पैदल और साईकिल से यात्रा करके अपने पाठक बनाये। अब साहित्य केवल भद्र समाज तक नहीं रहा बल्कि वह दलित, आदिवासियों, पिछड़ों के रेंज में आ गया। अतः कह सकते हैं कि दलित पत्रकारिता ने सम्पूर्ण भारतीय जनता को दलित साहित्य से अवगत कराया। आज लगभग बारह भारतीय भाषाओं में दलित साहित्य प्रकाशित हो रहा है। जिनमें खासतौर पर मराठी, हिंदी, गुजराती, तेलगु, मलयालम, और पंजाबी में दलित पत्रकारिता का प्रभाव ज्यादा दिखता है। अभी तक की दलित पत्रकारिता की जाँच में जो मुख्य बिंदु उभरकर सामने आये हैं, उसके आधार पर कहा जा सकता है कि दक्षिण में दलित पत्रकारिता पर गाँधी जी की पत्रकारिता का प्रभाव ज्यादा पड़ा है। जबकि उत्तर भारत में स्वामी अछूतानंद व 1819-1933 की पत्रकारिता की चेतना के कारण डॉ आंबेडकर की पत्रकारिता का प्रभाव ज्यादा है। 1990 के बाद खासकर मंडल कमीशन के बाद डॉ. आंबेडकर के विचारों का समस्त भारतीय दलित साहित्य और पत्रकारिता ने आत्मसात कर लिया।

वर्तमान में दलित पत्रकार ज्यादातर राजनैतिक सवाल को लेकर अपनी पत्रकारिता करते हैं, खासकर एकाध दलित राजनेता को केंद्र में रखकर वह भी सोशल मीडिया में, जबकि दलित पत्रकारों को राजनीति के साथ-साथ जीवन-जगत के दूसरों हिस्सों को भी कवर करना चाहिए। यह जानना चाहिए और पाठकों को बताना चाहिए कि दलित समाज की प्रतिभाएं किन-किन क्षेत्रों में काम कर रही हैं और कब से काम कर रही हैं। दलित पत्रकारों को मुख्यधारा की पत्रकारिता की नजल करने की प्रवृत्ति छोड़कर जमीनी स्तर पर काम करने की जरूरत है। दलित समाज को इकाई में बांधकर समझाने की जरूरत है। जबकि इस तरह का कार्य एकाध बहुजन पत्रकार ही कर रहा है। दलित पत्रकारिता में वह धार नहीं आयी है, जो दलित साहित्य के प्रारंभिक दौर में थी। कँवल भारती,

मोहनदास नैमिशराय, श्यौराज सिंह बेचैन, तेज सिंह, तुलसीराम, जयप्रकाश कर्दम, रजनी तिलक, तेजपाल सिंह तेज, उमराव सिंह जाटव आदि अनेक नाम हैं, जिन्होंने दलित समाज को जगाने के लिए अनेक पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा साहित्य को कलमबद्ध करके ज्ञान की रोशनी को प्रज्वलित किया।

आज वर्तमान समय में देश के गैर दलित मीडिया और पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से दलित विरोधी रीति-निति को उजागर न करके बल्कि उसको कैसे लागू किया जाए जैसे वर्तमान की सरकार ने संविधान समीक्षा के रूप में डॉ बाबा साहेब आंबेडकर की अस्मिता पर हमला बोल रहा है। जबकि संविधान समीक्षा का अधिकार केवल भारतीय संसद को है न कि न्यायपालिका को। भाजपा सरकार ने बिना सांसदों को विश्वास में लिए संविधान समीक्षा के लिए कमेटी गठित कर दी जो असंवैधानिक थी। संविधान समीक्षा पर देश के राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री आमने-सामने हो गये। अटल बिहारी वाजपेयी का कहना था कि समीक्षा होनी चाहिए, क्योंकि मजबूत किले में भी समय से मरम्मत की जरूरत होती है जबकि राष्ट्रपति महोदय डॉ के.आर. नारायण का कहना था कि हमें सोचना चाहिए कि संविधान के कारण विफल हुए या हमने संविधान को विफल किया। प्रो. इम्टियाज अहमद कहते हैं कि संविधान की समीक्षा के पीछे सरकार की मंशाओं के बारे में संदेह होना स्वाभाविक व जायज है। क्योंकि सरकार जिस संविधान के प्रति निष्ठा की शपथ ली है, उसी संविधान को बदलना चाहती है। सरकार को जब संविधान में ही भरोसा नहीं तो फिर उसके इरादा पर भरोसा जनता कैसे कर सकती है। जब मुख्यधारा की पत्र-पत्रिकाएँ दलित समाज के विरोधी तत्वों को नहीं दिखाती थी तब दलित पत्र-पत्रिकाएँ दलित समाज के सरकारी और गैर सरकारी नियमों को देश और समाज के सामने लाने का प्रयास करती हैं। लेकिन अभी की दलित पत्र-पत्रिकाओं की स्थिति कुछ सही नहीं चल रही हैं। क्योंकि जब तक उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ नहीं रहती हैं तब तक उस पत्रिका की मासिक खर्च उठा पाना संभव नहीं है। इसके लिए दलित राजनेताओं और सामाजिक कार्यकर्ताओं को सरकार से नियम बनवाना चाहिए कि

सरकारी और गैर सरकारी विज्ञापन न केवल मुख्यधारा के पत्र-पत्रिकाओं में होकर बल्कि दलित पत्र-पत्रिकाओं में भी होनी चाहिए। जिससे दलितों सामाजिक, राजनीति और आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बनी रहे।

बकौल आधुनिक समय में सबसे ज्यादा मूर्तियाँ का निर्माण हुआ तो उनमें जवाहर लाल नेहरू, इंदिरा गाँधी, सरदार वल्लभ भाई पटेल, राजीव गाँधी, महात्मा गाँधी आदि की हैं। ये किसी न किसी रूप में कांग्रेसी थे। आजादी के लगभग चालीस साल तक देश में शासन किया। पूरा संग्रहालय कांग्रेसियों से भर दिया। इतिहास के छात्र मूर्तियाँ देखकर कांग्रेस का इतिहास लिखने लगे लेकिन किसी पत्रकारों, लेखकों आदि ने मूर्तियों का विरोध नहीं किया। फिर मायावती के द्वारा बनायी गयी दलितों, पिछड़ों, समाज सुधारकों की मूर्तियों पर विरोध क्यों? सही मायने में सवर्ण जातियाँ दलित महापुरुषों की न तो मूर्तियाँ बनवाना चाहती और न ही देखना चाहती है। क्योंकि दलित महापुरुषों की मूर्तियाँ संघर्ष का प्रतीक है। जिस व्यक्ति महिला शासक या सामाजिक कार्यकर्ताओं की जितनी ही अधिक मूर्तियाँ होंगी उसका इतिहास उतना ही मजबूत होगा। आज वर्तमान समय में मूर्तियों और प्रतिमाओं को लेकर देश के अंदर जिस तरीके से विरोधाभास देखने को मिलती है। जैसे सामाजिक न्याय के पक्षधर डॉ बाबा साहेब भीम राव अम्बेडकर की पत्थर की मूर्तियों को तोड़ा जा रहा है। वहीं सामाजिक न्याय के विरोधी मनु की प्रतिमा संवैधानिक संसथान हाईकोर्ट के सामने स्थापित हुई। जो दलितों और महिलाओं की अस्मिता पर कुठारघात करता आ रहा है। मनु को लेकर किसी सवर्ण मीडिया और पत्र-पत्रिका के संपादक ने उसके विरोध में टिका-टिपण्णी नहीं करता है। इससे स्पष्ट होता है कि मीडिया और पत्र-पत्रिकाओं पर मुख्यधारा के साथ मनुवादी मानसिकतावादी साहित्यकारों, लेखकों और संपादकों का प्रभुत्व स्थापित है।

सारांश :

दलित नेताओं और सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं में उनके कार्य करने की क्षमता, वोट डालने की जागरूकता, सरकार के कार्यों की समीक्षा

के अलावा दलित उत्पीड़न पर बहस बखूबी से किया करते हैं। दलित नेता आरक्षण की मांग को सुर्खियों में छापते रहे पर आज तक किसी दलित नेता ने अपने पत्र-पत्रिका में सरकारी विज्ञापन के क्षेत्र में आरक्षण की मांग नहीं किया। हर साल अरबों रूपया सरकार विज्ञापनों पर खर्च करता है। गैर दलितों द्वारा प्रकाशित पत्र-पत्रिकाएँ सरकारी विज्ञापनों पर फलती-फूलती हैं इसलिए दलित पत्र-पत्रिकाएँ सरकारी विज्ञापन के क्षेत्र में भी अपनी हिस्सेदारी सुनिश्चित करें। तभी दलित पत्र-पत्रिकाएँ की आर्थिक स्थिति दूर हो सकेगी। हर साल बजट पर चर्चा होता है। लेकिन दलितों पर बजट का कितना हिस्सा सुनिश्चित होता है और कितना खर्च होता है? कितना शेष बचता है। इन सभी बातों को भी दलित पत्र-पत्रिकाओं में बहस नहीं हो रही होती हैं। आज दलित नेताओं को अपने पत्र-पत्रिकाओं में भी साहित्यिक कृति पर बहस

छेड़ने की जरूरत है।

समाज से आंदोलन का जन्म होता है और राजनीति भी अग्रसित होती है अधिकांशतः आज दलित नेता आन्दोलन की सीढ़ी चढ़कर सत्ता की मंचान पर जा बैठे, बाद में सीढ़ी को धक्का मार दिया ताकि सत्ता की मंचान पर और कोई न चढ़ पाये। और अपने राजनीतिक उद्देश्यों के लिए जनता को एकत्र करके भाषण सुनाते रहे और नारे लगवाते रहे। जो दलित विकास के मुद्दे थे उस पर पर्दा डालते रहे। ये हमेशा दलित पत्र-पत्रिकाओं के प्रति उदासीन बने रहें। जब नेताओं के सामाजिक सरोकार नहीं होंगे तब उनकी राजनीति भी टिकाऊ नहीं होगी। बाबा साहब डॉ आंबेडकर व मान्यवर कांशीराम जी के सामाजिक सरोकार अंतिम क्षण तक मजबूत रहे तभी उनकी राजनीति और पत्रकारिता सार्थक हुई। □

संदर्भ ग्रन्थ :

1. सिंह, तेज, आज का दलित साहित्य. दिल्ली-आतिश प्रकाशन, 2000. पृष्ठ.105
2. बेचैन, श्यौराज सिंह, हिंदी की दलित पत्रकारिता पर डॉ आंबेडकर का प्रभाव. दिल्ली-सिद्धार्थ प्रकाशन, 2012. पृष्ठ.15
3. ओमवेट, गेल, आंबेडकर प्रबुद्ध भारत की ओर. दिल्ली-पेंगुइन प्रकाशन, 2006. पृष्ठ.22
4. वही पृष्ठ.22
5. सिंह तेज(2000), आज का दलित साहित्य. दिल्ली-आतिश प्रकाशन, 2000. पृष्ठ.107
6. बेचैन, श्यौराज सिंह, हिंदी की दलित पत्रकारिता पर डॉ आंबेडकर का प्रभाव. दिल्ली-सिद्धार्थ प्रकाशन, 2012. पृष्ठ.120
7. करमचंद गाँधी, मोहनदास, हरिजन. 10 अगस्त 1934.
8. कुमार, अश्विन, भारतीय दलित पत्रकारिता. दिल्ली-स्वराज प्रकाशन, 2019. पृष्ठ.7

झरोखों से झाँकता सौंदर्य : बीकानेर की हवेलियों का अलंकरण

शोध-सार :



सोनू पारीक

शोधार्थी, टॉटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर-335002 (राजस्थान)
☎ 7976139889
✉ sonalrm12@gmail.com

बीकानेर की हवेलियाँ अपने उत्कृष्ट अलंकरण के लिए विख्यात हैं। इस शोध पत्र में बीकानेर की कलात्मक हवेलियों के अलंकरण में झरोखों के विशेष योगदान का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। बीकानेर की वास्तुकला में झरोखे न केवल प्रकाश एवं वायु के प्रवाह के साधन हैं, अपितु वे सौंदर्य तथा कलात्मकता के प्रतीक भी हैं। यह शोध झरोखों के ऐतिहासिक संदर्भ, उनकी स्थापत्य कला, तथा अलंकरण में उनकी भूमिका का अन्वेषण करता है। इस शोध पत्र में विभिन्न प्रकार के झरोखों, उन पर उत्कीर्ण कलाकृतियों, तथा उनके द्वारा निर्मित सौंदर्यबोध का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह शोध बीकानेर की हवेलियों की वास्तुकला में झरोखों के महत्व पर प्रकाश डालने का नूतन प्रयास है।

बीज शब्द :

बीकानेर की हवेलियाँ, हवेली अलंकरण, झरोखा, प्रस्तर उत्कीर्णन, कलात्मक विरासत।

1. प्रस्तावना :

जोधपुर नरेश राव जोधा के पुत्र राव बीका द्वारा सन् 1488 में स्थापित नगर बीकानेर (ओझा, 1939) एक समृद्ध एवं जीवंत संस्कृति का धनी नगर है, जो अपनी गौरवशाली कलात्मक विरासत के लिए प्रसिद्ध है (गोयट्ज, 1950)। इस नगर के धनी वर्ग ने, व्यापार में उत्तम लाभ अर्जित करने पर अपने परिवारों के लिए कलात्मक एवं सज्जापूर्ण विशाल आवासीय भवनों का निर्माण करवाया जिन्हें 'हवेली' कहा जाता है। इन हवेलियों की विशाल संख्या के कारण ही इस नगर को 'हजार हवेलियों का शहर' भी कहा जाता है (कोचर एवं कादरी, 2010)।

बीकानेर की हवेलियों को अलंकृत करने में प्रस्तर उत्कीर्णन कला का विशेष योगदान रहा है। इस कला के कुशल शिल्पकारों ने अपनी प्रतिभा एवं कौशल से इन हवेलियों में उत्कृष्ट अलंकरण निर्मित किए हैं, जिनमें राजपूत, मुगल तथा यूरोपीय स्थापत्य कला का अभिनव मिश्रण दृष्टिगत होता है। इन हवेलियों के अवलोकन से इनके स्वामियों, शिल्पकारों एवं तत्कालीन समाज में प्रचलित अलंकरणात्मक प्रवृत्तियों के संबंध में समुचित ज्ञान प्राप्त होता है (जैन, 2002)।

इन हवेलियों के अलंकरण में 'झरोखों' का एक विशिष्ट स्थान है। झरोखे न केवल भवन के सौंदर्य में अभिवृद्धि करते हैं, अपितु वे सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्व भी रखते हैं। ये झरोखे प्रकाश एवं वायु के प्रवाह के साथ-साथ भवन की महिलाओं के लिए बाह्य जगत से जुड़ने का एक माध्यम भी थे, जिसने परदे की प्रथा



डॉ. सोनिया रानी

असिस्टेंट प्रोफेसर, टॉटिया विश्वविद्यालय
श्रीगंगानगर-335002 (राजस्थान)
✉ sonia.kansal2006@gmail.com

को एक नवीन आयाम दिया।

इस शोध पत्र में बीकानेर की हवेलियों में झरोखों के कलात्मक योगदान का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है तथा झरोखों के ऐतिहासिक विकास, उनकी संरचना, उन पर की गई नक्काशी, और अलंकरण में उनके समग्र योगदान का अध्ययन किया गया है। इस शोध के द्वारा बीकानेर की हवेलियों की वास्तुकला में झरोखे के महत्व को उजागर करने का नूतन प्रयास किया गया है, जो यह ज्ञात करने में सहायक होगा कि किस प्रकार इन स्थापत्य तत्वों ने हवेलियों के सौंदर्य एवं भव्यता के अभिवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया है।

2. कार्य विधि :

इस शोधकार्य के समुचित विश्लेषणात्मक एवं विवेचनात्मक अध्ययन सुनिश्चित करने के लिए गुणात्मक अनुसंधान विधि (कोठारी, 2004) को उपयुक्त पाया गया। इसके अंतर्गत इन विशेष चरणों का उपयोग किया गया: (1) अभिलेखीय अनुसंधान, (2) प्रतिदर्श चयन, (3) फील्डवर्क एवं अवलोकन, तथा (4) दृश्य विश्लेषण।

अभिलेखीय अनुसंधान के पश्चात् बीकानेर की हवेलियों के एक प्रतिदर्श का, उनके ऐतिहासिक महत्व, स्थापत्य शैली एवं विविध कलात्मक तत्वों के आधार पर चयन किया गया। फील्डवर्क के समय, इन हवेलियों में अलंकृत झरोखों की तस्वीरें ली गईं। इन तस्वीरों का दृश्य विश्लेषण तकनीक द्वारा विश्लेषण कर, झरोखों की संरचना, नक्काशी, एवं अलंकरण में उनके समग्र योगदान का अध्ययन किया गया।

3. झरोखों का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ :

अलंकृत एवं प्रक्षेपित बालकनी को झरोखा कहा जाता है, जिसका उपयोग भवन की ऊपरी मंजिलों में किया जाता है (जैन, 2023)। इसमें जालियों का भी उपयोग किया जाता है। यह संरचना भवन को सूर्य के सीधे प्रकाश से बचाती है और वायु को मुख्य स्थान पर प्रवेश करने देती है। इस प्रकार यह भीतर के वातावरण को वातानुकूलित बनाने में सहायता करती है (मैमन इत्यादि, 2018)। अनेक संख्या में प्रयुक्त होने पर यह

निष्क्रिय (पैसिव) युक्ति गर्म और शुष्क स्थान पर भवन को वातानुकूलित करने में सहायक होती है तथा भवन की ऊर्जा कार्यकुशलता (एनर्जी इफिशिएंसी) में वृद्धि करती है। यह निजता एवं गोपनीयता बनाये रखते हुए बाह्य दृश्य को प्रस्तुत करती है। यह भवन के अलंकरण में भी अत्यन्त सहायक होती है।

भारतीय वास्तुकला में झरोखों का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। इनका उद्गम सिंधु घाटी सभ्यता में देखा जा सकता है, जहाँ घरों में वायु और प्रकाश के आवागमन के लिए छोटे-छोटे छिद्र बनाए जाते थे। वैदिक काल में भी झरोखों का उल्लेख मिलता है, जहाँ इन्हें 'गवाक्ष' कहा जाता था। जैन (2018) के अनुसार मौर्यकाल में भारतीय एवं इस्लामिक स्थापत्य के सम्मिश्रण से इसके नवीन स्वरूप का उदय हुआ, जिसे झरोखा कहा गया और जो भारतीय स्थापत्य का अंग बन गया। भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में स्थानीय आवश्यकताओं एवं सौन्दर्यशास्त्र के अनुसार इसके पृथक्-पृथक् रूप विकसित हुए। मध्यपूर्व (सऊदी अरब, ईराक, ईरान और लेबनान) में इसके रवाशीन, मशराबिया और रोशन तथा यूरोप में ओरियल विंडो नाम से इसके अनेक स्वरूप विकसित हुए।

भारत में मध्य काल में झरोखों के महत्व में और वृद्धि हुई (ब्राउन, 1981)। इस काल में निर्मित महलों, भवनों, धार्मिक स्थलों तथा स्मारकों में झरोखों को महत्वपूर्ण स्थान मिला। हुमायूँ के शासन काल में 'झरोखा दर्शन' की परम्परा प्रारंभ हुई, जो बादशाह अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के समय तक चलती रही।

राजपूत शासकों ने भी अलंकरण के साथ-साथ महिलाओं की सुरक्षा एवं गोपनीयता की दृष्टि से, महलों, भवनों एवं मन्दिरों में झरोखों का प्रचुरता से निर्माण करवाया। कलात्मक एवं अलंकृत झरोखे समृद्धि और प्रतिष्ठा के प्रतीक माने जाने लगे (गर्ग, 2019)। इसका सबसे बड़ा उदाहरण सन् 1799 में निर्मित जयपुर का हवामहल है, जिसमें 953 झरोखे बने हैं। इस प्रकार झरोखे राजस्थान की वास्तुकला के अभिन्न अंग हैं (जैन, 2002) और वे सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के प्रतीक हैं।

4 . बीकानेर की हवेलियों में झरोखों का स्थापत्य :

बीकानेर की प्रायः सभी हवेलियों में सुंदर और सुशोभित झरोखे निर्मित करने की परंपरा रही है, जो हवेली के अलंकरण में महत्वपूर्ण योगदान देते रहे हैं। इन हवेलियों में विभिन्न आकार और डिजाइन के झरोखे निर्मित किए गए हैं। संयोजन और संतुलन की दृष्टि से इन झरोखों का आकार, संख्या एवं स्थान निर्धारित किए जाते रहे हैं।

चित्र 1 में सोहनलाल बाँठिया हवेली में निर्मित एक अलंकृत झरोखा प्रदर्शित है। इस झरोखे में उत्कृष्ट जटिल प्रस्तर उत्कीर्णन (नक्काशी) की गई है, जो इसको अत्यन्त सुन्दर एवं आकर्षक बनाती है। झरोखे के मंच का आधार ब्रैकेट्स पर टिका है। मंच के ऊपर शीर्ष पर अर्धचंद्राकार मेहराब निर्मित है, जो दोनों ओर मंच पर बने ऊर्ध्वाधर स्तंभों से जुड़ी है। झरोखे का शीर्ष आयताकार है। मंच पर एक जाली भी निर्मित की गई है। यह नक्काशीदार संरचना बीकानेर की कलात्मक परम्पराओं, सौंदर्य संवेदनाओं एवं सांस्कृतिक मूल्यों को प्रदर्शित करती है।

विभिन्न हवेलियों में निर्मित झरोखों के अवलोकन से उन झरोखों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है, जिन्हें सर्वाधिक पसन्द किया गया और जिन्हें हवेली के अग्रभाग में महत्वपूर्ण स्थान पर स्थापित किया गया।

चित्र 2 में ऐसा ही एक झरोखा प्रदर्शित है। यह संरचना अत्यन्त आकर्षक है तथा शिल्पकार की उत्कृष्टता की चरम परिणति प्रतीत होती है। यह डिजाइन अत्यन्त सराही गई है तथा इसे सभी भव्य हवेलियों (उदाहरणार्थ - भँवर निवास रामपुरिया, पूनमचंद कोठारी, खुशालचंद्र डागा, बाबू बलदेव



बित्राणी आदि) में अग्रभाग के महत्वपूर्ण स्थल पर निर्मित किया गया है।

कतिपय हवेलियों के अग्रभाग में विभिन्न आकार के तथा विभिन्न डिजाइनों के झरोखों को इस प्रकार संतुलित किया गया है कि सम्पूर्ण रचना एक सुंदर दृश्यात्मक प्रभाव डालती है।

चित्र 3 में सूरजनारायण मोहता की हवेली (पारीक एवं सोनिया रानी, 2024) का ऐसा ही अग्रभाग प्रदर्शित है।

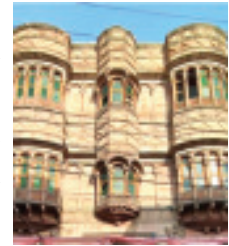


चित्र 4 में प्रदर्शित झरोखा सुंदरलाल बाँठिया की हवेली के मॉल (महल) में बना है। इस डिजाइन में कतिपय विशेषताएँ स्पष्ट दृष्टिगत हो रही हैं। इस झरोखे के अलंकरण में उत्कीर्णन के साथ-साथ उस्ता कलाकारों के कौशल का भी सुंदर प्रयोग दृष्टिगत है।



चित्र 5 में चम्पालाल बाँठिया की हवेली में बना अलंकृत झरोखा प्रदर्शित है। इसमें भी प्रस्तर उत्कीर्णन कला की बारीकियाँ एवं जटिलताएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

चित्र 6 आसानियों के चौक में बनी सेठ रामगोपाल मोहता की एक हवेली से प्रदर्शित है, जिसमें झरोखों की आकृति बेलनाकार प्रतीत होती है। इनमें टेंटेड काँच का उपयोग तत्कालीन समय में यूरोपियन शैली के प्रभाव को प्रदर्शित करता है।





चित्र 7 में चुन्नीलाल डागा की हवेली में निर्मित झरोखा प्रदर्शित है, जो अत्यन्त आकर्षक है और एक भिन्न अलंकरण को प्रदर्शित करता है। इसमें की गई बारीक नक्काशी दर्शक को आश्चर्यचकित कर देती है। आकार में यद्यपि यह छोटा है किन्तु उत्कृष्ट उत्कीर्णन का प्रतीक है। इसमें झरोखे की

छजवाल के ऊपर अर्द्धचन्द्राकार सज्जा के अन्दर जाली की रचना इसे पृथकता प्रदान करती है। बाह्य स्तम्भों के समीप ऊर्ध्वाकार पट्टियों में उत्कीर्ण डिजाइन भी अत्यंत सुंदर प्रतीत होती है।

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि बीकानेर की हवेलियों में अलंकरण द्वारा सौंदर्य वृद्धि में झरोखों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। कतिपय अपवाद अवश्य दृश्यगत होते हैं, किंतु वे नगण्य हैं। एक उदाहरण भीनासर के चम्पालाल बैद की अर्द्धचन्द्राकार आकृति की हवेली के रूप में दृष्टिगत होता है, जिसमें एक भी झरोखा निर्मित नहीं किया गया है।

5. अलंकरण में झरोखों का योगदान :

बीकानेर की हवेलियों के अलंकरण में झरोखों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। ये झरोखे, मात्र प्रकाश और वायु के आवागमन के साधन नहीं हैं, अपितु ये हवेलियों की सुंदरता और भव्यता को बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। झरोखों पर की गई बारीक नक्काशी, उन पर उकेरे गए विभिन्न रूपांकन, और उनकी विशिष्ट स्थापत्य शैली, सभी मिलकर हवेलियों को एक अद्वितीय रूप प्रदान करते हैं। इन झरोखों के बिना, बीकानेर की हवेलियाँ अपनी विशिष्ट पहचान खो देंगी। झरोखों की स्थिति और उनका आकार भी अलंकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कुछ हवेलियों में, बड़े और विस्तृत झरोखे बनाए गए

हैं, जो भवन को एक राजसी ठाट प्रदान करते हैं, जबकि कुछ अन्य हवेलियों में छोटे और सूक्ष्म झरोखों का उपयोग किया गया है, जो भवन को एक शांत और सौम्य रूप प्रदान करते हैं।

झरोखों पर की गई नक्काशी में विभिन्न प्रकार के रूपांकनों का उपयोग किया गया है, जिनमें पुष्प एवं ज्यामितीय रूपांकन प्रमुख हैं। पुष्प रूपांकनों में कमल, गुलाब, और अन्य फूलों की आकृतियाँ सम्मिलित हैं (चौधरी, 2010) जो प्रकृति के प्रति सम्मान और प्रेम को दर्शाती हैं। ज्यामितीय रूपांकनों में त्रिभुज, वर्ग, और वृत्त जैसी आकृतियाँ शामिल हैं, जो ब्रह्मांडीय व्यवस्था और संतुलन का प्रतीक हैं। इन सभी रूपांकनों को झरोखों पर इस प्रकार उकेरा गया है कि वे भवन की सुंदरता को और भी बढ़ा देते हैं।

झरोखों का अलंकरण केवल नक्काशी तक ही सीमित नहीं है। कुछ हवेलियों में, झरोखों को रंगीन कांच से भी सजाया गया है। यह कांच, जब सूर्य के प्रकाश से मिलता है, तो अद्भुत रंगीन छटा बिखेरता है, जो दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर देती है। इसके अतिरिक्त, कुछ झरोखों पर सोने और चांदी की बारीक उस्ता कारीगरी भी देखने को मिलती है, जो हवेलियों की भव्यता को और भी बढ़ा देती है। इन सभी तत्वों के संयोजन से, बीकानेर की हवेलियों के झरोखे न केवल अपनी सुंदरता के लिए जाने जाते हैं, अपितु वे उस समय के शिल्पकारों की कुशलता और कलात्मकता का भी परिचय देते हैं।

संक्षेप में, बीकानेर की हवेलियों में झरोखों का अलंकरण एक उत्कृष्ट उदाहरण है कि किस प्रकार स्थापत्य तत्वों का उपयोग भवन की सुंदरता और भव्यता की वृद्धि के लिए किया जा सकता है। झरोखे, बीकानेर की सांस्कृतिक धरोहर का एक महत्वपूर्ण अंग हैं, और इन्हें संरक्षित करना हमारा उत्तरदायित्व है। इन झरोखों के माध्यम से, हम न केवल बीकानेर की वास्तुकला की उत्कृष्टता का अनुभव कर सकते हैं, अपितु उस समय के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन की भी झलक पा सकते हैं।

6. निष्कर्ष :

बीकानेर की हवेलियों के झरोखे, उस समय के शिल्पकारों के अद्भुत शिल्प कौशल और कलात्मक दृष्टि का प्रमाण हैं। प्रस्तर पर उत्कीर्ण जटिल एवं बारीक नक्काशी, रंगों का संयोजन, और ज्यामितीय आकारों का उपयोग, सभी मिलकर एक अद्भुत सौंदर्य का सृजन करते हैं। इन झरोखों को देखकर, हम न केवल बीकानेर की वास्तुकला की उत्कृष्टता का अनुभव करते हैं, अपितु उस समय के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन की भी झलक पाते हैं। यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि झरोखे, बीकानेर की हवेलियों के अलंकरण का अभिन्न अंग हैं,

और हमारी सांस्कृतिक धरोहर के अमूल्य अंग हैं।

बीकानेर की हवेलियों के झरोखों का अध्ययन, हमें न केवल अतीत की कलात्मक उपलब्धियों के बारे में जानकारी प्रदान करता है, अपितु यह भविष्य के लिए भी प्रेरणा का स्रोत है। इन झरोखों की सुंदरता और कार्यात्मकता को देखकर, हम आधुनिक वास्तुकला में भी नवीन तकनीकों और डिजाइनों का उपयोग कर सकते हैं। यह आवश्यक है कि हम इन ऐतिहासिक धरोहरों को संरक्षित करें, ताकि आने वाली पीढ़ियाँ भी इनसे प्रेरणा ले सकें और हमारी सांस्कृतिक विरासत को आगे बढ़ाया जा सके। □

संदर्भ सूची :

1. ब्राउन, पर्सी. इण्डियन आर्किटेक्चर (इस्लामिक पीरियड). डी. बी. तारापोरवाला सन्स एण्ड प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई, 1981.
2. चौधरी, मोहनलाल. बीकानेर की प्रमुख नक्काशीदार हवेलियों का ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं कलात्मक अध्ययन. पी.एच.डी. थीसिस, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, 2010.
3. गर्ग, प्रगति. जैसलमेर की प्रसिद्ध हवेलियों का कलात्मक अध्ययन. पी.एच.डी. थीसिस, दयालबाग एजुकेशन इंस्टीट्यूट (डीमड यूनिवर्सिटी), दयालबाग, आगरा, 2019.
4. गोयट्ज, हर्मन. आर्ट एण्ड आर्किटेक्चर ऑफ बीकानेर स्टेट. ऑक्सफोर्ड: बुनो कैसिरर, 1950.
5. जैन, शिखा. द हवेलीज ऑफ राजस्थान: फॉर्म एंड आइडेंटिटी. पी.एच.डी. थीसिस, डी. मोंटफोर्ड यूनिवर्सिटी, लैसेस्टर (यू.के.), 2002.
6. कोचर, उपध्यानचंद्र एवं कादरी, जिया उल हसन. हजार हवेलियों का शहर बीकानेर, बीकानेर: पुस्तक मंदिर, 2010.
7. कोठारी, सी. आर., रिसर्च मैथोडोलॉजी: मैथड्स एण्ड टेक्नीक्स. नई दिल्ली: न्यू एज इंटरनेशनल पब्लिशर्स, 2004.
8. मैमन, इरफान अहमद इत्यादि. ओरियल (झरोखा) एज पैसिव डिजाइन स्ट्रैटेजी फॉर एनर्जी इफिशियेंसी. इन्टरनेशनल रिसर्च जर्नल ऑफ इन्ोवेशन्स इन इन्जीनियरिंग एण्ड टेक्नोलॉजी, 2(6), 15-19, 2018.
9. ओझा, गौरीशंकर हीराचंद. द हिस्ट्री ऑफ द बीकानेर स्टेट, पार्ट-1, अजमेर: वैदिक यंत्रालय, 1939.
10. पारीक, सोनू एवं सोनिया रानी. ए ग्लिम्स ऑफ बीकानेर' स गोल्डन एज: द हवेली ऑफ सूरज नारायण मोहता. इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ इन्ोवेटिव रिसर्च इन टेक्नोलॉजी, 11(6), 326-332, 2024.

वैश्वीकरण के संदर्भ में जितेंद्र श्रीवास्तव के काव्य का अनुशीलन



पूजा कुशवाहा

शोधार्थी, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी
फगवाड़ा, पंजाब
☎ 9140836100
✉ Poojakushwaha5593@gmail.com

शोध-सार :

वैश्वीकरण ने पूरे विश्व को प्रभावित किया है और समकालीन हिंदी साहित्य भी इससे अछूता नहीं है। वर्तमान में वैश्वीकरण से समकालीन हिंदी कविता में विविध बदलाव दृष्टिगोचर होते हैं और इस संदर्भ में जितेंद्र श्रीवास्तव का काव्य महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उनके काव्य में वैश्वीकरण की प्रक्रियाओं, प्रभावों और उसके चलते होने वाले सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों का संवेदनशील चित्रण मिलता है। कविताएँ न केवल बाजारवाद, पूँजीवाद और उपभोक्तावाद का उल्लेख करती हैं, बल्कि वैश्वीकरण के चलते बदलते जीवन-मूल्यों और संस्कृति का भी चित्रण करती हैं। उनमें परंपरागत मूल्यों के खोने का दर्द, परिवारों का बिखराव, कृषि और ग्रामीण जीवन की समस्याओं का सजीव चित्रण मिलता है। उनके काव्य में वैश्वीकरण एक जटिल प्रक्रिया के रूप में उभरता है, जो केवल आर्थिक, सांस्कृतिक और सामाजिक पक्षों को ही नहीं, बल्कि मानवीय जीवन के हर पहलू को प्रभावित करता है।

बीज शब्द :

वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद, बाजारवाद, संस्कृति, संकट, संघर्ष, अस्मिता, अस्तित्व, नैतिकता, शहरीकरण, आधुनिकता, संवेदना, मूल्य, विरोधाभास, आशावाद।

मूल आलेख :

हिंदी काव्य एवं आलोचना जगत में समान रूप से प्रतिष्ठा प्राप्त जितेंद्र श्रीवास्तव का जन्म उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले के सिलहटा नाम के एक ग्रामीण कायस्थ परिवार में 8 अप्रैल, 1974 को हुआ था। जितेंद्र श्रीवास्तव की कविताओं का वैश्वीकरण के संदर्भ में अनुशीलन करने के लिए सबसे पहले हमें वैश्वीकरण को समझना होगा। सामान्य अर्थ में वैश्वीकरण मुक्त बाजार की स्थिति में विश्व की अर्थव्यवस्थाओं के एकीकरण की प्रक्रिया है। वैसे तो वैश्वीकरण की अवधारणा भारत के लिए कोई नई बात नहीं है। यह भारतीय संस्कृति का मूलतत्त्व है—

‘अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।

उदारचरितानाम् तु वसुधैव कुटुम्बकम्॥’¹

पाश्चात्य विद्वान् एंथोनी गिडेन्स ने वैश्वीकरण को कुछ इस प्रकार परिभाषित किया है— ‘विभिन्न लोगों और दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों के बीच बढ़ती हुई अन्योन्याश्रिता या पारस्परिकता ही वैश्वीकरण है। यह पारस्परिकता सामाजिक और आर्थिक संबंधों में होती है। इसमें समय और स्थान सिमट जाते हैं।’²



डॉ. विनोद कुमार

सह अध्यापक
लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी
फगवाड़ा, पंजाब
✉ mrvinodsharma750@gmail.com

सच्चिदानंद सिन्हा भूमंडलीकरण को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि 'इस शब्द से भ्रम होता है। यह ऐसी व्यवस्था है, जिसमें अपने छोटे स्वार्थों से ऊपर उठ सारे संसार के मंगल के लिए जुड़ जाएँगे, लेकिन भूमंडलीकरण का निहितार्थ ठीक इसके उल्टा है। इससे निकलने वाली 'सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय' ध्वनि के विपरीत यह व्यवस्था सारे संसार को कुछ सशक्त पूँजीवादी प्रतिष्ठानों यानी बहुराष्ट्रीय कंपनियों एवं उनके संकेंद्रण के सबसे सबल केंद्र अमेरिका के हितों की रक्षा का माध्यम बनी हुई है। संसार को एक करने की यह दृष्टि पूरी तरह एक आयामी है। यह सिर्फ व्यापार करने के लिए पूरी दुनिया को एक करना चाहती है, बाकी सारी बातें आनुवांशिक हैं।' ³

सांस्कृतिक एवं सामाजिक अस्मिता :

वैश्वीकरण के चलते क्षेत्रीय और सांस्कृतिक पहचान का संकट जितेन्द्र श्रीवास्तव की कविताओं में प्रमुखता से उभरता है। उनकी कविताएँ इस बात की ओर संकेत करती हैं कि कैसे उपभोक्तावादी संस्कृति ने समाज की पारंपरिक सांस्कृतिक अस्मिता को संकट में डाल दिया है। उनके काव्य में यह विरोधाभास दिखाई देता है कि जहाँ एक ओर, वैश्वीकरण आर्थिक और तकनीकी विकास लाता है, वहीं दूसरी ओर, यह सांस्कृतिक विविधता और लोकसंस्कृति के ह्रास का कारण भी बनता है।

'मेरी बुद्धि नहीं कर रही है काम
जरा सहयोग कीजिए मेरा
और बताइए कहीं यह एक शब्द 'विकास'
पर्दा तो नहीं विनाश पर?' ⁴

बाजारवाद और उपभोक्तावाद की आलोचना :

बाजारवाद की संस्कृति को बढ़ावा देने का सबसे सशक्त माध्यम आज की विज्ञापन कला है, जिसने उपभोक्तावादी प्रवृत्ति की होड़ पैदा की है। आज सभी वस्तुओं के विज्ञापन में नारी के सुकुमार अंगों और उनकी कामुक भंगिमाओं का प्रयोग किया जाता है, भले ही वह वस्तु नारी से संबंधित न हो। जितेंद्र श्रीवास्तव के काव्य में इस बाजारवादी और उपभोक्तावादी प्रवृत्ति की कठोर आलोचना की गई है। वे यह दिखाने का प्रयास करते हैं

कि कैसे आधुनिकता और विकास के नाम पर व्यक्ति अपनी वास्तविक पहचान और जीवन के नैतिक मूल्यों को खोता जा रहा है। उनकी कविताएँ यह संदेश देती हैं कि बाजारवाद ने मनुष्य के संबंधों, संवेदनाओं और भावनाओं को भी एक वस्तु में परिवर्तित कर दिया है। इस सन्दर्भ में उनकी 'शब्दार्थ' शीर्षक कविता उद्धृत की जा सकती है, जिसमें वे इस विज्ञापन वृत्ति के खतरों से सावधान करते हुए लिखते हैं -

'प्यार माने स्त्री
स्त्री माने देह
यही है दर्शन
यही है दृष्टि
बाजार की' ⁵

ग्रामीण जीवन और कृषि व्यवस्था का संकट :

वैश्वीकरण ने विशेष रूप से ग्रामीण जीवन और कृषि-व्यवस्था को प्रभावित किया है। जितेंद्र श्रीवास्तव के काव्य में ग्रामीण जीवन और कृषि व्यवस्था पर वैश्वीकरण के नकारात्मक प्रभाव का भी मार्मिक चित्रण है। किसानों की दयनीय स्थिति, खेती की समस्याएँ, किसानों की आत्महत्या, ग्रामीण क्षेत्र में बेरोजगारी, ग्रामीण क्षेत्रों का खाली होना और कृषि आधारित जीवन का संकट साफ झलकता है। उन्होंने दिखाया है कि किस प्रकार छोटे किसान, जो अपनी जीविका के लिए केवल खेती पर निर्भर हैं, वैश्विक बाजार की अनिश्चितताओं में उलझते जा रहे हैं और पूँजीवादी नीतियों ने उन्हें एक चक्रव्यूह में फँसा दिया है। किस प्रकार वैश्वीकरण ने किसानों को बाजार की दया पर छोड़ दिया है। उनका दर्द केवल आर्थिक नहीं, बल्कि आत्मिक है; और इस दर्द की अभिव्यक्ति इनकी कविताओं में बहुत ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत होती है।

'लहलहाते खेतों को देखकर
बदल रहा है भूख का प्रतिमान
रामदीन के पेट में
विचार पनप रहे हैं अँतड़ियों से
रामदीन की कल्पित संभावनाओं में
अबकी अपने दाम पर गेहूँ बेचेगा रामदीन
ढोएगा नहीं सिर पर

गाँव में अपना बाजार बनाएगा रामदीन'⁶

सामाजिक, नैतिक मूल्य और भविष्य के प्रति चिंतन :

जितेंद्र श्रीवास्तव की कविताओं में वैश्वीकरण और मानवता के भविष्य पर भी चिंतन है। उनकी कविताएँ यह सवाल उठाती हैं कि क्या यह विकास वास्तव में संतुलित और न्यायपूर्ण है? क्या यह सिर्फ कुछ लोगों की प्रगति है या इससे पूरे समाज को फायदा हो रहा है? इस दृष्टिकोण से उनके काव्य में एक भविष्यदर्शिता और चिंतनशीलता दिखाई देती है। ये कविताएँ इस बात की ओर संकेत करती हैं कि वैश्वीकरण के चलते कैसे नैतिक और सामाजिक मूल्यों का हास हो रहा है। वे बताते हैं कि कैसे मनुष्य अब सिर्फ लाभ और हानि के आधार पर अपने संबंधों और व्यवहार को तय करने लगा है।

‘चारों ओर मृत्यु और भय का हाहाकार

बलात्कार व्यभिचार,

छूट रहा है एक-दूसरे के सम्मान का आचार व्यवहार

बेटियाँ असुरक्षित हैं मजदूर लाचार,

विकास, समाज, लोकतंत्र, न्याय

धीरे-धीरे होते जा रहे हैं अर्थहीन शब्द और पद

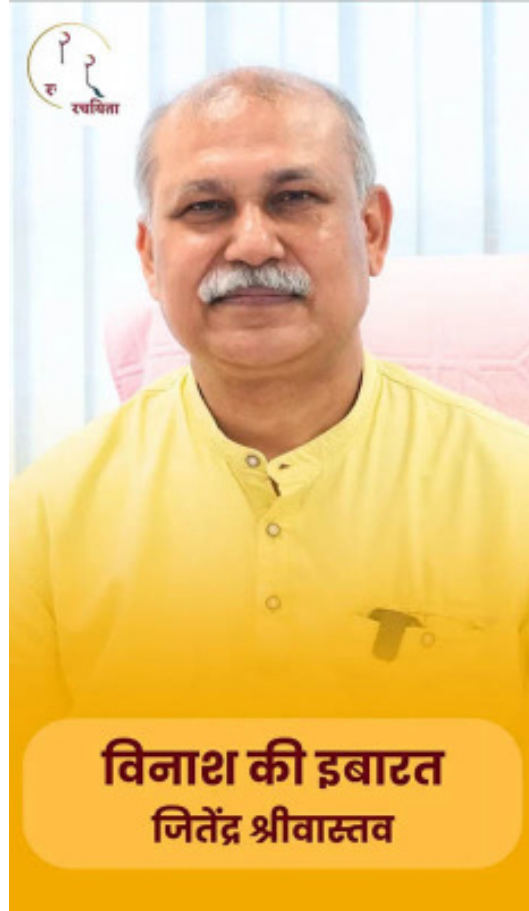
हम निहार रहे हैं एक दूसरे का मुँह खुजा रहे हैं पीठ,

पोंछ रहे हैं एक-दूसरे की लार

सोचिए, कैसे बहेगी कोई नयी बयार?’⁷

वैश्वीकरण का सामाजिक प्रभाव और उसके प्रति कवि की दृष्टि :

इनकी कविताओं में समाज के बदलाव का गहन चित्रण है। उन्होंने दिखाया है कि कैसे वैश्वीकरण ने ग्रामीण समाज, पारिवारिक संरचना और व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित किया है। उनकी कविताओं में यह देखा जा सकता है कि परंपरागत सामाजिक मूल्य कैसे टूट रहे हैं और व्यक्ति आधुनिकता और विकास के नाम पर अपनी जड़ों से दूर होता जा रहा है। उनकी कविताएँ उन लोगों की पीड़ा को व्यक्त करती हैं जो गाँव से शहर की ओर पलायन करते हैं, लेकिन शहर में भी उन्हें सम्मानजनक जीवन नहीं मिल पाता। ऐसे में कवि का यह कहना है कि वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने समाज के कमजोर वर्गों को हाशिए पर धकेल दिया है। उनके काव्य में एक बेचैनी



**विनाश की इबारत
जितेंद्र श्रीवास्तव**

और आक्रोश भी देखने को मिलता है, जो इस बात का द्योतक है कि कवि समाज की गिरती हुई नैतिकता और सांस्कृतिक पतन से दुखी है।

‘पाँच साल पहले किसी तरह जार-जुगाड़ से

वह भर्ती हुआ था रेलवे में

फिर करते हुए नौकरी

उसने की लंबी-लंबी यात्राएँ

पहली बार यात्रा में

ठिकाना नहीं था उसकी खुशी का

पर धीरे-धीरे उसकी खुशी विलीन हो गई नौकरी में

अब उसकी खुशी ही नौकरी है

उसकी नौकरी ही उसकी खुशी है

और इस प्रकार जीते हुए

वह अकेला नहीं है हममें’⁸

परिवार और व्यक्ति की पहचान का संकट :

जितेंद्र श्रीवास्तव के काव्य में पारिवारिक ढांचे और व्यक्ति की पहचान का संकट भी उभरता है। वैश्वीकरण के कारण व्यक्ति अपने परिवार से अलग-थलग होता जा रहा है। लोगों के बीच भावनात्मक जुड़ाव कम होता जा रहा है और आत्मकेन्द्रितता बढ़ती जा रही है। उनकी कविताओं में ऐसे पात्रों का जिक्र है, जो आधुनिक जीवनशैली के कारण अपनों से दूर हो गए हैं और उनकी भावनाएँ एक-दूसरे से कटती जा रही हैं। उनके यहाँ यह प्रश्न उभरता है कि क्या वैश्वीकरण के इस विकास में व्यक्ति की आत्मा और उसके मूल्यों का कोई स्थान बचा भी है?

‘प्रतिदिन कम हो रहा है आदर
मनुष्य का मनुष्य के लिए
घट रही है संवेदनशीलता
हर क्षण बढ़ रही है आकांक्षा
बढ़ रहा है शक्ति-विमर्श
हर क्षण के हजारवें अंश तक तीव्रतर है लालसा’⁹

‘यह जादुई विज्ञापनों का समय है
यह विस्मरण का समय है
इस समय रिश्तों पर बात करना

प्रागैतिहासिक काल पर बात करने जैसा हो गया है’¹⁰

आर्थिक विषमता और शहरीकरण का विरोधाभास :

जितेंद्र श्रीवास्तव ने वैश्वीकरण के कारण उत्पन्न हो रही आर्थिक विषमता और शहरीकरण का भी आलोचनात्मक विवेचन किया है। उनकी कविताएँ इस बात पर बल देती हैं कि वैश्वीकरण ने आर्थिक दृष्टि से समाज को ध्रुवीकृत कर दिया है—अमीर और अमीर हो रहे हैं, जबकि गरीब और गरीब होते जा रहे हैं। उनके काव्य में शहरीकरण के विरोधाभास का भी गहरा चित्रण है। उन्होंने दिखाया है कि कैसे बड़े-बड़े शहरों के निर्माण और विकास के पीछे गरीबों की झुगियाँ छिपी हुई हैं, जो आधुनिकता के नाम पर उन लोगों की उपेक्षा कर रही हैं। उनकी कविताओं में यह विरोधाभास देखने को मिलता है कि कैसे चमचमाते मॉल, गगनचुंबी इमारतें और तेज रफ्तार कारें एक ओर हैं, जबकि दूसरी ओर भूखे, बेरोजगार

और पीड़ित लोग हैं, जो इस चमक-दमक में कहीं खो जाते हैं।

‘वह पेट ही है जो मुझे खींच लाया एक ऐसे शहर में
जहाँ दिन बड़े विचित्र थे
रातें बड़ी भयावह
दृश्य अमावस में पहाड़ जैसे थे
उस शहर में कुछ पल बढ़ते थे
मैं भी कुछ दूर आगे तक
फिर लगता था
कहाँ जा रहा हूँ-कहाँ आ गया हूँ
इस तरह कब तक चलेगा
कैसे मिटेगी प्यास थूक घोटने भर से’¹¹

सांस्कृतिक व भाषाई अस्मिता का संकट :

जितेंद्र श्रीवास्तव ने यह भी दिखाया है कि वैश्वीकरण के कारण सांस्कृतिक और भाषाई अस्मिता का संकट गहरा रहा है। उनकी कविताओं में इस बात का उल्लेख है कि कैसे बाजारवाद और पूँजीवाद ने सांस्कृतिक विविधता को समाप्त कर दिया है। पारंपरिक भाषाएँ, लोकगीत, नृत्य, संगीत, और अन्य सांस्कृतिक धरोहरें अब केवल औपचारिकता बनकर रह गई हैं। कवि के यहाँ इस बात को लेकर चिंता दृष्टिगत होती है कि किस प्रकार हिंदी भाषा और साहित्य भी इस बहुराष्ट्रीय बाजार के दबाव में आकर अपने स्वाभाविक विकास पथ से भटक रहा है। वे इस बात को उजागर करते हैं कि कैसे पश्चिमीकरण और बाजार की ताकतों ने हमारी सांस्कृतिक पहचान को कुचलने का प्रयास किया है। इस संदर्भ में उनकी ‘विकल्प’ शीर्षक कविता उद्धृत की जा सकती है—

‘कि वह अस्वीकार कर रहा है
अजगर की तरह दूसरी भाषाओं को लीलती
किसी भाषा का
...वह महज हिंदी का अखबार नहीं पड़ रहा
वरन् इस तरह पढ़ते हुए
वह तनकर खड़ा है
अपने होने के पक्ष में
वह जानता है कि यही
सिर्फ यही एक विकल्प है
इस समय अपने बचाव का’¹²

वैश्वीकरण का नैतिक एवं दार्शनिक दृष्टिकोण :

जितेंद्र श्रीवास्तव ने वैश्वीकरण के नैतिक और दार्शनिक पहलुओं पर भी गहन दृष्टि डाली है। उनकी कविताएँ इस बात की ओर संकेत करती हैं कि वैश्वीकरण ने नैतिक मूल्यों और दार्शनिक दृष्टिकोण को भी बदल दिया है। उनका मानना है कि आज का व्यक्ति अपनी आत्मा, विचारधारा और मूल्यों के प्रति संवेदनहीन हो गया है। उनके यहाँ यह सवाल उभरता है कि क्या आधुनिकता और विकास के नाम पर हमें अपने जीवन के नैतिक सिद्धांतों से समझौता करना चाहिए? उनका काव्य एक दार्शनिक प्रश्न खड़ा करता है कि क्या हम सच में प्रगति कर रहे हैं या यह सिर्फ एक भ्रम है?

*‘मित्रो! हमने धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए
विकसित होते हुए
बनाया है जो समाज
वह दोस्तियों का कम ईर्ष्याओं का अधिक है
वह प्रेम का कम घृणा का अधिक है
... कभी-कभी लगता है जैसे
मनुष्यता के कम होने या न होने का विलाप भी
दुःख नहीं, योजना है कोई’¹³*

आधुनिकता के प्रति आशावाद और निराशा :

कवि का मानना है कि यदि वर्तमान परिस्थितियाँ इसी प्रकार चलती रहीं, तो मानवता का भविष्य संकट में पड़ सकता है। वे सचेत करते हैं कि हमें वैश्वीकरण की शक्तियों को समझकर उसे नियंत्रित करना होगा, ताकि यह मानवता के लिए लाभकारी सिद्ध हो। कवि के यहाँ एक ओर वैश्वीकरण और आधुनिकता के प्रति गहरा विरोध है, तो दूसरी ओर एक हल्का-सा आशावाद भी है। यह आशावाद उनके काव्य में स्पष्ट रूप से झलकता है, जहाँ वह विकास की प्रक्रिया में मानवीय मूल्यों, प्रेम और सामाजिक न्याय को केंद्र में रखने की बात करते हैं। आलोचक अरुण होता लिखते हैं ‘जहाँ उनके समकालीन कवि भूमंडलीकरण के सतही यथार्थ को कविता में पिरोने का प्रयास करते हैं, वहीं जितेंद्र यथार्थ की परत-दर-परत को बड़ी

बारीकी से उकेरने में अत्यंत समर्थ हैं। बाह्य यथार्थ रचनाकार के अंतः में घुल-मिलकर सृजन के रूप में अभिव्यक्त होता है। ... भूमंडलीकृत समाज में रिश्तों के बीच दिनोंदिन घटती ऊष्मा पर हो या मानव मूल्यों के क्षरण पर कवि की कविताओं ने शिद्दत से चिंता जाहिर की है।’¹⁴ इस तरह इनकी कविताएँ मानवता के भविष्य के प्रति एक चिंतनशील दृष्टिकोण भी प्रस्तुत करती हैं।

शिल्प की दृष्टि से कवि की भाषा सरल, सटीक, भावप्रवण और बहुत ही प्रभावशाली है। उनकी कविताएँ सरल शब्दों में गहरे अर्थों को व्यक्त करती हैं। भाषा में ऐसा प्रवाह, सहजता, संवेदना, तीखापन और व्यंग्यात्मकता है जो उनके काव्य को और भी मारक बनाती है, जो पाठक को सीधे जोड़ने का कार्य करती है। उनके बिंब और प्रतीक आधुनिक संदर्भों से जुड़े होते हैं, जो उनके काव्य को समकालीन परिवेश से जोड़ते हैं। प्रतीक और बिंबों का इस्तेमाल करते हुए वे वैश्वीकरण के जटिल पक्षों को समझाने का प्रयास करते हैं। जैसे, उनकी कविता ‘खेतों का अस्वीकार’ में ‘खेत’ का बिंब केवल खेती के स्थान के रूप में नहीं आता, बल्कि यह अस्तित्व और पहचान के संकट का प्रतीक बन जाता है।

निष्कर्ष :

जितेंद्र श्रीवास्तव का काव्य वैश्वीकरण के विभिन्न पहलुओं को गहनता से उजागर करता है। कविताओं में वैश्वीकरण की प्रक्रियाओं, प्रभावों और उसके कारण उत्पन्न समस्याओं को बहुत ही सटीक और मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इन कविताओं से गुजरने के बाद आप यह सोचने पर मजबूर हो जाते हैं कि क्या वास्तव में वैश्वीकरण केवल आर्थिक और तकनीकी विकास है, या इसके अंदर एक गहरी सांस्कृतिक, सामाजिक और नैतिक विडंबना छिपी हुई है?

जितेंद्र श्रीवास्तव की कविताएँ इस बात का प्रतीक है कि एक सच्चा कवि केवल अपने युग का द्रष्टा नहीं

होता, बल्कि वह समाज के हर बदलाव को गहराई से देखता है और उस पर चिंतन करता है। वैश्वीकरण के संदर्भ में उनका काव्य एक सशक्त और महत्वपूर्ण हस्तक्षेप के रूप में उभरता है, जो हमें इस जटिल प्रक्रिया को समझने में मदद करता है।

कुल मिलाकर, जितेंद्र श्रीवास्तव का काव्य वैश्वीकरण के संदर्भ में एक प्रगतिशील, समालोचनात्मक और संवेदनशील दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। उनकी कविताएँ न केवल वैश्वीकरण के नकारात्मक पहलुओं की ओर इंगित करती हैं, बल्कि इसके भीतर छिपी संभावनाओं और मानवता के भविष्य के प्रति चिंतन को भी सामने लाती हैं। □

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. महोपनिषद्, अध्याय 4, श्लोक 71
2. सागर, शैलेंद्र, राजनीति विज्ञान के सिद्धांत, खंड -2, आगरा : उपकार प्रकाशन, पृ0 709
3. सिन्हा, सच्चिदानंद, भूमंडलीकरण की चुनौतियाँ, भूमिका, नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, सं. 2007, पृ0 112
4. श्रीवास्तव, जितेंद्र, रक्त-सा लाल एक फूल, भोपाल : आईसेक्ट पब्लिकेशन, 2020, पृ0 38
5. श्रीवास्तव, जितेंद्र, स्त्रियाँ कहीं भी बचा लेती हैं पुरुषों को, महाराष्ट्र : प्रलेक प्रकाशन प्रा. लि. 2021, पृ0 66
6. श्रीवास्तव, जितेंद्र, रक्त-सा लाल एक भूल, भोपाल : आईसेक्ट पब्लिकेशन, 2020, पृ0 58
7. श्रीवास्तव, जितेंद्र, कालमृग की पीठ पर, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2024, पृ0 36
8. श्रीवास्तव, जितेंद्र, कवि ने कहा, नयी दिल्ली : किताबघर प्रकाशन, 2016, पृ0 85, 86
9. श्रीवास्तव, जितेंद्र, सूरज को अंगूठा, नयी दिल्ली : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 2020, पृ0 105
10. श्रीवास्तव, जितेंद्र, रक्त-सा लाल एक फूल, भोपाल : आईसेक्ट पब्लिकेशन, 2020, पृ0 16
11. वही, पृ0 99
12. वही, पृ0 92
13. श्रीवास्तव, जितेंद्र, कालमृग की पीठ पर, नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2024, पृ0 66, 67
14. होता, अरुण (सं.), जितेंद्र, श्रीवास्तव एक शिनाख्त, नई दिल्ली : प्रलेक प्रकाशन प्रा. लि., सं. 2022, पृ0 10-11

हिंदी और असमिया भाषा के व्याकरणिक कोटियों में उत्पन्न व्यतिरेकियाँ : एक परिचयात्मक अध्ययन



एन. ओकेंद्रो सिंह

शोध-सार :

देश तथा विदेश की शिक्षण संस्थाओं में हिंदी के समुचित अध्ययन एवं अध्यापन के लिए ठोस कदम उठाए जा रहे हैं। हिंदी का दूसरी भाषाओं के संदर्भ में क्या स्वरूप है? इसके लिए सम्यक अध्ययन की आवश्यकता महसूस की गई है। इस दिशा में हिंदी और असमिया के व्याकरणिक प्रयोग में उत्पन्न व्यतिरेकी का अध्ययन, न केवल हिंदी शिक्षण में ही उपयोगी है, अपितु अनुवाद, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अन्वेषण में भी महत्वपूर्ण है।

आर्य भाषा परिवार के अंतर्गत होते हुए भी हिंदी और असमिया दोनों भाषाओं में कुछ सीमा तक समानता है, परंतु समकालिक दृष्टि से दोनों भाषाओं में अनेक प्रकार की रूपात्मक विविधताएँ दृष्टिगत होती हैं। अध्ययन में तुलनात्मक पक्ष को कम तथा व्यतिरेकी पक्ष को अधिक उभारने का प्रयास किया गया है।

हिंदी और असमिया दोनों भाषाओं के बारे में व्याकरणिक दृष्टि से, विशेषकर हिंदी भाषा का पर्याप्त अध्ययन हुआ है। परंतु असमिया का व्यतिरेकी अध्ययन तुलनात्मक रूप से कम है। भारत में इन दो भाषाओं को लेकर किया गया व्याकरणिक कोटियों का सांगोपांग अध्ययन अब तक अछूता ही रहा है। वैसे हिंदी भाषा का, अन्य भारतीय भाषाओं के साथ किसी एक व्याकरणिक कोटि को लेकर तुलना करते हुए कुछ विद्वानों ने अध्ययन किया है, परंतु हिंदी और असमिया की व्याकरणिक कोटियों का समग्र व्यतिरेकी अध्ययन नहीं के बराबर है। इस अभाव की पूर्ति के उद्देश्य से पीएच.डी के लिए किए गए शोध अध्ययन 'हिंदी और असमिया भाषा की व्याकरणिक कोटियों का व्यतिरेकी विश्लेषण' शोध प्रबंध पर आधारित आलेख 'हिंदी और असमिया भाषा के व्याकरणिक कोटियों में उत्पन्न व्यतिरेकियाँ : एक परिचयात्मक अध्ययन' तैयार किया जा सका है।

असमिया और हिंदी भाषा के व्याकरणिक बिन्दु भाषा अधिगम में समस्यामूलक हैं। इसी कारण व्याकरणिक आधार पर इन दो भाषाओं का नवीन दृष्टि से व्यतिरेकी मूल्यांकन करने की अपेक्षा बनी रही है। कक्षाओं में अध्यापन के अनुभव से यह धारणा पुष्ट होती है कि द्वितीय भाषा अधिगम में व्यवधान पंधुचाने वाली व्याकरणिक कोटियाँ प्रमुख हैं। इसी संदर्भ में यह शोध-आलेख एक लघुतम प्रयास है।

बीज शब्द :

व्यतिरेकी, तुलनात्मक अध्ययन, लिंग, वचन, कारक, क्रिया, वाच्य, काल, वृत्ति, पक्ष, विश्लेषण, अनुवाद।

शोधार्थी, हिंदी विभाग
मणिपुर विश्वविद्यालय
इंफाल, मणिपुर
© 9854113243

विषय-विश्लेषण :

वर्तमान भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन की अनेक उपलब्धियाँ हैं। इस अध्ययन से विभिन्न भाषाओं वाले देश में एक-दूसरे की भाषाओं को सीखने में सहायता मिलती है, जिससे सामाजिक एकता स्थापित हो सकती है। दूसरे, व्यतिरेकी अध्ययन से दो भाषाओं के असमान व्याकरणिक तत्व अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। इनमें असमान अंशों को पाठ्य बिंदु मानकर कक्षा उपयोगी पाठ्य सामग्री तैयार की जा सकती है। इससे द्वितीय भाषा शिक्षण के संदर्भ में अध्येता एवं अध्यापक दोनों को लाभ होता है। व्यतिरेकी अध्ययन की एक उपलब्धि यह भी है कि अनुवाद कार्य में यह अत्यधिक सहायक सिद्ध हुआ है।

द्वितीय भाषा शिक्षण की दृष्टि से व्यतिरेकी अध्ययन प्रणाली अधिक महत्वपूर्ण है। अतः यहां इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझना भी आवश्यक हो जाता है। इस अध्ययन प्रणाली के संस्थापक हैं जर्मनी के प्रसिद्ध भाषाविज्ञानी वी. मेथेसिसस। उन्होंने 19वीं शताब्दी में ही यह जान लिया था कि दूसरी भाषा की संरचना को मातृभाषा की संरचना के संदर्भ में सरलता से सीखा जा सकता है। वाशिंगटन के आधुनिक भाषा संघ ने इसी तथ्य की महत्ता को सिद्ध करने के लिए अंग्रेजी के साथ उत्तर अमेरिका में पढ़ाई जाने वाली फ्रेंच, जर्मनी, इतालवी, रूसी और स्पेनिश भाषा का व्यतिरेकी अध्ययन प्रस्तुत किया था। सी. फ्रीज ने व्यतिरेकी विश्लेषण द्वारा दो भाषाओं का अध्ययन सीखने वाले की दृष्टि से उपयोगी बताया है। रॉबर्ट लेडो और विलियम मैकी जिन्होंने द्वितीय भाषा के शिक्षण को नयी दिशा प्रदान करते हुए यह स्पष्ट किया है कि ये पाठ्य पुस्तकें दूसरी भाषा को सीखने में छात्रों के लिए सहायक होंगी। व्याकरणिक स्तर पर दो भाषाओं का व्यतिरेकी अध्ययन दूसरी भाषा के शिक्षण की सफलता के लिए आवश्यक है, इस महत्व को हालिडे ने भी स्वीकार किया है। द्वितीय भाषा शिक्षण में व्यतिरेकी अध्ययन को विश्वव्यापी बनाने के लिए 8-9 सितंबर 1969 को केम्ब्रिज में एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन भी आयोजित किया गया था।

जैसा कि हमें पता लगा कि व्यतिरेकी विश्लेषण में दो भाषाओं की तुलना कर दोनों की असमानताओं और

अर्ध समानताओं का पता लगाया जाता है। इसलिए भाषा विज्ञान के एक अंग के रूप में यह कार्य करता है। दो भाषाओं में व्यतिरेक ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, अर्थ और यदि लेखन को भी शामिल कर लें तो पांच/छ स्तरों पर व्यतिरेक का अध्ययन किया जा सकता है। ध्वनि का व्यतिरेक प्रायः व्यक्तिवाचक नामों में समस्या उत्पन्न करता है। शब्द के स्तर पर अक्सर स्रोत भाषा में शब्द उपलब्ध रहता है तो कभी लक्ष्य भाषा में अनुपलब्ध होने से व्यतिरेक उत्पन्न हो जाता है। एक ही परिवार की भाषाओं में कभी-कभी शब्द और अर्थ को लेकर अक्सर विचित्र प्रकार का व्यतिरेक उत्पन्न हो जाता है। रूप के स्तर पर (तू) बैठ, (तुम) बैठो, आप (बैठिए), (आप) बैठे तथा अंग्रेजी (you) sit down या (you) please sit down में भी व्यतिरेक है। ऐसे व्यतिरेक से अनुवादक के सामने रूपिम समस्याएं खड़ी हो जाती हैं।¹ वाक्य स्तर पर व्यतिरेक पदक्रम, अन्वय, लिंग, वचन आदि का भी हो जाता है। ऐसे ही सहप्रयोग में भी व्यतिरेक उत्पन्न होते रहता है। इसलिए नए सह प्रयोग कभी-कभी लक्ष्य भाषा में प्रवेश कर जाते हैं। इसी प्रकार उपपद के प्रयोग में Nehru was a good orator/नेहरू अच्छे वक्ता थे (एक नहीं) में व्यतिरेक दृष्टिगोचर होता है। कुछ भाषाओं में काल का व्यतिरेक भी मिलता है। उदाहरण के लिए जाता है (सामान्य) जा रहा है (सातत्य) किंतु संस्कृत आदि बहुत सी भाषाओं में दोनों के लिए एक ही काल है, उसी संदर्भ के अनुसार सामान्य और सातत्य अर्थ को लेना पड़ जाता है।

हिंदी और असमिया की व्याकरणिक कोटियों में व्यतिरेक :

हिंदी और असमिया दोनों प्रत्यय प्रधान भाषाएँ हैं तथा संस्कृत परंपरा से विकसित होते हुए भी अनेक भिन्नता लिए हुए हैं। अतः दोनों भाषाओं में से लिंग कोटि, वचन कोटि, कारक कोटि, पुरुष कोटि, वाच्य कोटि, काल कोटि, पक्ष कोटि और वृत्ति कोटि जैसी प्रमुख व्याकरणिक कोटियों के संरचनागत प्रभाव दिखाते हैं कहाँ-कहाँ अंतर हैं तथा किन-किन संरचक-तत्वों से व्याकरणिक कोटि प्रकट होती है? तथ्यों को प्रस्तुत करने से द्वितीय भाषा शिक्षण के संदर्भ में दोनों भाषाओं की पाठ्य-सामग्री तैयार की जा सकती

है। दूसरे, अनुवाद कार्य में इन व्यतिरेकी तत्वों से सहयोग लिया जा सकता है।

प्रस्तुत शोध आलेख में नीचे हिंदी और असमिया दोनों भाषाओं के व्याकरणों में परिलक्षित व्यतिरेकियों को निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट करने का प्रयास किया जाता है।

लिंग कोटि में व्यतिरेक : हिंदी की द्विलिङ्गीय व्यवस्था और असमिया की त्रिलिङ्गीय व्यवस्था के कुछ स्थलों पर व्यतिरेक उत्पन्न हो जाता है जिसका नीचे कुछ उदाहरणों से स्पष्ट किया जाता है।

प्रायः प्राणीद्योतक संज्ञाओं का प्रकृत लिंग के अनुसार मादा स्वरूप होता है, किंतु हिंदी में कुछ संज्ञाएँ लिंग में ही प्रयुक्त होती हैं। यही स्थिति कुछ स्त्रीलिंग संज्ञाओं में भी है। हिंदी में बगुला, कौवा आदि पक्षी का कोई स्त्री लिंग नहीं है, जबकि असमिया में बगुला के लिए 'बक' और स्त्री लिंग में 'बगली' उपलब्ध है। इसी प्रकार, पुल्लिंग 'काउर' (कौवा) के लिए स्त्री लिंग 'काउरी' उपलब्ध है। हिंदी में भालू, चील, चिड़िया के लिए (सभी स्त्रीलिंग) पुल्लिंग उपलब्ध नहीं हैं जबकि असमिया में भालुक (भालू) के लिए स्त्रीलिंग में 'भालूकी', चिल (चील) के लिए 'चिलनी' उपलब्ध है। किंतु हिंदी स्त्री लिंग चिड़िया के लिए असमिया पुल्लिंग में 'मता चराई' और स्त्रीलिंग में 'माईकी चराई' से अभिव्यक्ति होती है जो व्यतिरेक है।

कुछ समान स्रोतीय द्योतक संज्ञाएँ हिंदी और असमिया में अलग-अलग पर प्रत्ययों द्वारा लिंग का बोध कराती हैं, जिसके कारण भाषाओं में व्यतिरेक उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार, बंदरिया (स्त्री) असमिया में छात्र (पु. छात्री (स्त्री) और बांदर (पु.) बांदरी (स्त्री) देखा गया है कि हिंदी में 'आ' और 'इया' प्रत्यय जबकि असमिया में केवल ई प्रत्यय का योग है जो दोनों भाषा में भिन्नता लिए हैं।

कुछ संज्ञाएँ हिंदी में लिंग प्रत्यय ग्रहण करती हैं, किंतु असमिया में इनके स्वतंत्र शब्द रूप प्रयुक्त होती हैं। इसी प्रकार कुछ असमिया की संज्ञाएँ लिंग प्रत्यय ग्रहण करती हैं किंतु हिंदी में ये स्वतंत्र शब्द रूपों में प्रयुक्त

होती हैं, जैसे- देवर का देवरानी (व्युत्पन्न स्त्री प्रत्यय 'आनी'), नर का नारी (व्युत्पन्न स्त्री प्रत्यय 'ई'), बेटा का बेटा व्युत्पन्न स्त्री प्रत्यय 'ई')। परंतु असमिया में स्वतंत्र शब्द रूप का प्रयोग होता है, जैसे- देउर (देवर) का जा (व्युत्पन्न स्त्री प्रत्यय कुछ नहीं), 'मुनिह' (नर) का 'तिरोता' (नारी) के लिए कोई व्युत्पन्न स्त्री प्रत्यय नहीं होता), पो (बेटा) का जी (बेटा) के लिए भी कोई व्युत्पन्न स्त्री प्रत्यय नहीं होने से व्यतिरेक स्पष्ट परिलक्षित होता है।

वचन कोटि में व्यतिरेक : हिंदी और असमिया में वचन तो दो हैं। परंतु विशिष्ट कोटियों की दृष्टि से दोनों भिन्न हैं। विशिष्ट कोटियों की दृष्टि से दोनों भाषाएँ समान हैं, किंतु वचन-अभिव्यक्ति के स्तर पर कई स्थानों पर वे एक-दूसरे से भिन्नताएँ लिए हुए हैं। ये भिन्नताएँ शब्द स्तर एवं अन्विति स्तर पर देखी जा सकती हैं।

हिंदी की वचन व्यवस्था संज्ञा के वचन के शब्द स्तर पर विद्यमान सरल, तिर्यक एवं संबोधन रूपों पर निर्भर है। दूसरे, इनके रूपों तथा वचन द्योतक चिह्नों में भेद नहीं है। जैसे- हिंदी के सरल रूप में एक वचन 'लड़की' का बहुवचन में 'लड़कियाँ' ('यां' प्रत्यय), 'माता' का बहुवचन में 'माताएँ' ('एँ' प्रत्यय), 'लड़का' का 'लड़के' ('ए' प्रत्यय) बन जाते हैं। वहीं सरल रूप में असमिया में 'छोवाली' (लड़की) के लिए 'बिलाक/बोर' जोड़कर 'छोवालीबिलाक', 'माँ' का 'माँबिलाक', 'लॅरा' का 'लॅराबिलाक/बोर' जोड़कर 'लॅराबिलाक' बन जाता है। इस दृष्टि से वचन व्यवस्था में व्यतिरेक परिलक्षित होती है।

असमिया में संज्ञा शब्द स्तर पर सरल, तिर्यक तथा संबोधन जैसे भेद वचन की दृष्टि से नहीं हैं किंतु हिंदी में यह भेद है। दूसरे, असमिया में वचन सूचक परप्रत्यय अलग-अलग दृष्टिकोणों से अलग-अलग रूप में व्यवहृत होते हैं। नीचे हिंदी के उक्त रूपों के अनुसार वचन विभक्तियों का असमिया से अनेक व्यतिरेक हैं।

तिर्यक रूप का कई स्थलों पर व्यतिरेक उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे- हिंदी एक वचन में 'लड़के' (ए) को बहुवचन में 'लड़कों' (ओं) को असमिया एकवचन में 'लॅराक' (×), बहुवचन में 'लॅराबिलाक'/'लॅराबिलाक + क' होता है।

संबोधन रूप के भी कई स्थलों के अंतर्गत हिंदी

एकवचन में 'लड़के' बहुवचन में 'लड़कों' बन जाता है जबकि असमिया में एकवचन में 'लॅरा' का बहुवचन में 'लॅराबिलाक' होने से इस रूप में व्यतिरेक दृष्टिगत होती है।

कारक कोटि में व्यतिरेक : हिंदी और असमिया में संख्या की दृष्टि से कारक समान हैं, किंतु अभिव्यक्ति की दृष्टि से इनमें भिन्नताएँ परिलक्षित होती हैं। दूसरे, हिंदी में कारक सूचक चिह्नों को कुछ विद्वान विभक्ति कहते हैं तथा अधिकांश विद्वान परसर्ग कहते हैं। असमिया में कारक सूचक चिह्नों को विभक्ति ही कहा जाता है। दोनों भाषाओं के कारक संबंधी व्यतिरेक को शब्द स्तर पर और वाक्य स्तर पर, इन दो स्तरों पर देखा जा सकता है, उदाहरणार्थ-

शब्द स्तर पर हिंदी में संज्ञा पदबंध के आकारांत घटक एकवचन तिर्यक रूप में एकारांत हो जाते हैं जबकि असमिया में ये परिवर्तित नहीं होते, जैसे-

जहां तक हिंदी में संकेतवाची सार्वनामिक विशेषणों

तरह के कारक सूचकों से होता है। किंतु असमिया में इसका द्योतन केवल चार तरह के कारक सूचकों में दृष्टिगत होता है। जैसे- (1) मैं स्नान कर रहा/ मइ गा धुइ आछों/ (2) रमेश ने खाना खा लिया/ रमेशे भात खाले/ (3) कमल को माटी चाहिए/कमलक माटी लागे/ (4) राम को आज पत्र मिला/रामे आजि चिठी पाले, (5) मुझको बुखार आ रहा है/मोर जर उठिछे, (6) उसे अब काफ़ी पीनी चाहिए/ सि एतिया कफी खाब लागे, (7) हरि को अब काँफी पीनी चाहिए/हरिए एतिया कफी खाब लागे, (8) मुझसे गलती हो गई/ मोर भूल हल, (9) सेठ के दो लड़कियाँ पैदा हुईं/महाजनर दुजनी छोवाली जन्म हल

इसके अतिरिक्त लि जिन बिंदुओं पर व्यतिरेक देखी जाती है, यहाँ उनका संकेतभर किया जाता है, जैसे-

(1) कर्ता द्योतक 'ने' और 'ए' के प्रयोग के आधार पर व्यतिरेकियाँ मिलती हैं।

(2) हिंदी में कुछ सकर्मक क्रियावाले वाक्यों में 'ने' का प्रयोग नहीं होता दूसरी ओर कुछ अकर्मक क्रियावाले वाक्यों में 'ने' का प्रयोग होता हुआ देखा जाता

भाषा	सरल रूप	तिर्यक रूप	संबोधन रूप
हिंदी	मेरा सफेद कूत्ता	मेरे सफेद कूत्ते (ने, को आदि)	
	उसका छोटा बच्चा, (0)	उसके छोटे बच्चे (ने, को आदि)	
असमिया	मोर बगा कुकुर, (0)	मोर बगा कुकुर (ए, क आदि)	मोर बगा कुकुर
	तार सरू लॅरा, (0)	तार सरू लॅरा (इ, क आदि)	
	आपोनार निचिना शिक्षक, (0)	आपोनोर निचिना शिक्षके (ए, क आदि)	

का तिर्यक रूप परिवर्तित हो जाता है, वहीं असमिया में सार्वनामिक विशेषण तिर्यक प्रभाव से परिवर्तित नहीं होते। नीचे इस पर एक टेबल द्रष्टव्य है-

है, जैसे- हरि ने छींका (ने), आप झूठ क्यों बोले ('ने' का प्रयोग गायब है)।

(3) हिंदी का 'ने' परसर्ग अपरिवर्तनीय तथा

भाषा	सरल रूप	तिर्यक रूप
हिंदी	वह बेचारी	उस बेचारी (ने, को आदि)
	वे लड़कियाँ	उन लड़कियाँ (ने, को आदि)
असमिया	सेइ बेचेरी	सेइ बेचेरी (ये, क आदि)
	सेइ मानुबिलाक	सेइ मानुबिलाक (ए, क आदि)

कर्ता कारक : दोनों भाषाओं में कर्ता प्रमुख कारक है। यह क्रिया का निष्पादन करता है या निष्पादन करने की क्षमता रखता है। हिंदी में कर्ता का द्योतन केवल सात

असमिया की 'ए' विभक्ति परिवर्तशील है।

कर्म कारक : इस कारक का द्योतन हिंदी में पांच कारक सूचकों से जबकि असमिया में दो विभक्ति सूचकों से

होती है। हिंदी में 'ने' परसर्ग मुख्य रूप से कर्ता कारक के लिए निश्चित है असमिया में कर्ता कारक की मुख्य विभक्ति 'ए' है। हिंदी में जहां को परसर्ग का प्रयोग व्यापक क्षेत्र में देखा जाता है वहीं असमिया में 'क' का बहुत सीमित क्षेत्र में प्रयोग होने के कारण अनेक स्थलों पर व्यतिरेक परिलक्षित होता है। असमिया की संबंध विभक्ति जिन संदर्भों में प्रयुक्त होती है, वहीं हिंदी के संबंध परसर्ग का प्रयोग दिखाई नहीं देता, जिसके कारण व्यतिरेक उत्पन्न होता है।

करण कारक : सामान्यतः करण कारक का द्योतन हिंदी में 'से' परसर्ग द्वारा होता है और असमिया में 'रे' विभक्ति से होता है। परंतु कारकसूचक के जहां तक प्रयोग की बात है, वहीं व्यतिरेक द्रष्टव्य होता है। बानीकांत काकति के अनुसार करण कारक में विभिन्न विभक्ति, प्रत्यय, परसर्ग एवं अव्यय का प्रयोग होता है।² किंतु देखा जाता है कि हिंदी में सामान्यतः 'से' परसर्ग का प्रयोग होता है।

प्रयोजन कारक या सम्प्रदान कारक या निमित्त कारक : उपेन्द्र नाथ गोस्वामी जी इसे निमित्त कारक कहते हैं।³ जबकि अधिकांश संस्कृत और हिंदी के विद्वान इसे प्रयोजन कारक कहते हैं।⁴

यह हिंदी में को परसर्ग द्वारा व्यक्त होता है जबकि असमिया में लै विभक्ति द्वारा। असमिया में चार तरह से और हिंदी में तीन तरह से प्रयोग होता है। इसके कारकसूचकों में भिन्नताएं देखने को मिलती हैं।

'के लिए' और 'र+ निमित्ते' का प्रयोग भी इसमें देखने को मिलता है, जैसे- तुमने इसके लिए एक कलम नहीं लाओ। असमिया में 'र+ संबंध विभक्ति+ निमित्ते' शब्द के संयुक्त रूप से इसे व्यक्त किया जाता है। कभी-कभी 'र+ कारणे' का प्रयोग भी दिखाई देता है। इसीके अंतर्गत हिंदी में 'को' परसर्ग और उसके स्थान पर असमिया में 'क' (कर्म विभक्ति) का प्रयोग परिलक्षित होता है। इससे यह देखा जाता है कि जहां 'को' के स्थान पर हिंदी में 'के लिए' का प्रयोग हो जाता है परंतु असमिया में 'के' विभक्ति के स्थान पर 'लै' का प्रयोग नहीं होता।

अपादान कारक : सामान्यतः इसके लिए हिंदी में 'से' परसर्ग और असमिया में 'र+ परा' विभक्ति का प्रयोग

किया जाता है कभी-कभी हिंदी में संयुक्त परसर्ग (अधिकरण कारक का 'में' या 'पर' एवं अपादान कारक का 'से' परसर्ग) का प्रयोग दिखाई देता है, जबकि असमिया में अधिकरण कारक की विभक्ति। इस संदर्भों में प्रयुक्त नहीं होती, जिसके कारण व्यतिरेकी उत्पन्न हो जाती है।

उदाहरण-

हिंदी	असमिया
संदुक में से	बाकसर परा
इनमें से	एइ बिलाकर परा
छत पर से	सालर परा

उपरोक्त हिंदी उदाहरणों में संयुक्त परसर्ग 'में से' या 'पर से' है, जबकि असमिया में संयुक्त रूप है- 'र+ परा' हो जाता है।

दूसरी ओर, अंतर प्रकट करने के लिए जहां असमिया में 'लै' विभक्ति का प्रयोग किया जाता है, वहीं हिंदी में इस प्रकार की संज्ञाएं परसर्ग रहित रहती हैं, जैसे- दिल्ली से मुम्बई 2700 किलोमीटर है (दिल्ली पर मुम्बाईलै 2700 किलोमीटर)

जम्मू से, विद्यालय से, घर से आदि में कारक सूचक नहीं होता, वहीं असमिया में जम्मूर परा ... 'लै', विद्यालयर परा ... 'लै', घरर परा ... 'लै' के लिए कारक सूचक 'लै' का प्रयोग होता है।

हिंदी में तुम (से) छोटा, मुझ (से) बड़ा, दूध (से) दही, पानी (से) चाय और असमिया में तोमात(कै) सरू मोत (कै) डाड़र, गाखीर (र परा), पानी(र परा) जैसे कारकसूचक का प्रयोग होता है।

अधिकरण कारक : असमिया और हिंदी दोनों भाषाओं में अधिकरण कारक सूचकों की प्रयोग की दृष्टि से व्यतिरेक है।

असमिया प्रयोग- ('लै', 'यत', 'मते', 'रत' आदि कारक सूचकों का प्रयोग होता है)

हिंदी में - 'में', 'पर', 'से', 'को' आदि कारक सूचकों का प्रयोग होता है।)

सोमबारे दिल्लीलै याम(सोमबार को दिल्ली जाएंगे)

मोर ओपरत असंतुष्ट (मुझ पर असंतुष्ट)

समयमते विद्यालय नायाय (समय से विद्यालय नहीं जाता)

गरम दिनत काश्मीर याब बिसारे (गर्मियों में कश्मीर जाना चाहता)

छुटीत फुरिबलै याब (छुट्टियों में घुमने जाएगा)

संबंध पद : भले ही संबंध पद को हिंदी अथवा असमिया व्याकरण में कारक के अंतर्गत न माना गया हो परंतु इस पद का प्रत्यय क भेदक और भेद्य पदों से प्रभावित होता रहता है। इसी प्रभाव के कारण 'क' के नौ रूप हिंदी में मिल जाते हैं लेकिन असमिया में 'र' के कोई रूप नहीं मिलते जबकि यह संबंध पद का विभक्ति है। इस कारण भाषा में व्यतिरेक उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे-हिंदी में मेरा डिब्बा, उसका डिब्बा, अपना डिब्बा, मेरे डिब्बे, उसके डिब्बे, अपने डिब्बे, मेरी डिब्बिया, उसकी डिब्बिया, अपनी डिब्बिया।

असमिया में हिंदी की तुलना में र का रूप अपरिवर्तित रहता है, जैसे- मोर टेमा, तार टेमा, निजर टेमा मोर टेमाबोर, तार टेमाबोर, निजर टेमाबोर, मोर सरूटेमा, तार सरूटेमा, निजर सरूटेमा।

संबोधन पद : दोनों भाषाओं में संबोधन पद की संज्ञाओं में रूपगत अंतर देखने को मिल जाता है। संज्ञा के पहले प्रयुक्त संबोधन अव्ययों में भी अंतर देखा जाता है। असमिया में सामाजिक स्तर के अनुसार अव्यय प्रयुक्त होते हैं जबकि हिंदी में भी वैसा ही है, अतः विशेष भेद नहीं है।⁵

पुरुष कोटि में व्यतिरेक : हिंदी और असमिया में पुरुष के प्रयोग की विभिन्नता शब्द के स्तर पर और अन्विति के स्तर पर देखा जा सकता है। प्रायः संज्ञाएं तृतीय पुरुष में प्रभावित होने के कारण व्यतिरेक परिलक्षित होती है। जैसे- हिंदी में प्रथम पुरुष एक वचन का 'मैं' बहुवचन में 'हम' हो जाता है और उसी प्रकार असमिया का 'मइ' बहुवचन में 'आमि' हो जाता है जो समान है। परंतु हिंदी में एक वचन के 'हम' का कोई बहुवचन नहीं है और उसी प्रकार असमिया में हिंदी एकवचन के 'हम' का एकवचन बहुवचन में कोई समतुल्य सर्वनाम न होने से असमान है और व्यतिरेक उत्पन्न हो जाता है।

असमिया के द्वितीय पुरुष में तहँत एक स्वतंत्र शब्द बोध है जो तइ का बहुवचन में प्रयुक्त होता है। हिंदी में एकवचन तू बहुवचन तुम का प्रयोग होता है। जो दोनों भाषाओं में असमानता दिखाता है।

तृतीय पुरुष का हिंदी में चार सर्वनाम का प्रयोग और असमिया में तेइस सर्वनामों का प्रयोग देखा जाता है। दरअसल असमिया में सामाजिक स्तर, लिंग, दूरी के आधार पर ऐसा होता रहा है। हिंदी में जहां सभी आधारों पर सर्वनाम यह, वह, ये, वे की प्रयोग व्यवस्था है, वहीं असमिया में इ, सि इहँत, सिहँत और सामान्य आदर हेतु एऔँ, तेऔँ, एऔँलोक, तेऔँलोक का प्रयोग एवं विशेष आदर हेतु एखेत, तेखेत एखेतसकल, तेखेतसकल का प्रयोग निश्चित रूप से होता है। असमिया में आगे यही प्रयोग लिंग भेद के और दूरी भेद के कारण भी अलग-अलग से किया जाता है।

जहां तक अन्विति स्तर पर पुरुष के प्रयोग की बात है, वहां भी दोनों भाषाओं के काफी स्थल पर व्यतिरेक परिलक्षित होता है। इस प्रकार, वाक्य स्तर पर प्रयोग की दृष्टि से दोनों भाषाओं में कर्ता और क्रिया की अन्विति में असमानता देखी जा सकती है।

इसके अतिरिक्त दोनों भाषाओं में तिर्यक रूप रचना में पुरुष अन्विति में असमानता, भूतकाल में पुरुष अन्विति में असमानता, वर्तमान काल के निषेध वाक्यों में पुरुष अन्विति में असमानता, पुरुष विभक्तियों के रूप परिवर्तन में असमानता परिलक्षित होती है।

वाच्य कोटि में व्यतिरेक : हिंदी और असमिया में वाच्य की संख्या तीन हैं- कर्ता, कर्म और भाव वाच्य। किंतु हिंदी में वाच्य और प्रयोग की वाक्य संरचनाएँ समान नहीं हैं। दोनों भाषाओं की वाच्य संरचनाएँ रूप की दृष्टि से भिन्न होते हैं।

प्रयोग की दृष्टि से वाच्य में व्यतिरेक : हिंदी में वाच्य और प्रयोग की वाक्य संरचनाएँ रूप की दृष्टि से भिन्नता लिए दिखती हैं। असमिया में वाच्य और प्रयोग में कोई भेद नहीं है। इसलिए असमिया व्याकरणों में प्रयोग संबंधी अलग भेद मानने की आवश्यकता नहीं रही। इस दृष्टि से असमिया भाषा संस्कृत के अति निकट है क्योंकि संस्कृत

में वाच्य और प्रयोग जैसा भेद नहीं है। प्रयोग से तात्पर्य क्रिया के साथ कर्ता व कर्म का अन्वय है। नीचे कुछ उदाहरणों के जरिए बात को स्पष्ट करने का प्रयास किया जाता है।

कर्तृवाच्य और कर्तरि प्रयोग : हिंदी में कर्तृवाच्य और कर्तरि प्रयोग की वाक्य संरचना समान हैं। इस दृष्टि से हिंदी और असमिया में कर्तृवाच्य के अंतर्गत भेद नहीं हैं, जैसे-

- (1) मैं भात खाऊँगा/मई भात खाम।
- (2) हम भात खाएँगे/आमि भात खाम।
- (3) राम भात खाएगा/रामे भात खाब।

उक्त उदाहरणों में कर्तृवाच्य दोनों भाषाओं में समान है, किंतु अन्विति में व्यतिरेक दृष्टिगत हो रहा है। हिंदी में क्रिया सरल रूपीय कर्ता के साथ उसके अनुसार लिंग, वचन, पुरुष के अनुसार अन्वित होती है तथा असमिया में क्रिया सरल/तिर्यक रूपीय पुरुषानुसार अन्वित होती है। रामे (राम + ए) तिर्यक रूपीय कर्ता है।

कर्तृ वाच्य में व्यतिरेक : कर्तृ वाच्य के वाक्य रूप की दृष्टि से असमान दिखती हैं। इसके लिए जहां हिंदी में कर्ता स्थानीय सरल रूप संज्ञा या सर्वनाम के लिंग वचन पुरुष के अनुसार अन्वित होते हैं वहीं तिर्यक रूपीय कर्ता से क्रिया अन्वित नहीं होती है। असमिया में सरल हो या तिर्यक कर्ता के पुरुषानुसार क्रिया अन्वित होती हैं। जैसे- गाता हूँ/गाते हैं/गाता है। असमिया में गाओं/गोवा/गाय।

इनके अलावा, द्विकर्मक कर्तृवाच्य में व्यतिरेक, कर्म वाच्य व्यतिरेक, भाववाच्य में अनेक व्यतिरेक परिलक्षित होती हैं।

काल कोटि में व्यतिरेक : हिंदी और असमिया में दोनों भाषाओं में भूतकाल सूचकों की प्रयोगत स्थितियां कभी समान नहीं हैं। असमिया में भूतकाल का सूचक *आछिल* समापिका क्रिया के अंतर्गत होती है।

काल कोटि के अंतर्गत देखा गया है कि पूर्ण व अपूर्ण पक्ष की वाक्य संरचना में अधिकांश व्यतिरेक परिलक्षित होता है। जैसे- 'हम लोग भी नाटक देखने गये थे'/'आमिओ नाटक चाबँले गैछिलों', 'तुमने असमिया पढ़ी थी'/'तुमि असमिया पड़िछला', 'मोहन ने जलपान

किया था'/'मोहने जलपान करिछिल।'

असमिया में भूतकाल का सूचक 'आछिल'/'इछिल' दो तरह से होती है। ये दोनों हिंदी थ सूचक से भिन्न हैं। जैसाकि, हिंदी का 'थ' रूप अपरिवर्तनीय है परंतु असमिया का 'अछिल' में पूर्वक्रिया की अंतिम अस्वनिम के आधार अपरिवर्तित होता है, (5) जैसे- ग+इछिल=गैछिल।

सातत्य पक्ष की वाक्य रचना के अनेक स्थलों पर व्यतिरेक दृष्टिगोचर होता है। हिंदी में कर्ता कारक का ने परसर्ग प्रयुक्त नहीं होता, जबकि असमिया में कर्ता स्थानीय संज्ञाओं के साथ विभक्ति एका प्रयोग होता है, जैसे- 'मोहन खेल देख रहा था'/'मोहने खेल चाइ आछिल।' तहां तक हिंदी का 'वाला' प्रत्यय लिंग या वचन से बदल जाता है, वहीं असमिया 'लगिया' अव्यय जैसे जुड़ जाता है।

दूसरा, हिंदी में कर्ता स्थानीय संज्ञा या सर्वनाम में कर्ता सूचक परसर्ग नहीं लगता, जबकि असमिया में विभक्ति 'ए' से युक्त होती है।

कर्मवाच्य के वाक्य गठन में दोनों भाषाओं में भूतकाल की अभिव्यक्ति समान रूप से व्यक्त नहीं हो पाती। निषेध वाक्य में जहां 'न' निषेधसूचक का 'ना' में परिवर्तित होता है वहीं हिंदी में 'नहीं' से होता है, जैसे- 'नहीं जाएंगे' (हिंदी) और 'नायाउँ' (असमिया)।

इसके अतिरिक्त, दोनों भाषाओं के भाव वाच्य की वाक्य संरचना में भी व्यतिरेक उत्पन्न होता है।

वर्तमान काल के अधीन जिन बिंदुओं पर व्यतिरेक दिखाई देता है, वे हैं- अस्तित्वबोधक वाक्य संरचना में, अपूर्ण पक्ष की वाक्य संरचना में, पूर्ण पक्ष की वाक्य संरचना में, सातत्य पक्ष की वाक्य संरचना में, कर्म वाच्य की वाक्य संरचना में, भाववाच्य की वाक्य संरचना में और क्रियांतवाले प्रत्यय से युक्त वाक्य गठन के दौरान।

भविष्यत काल के अंतर्गत जिन बिंदुओं पर व्यतिरेक दिखाई देता है, वे हैं- निश्चय प्रधान वाक्य संरचना में, विधि वाक्यों की संरचना में, संभावित भाव प्रधान वाक्यों में, रूप और अर्थ की दृष्टि से अलग-अलग काल होना, वर्तमान कालिक निषेध वाक्यों में, निषेधसूचक नित्य वर्तन की वाक्य संरचना में वर्तमान काल के अधीन जिन बिंदुओं

पर व्यतिरेक दिखाई देता है, वे हैं- अस्तित्वबोधक वाक्य संरचना में, अपूर्ण पक्ष की वाक्य संरचना में, पूर्ण पक्ष की वाक्य संरचना में, सातत्य पक्ष की वाक्य संरचना में, कर्म वाच्य की वाक्य संरचना में, भाव वाच्य की वाक्य संरचना में, क्रियांत वाला प्रत्यय की वाक्य संरचना में।

इसी प्रकार, भविष्यत काल के अधीन जिन-जिन बिंदुओं पर व्यतिरेक दिखाई देते हैं, वे हैं- निश्चय प्रधान वाक्य संरचना में, विधि वाक्यों की संरचना में, संभावना भाव प्रधान वाक्यों में रूप और अर्थ की दृष्टि से वर्तमान और भविष्यत काल में, वर्तमानकालिक निषेध वाक्यों में कालबोध, निषेध सूचक नित्य वर्तमान की वाक्य संरचना में, निषेध सूचक सातत्य वर्तमान काल की वाक्य संरचना में।

पक्ष कोटि में व्यतिरेक : पक्ष क्रिया व्यापार में प्रयुक्त समय विस्तार के बोध को निर्धारित एवं नियंत्रित करता है। हिंदी में पक्ष व्यवस्था को परंपरावादी वैयाकरण काल के अंतर्गत विश्लेषित किया जाता रहा है। इसलिए पक्ष कोटि की परंपरा स्पष्ट और स्वतंत्र रूप में विकसित नहीं हो सकी। असमिया में पक्ष के लिए काल दशा⁶ शब्द का व्यवहार होता है। असमिया में तीन पक्षों⁷ की व्यवस्था है जो क्रिया रूपों में देखी जाती है।

अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि नित्यताबोधक पक्ष को नित्य वर्तमान नाम देकर एक स्वतंत्र पक्ष माना जाता है जो वर्तमान काल के वाक्यों की संरचना में स्वीकार्य है। इसके अंतर्गत हिंदी के साथ अनेक स्थल पर व्यतिरेक परिलक्षित होती है। क्योंकि इस पक्ष की अभिव्यक्ति दोनों भाषाओं में समान नहीं है।

इसके अतिरिक्त आरंभबोधक पक्ष के अंतर्गत दोनों भाषाओं की क्रिया संरचना में व्यतिरेक देखने को मिलता है।

असमिया में प्रगतिबोधक पक्ष में हिंदी जैसी स्पष्ट धारणा प्रकट नहीं हो पाती। इसके अंतर्गत दोनों भाषाओं की क्रिया संरचनाएं रूप की दृष्टि से भिन्नता लिए दिखाई देते हैं। सहायक क्रिया संरचना में भी दोनों भाषाओं में एक रूपता दृष्टिगत नहीं होती है।

वृत्ति कोटि में व्यतिरेक : जिस क्रिया रूप के द्वारा

आज्ञा, प्रार्थना आदि का बोध हो उसे विधि वृत्ति कहा जाता है। दो असमिया में इसके लिए अनुज्ञा शब्द का प्रयोग प्रचलित है, जो अर्थ की दृष्टि से संकुचित है, क्योंकि अनुज्ञा से केवल अनुमति भाव ही द्योतित होता है। दूसरे, विधि के अंतर्गत भावों की व्यापकता है। दोनों भाषाओं में ये भाव भाषा संरचना में व्यक्त होते हैं।

दोनों भाषाओं में रूप की दृष्टि से इस वृत्ति के सूचक समान नहीं हैं। आज्ञा विधि के भेदानुसार अनेक स्थलों पर व्यतिरेक उत्पन्न हो जाता है। सामान्य आज्ञा विधि, बलात्मक आज्ञा विधि, तात्कालिक आज्ञा विधि, निषेधात्मक आज्ञा विधि, संप्रश्न विधि, अनुमति विधि, प्रार्थना विधि आदि के प्रयोग में अनगिनत व्यतिरेक परिलक्षित होती हैं।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विश्लेषण के दौरान देखा गया कि हिंदी में दो की तुलना में असमिया में लिंग तीन हैं। असमिया में व्याकरणिक लिंग विशेष्य विशेषण की लिंग अन्विति में व्यतिरेक देखी जाती है। इसके अतिरिक्त हिंदी की तुलना में असमिया में अप्राणीवाचक संज्ञाको नपुंसक लिंग में रखा जाता है। हिंदी में या तो पुलिङ्ग नहीं तो स्त्रीलिङ्ग में रखने के कारण अनेक स्थलों पर व्यतिरेक हैं। इसके अतिरिक्त, संज्ञाओं लिंग द्योतन, सर्वनाम लिंग की निरपेक्षता, आकारांत विशेषण और असमिया के प्राणवाण विशेषण का परिवर्तन, असमिया में क्रिया का अथवा क्रिया विशेषण का लिंग से प्रभावित न होना, परसर्ग का हिंदी में संज्ञा के लिंग से परिवर्तित होना आदि वे मुख्य बिंदु हैं जिनके कारण व्यतिरेक होता है।

दोनों भाषाओं में वचन विभक्तियाँ और वचन अन्विति की दृष्टि से बारह प्रकार के व्यतिरेक मिलते हैं। कारक के संकेतों में प्रयोगत भिन्नताएँ मिलती हैं जिसके कारण भाषाओं में व्यतिरेक परिलक्षित होती हैं। शब्द और वाक्य स्तर पर कुल सत्रह प्रकार के अलग-अलग व्यतिरेक मिलते हैं। प्रयोग एवं पुरुष विभक्तियों की दृष्टि से भी शब्द और अन्विति स्तर पर ग्यारह प्रकार के अलग अलग व्यतिरेक मिलते हैं। वाच्य में भी यही स्थिति है। दोनों भाषाओं में वाच्य के क्रिया रूपों की दृष्टि से विश्लेषण

किया जाए तो दस अलग अलग प्रकार के व्यतिरेक मिलते हैं। जहां तक काल की बात है दोनों भाषाओं में तीन काल होते हुए भी कालों की अभिव्यक्ति की दृष्टि से अनेक व्यतिरेक मिलते हैं। असमिया और हिंदी में तीन पक्ष हैं- अस्तित्वबोधक, पूर्ण पक्ष और अपूर्ण पक्ष। भले ही संख्या की दृष्टि से ये समान हैं परंतु प्रयोग

की दृष्टि से इनके क्रिया रूपों में छह अलग-अलग प्रकार के व्यतिरेक दृष्टिगोचर होते हैं। वृत्ति कोटि में भी दोनों भाषाओं में निश्चित विधि संकेत संभावना वृत्तियां हैं। इनके विश्लेषण में पाया गया कि अभिव्यक्ति की दृष्टि से इसमें पाँच अलग-अलग प्रकार के व्यतिरेक मिलते हैं। □

संदर्भ ग्रंथ सूची :

- (1) अंग्रेजी-हिंदी अनुवाद व्याकरण- प्रो. सूरजभान सिंह, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रकाशन, 2006, पृ. 33
 - (2) Assamese its Formation and Development of Assamese language, Banikanta Kakati, Lawers Book stall, Panbazar, Guwahati, 1971 (internet edn), pg-300,
 - (3) असमिया भाषार रूपकथा, उपेंद्र नाथ गोस्वामी, न्यू बुक स्टॉल, पानबाजार, 1974, पृ. 20
 - (4) हिंदी व्याकरण, कामता प्रसाद गुरु, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1952 (इंटरनेट संस्करण), पृ. 280
 - (5) असमिया गोलोक व्याकरण, गोलोक चंद्र गोस्वामी, वाणी प्रकाशन, गुवाहाटी-1, 1974 (इंटरनेट संस्करण), पृ. 237
 - (6) वही- पृ. 240
 - (7) असमिया व्याकरण, हेमचंद्र बरुवा, हेमचंद्र पुथिभराल, शिवसागर, पंचबिंशति तौगरण, 1970 (इंटरनेट संस्करण), पृ. 140
-

অসমৰ বুৰঞ্জীমূলক আখ্যানগীতত অসমৰ ছাত্ৰ আন্দোলনৰ প্ৰতিচ্ছবি : এক অধ্যয়ন

সংক্ষিপ্তসূচী :



ড° ভাস্কৰজিৎ বৰা

অসমীয়া লোক সাহিত্যৰ এটি ভাগ হৈছে লোকগীত। লোকগীতসমূহৰ আলোচনাৰ সুবিধাৰ বাবে তিনিটা ভাগত ভাগ কৰিব পাৰি—অনুষ্ঠানমূলক, আখ্যানমূলক আৰু কৰ্ম বিষয়ক। অৱশ্যে অসমীয়া সাহিত্যৰ পণ্ডিতসকলে অসমীয়া লোকগীতক বিভিন্ন প্ৰকাৰে বিভক্ত কৰিছে। আখ্যানমূলক লোকগীতৰ অন্যতম বুৰঞ্জীমূলক আখ্যান গীতসমূহ। বুৰঞ্জীমূলক আখ্যানগীত বা মালিতাবোৰৰ পৰা ঐতিহাসিক তথ্য লাভ কৰিব পাৰি। অসমৰ ভাষা আন্দোলন বা বিদেশী খেদা আন্দোলনত অসমৰ ছাত্ৰসমাজ কেনেদৰে জড়িত হৈছিল সেই বিষয়ে ছাত্ৰ আন্দোলনৰ লগত জড়িত আখ্যান গীতসমূহৰ পৰা জানিব পাৰি। অসমত অসমীয়া ভাষা প্ৰতিষ্ঠাৰ বাবে মোজাম্মিল হক, অনিল বৰাই কেনেদৰে প্ৰাণ আৰ্হুতি দিছিল, ‘অসম আন্দোলনৰ গীত’, ‘বিদেশী খেদা আন্দোলনৰ গীত’, ‘খগেশ্বৰ তালুকদাৰ গীত’, ‘ছাত্ৰ আন্দোলনৰ গীত’সমূহত অসমৰ ছাত্ৰসমাজে বিদেশী বহিস্কাৰৰ বাবে কেনেদৰে আন্দোলন কৰিছিল; খগেশ্বৰ তালুকদাৰ কেনেদৰে শহীদ হৈছিল সেই দিশসমূহ পৰিস্ফুট হৈছে। আমাৰ এই গৱেষণা পত্ৰখনিত অসমীয়া বুৰঞ্জীমূলক আখ্যানগীতসমূহত কেনেদৰে ছাত্ৰ আন্দোলনৰ প্ৰতিচ্ছবি প্ৰতিফলিত হৈছে সেই বিষয়ে আলোচনা কৰা হ’ব।

বীজশব্দ : শহীদ, আন্দোলন, সম্প্ৰদায়, ছাত্ৰ, ভাষা, বিদেশী।

০.১ আৰম্ভণি :

অসমীয়া লোক সাহিত্যৰ ভঁৰাল চহকী। জনসাধাৰণ নিৰ্ভাজ মনৰ মধুৰ ভাৱৰাজিৰ মুকলি প্ৰকাশেই লোক সাহিত্য।^১ ড° সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাই ‘অসমীয়া সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত’ গ্ৰন্থত অসমীয়া লোক সাহিত্যক তিনিটা ভাগত ভাগ কৰিছে—লোকগীত, ফকৰা-যোজনা আৰু প্ৰৱচন আৰু সাধুকথা। তেখেতে লোকগীতক তিনিটা শ্ৰেণীত বিভক্ত কৰিছে—অনুষ্ঠানমূলক, আখ্যানমূলক আৰু বিবিধ বিষয়ক। অধ্যাপক ভৱপ্ৰসাদ চলিহাই সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাই উল্লেখ কৰা বিবিধ বিষয়কৰ পৰিৱৰ্তে কৰ্ম বিষয়ক আৰু বিবিধ বিষয়ক বুলি ‘অসমীয়া আখ্যান গীত সংগ্ৰহ’ত উল্লেখ কৰিছে। অনুষ্ঠানমূলক গীতৰ ভিতৰত বিহুগীত, বিয়ানাম, আইনাম, লখিমী সবাহৰ গীত, অপেচৰী গীত, মহুছ গীত আদি, আখ্যানমূলক গীতৰ ভিতৰত মণিকোঁৱৰৰ গীত, ফুল কোঁৱৰৰ গীত, জনা গাভৰুৰ গীত, বৰফুকনৰ গীত, মণিৰাম দেৱানৰ গীত ইত্যাদি আৰু কৰ্ম বিষয়ক আৰু বিবিধ গীতৰ ভিতৰত নিচুকণী গীত, গৰখীয়া গীত, নাও খেলোৱা গীত, বৰশী বোৱা গীত আদি অন্তৰ্ভুক্ত।

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
এল, টি, কে, মহাবিদ্যালয়
উত্তৰ লক্ষীমপুৰ (অসম)
☎ ৯৩৬৫১৭৭২৬২
✉ bjbora82@gmail.com

০.২ অসমীয়া বুৰঞ্জীমূলক আখ্যানমূলক গীত :

আখ্যান গীতক ইংৰাজীত 'বেলাড' (Ballad) বোলা হয়। অসমীয়া আখ্যান গীতক বুজাবলৈ 'মালিতা' শব্দটো ব্যৱহাৰ কৰা হয়। অসমীয়া মালা শব্দৰ পৰাই মালিতা শব্দৰ সৃষ্টি হৈছে। ফুলৰ মালাৰ দৰে ধাৰাবাহিকভাৱে গাঁথি থোৱা কাহিনীযুক্ত গীতেই মালিতা। অৱশ্যে অসমীয়াত 'মালিতা'ক বুজাবলৈ 'গীত' শব্দটোকে সচৰাচৰ ব্যৱহাৰ কৰা হয়। যেনে—বৰফুকনৰ গীত, মণিৰাম দেৱানৰ গীত...'^২

মালিতাসমূহ আখ্যানযুক্ত গীত আৰু ইয়াক সুৰ লগাই গোৱা হয়। অধ্যাপক ভৱপ্ৰসাদ চলিহাই অসমীয়া মালিতা বা আখ্যানমূলক গীতসমূহক তেখেতৰ 'অসমীয়া আখ্যান-গীত সংগ্ৰহ' গ্ৰন্থখনিত তিনিপ্ৰকাৰে বিভক্ত কৰিছে—

প্ৰথম ভাগ : বুৰঞ্জীমূলক আখ্যান গীত

দ্বিতীয় ভাগ : বিবিধ বিষয়ক আখ্যান গীত

(ক) জনশ্ৰুতিমূলক

তৃতীয় ভাগ : কৃত্ৰিম আখ্যান গীত।

বুৰঞ্জীমূলক আখ্যান গীতত নাহৰৰ গীত, জয়মতী কুঁৱৰী গীত, আজানফকিৰৰ গীত, বৰফুকনৰ গীত, হায়দৰ গাজীৰ গীতৰ পৰা বানপানীৰ গীতলৈকে অৰ্থাৎ ইতিহাসৰ লগত সম্পৰ্ক থকা গীতসমূহক তেখেতে বুৰঞ্জীমূলক আখ্যান গীতত অন্তৰ্ভুক্ত কৰিছে।

০.৩ তথ্য আহৰণৰ উৎস :

গৱেষণা পত্ৰখনি প্ৰস্তুত কৰোঁতে মুখ্য উৎস হিচাপে অধ্যাপক ভৱপ্ৰসাদ চলিহাই সংকলন-সম্পাদনা কৰা 'অসমীয়া আখ্যান-গীত সংগ্ৰহ' গ্ৰন্থখন লোৱা হৈছে। গৌণ উৎস হিচাপে এই বিষয়ৰ লগত সংগতি থকা প্ৰবন্ধ, গ্ৰন্থ আৰু ইণ্টাৰনেটৰ পৰা তথ্য লোৱা হৈছে।

০.৪ উদ্দেশ্য :

অসমীয়া বুৰঞ্জীমূলক আখ্যান গীতসমূহত অসম আন্দোলনক লৈ ৰচিত কেইবাটাও গীতৰ উল্লেখ পোৱা যায়। ইয়াৰ ভিতৰত মাজামিল হকৰ গীত, অনিল বৰাৰ গীত, অসম আন্দোলনৰ গীত, বিদেশী খেদা আন্দোলনৰ গীত, খগেশ্বৰ তালুকদাৰৰ গীত অন্যতম। আমাৰ এই গৱেষণা পত্ৰখনিত গীতসমূহত বৰ্ণিত বিষয় সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা হ'ব আৰু কেনেদৰে অসমত ছাত্ৰ আন্দোলন হৈছিল তাৰ আলোচনাই গৱেষণাপত্ৰখনৰ মুখ্য উদ্দেশ্য।

০.৫ বিষয়ৰ পৰিচয় :

'মাজামিল হক'ৰ গীতত মাজামিল হক কিদৰে শ্বহীদ হ'ল সেই বিষয়ে বৰ্ণনা কৰিছে। সদৌ অসম ছাত্ৰ সন্থাৰ আহ্বান মৰ্মে অসমত অসমীয়া ভাষাই উচ্চ শিক্ষাৰ মাধ্যম হোৱাৰ দাবীত ১৯৭২ চনৰ ৫ অক্টোবৰত বাৰঘণ্টীয়া অসম বন্ধ ঘোষণা কৰিছিল। সেইদিনা মাজামিল হকে অসম বন্ধ সফল কৰিবলৈ ঘৰৰ পৰা ওলাই আহিছিল। সেই সময়ত তেওঁ অষ্টম শ্ৰেণীৰ ছাত্ৰ আছিল। সেই সময়ত খাৰুপেটীয়াৰ কিছুমান লোকে এই বন্ধৰ বিৰোধিতা কৰি ব্যৱসায় প্ৰতিষ্ঠানসমূহ খুলিছিল। সেই খবৰ লাভ কৰি মাজামিল হকে সতীৰ্থ আন্দোলনকাৰী কেইগৰাকীমান লগত লৈ ব্যৱসায়িক প্ৰতিষ্ঠানসমূহ বন্ধ কৰিবলৈ খাৰুপেটীয়ালৈ গ'ল। কম বয়সীয়া ছাত্ৰ আন্দোলনকাৰীসকলক বন্ধ বিৰোধী লোকসকলে আক্ৰমণ কৰে। সেই আক্ৰমণত আহত হয় মাজামিল হক। মাজামিলক খাৰুপেটীয়া চিকিৎসালয়ত প্ৰাথমিক চিকিৎসা প্ৰদান কৰি মংগলদৈ চিকিৎসালয়লৈ স্থানান্তৰ কৰা হয়। পৰৱৰ্তী সময়ত উন্নত চিকিৎসাৰ বাবে গুৱাহাটী চিকিৎসা মহাবিদ্যালয়লৈ প্ৰেৰণ কৰে আৰু গুৱাহাটী চিকিৎসা মহাবিদ্যালয়তে ১৯৭২ চনৰ ৬ ছেপ্টেম্বৰত মাজামিলৰ মৃত্যু হয়। ভাষা আন্দোলনত শ্বহীদ হোৱা মাজামিল হক কেনেদৰে শ্বহীদ হ'ল সেই সম্পৰ্কে মালিতাটোত এনেদৰে উল্লেখ কৰিছে—

'মাজামিল শ্বহীদ হ'ল অসমীয়া মাধ্যম হ'ল
অসমত অসমীয়া হৈল আৰু এ।

উনৈশ শ বাসন্তৰ চন অসমীয়াৰ আন্দোলন
গাৱে-ভূঞা অসমীয়াই কৰে আহাৰ এ।
খাৰুপেটীয়াত জুই জ্বলিল ৰাইজৰ হাহাকাৰ লাগিল
হাহাকাৰৰ সীমা সংখ্যা নাই আহাৰ এ।।'

এই গীত ফাঁকৰি জৰিয়তে স্পষ্টভাৱে ফুটি উঠিছে যে ১৯৭২ চনৰ ভাষা আন্দোলনৰ বাবে প্ৰাণ আতুতি দিয়া মাজামিলৰ ওপৰত হোৱা আক্ৰমণৰ খবৰ বিয়পি পৰাৰ লগে লগে মংগলদৈ-খাৰুপেটীয়াত এটি উত্তপ্ত পৰিস্থিতিৰ সৃষ্টি হয়। এই উত্তপ্ত পৰিস্থিতিৰ বৰ্ণনা এই গীতটোত এনেদৰে পোৱা যায় :

'ক'ৰ মানুহ ক'ক গেল কানি কাপোৰ ক'ত ৰ'ল
কাৰফিউ আইন চলিলা আহাৰ এ।

মছজিদত জুই দিলা আহিল সকলো মিঞা
দা-যাঠি হাতে হাতে লৈ আহাৰ এ।'

এই আক্ৰমণৰ খবৰ পোৱাৰ লগে লগে চৌদিশে এক

ছলছুলীয়া পৰিৱেশৰ সৃষ্টি হ'ল। মানুহৰ মাজত সংঘাত বৃদ্ধি পালে; আৰক্ষীয়ে আইন-শৃংখলা ৰক্ষাৰ বাবে কাৰ্ফিউ দিবলগা হ'ল। মহজিদ জ্বলি উঠিল; মুছলমান সম্প্ৰদায়ৰ লোকসকল দা-যাঠি হাতে হাতে লৈ ওলাই আহিল। ৬ অক্টোবৰত গুৱাহাটী চিকিৎসা মহাবিদ্যালয়ত মোজাম্মিলৰ মৃত্যু হ'ল। এই প্ৰসংগত গীতটোত এনেদৰে উল্লেখ আছে—
‘অক্টোবৰ বৃহস্পতি পাঁচ তাৰিখ ত্ৰয়োদশী

মোজাম্মিলৰ অমংগল মিলিলা।
হয় অক্টোবৰ শুক্ৰবাৰে গুৱাহাটী মেডিকেলত
মোজাম্মিলৰ প্ৰাণবায়ু গৈলা আৰ এ।।’

মোজাম্মিলৰ মৃত্যুৰ খবৰ পোৱাৰ লগে লগে অসমীয়াৰ গাত জুই জ্বলি উঠিল। হাজাৰ হাজাৰ মানুহে আন্দোলনৰ বাবে ৰাজপথলৈ ওলাই আহিল। আন্দোলনকাৰীসকলক আৰক্ষীয়ে খেদি পঠোৱা, আন্দোলনকাৰীসকলে সুবিচাৰ বিচাৰি কেনেদৰে আন্দোলন কৰিছিল তাৰ প্ৰতিচ্ছবি এই গীতটোত এনেদৰে চিত্ৰিত হৈছে—

‘অসমীয়া জাগি উঠিল ৰাইজৰ হাহাকাৰ লাগিল
দলে দলে সত্যাগ্ৰহী কৰে আন্দোলন আহাৰ এ।
বৰ বৰ চিপাহীয়ে সত্যাগ্ৰহীক খেদি দিয়ে
অলৰ-অচৰ সত্যাগ্ৰহী আগণন আৰ এ।।’

সেই সময়ত মঙলদৈৰ আৰক্ষী অধিপতি চিত্তৰঞ্জন সত্যাগ্ৰহীসকলক কৰা বৰ্ষৰ অত্যাচাৰ, সত্যাগ্ৰহীসকলক ছত্ৰভংগ দিয়াবলৈ কেনেদৰে কন্দুৱা গেছৰ প্ৰয়োগ কৰিছিল তাৰ বৰ্ণনা এনেদৰে পোৱা যায়—

‘মঙলদৈৰ অধিপতি চিত্তৰঞ্জন অত্যাচাৰী
তেওঁৰ নাই বিচাৰ বিধান।

বিশ অক্টোবৰ শুক্ৰবাৰে মঙলদৈত হাহাকাৰ
সত্যাগ্ৰহীক কন্দুৱা গেছ দিলা আহাৰ এ।।’

মোজাম্মিলৰ মৃত্যুৰ পাছত আন্দোলন তীব্ৰ হ'ল। বহু আন্দোলনকাৰীক আৰক্ষীয়ে আটক কৰিলে। কিন্তু আন্দোলনকাৰীসকল পিছুৱাই নাহিল। অসম চৰকাৰে আন্দোলনকাৰীসকলৰ দাবী মানি ল'লে আৰু সমগ্ৰ অসমত ভাষাৰ মাধ্যম ৰূপে অসমীয়া ভাষাই স্বীকৃতি লাভ কৰিলে।

এই গীতটোত মোজাম্মিল হকে অসমীয়া মাধ্যম প্ৰতিষ্ঠাৰ বাবে কেনেদৰে মৃত্যুক আকোঁৱালি ল'ব লগা হ'ল আৰু সমগ্ৰ অসমত অসমীয়া ভাষাই মাধ্যম হিচাপে স্বীকৃতি লাভ কৰিলে তাৰ বিস্তৃত বৰ্ণনা দাঙি ধৰিছে।

অসমৰ ছাত্ৰ আন্দোলনৰ লগত জড়িত অন্য এটা বুৰঞ্জীমূলক আখ্যান গীত হৈছে ‘অনিল বৰা’ৰ গীত। অনিল বৰাৰ জন্ম হৈছিল ১৯৫৯ চনৰ ২ অক্টোবৰ তাৰিখে। পিতৃৰ নাম চন্দ্ৰচৰণ বৰা আৰু মাতৃৰ নাম মাণিকী। ১৯৫৬ চনত অনিল বৰাই কৰৈয়নী প্ৰাথমিক বিদ্যালয়ত নামভৰ্তি কৰে। তাৰ পৰা বিজ্ঞান বিভাগত উচ্চতৰ মাধ্যমিক পৰীক্ষাত উত্তীৰ্ণ হৈ নগাঁও মহাবিদ্যালয়ত নামভৰ্তি কৰে আৰু সেই বৰ্ষতে নগাঁও মহাবিদ্যালয়ৰ ছাত্ৰ একতা সভাৰ সম্পাদক ৰূপে নিৰ্বাচিত হয়। শ্বহীদ মোজাম্মিল হকৰ প্ৰতি শ্ৰদ্ধা অৰ্পণ কৰাৰ উদ্দেশ্যে এটি মৌন সমদল উলিয়াই হোজাইলৈ যাওঁতে দুবৃত্তৰ হাতত শ্বহীদ হয়। মাধ্যম আন্দোলনত শ্বহীদ হোৱা অনিল বৰাৰ কথা গীতটোত এনেদৰে বৰ্ণিত হৈছে—
অ অনিল বৰা নগাঁও কলেজৰ ল'ৰা

কি জগৰ লগালি তই?

এথোজ দুখোজ কৰি খোজ লৈ যাওঁতে এ
অ' দেখা হ'ল বিদেশীৰ মাজে এ অনিল বৰা
কি জগৰ লগালি তই।’

অনিল বৰাক ছুৰিৰে চকু দুটা উলিয়াই পেটটো ফালি পেটৰ ভিতৰত শিলগুটি ভৰাই দিছিল। অতি নিৰ্মমভাৱে অনিল বৰাক হত্যা কৰা ছবি গীতটোত এনেদৰে বৰ্ণিত হৈছে—

‘ছুৰীৰে আগেৰে চকু দুটা কাঢ়ে এ
অ' অনিলে নেদেখা হ'লে এ অনিল বৰা
কি জগৰ লগালি তই।
পেটটো ফালিলৈ শিলগুটি ভৰাই এ
অ' অনিলক নিচিনা হ'লে অনিল বৰা
কি জগৰ লগালি তই।

দুষ্কৃতিকাৰীসকলে অনিল বৰাৰ পেট ফালি শিলগুটি ভৰাই অতি নৃশংতাৰে হত্যা কৰিছিল। অসমৰ ভাষা আন্দোলনত শ্বহীদ হোৱা অনিল বৰাক বিচাৰি মাক-দেউতাকে হিয়াধুনি কন্দাৰ দৃশ্য গীতটোত প্ৰতিফলিত হৈছে—

‘তোমাৰ আই-বোপাই কান্দে হিয়া ধুনি
তোমাক নেদেখাৰ পৰা হে।’

অনিল বৰাৰ হত্যাকাৰীসকল ইমান নিৰ্দয় আছিল যে চকু কাটি, পেট ফালিয়েই ক্ষান্ত হোৱা নাছিল। তেওঁলোকে অনিল বৰাৰ ডিঙি কাটি, পিঠি কাটি আনকি পেটৰ নাৰী পৰ্যন্ত কাটি পেলাইছিল—

‘কি অ’ ডিঙিও কাটিলা পিঠিও কাটিলা
কাটিলা পেটৰে নাৰী,
মৰিবৰ সময়ত কৈ যায় অনিলে
আই মোৰ প্ৰাণ যায় উৰি হে।’

নগাঁও মহাবিদ্যালয়ৰ এগৰাকী মেধাবী ছাত্ৰ, ছাত্ৰ
নেতাক ভাষা আন্দোলনৰ সময়ত কিমান নৃশংসতাৰে এদল
লোকে হত্যা কৰিছিল তাৰ চিত্ৰ এই গীতটোৰ জৰিয়তে
প্ৰতিফলিত হৈছে।

ভাষা আন্দোলনৰ পাছত অসমৰ ছাত্ৰ সমাজে বিদেশী
খেদিবৰ বাবে অসমত এক আন্দোলনৰ আৰম্ভ কৰিছিল।
‘বিদেশী খেদা আন্দোলনৰ গীত’ৰ জৰিয়তে ইয়াৰ বৰ্ণনা
পোৱা যায়। সেইসময়ত ভাৰতৰ প্ৰধানমন্ত্ৰী আছিল ইন্দিৰা
গান্ধী। অসমত ছাত্ৰসকলে বিদেশী খেদিবৰ বাবে আন্দোলন
কৰিছে। গীতটোত ছাত্ৰ আন্দোলনৰ আভাস দিয়াৰ পিছতে
ইন্দিৰা গান্ধীৰ পুত্ৰ সঞ্জয় গান্ধীৰ মৃত্যুৰ বতৰা এনেদৰে
চিত্ৰিত কৰিছে—

‘ইন্দিৰা গান্ধী প্ৰধানমন্ত্ৰী হ’ল ভাৰতত।
সঞ্জয় গান্ধী মাৰা গেল উৰাজাহাজত।।
সঞ্জয় গান্ধী মৰা দেখি ইন্দিৰাৰ শোক।
অসমত বহিস্কাৰ কৰে বিদেশী লোক।।’

অসমৰ ছাত্ৰ সমাজে বিদেশী বিতাড়নৰ বাবে
আন্দোলন আৰম্ভ কৰিলে। বিদেশী বহিস্কাৰ কৰিবৰ বাবে
সকলো ওলাই আহিল। সমগ্ৰ অসমৰ লগতে মংগলদৈতো
আন্দোলন চলিল। ইয়াৰ চিত্ৰ গীতটোত এনেদৰে প্ৰতিফলিত
হৈছে—

‘বিদেশী খেদো বুলি সত্ৰাই আন্দোলন কৰে।
ল’ৰা-ছোৱালী বুঢ়া-বুঢ়ী ক’তৰ মুখ ভৰে।।
ক’তই মাৰেই ঢোল তাল কতই মাৰেই খোল।
মঙলদৈ টাউন খান হ’ল গুপ্তগোল।।’

অসমৰ ছাত্ৰ আন্দোলন দমন কৰিবলৈ ৰাষ্ট্ৰপতি শাসন
জাৰি কৰিলে। ৰাষ্ট্ৰপতি শাসন আৰম্ভ হোৱাৰ লগে লগে
গাঁৱে-ভূঞা চি আৰ পি মিলিটেৰী ঘূৰিবলৈ আৰম্ভ কৰিলে।
চিৰ আৰ পিৰ অত্যাচাৰত বহু যুৱকৰ মৃত্যু হ’ল। তথাপিও
অসমত ৰাষ্ট্ৰপতি শাসন চলি থাকিল—

‘যেতিয়া ৰূপে ৰাষ্ট্ৰপতি আইন আহি পালো।
গাঁৱে ভূঞা চি আৰ পি ভৰ্তি কৰি দিলা।
চি আৰ পিৰ অত্যাচাৰত কত ল’ৰা মৰে।
তথাপিহে ইন্দিৰাই গেন্তাকে নকৰে।।’

পৰৱৰ্তী সময়ত ছাত্ৰ সত্ৰাৰ নেতৃত্বক আলোচনাৰ বাবে
দিল্লীলৈ মাতি পঠিওৱা হ’ল। বহু আলোচনা চলিল। কিন্তু
১৯৭১ চনটো বিদেশী খেদা বৰ্ষ হিচাপে ইন্দিৰা গান্ধীয়ে
মানি নলয়। পুনৰ অসম বন্ধ হ’ল। অসমত কাৰফিউ
চলিল—

‘একদিনা ছাত্ৰসত্ৰা দিল্লীক লেগি গেল।।
দিল্লী যাই ছাত্ৰসত্ৰাই বহুত মিটিং কৰে।
একসত্তৰ তাৰিখটো ইন্দিৰাই নেৰে।।
এক দিন দুই দিন কৰি অসম বন্ধ হ’ল।
তাৰ পিছত ছাত্ৰ সত্ৰাৰ কাৰফিউ আহি গ’ল।।

এই গীতটোত ছাত্ৰসত্ৰাই পৰৱৰ্তী সময়ত কেনেদৰে
আগবাঢ়িল বা ভাৰত চৰকাৰৰ লগত কেনেদৰে কি চুক্তি
কৰিলে সেই বিষয়ে জানিব পৰা নাযায়। গীতটোৰ বিষয়বস্তু
বিদেশী খেদিবৰ বাবে কৰা আন্দোলন আৰু দিল্লীত অনুষ্ঠিত
আলোচনাতে সমাপ্ত হৈছে।

অসমৰ ছাত্ৰ আন্দোলনৰ লগত জড়িত এটা গীত হৈছে
‘খৰ্গেশ্বৰ তালুকদাৰৰ গীত’। অসম আন্দোলনৰ প্ৰথম শ্বহীদ
খৰ্গেশ্বৰ তালুকদাৰ। অসমত বিদেশী বিতাড়নৰ বাবে ছাত্ৰ-
ছাত্ৰীসকলে পিকেটিং কৰা আৰম্ভ কৰিলে। পিকেটিং
কৰিলেও চৰকাৰে একো গুৰুত্ব দিয়া নাই। নিৰ্বাচনৰ বাবে
১৯৭৯ চনৰ ৯ ডিচেম্বৰ তাৰিখে ফকৰুদ্দিন আহমেদৰ
পৰিবাৰ আবেদা আহমেদে বৰপেটা সমষ্টিৰ বাবে মনোনয়ন
দিবলৈ আহিল। তেখেতক মনোনয়ন নিদিবলৈ ৰাইজে
অনুৰোধ জনালে—

‘ফকৰুদ্দিনৰ পত্নী আবেদা আহমেদ।
মনোনয়ন দিবলৈ পাতিলেক জেদ।।
বৰপেটা সমষ্টিত তেওঁ দিব মনোনয়ন।
৯ য় ডিচেম্বৰত কৰে যাত্ৰা আয়োজন।।
৯ য় ডিচেম্বৰৰ ৰাতি বৰপেটাত যায়।
চাৰিজন বিষয়া লগত ওলায়।।’

মনোনয়ন পত্ৰ দিবলৈ যাওঁতে ছাত্ৰনেতা খৰ্গেশ্বৰ
তালুকদাৰে ভেটা দিলে। চি আৰ পি বোৰে জোতাৰে
গচকি খৰ্গেশ্বৰৰ দাঁত ভাঙি দিলে। এই দৃশ্য দেখি সাধাৰণ
জনতা পলাই দিলে—

‘আগত ভেটা দি খৰ্গেশ্বৰে দিলা হাক।
জোতাৰে চি আৰ পি ভাঙি দিলে দাঁত।।
এইবুলি চি আৰ পি গজ্জিৰে লাগিলা।
কাণ্ড দেখি জনগণ পলাই সাৰিলা।।’

খৰ্গেশ্বৰ তালুকদাৰক চি আৰ পিয়ে জোতাৰে গচকি
গচকি আধা মৰা কৰি বগৰাই দিলে। গীতটোত উল্লেখ
থকা মতে খৰ্গেশ্বৰ তালুকদাৰক আধামৰা কৰি পানীত
পেলাই দিলে আৰু মেটেকা জাপি দিলে। খৰ্গেশ্বৰ
তালুকদাৰৰ সেই মুহূৰ্ততে মৃত্যু হ'ল—

‘জোতাৰে খচি খচি আধা মৰা কৰে।

দুইজন চি আৰ পিয়ে বগৰাই ধৰে।।

খৰ্গেশ্বৰক টানি নি পানীত পেলাই দিলা।

মেটেকা জাপি দি লুকাই ৰাখিলা।।

প্ৰাণবায়ু বাহিৰ হৈ পানীত পৰি ৰৈলা।।’

বিদেশী খেদা আন্দোলনত খৰ্গেশ্বৰ তালুকদাৰে চি
আৰ পিৰ অত্যাচাৰত কেনেদৰে প্ৰাণ আত্মত দিবলগা হৈছিল
তাৰ বৰ্ণনা পোৱা যায়।

অসমৰ ছাত্ৰ আন্দোলনৰ লগত জড়িত আনটো গীত
হ'ল ‘অসম আন্দোলন’ৰ গীত। এই গীতটোত ১৯৮০ চনৰ
৩ জানুৱাৰী আৰু ৬ জানুৱাৰীত নিৰ্বাচন অনুষ্ঠিত হোৱাৰ
কথা উল্লেখ আছে। সেই সময়ত ভাৰতৰ প্ৰধানমন্ত্ৰী আছিল
চৰণ সিং। অসমৰ ছাত্ৰসকলে বিদেশী বহিষ্কাৰৰ বাবে যি
দাবী জনাই আহিছিল সেইয়া ভাৰত চৰকাৰে মানি লোৱা
নাছিল। ১০ ডিচেম্বৰ মনোনয়ন পত্ৰ দাখিল কৰাৰ তাৰিখ
স্থিৰ কৰিছিল—

‘আশী চনৰ তিনি জানুৱাৰী দিনাখন

আৰু ছয় জানুৱাৰীত পাতে নিৰ্বাচন।।

ভাৰতৰ প্ৰধানমন্ত্ৰী চৰণ সিং আছিল।

অসমৰ এই দাবী মানি নলইলা।।

ডিচেম্বৰৰ দহ তাৰিখে দিব মনোনয়ন।

খং উঠি ছাত্ৰ-ছাত্ৰী কৰে আন্দোলন।।

মনোনয়নৰ তাৰিখ স্থিৰ কৰা খবৰ পাই সমগ্ৰ অসমতে
আন্দোলনে তীব্ৰ ৰূপ ধাৰণ কৰিলে। ছাত্ৰ-ছাত্ৰী, ৰাইজৰ
সমান্তৰালভাৱে বিদ্যালয়ৰ শিক্ষকসকল, মহাবিদ্যালয়ৰ
অধ্যক্ষ-অধ্যাপকসকল, উকিল সন্থা, বিভিন্ন উদ্যোগৰ
কৰ্মচাৰীসকলৰ লগতে অসম সাহিত্য সভায়ো এই
আন্দোলনৰ প্ৰতি পূৰ্ণ সঁহাৰি আগবঢ়াইছিল।

‘...

চৰকাৰী বেচৰকাৰী কত যে উদ্যোগ

উকীল সন্থা প্ৰাণ পণে কৰে সহযোগ।।

সমৰ্থন দিলা অসম সাহিত্য সভাই।

দাবী কৰে সভাপতি অতুল বৰাই।।’

এনেদৰেই এই মালিতাটোত ছাত্ৰ আন্দোলনৰ প্ৰতিচ্ছবি
প্ৰতিফলিত হৈছে।

০.৬ উপসংহাৰ :

অসমৰ ছাত্ৰ আন্দোলনৰ লগত জড়িত বুৰঞ্জীমূলক
আখ্যান গীতসমূহে নিৰ্দিষ্ট সময়ৰ ঘটনা প্ৰৱাহৰ সবিশেষ
নহ'লেও ঘটনাৰ আভাস দাঙি ধৰে। ভাষা আন্দোলনৰ বাবে
শ্বহীদ হোৱা মোজাম্মিল হকৰ গীত, অনিল বৰাৰ গীতৰ
জৰিয়তে অসমীয়া ভাষা প্ৰতিষ্ঠাৰ বাবে কেনেদৰে এচামে
চৰম ত্যাগ কৰিবলগা হৈছিল তাৰ আভাস এই গীতকেইটিৰ
জৰিয়তে পোহৰলৈ আহে। বিদেশী খেদা আন্দোলনৰ গীত,
অসম আন্দোলনৰ গীত আৰু খৰ্গেশ্বৰ তালুকদাৰৰ গীতৰ
জৰিয়তে বিদেশী খেদা আন্দোলনত অসমত হোৱা ৰাষ্ট্ৰপতি
শাসন, কাৰফিউৰ মাজতে আন্দোলন কেনেদৰে
আগবাঢ়িছিল, খৰ্গেশ্বৰ তালুকদাৰ কেনেদৰে শ্বহীদ হৈছিল
তাৰ বৰ্ণনা এই বুৰঞ্জীমূলক মালিতা তিনিটাৰ পৰা জানিব
পাৰি। □

ক) প্ৰসংগ গ্ৰন্থ :

- ১। গগৈ, লীলা : অসমীয়া লোক-সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা, বনলতা সংস্কৰণ, পুনৰ মুদ্ৰণ, ২০২১
- ২। গোস্বামী, প্ৰফুল্ল দত্ত : বাৰমাহৰ তেৰ গীত, সাহিত্য অকাদেমি, চতুৰ্থ মুদ্ৰণ, ২০১৭
- ৩। চলিহা ভৱপ্ৰসাদ : অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, দ্বিতীয় প্ৰকাশ, জুন, ২০১২
- ৪। বৰ্মন, শিৱনাথ : অসমীয়া জীৱনী অভিধান, বনলতা, দ্বিতীয় সংশোধিত সংস্কৰণ, ২০০৬-২০০৮
- ৫। নেওগ, মহেশ্বৰ : অসমীয়া সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা, চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, ১৯৮৬
- ৬। শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ : অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত, সৌমাৰ প্ৰকাশ, ২০০৬

খ) ইণ্টাৰনেট :

- ১। উচ্চ শিক্ষাৰ মাধ্যম আন্দোলনৰ সেই দিনবোৰ—অসমীয়া জাতীয়তাবাদৰ উকমুকনি : কৃষ্ণগোপাল ভট্টাচাৰ্য, ১৫ আগষ্ট, ২০২১
pratyahban.in. Archived from the original on 5 November 2021. <https://web.archive.org/web/20211105161749https://pratyahban.in/higher-education>
- ২। <https://www.youtube.com/channel/UC4rAqR4nmbv1bZjWo7w7AwA>

কবিতাৰ সমাজতত্ত্ব আৰু হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতা



শচীন শৰ্মা

সাৰাংশ :

সাহিত্যৰ সমাজতত্ত্বৰ অধ্যয়নত তুলনামূলকভাবে কবিতাৰ সমাজতত্ত্বৰ বিশেষ বিকাশ দেখা নাযায়। তাত্ত্বিক আৰু প্ৰায়োগিক দুয়োটা দিশতে কবিতাৰ সমাজতত্ত্ব কম জনপ্ৰিয়। কবিতাৰ সমাজতত্ত্বৰ তাত্ত্বিক আৰু প্ৰায়োগিক দিশৰ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্যে এই কাকতখন প্ৰস্তুত কৰা হৈছে। এই গৱেষণা পত্ৰত কবিতাৰ সমাজতত্ত্ব, হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতা, তেখেতৰ কবিতা সম্পৰ্কীয় লিখিত তথ্য বিশ্লেষণৰ বাবে ‘বিষয়-বিশ্লেষণ পদ্ধতি’; কবিতাৰ সমাজতত্ত্ব আৰু হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতা অধ্যায় দুটাত ‘পৰিচয়মূলক গৱেষণাৰ পদ্ধতি’ক অধ্যয়নৰ পদ্ধতি হিচাপে গ্ৰহণ কৰা হৈছে। অধ্যয়নৰ অন্তত - কবিতাৰ সামাজিক প্ৰসংগবোৰত কবিৰ আত্মজৈৱনিক চেতনাৰ প্ৰচুৰ প্ৰয়োগ; অসমীয়া গ্ৰাম্য সমাজৰ সামাজিক-সাংস্কৃতিক-অৰ্থনৈতিক এই দিশবোৰৰ আলোচনাত প্ৰধানকৈ মধ্যবিত্ত আৰু নিম্নবিত্ত সমাজৰ জীৱনৰ সৈতে জড়িত প্ৰসংগবোৰত গুৰুত্ব আৰোপ; অসমৰ সমাজ জীৱনৰ এটি বক্তান্ত সময়ৰ প্ৰসংগত পৈশাচিক তৃপ্তিৰে শক্তি প্ৰদৰ্শনত কৃতকাৰ্য হোৱা এক শ্ৰেণী, সেই শক্তিক ঢাল হিচাপে লৈ আত্মমগন এক শ্ৰেণী আৰু সকলো হেৰুৱাবলৈ সন্তপ্ত হৈ থকা এক শ্ৰেণীৰ কথা প্ৰকাশ কৰি তৃতীয়টো শ্ৰেণীৰ সামাজিক-মানসিক যন্ত্ৰণা প্ৰকাশ; সাম্যবাদী দৰ্শন প্ৰকাশৰ পোষকতা কৰিও কবিৰ ভাৰতীয় দৰ্শনৰ প্ৰভাৱত কিছু বিচ্যুতি ঘটা বুলি সিদ্ধান্তলৈ আহিব পৰা গৈছে।

বীজ শব্দ :

কবিতা, সমাজতত্ত্ব, সাহিত্য, অনুশীলন, সংহতি, সমাজ।

১.০ অৱতৰণিকা :

১.১ বিষয়ৰ পৰিচয় :

সাহিত্যই প্ৰচলিত, প্ৰৱৰ্তিত আৰু পৰিৱৰ্তনশীল সমাজখনক নিজৰ মাজত ধৰি ৰাখে। সাহিত্যত বৰ্ণিত তেনে সামাজিক অৱস্থা আকৌ ‘সাহিত্যৰ সমাজতত্ত্ব’ নামৰ সাহিত্য বিচাৰৰ দৃষ্টিকোণটোৱে অধ্যয়ন কৰে। উনবিংশ শতিকাত সাহিত্যৰ সমাজতত্ত্ব অধ্যয়নৰ আধাৰ নিৰ্মাণ হৈছিল। প্ৰকাৰান্তৰে সাহিত্যৰ সৈতে সামাজিক পৰিসংগৰ সংগতি স্থাপন বা সাহিত্যত সামাজিক অস্তিত্বৰ চিন্তা-চৰ্চাৰ পৰম্পৰা প্ৰাচীনেই বুলিব পাৰি। প্ৰাচীন গ্ৰীক চিন্তাবিদসকলে সঘনে সাহিত্য আৰু সমাজৰ সম্পৰ্কৰ কথা দোহাৰিছিল। ইয়াৰোপৰি ভাৰততো ধনঞ্জয়ে ‘অৱস্থাৰ অনুকৰণেই নাটক’ বুলি সাহিত্য-সমাজৰ সম্পৰ্কৰ বা সাহিত্যত সামাজিক অৱস্থাৰ চিত্ৰণৰ কথাকে নিৰ্দেশ কৰিব খোজিছিল। সেই সামাজিক প্ৰসংগৰ পৰিসৰ ‘সাহিত্যৰ সমাজতত্ত্ব’ই অধ্যয়ন কৰিবলৈ লোৱা পৰিসৰতকৈ কিছু পৰিমাণে ক্ষুদ্ৰ আছিল। সাহিত্যৰ সমাজতত্ত্ব অধ্যয়নৰ একমাত্ৰ

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়
৯৬৭৮৮৭৬৬৩২
sachinsharma80499@gmail.com

লক্ষ্য কেৱল সাহিত্যত সামাজিক পৃষ্ঠভূমি অধ্যয়নেই নহয়। মানৱীয় অস্তিত্ব, সেই অস্তিত্বৰ কাৰ্য্য-কলাপ, সেই কাৰ্য্য-কলাপৰ সামাজিক প্ৰভাৱ, সেই প্ৰভাৱৰ আধাৰত গঢ় লোৱা সৰ্বাত্মক সামাজিক চৰিত্ৰৰেহে সাহিত্যৰ সমাজতত্ত্বই অধ্যয়ন কৰে। সেই চৰিত্ৰ সাহিত্যত চিত্ৰিত হয়। সাহিত্যৰ সমাজতত্ত্ব প্ৰধানকৈ দুটা বিষয়ৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতৰ পৰা অধ্যয়ন কৰা হয়। সেয়া হৈছে সামাজিক অৱস্থা অধ্যয়নৰ সূচনতাৰ বাবে সমাজতত্ত্বৰ দিশৰ পৰা অধ্যয়ন কৰা আৰু অন্যটো হৈছে সাহিত্যৰ দিশৰ পৰা সাহিত্য অধ্যয়নক বাস্তৱমুখী কৰি তুলিবৰ বাবে চিন্তা-চৰ্চা কৰা। সাহিত্যৰ সৈতে থকা সামাজিক ইতিহাসৰ গভীৰ সম্পৰ্কক অধ্যয়ন কৰাই সাহিত্যৰ সমাজতত্ত্বৰ প্ৰধান কাম। সামাজিক ইতিহাসৰ সৈতে লেখকৰ সম্পৰ্কৰ কথা ক'বলৈ গৈ হিন্দী কবি শাৰদ কোকাস নামৰ কবিয়ে তেখেতৰ 'পুৰাতত্ত্ববেত্তা' কবিতাটোৰ যোগেদি কোৱা কথাখিনি ভাবানুবাদ কৰিলে এনেধৰণৰ হয় — “ ইতিহাস আচলতে মাতৃৰ প্ৰথম গাখীৰৰ দৰে। যিয়ে উচিত খোৰাক যোগোৱাৰ লগতে সমস্যাৰ সৈতে যুঁজিবলৈ শক্তি প্ৰদান কৰে। ”^২ সাহিত্যৰ সমাজতত্ত্ব অধ্যয়নৰ দৃষ্টিকোণ ইয়াৰ প্ৰকৃতি অনুসৰি কেইবাটাও। ইয়াৰে প্ৰথমটো হৈছে আলোচনাত্মক আৰু অনুভৱবাদী। আলোচনাত্মক ধাৰাৰ যোগেদি সাহিত্যৰ সামাজিক মহত্ব আৰু অৰ্থৰ বিশ্লেষণ কৰা হয়। ইয়াৰ লগতে অনুভৱবাদী ধাৰাৰ যোগেদি সাহিত্যৰ সামাজিক অস্তিত্ব বিচাৰ কৰা হয়। দ্বিতীয়তে সাহিত্যৰ সৈতে জড়িত সাধনসমূহকেন্দ্ৰিক। সেয়া হৈছে লেখক, পাঠ আৰু পাঠক। এই তিনিওটা দৃষ্টিকোণৰ পৰা সাহিত্যক অধ্যয়ন কৰা হয়। তৃতীয়টো হৈছে সাহিত্যৰ বিধাকেন্দ্ৰিক। বিধাকেন্দ্ৰিক দিশসমূহ হৈছে উপন্যাস, নাটক, কবিতা ইত্যাদিৰ অধ্যয়ন। জনপ্ৰিয় সাহিত্যৰ সমাজতাত্ত্বিক অধ্যয়ন কৰাও দেখা যায়। পিছে বহু পৰিমাণে এই দিশটো পাঠককেন্দ্ৰিক অধ্যয়নৰ ওচৰ চপা। সাহিত্যৰ সমাজতত্ত্ব বিষয় বা দৃষ্টিকোণটো এতিয়াও বিকাশশীল। বিধাভিত্তিক দিশৰ ক্ষেত্ৰত আকৌ কবিতাৰ সমাজতত্ত্ব বিষয়টোৰ বিশেষ ব্যাপ্তি দেখা নাযায়। সেই অনুসৰি এই কাকতত কবিতাৰ সমাজতত্ত্বৰ এটি স্বৰূপ স্পষ্ট কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে। প্ৰস্তুত কাকতত প্ৰায়োগিক দিশত হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতাক আধাৰ হিচাপে লৈ কবিতাৰ সমাজতত্ত্ব অধ্যয়ন কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

১.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য আৰু গুৰুত্ব :

সাহিত্যৰ সমাজতত্ত্ব অধ্যয়নৰ ভিতৰুৱাকৈ কবিতাৰ সমাজতাত্ত্বিক অধ্যয়নৰ আলোচনা-গৱেষণাৰ বিশেষ শক্তিশালী আৰু সমৃদ্ধ পৃষ্ঠভূমি পোৱা নাযায়। ইয়াৰ লগতে সাধাৰণভাবেও কবিতাৰ ক্ষেত্ৰত সামাজিক প্ৰেক্ষাপট বিচাৰ কৰা বৰকৈ চকুত নপৰে। অসমীয়া সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰত বিশেষ মহত্বপূৰ্ণ কবি হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতাত সামাজিক প্ৰেক্ষাপট বিচাৰ কৰাৰ প্ৰধান উদ্দেশ্য আগত ৰাখি এই কাকতখন প্ৰস্তুত কৰা হৈছে। প্ৰস্তুত অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্যসমূহ হৈছে -

- কবিতাৰ সমাজতত্ত্বৰ স্বৰূপ স্পষ্ট কৰা।
- হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতাৰ স্বৰূপ স্পষ্ট কৰা।
- কবিতাৰ সমাজতত্ত্বৰ আধাৰত হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতা বিচাৰ কৰা।

সাহিত্যৰ সমাজতত্ত্বৰ অধ্যয়নৰ দিশৰ পৰা কবিতাৰ সমাজতাত্ত্বিক অধ্যয়নৰ স্বৰূপ স্পষ্ট কৰাৰ যোগেদি বিষয়টোৰ ব্যাপ্তিত সহায় কৰা, হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতাক বিশেষ আধাৰ হিচাপে গ্ৰহণ কৰি অধ্যয়ন কৰাৰ পোষকতাই এই কাকতখন প্ৰস্তুতৰ গুৰুত্ব বহন কৰিছে।

১.৩ প্ৰস্তুত অধ্যয়নৰ কাৰ্য্যপদ্ধতি :

‘কবিতাৰ সমাজতত্ত্ব আৰু হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতা’ শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰিবৰ বাবে প্ৰধানকৈ দুটা পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে। কবিতাৰ সমাজতত্ত্ব, হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতা আৰু তেখেতৰ কবিতা সম্পৰ্কীয় লিখিত তথ্য বিশ্লেষণৰ বাবে ‘বিষয়-বিশ্লেষণ পদ্ধতি’ প্ৰয়োগ কৰা হৈছে। কবিতাৰ সমাজতত্ত্ব আৰু হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতা অধ্যয় দুটা অধ্যয়ন কৰোঁতে ‘পৰিচয়মূলক গৱেষণাৰ পদ্ধতি’ও গ্ৰহণ কৰা হৈছে।

১.৪ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ আৰু সামগ্ৰী :

সাহিত্যৰ সমাজতত্ত্বৰ দৰে বহুমুখী দৃষ্টিকোণ এটাৰ নিজৰ মাজতে কেইবাখনো অধ্যয়নক্ষেত্ৰ থকাৰ পাছতো এই কাকতত কেৱল কবিতাৰ সমাজতত্ত্বৰেহে অধ্যয়ন কৰিব খোজা হৈছে। ইয়াৰ লগতে হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰো কবিতাৰ অন্যবোৰ দিশ পৰিহাৰ কৰি সামাজিক দিশবোৰহে অধ্যয়নৰ মাজলৈ অনা হৈছে। এই অধ্যয়নৰ প্ৰধান সামগ্ৰী হৈছে প্ৰকাশিত গ্ৰন্থ। ইয়াৰ লগতে অপ্ৰকাশিত গৱেষণা গ্ৰন্থ, ইণ্টাৰনেটত উপলব্ধ বিভিন্ন সামগ্ৰী অধ্যয়নৰ বাবে গ্ৰহণ কৰা হৈছে।

২.০ কবিতাৰ সমাজতত্ত্ব :

সাহিত্যৰ বিধাসমূহৰ ভিতৰত কবিতাৰ প্ৰাচীনত্ব আটাইতকৈ বেছি বুলি কোৱা হয়। সাহিত্যই সমাজ বা সামাজিক অৱস্থা, সেই অৱস্থালৈ অহা পৰিৱৰ্তন, সম্ভাৱ্য পৰিৱৰ্তনৰ কাৰণ, পৰিৱৰ্তনৰ আৱশ্যকতা, সামাজিক ইতিহাস, সেই ইতিহাসৰ সম্ভাৱ্য ভৱিষ্যৎ ইত্যাদি প্ৰসংগবোৰ পৰ্যবেক্ষণ কৰি লিখিত বা মৌখিক ৰূপত ধৰি ৰখাৰ প্ৰয়াস কৰে। সাহিত্যৰ এই গুণ বা সম্ভাৱনাক বিভিন্ন দৃষ্টিকোণৰ পৰা অধ্যয়ন বা পৰ্যবেক্ষণ কৰিব পাৰি। ঊনবিংশ শতিকাৰ পৰা আজিও বিকাশ হৈ থকা 'সাহিত্যৰ সমাজতত্ত্ব' — এই দৃষ্টিকোণটোৱে সাহিত্য আৰু সমাজৰ সুদৃঢ় সম্পৰ্কক বিভিন্ন দিশৰ পৰা অধ্যয়ন কৰি আহিছে। সাহিত্যৰ সমাজতত্ত্বৰ বিধাগত অধ্যয়নৰ দিশৰ পৰা কিছু পৰিমাণে কম চৰ্চিত এখন ক্ষেত্ৰ হৈছে কবিতাৰ সমাজতাত্ত্বিক অধ্যয়ন। কবিতাৰ বক্তব্যৰ অন্তৰ্ভুক্তি চৰিত্ৰৰ বাবেই কবিতাৰ সমাজতত্ত্বৰ চৰ্চা তুলনামূলকভাবে কম হোৱা দেখা যায়। অন্যান্য সাহিত্যত বক্তব্যৰ স্পষ্টতা আৰু বৰ্ণনাধৰ্মীতাৰ বাবে কিছু পৰিমাণে কম জটিল আৰু কবিতাৰ সামাজিক অৱস্থিতি বা বিস্তাৰৰ অন্তৰ্ভুক্তিৰ হেতু ইয়াৰ অধ্যয়ন কিছু পৰিমাণে জটিল বুলিব পাৰি। কবিতাতো কবি বা সৃষ্টাৰ সৃষ্টিৰ আধাৰক্ষেত্ৰ সমাজখনেই। সমাজক আধাৰ কৰিয়েই কবি কল্পনা ব্যাপ্ত হয়। কিন্তু ভাষাৰ এখন আৱৰণক আধাৰ কৰিহে সেই সমাজ, সামাজিক অৱস্থা, ইয়াৰ পৰিৱৰ্তন ইত্যাদি চিত্ৰিত হয়। 'সাহিত্যৰ সমাজতত্ত্বৰ অন্যান্য দিশবোৰৰ তুলনাত কবিতাৰ সমাজতত্ত্বৰ বিকাশৰ ধাৰা একেবাৰে মছৰ। এই দিশটোৱে সাহিত্যৰ সমাজতত্ত্বৰ যে সম্পূৰ্ণ বিকাশ হোৱা নাই তাৰ প্ৰমাণ দিয়ে।' — বুলি মৈনেজৰ পাণ্ডেই মত প্ৰকাশ কৰিছে।^১ কবিতাৰ সাধাৰণ অধ্যয়নৰ প্ৰধান দৃষ্টি সৌন্দৰ্য্যতাত্ত্বিক দিশৰ সৈতে সমাজতাত্ত্বিক দিশক একেবাৰে বেলেগে বেলেগে অধ্যয়ন কৰিলে কবিতাৰ সমাজতত্ত্বৰ সঠিক আলোচনা নহ'ব। আনহাতে আকৌ কবিতা আৰু ইয়াৰ সমধৰ্মী সাহিত্য গীতৰ সমাজতাত্ত্বিক অধ্যয়নৰ প্ৰক্ৰিয়া বা ধৰণ-কৰণ একে নহয়। ঠিক একেদৰে সাহিত্যৰ সমাজতত্ত্বৰ অন্যান্য বিধাগত অধ্যয়ন উপন্যাস, নাটকৰ দৰে কবিতাৰ অধ্যয়ন কৰিলে ইয়াৰ সঠিক মূল্যায়ন নহ'ব। সাহিত্যৰ বিধাগত বিৱৰ্তনৰ দিশৰ পৰা চালেও দেখা যায় যে কবিতাৰ প্ৰাচীনত্বই ইয়াৰ বিশেষ বৈবিধ্য প্ৰতিপাদিত কৰে। সাহিত্যৰ যোগেদি ইতিহাসলৈ পশ্চাদগমন কৰিব

বিচাৰিলে বহুকাল বিস্তাৰিত হৈ থকা সাহিত্যিক বিধা হৈছে কবিতা। সেইদিশৰ পৰা কবিতাই ধৰি ৰাখিব পৰা সামাজিক ইতিহাসৰ প্ৰসংগ আমাৰ সহজেই অনুমেয়। কবিতাৰ সমাজতত্ত্ব অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব বিচাৰৰ ই এটা প্ৰধান দিশ।

কবিতাৰ সমাজতত্ত্ব সম্পৰ্কে দুই-এক আলোচকৰ দুই-এটি পৰিচয়জ্ঞাপক টোকাৰ বাহিৰে ইয়াৰ স্বৰূপ বা অধ্যয়ন বিধিৰ বিষয়ে বিশেষ চৰ্চা দেখা পোৱা নাযায়। কবিতাৰ সমাজতত্ত্বৰ অধ্যয়নৰ বাবে আগবাঢ়োতে মনকৰিবলগীয়া প্ৰধান দিশটো হৈছে কবিতাৰ সামাজিক প্ৰসংগ অন্তৰ্ভুক্তি। অন্য সাহিত্য বিধা যেনে উপন্যাস; উপন্যাসত সামাজিক অৱস্থা বা সমাজখন বহু পৰিমাণে স্পষ্ট বা বহু পৰিমাণে পোনপটীয়াকৈ প্ৰতিফলিত হয়। নাটকৰ লগতে অন্যান্য বৰ্ণনাধৰ্মী সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰতো এই একেটা কথাৰে খাটে। কবিতাৰ এই অন্তৰ্ভুক্তি বৈশিষ্ট্যৰ বাবে ইয়াৰ সমাজতত্ত্ব অধ্যয়ন কিছু পৰিমাণে জটিল। কবিতাত বৰ্ণিত সামাজিক চিত্ৰ অধ্যয়নৰ বাবে প্ৰধান আলোচনাযোগ্য দিশটো হৈছে কবিতাৰ ভাষা বা কবিতাত প্ৰয়োগ হোৱা শব্দ বা ভাষিক উপাদানসমূহ। ভাষিক সৃজনীশীলতা কবিতাৰ অন্যতম এটা প্ৰধান বৈশিষ্ট্য। শিল্পীৰ ৰং-তুলিকা প্ৰধান আহিলা হোৱাৰ দৰে বহু কবিৰো প্ৰধান আহিলা ভাষিক ইন্দ্ৰজান নিৰ্মাণ। ভাষিক প্ৰসংগৰ কথা আহোঁতেই কবিতাৰ ক্ষেত্ৰত গঠনবাদৰ প্ৰসংগ আনিব পাৰি। অন্য সাহিত্যৰ তুলনাত কবিতাৰ ভাষিক শক্তিত সামাজিক প্ৰসংগ অধিক শক্তিশালী। পূৰ্বতে উল্লেখ কৰাৰ দৰে কবিতাৰ সৌন্দৰ্য্যতাত্ত্বিক বিচাৰৰ ক্ষেত্ৰত প্ৰয়োগ হোৱা চিত্ৰকল্প, প্ৰতীক, ৰূপক, ছন্দ, লয় ইত্যাদিৰ দিশৰ পৰাও কবিতাৰ সামাজিক প্ৰেক্ষাপট বিচাৰ কৰিব পাৰি। কবিতাৰ সৈতে সমাজৰ সম্পৰ্কটোৰ কেন্দ্ৰত থকা শক্তিটো হৈছে মানৱীয় সম্পৰ্ক। কবিতাত সামাজিক অনুভৱ ব্যক্তি (কবি)ৰ অনুভৱৰ আঁত ধৰিয়েই প্ৰতিফলিত হয়। কবিতাত ব্যক্তিগত অনুভৱ মানৱীয় অৰ্থাৎ সাৰ্বজনীন সত্যৰ ৰূপত প্ৰতিফলিত হয়। এইকেইটা দিশৰ লগতে কবিতাত কেতিয়াবা পোনে পোনে প্ৰকাশ কৰা সামাজিক অৱস্থা-ব্যৱস্থাক সাহিত্যৰ সমাজতত্ত্ব দিশেৰে বিচাৰ কৰাৰ প্ৰসংগ থাকেই। এইবোৰ দিশৰ পৰা অধ্যয়নৰ সম্ভাৱনাই কবিতাৰ সমাজতাত্ত্বিক অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব বহন কৰে।

৩.০ হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতা :

আধুনিক অসমীয়া কবিতাৰ ৰূপ, বিষয় আৰু ভাৱগত বৈবিধ্যৰ দিনত কবি হিচাপে আত্মপ্ৰকাশ কৰা এজন কবি হৈছে হীৰেন ভট্টাচাৰ্য (১৯৩২-২০১২)। ভট্টাচাৰ্য কবি হিচাপে আত্মপ্ৰকাশ কৰাৰ দিনত অসমীয়া কেৱল কবিতাই নহয় সমস্ত সাহিত্যৰ দিশতে কেইবাখনো আলোচনীয়ে সমৃদ্ধিশালী সাহিত্যিক ভেটি নিৰ্মাণ কৰিছিল। প্ৰধানকৈ অসমীয়া দ্ৰুত গতিত পৰিৱৰ্তনশীল সমাজখনৰ চিত্ৰ কবিতাৰ যোগেদি প্ৰকাশ কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা কবি ভট্টাচাৰ্যৰ কাব্য সংকলনৰ সংখ্যা নিৰ্বাচিত কবিতাৰ সংকলনকেইখন ধৰি ১৪ খন। সেইসমূহ হৈছে — ‘ৰৌদ্ৰ কামনা’ (১৯৬৮), ‘মোৰ দেশ : মোৰ প্ৰেমৰ কবিতা’ (১৯৭২), ‘বিভিন্ন দিনৰ কবিতা’ (১৯৭৪), ‘কবিতাৰ ৰ’দ’ (১৯৭৭), ‘সুগন্ধি পখিলা’ (১৯৮১), ‘জোনাকী মন : অনুৰাগ’ (১৯৮৫), ‘শইচৰ পথাৰ মানুহ’ (১৯৯১), ‘ভালপোৱাৰ বোকা-মাটি’ (১৯৯৩), ‘মোৰ প্ৰিয় বৰ্ণমালা’ (১৯৯৫), ‘ভালপোৱাৰ দিকটো বনত’ (২০০০), ‘হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ নিৰ্বাচিত কবিতা’ (২০০৩), ‘সুগন্ধি শিপা’ (২০০৫), ‘কবিতাৰ ডালপাত’ (২০০৮), ‘হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতা’ (২০১৮)। ইয়াৰ লগতে শিশু কবিতাৰ পুথিকেইখন হৈছে — ‘ল’ৰা ধেমালি’ (১৯৯২), ‘আকৌ ধেমালি’ (১৯৯২) আৰু ‘ৰৈ ৰৈ ধেমালি’ (২০০৮)। হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতাৰ গুৰুত্ব বিচাৰ কৰিলে দেখা যায় যে সাধাৰণতে সমসাময়িক বা বৰ্তমানো প্ৰচলিত কবিতাৰ এক বিশেষ সমস্যা দুৰ্বোধ্য উপস্থাপনৰ সমস্যাৰ পৰা এওঁৰ কবিতা মুক্ত। উপস্থাপনৰ ক্ষেত্ৰত সৰল কিন্তু ৰসঘন আৰু গভীৰ অৰ্থৰহ কাব্য বিন্যাস কবি ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতাৰ প্ৰধান বৈশিষ্ট্য। খৰ গতিত হোৱা সমাজ পৰিৱৰ্তন কবি হিচাপে ভট্টাচাৰ্যৰ এটি প্ৰধান উৎকণ্ঠা। বিৱৰ্তনত কবিৰ আক্ষেপ নাই; পিছে পৰিৱৰ্তনৰ ঠাইত হোৱা কৃষ্টি-সংস্কৃতি, মূল্যবোধ সৰ্বোপৰি সামাজিক চেতনাৰ পৰিৱৰ্তনক লৈ কবি উদ্ভিগ্ন। কবিৰ মানসিক বিচাৰৰ অন্যতম এখন ক্ষেত্ৰ হৈছে অসমৰ প্ৰাকৃতিক নৈসৰ্গিক অৱস্থা। ইয়াৰ প্ৰধান উপাদান হৈছে নামহীন অৰণ্য আৰু কেইখনমান প্ৰধান নদী। নদীসমূহৰ ঋতুকালীন চৰিত্ৰ, জীৱনৰ সৈতে সম্পৰ্ক, মানসিক অৱস্থাৰ সৈতে নদীক একাত্মকৰণৰ প্ৰয়াস আৰু অৰণ্যৰ প্ৰধানকৈ নিৰ্জনতাৰ প্ৰতীক, সম্ভাৱনা আৰু প্ৰাচুৰ্য প্ৰকাশৰ আহিলা হিচাপে কবিতাত ব্যৱহাৰ কৰা দেখা পোৱা যায়। কোনো কোনো কবিতাত কবিৰ বৈপ্লৱীক চেতনাৰো

উদ্ৰেগ ঘটা দেখা পোৱা যায়। সচৰাচৰ দেখা পোৱা সমাজ পৰিৱৰ্তনৰ জোৰদাৰ কামনাতকৈ হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ বৈপ্লৱীক চেতনা ভিন্ন। ব্যৱহাৰিক আৰু অৰ্থনৈতিক স্বাৱলম্বনৰ কামনা এই বিপ্লৱী চিন্তাৰ মূল বিন্দু। কবিজনৰ প্ৰায়বোৰ কবিতাৰ বৰ্ণনা চিত্ৰধৰ্মী। ইয়াৰ লগতে শব্দৰ প্ৰয়োগৰ দক্ষতা আৰু শব্দৰ জৰিয়তে অসমীয়া ভাষাৰ যোগেদি সৃষ্টি কৰিব পৰা সামাজিক পৰিৱেশ এটাৰ ইংগিত কবিৰ প্ৰায়বোৰ কবিতাৰে এটা প্ৰধান গুৰুত্বপূৰ্ণ দিশ। শব্দ বা ভাষাৰ ক্ষেত্ৰত মিতব্যয়ী প্ৰয়োগো কবি ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতাৰ এটা গুৰুত্বপূৰ্ণ প্ৰসংগ। মানৱীয় সহজাত প্ৰবৃত্তি কিছুমানৰ ক্ষেত্ৰতো কবিয়ে বিশেষ নতুন পৰিভাষাৰে উপলব্ধি কৰাৰ পোষকতা কৰা দেখা যায়। যৌৱনসুলভ অভিজ্ঞতা অভিব্যক্তনাৰ ক্ষেত্ৰত গভীৰ নহ’লেও কিছু চমৎকাৰ প্ৰয়োগ কবিতাবোৰত দেখা যায়। অসমীয়া গ্ৰামীণ কৃষিজীৱী সমাজখন পৰিৱৰ্তনৰ যোগেদি হোৱা সামাজিক-সাংস্কৃতিক নতুনত্বৰ যোগেদি কবিৰ মনত সৃষ্টি হোৱা কিছু নৈৰাশ্যৰ চিত্ৰণো প্ৰায়বোৰ কবিতাতে পোৱা যায়। কবি ভট্টাচাৰ্যৰ চেতনা ৰোমাণ্টিক যদিও কবিতাক ই ক্ষতিগ্ৰস্ত কৰিব পৰা নাই। কবিজনৰ কবিতাৰ আয়তনৰ ক্ষেত্ৰত বৰ আড়ম্বৰ নাই। কবিতাবোৰৰ আয়তনৰ অন্য কবিৰ দৰে ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতাত কোনো নিৰ্দিষ্ট গাঁথনিক বিন্যাস দেখা নাযায়। কবিতাৰ উপস্থাপন শৈলী পোনপটীয়া আৰু বহু পৰিমাণে গীতিধৰ্মী। কবিতাসমূহৰ দুই - এঠাইত অসমৰ সমস্যাৰ্জৰতা প্ৰধানকৈ সম্ভাৱবাদৰ প্ৰসংগ দেখা যায়। ব্যক্তিগত দৰ্শন (ৰাজনৈতিক)ৰ প্ৰভাৱো দুই - এঠাইত পৰিলক্ষিত হয়। সেয়া হৈছে সাম্যবাদী চিন্তাধাৰাৰ ৰেঙনি।

৪.০ হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতাৰ সমাজতাত্ত্বিক বিচাৰ :

হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতাত সামাজিক প্ৰসংগ বিচাৰ কৰাৰ উদ্দেশ্যে এই কাকতখন প্ৰস্তুত কৰা হৈছে। কবিতাৰ সমাজতত্ত্ব অধ্যয়নৰ দিশটো কেইবাজনো সাহিত্যৰ সমাজতত্ত্ব সম্পৰ্কে চিন্তা-চৰ্চা কৰা ব্যক্তিয়ে সৌন্দৰ্য্যতাত্ত্বিক দিশৰ পৰা অধ্যয়ন কৰাৰ কথা প্ৰকাশ কৰিছিল। সেই অনুসৰি হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতা অধ্যয়নৰ বাবেও কেইটামান দিশ বিচাৰ কৰি উলিওৱা হৈছে। সেয়া হৈছে — সামাজিক প্ৰসংগৰ প্ৰতীকাত্মক প্ৰয়োগ, সামাজিক প্ৰসংগৰ চিত্ৰকল্প, অন্যান্য সামাজিক প্ৰসংগ। তলত এইসমূহৰ বিষয়ে অধ্যয়ন আগবঢ়োৱা হৈছে।

৪.১ সামাজিক প্ৰসংগৰ প্ৰতীকাত্মক প্ৰয়োগ :

কবিতাৰ সৌন্দৰ্যতাত্ত্বিক অধ্যয়নৰ এটি দিশ প্ৰতীকাত্মক প্ৰসংগৰ উপস্থাপন অধ্যয়ন দৃষ্টিভংগীৰ যোগেদি সামাজিক চেতনা বিচাৰ কৰিব পৰা যায়। প্ৰতীকৰ সাধাৰণ অৰ্থ হৈছে চিহ্ন বা চিন। ‘প্ৰতীক হ’ল শব্দ অথবা শব্দপুঞ্জৰ প্ৰচ্ছন্ন অৰ্থযুক্ত ব্যঞ্জনাময় ৰূপ।’^{৪৪} এই প্ৰতীকৰ কথা যেতিয়া সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰত প্ৰয়োগ কৰা হয় তেতিয়া তাৰ অৰ্থ হয়গৈ এনে কিছু প্ৰসংগ যাৰ যোগেদি কোনো বিশেষ তাৎপৰ্যপূৰ্ণ দিশ নিৰ্দেশ কৰা হয়। হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতাত সামাজিক প্ৰসংগৰ প্ৰতীক সাধাৰণতে প্ৰাকৃতিক বিভিন্ন প্ৰসংগৰ আলম লৈ কবিতাত প্ৰৱেশ কৰিছে। প্ৰতীকাত্মক প্ৰয়োগত কবিৰ সামাজিক চেতনা অন্তৰ্ভুক্ত। সামাজিক ঘটনা, সমাজত প্ৰচলিত অৱস্থাৰ যোগেদি সৃষ্টি হোৱা কবিৰ মানসিক অৱস্থাৰ পৰা এই প্ৰতীকবোৰৰ সূত্ৰপাত ঘটিছে।

কেইবাটাও সামাজিক সমস্যাক কবিয়ে প্ৰতীকৰ ৰূপত কবিতাত উপস্থাপন কৰিছে। ইয়াৰে এটা হৈছে বানপানীৰ সমস্যা। এই বানপানীৰ সমস্যা বা বানপানীয়ে সৃষ্টি কৰা জনজীৱনৰ অৱস্থাক কবিয়ে প্ৰতীকেৰে প্ৰকাশ কৰিছে। ইয়াক দুটা দিশৰ পৰা চাব পাৰি। প্ৰথমটো হৈছে বানপানীৰ সমস্যা আৰু আনটো হৈছে বানপানীৰ দৰে বৈশিষ্ট্য বিশিষ্ট সমস্যা। বানপানীয়ে সৃষ্টি কৰা সামাজিক দুৰ্ভোগ, ক্ষয়-ক্ষতি কবিতাবোৰৰ পশ্চাত্পটৰ প্ৰসংগ। সেই প্ৰসংগবোৰ লগতে বানপানীৰ ব্যাপক ক্ষেত্ৰ সামৰা পৰিসৰকো কেতিয়াবা অন্য সমস্যাৰ ৰূপক হিচাপে উপস্থাপন কৰা দেখা যায়। অসমৰ হেৰাই যোৱা গ্ৰাম্য সমাজৰ চিত্ৰ কবিৰ প্ৰায়বোৰ কবিতাৰে প্ৰধান উপস্থাপিত বিষয়। এই গ্ৰাম্য পৰিৱেশৰ প্ৰয়োগ বহু ঠাইত কবিৰ মানসিক অৱস্থা, প্ৰধানকৈ মানসিক দ্বন্দ্বৰ ৰূপক হিচাপে প্ৰয়োগ কৰা দেখা পোৱা যায়। গ্ৰাম্য জীৱনৰ প্ৰচুৰ পৰিৱৰ্তনমুখী চৰিত্ৰই কবিৰ মানসিক জগতখন জোকাৰি গৈছে। এই সমাজখনৰ পৰিৱৰ্তনৰ লগে লগে সামাজিক, সাংস্কৃতিৰ আৰু অৰ্থনৈতিক দিশৰ পৰা হোৱা ক্ষতিৰ আলোচনা প্ৰায়বোৰ চিন্তাৰ প্ৰধান বিষয়। কৃষিজীৱী সমাজৰ এটি প্ৰধান অংগ হৈছে ‘ধান’। এই ধানৰ প্ৰতীক প্ৰয়োগৰ দিশতো কবিজনে বিশেষ সজাগতা অৱলম্বন কৰা দেখা যায়। এই ধানৰ প্ৰতীকক কবিজনে প্ৰধানকৈ সম্ভাৱনা, সৌন্দৰ্য্য, সম্বল আৰু সৰ্বোপৰি যন্ত্ৰণাৰ ৰূপত উপস্থাপন কৰিছে। ধানৰ পাতেৰে চকু পানী সৰাৰ প্ৰসংগও কবিতাবোৰত আছে। এই চকুপানীৰ আকৌ দুটা ৰূপকৰ

সমাহাৰ দেখা যায়। সেয়া হৈছে - প্ৰথমটো কৃষকৰ শ্ৰম নিঃসৃত অশ্ৰু আৰু আনটো হৈছে নিয়ৰ। দুয়োটা প্ৰসংগৰে বৈপৰীত্যটো হৈছে এটা কোমল আৰু সৌন্দৰ্য্যৰ সৈতে জড়িত আৰু আনটো কঠিন আৰু বেদনা মিশ্ৰিত। পিছে দুয়োটাই সমানে গুৰুত্বপূৰ্ণ। ধান-পথাৰ-কৃষি ইত্যাদি প্ৰসংগৰ সৈতে অৱধাৰিতভাৱে অহা এটি প্ৰসংগ হৈছে ‘কাচি’। এই কাচিৰ প্ৰতীকো বহু কবিতাত পোৱা যায়। কাচিখনক কবি ভট্টাচাৰ্যই বিভিন্ন দিশৰ লগতে সামাজিক নিপীড়নৰ বিৰুদ্ধে অস্ত্ৰ হিচাপে প্ৰয়োগ কৰাৰ মাধ্যমৰ ৰূপতো উপস্থাপন কৰিছে। উল্লেখযোগ্য যে এয়া কবিৰ ৰাজনৈতিক - সামাজিক দৰ্শনৰ প্ৰতিপাদ্যৰ ৰূপতো উপস্থাপিত হৈছে। অসমৰ বনজ সম্পদ প্ৰধানকৈ নদী, অৰণ্য আৰু পথাৰৰ প্ৰসংগৰ যোগেদি প্ৰাকৃতিক সৌন্দৰ্য্যৰ দিশটোৰ লগতে এই সৌন্দৰ্য্যৰ অন্তৰ্ভালৰ বিভিন্ন দিশ কবিয়ে কবিতাৰ মাজলৈ আনিছে। অসমৰ প্ৰাকৃতিক পৰিৱেশৰ ব্যৱসায়িক গুৰুত্ব, সম্ভাৱনাৰ প্ৰতীক, সমস্যাৰ উৎস ইত্যাদি দিশৰ কথা এই প্ৰসংগত উল্লেখ কৰিব পাৰি। এইবোৰৰ লগতে বৰষুণ, ব’দ, ডাৱৰ ইত্যাদি প্ৰসংগৰ যোগেদিও প্ৰতীকাত্মক কিছু দিশৰ উল্লেখ ঘটাইছে। কেউটা প্ৰসংগৰে প্ৰয়োগত দ্ব্যৰ্থকতা আছে। ঠাইভেদে, প্ৰয়োগভেদে ইয়াত প্ৰচ্ছন্ন প্ৰতীক ভিন্ন। সেই অনুসৰি বৰষুণ, ডাৱৰ ইত্যাদি এহাতেদি আশাৰ প্ৰতীক হোৱাৰ লগতে অন্যহাতে দুৰ্যোগৰ আগজাননীও। সেইদৰে ব’দৰ ক্ষেত্ৰতো সম্ভাৱনাৰ লগতে প্ৰখৰতা; বিশেষকৈ শাৰীৰিক-মানসিক সকলো শক্তিৰ উৎস, ভোক, পুৰি ছাই কৰিব পৰা শক্তি ইত্যাদিৰ প্ৰতীক হিচাপে কবিতাবোৰত প্ৰয়োগ কৰা দেখা গৈছে।

দেখা যায় যে হীৰেন ভট্টাচাৰ্যই কবিতাবোৰত প্ৰয়োগ কৰা প্ৰতীকবোৰ প্ৰধানকৈ অসমৰ গ্ৰামীণ সমাজ, সমস্যা নিৰ্ভৰতা, অপ্ৰচলিত কিন্তু গুৰুত্বপূৰ্ণ সম্ভাৱনাময় সামাজিক প্ৰসংগ ইত্যাদি দৃষ্টিকোণ আধাৰিত। এই প্ৰতীকবোৰ সকলো ক্ষেত্ৰতে সচেতন প্ৰয়োগ নহয়। সামাজিক অৱস্থা-ব্যৱস্থা ইত্যাদিয়ে কবিৰ মানসিক চেতনাত পেলোৱা প্ৰভাৱৰ আধাৰতেই এই প্ৰতীকবোৰ নিঃসৃত হৈছে। সেইবাবে কবিৰ মানসিক অৱস্থাত ক্ৰিয়া কৰা সামাজিক অৱস্থাৰ সৰ্বাত্মক প্ৰভাৱ কবিতাবোৰৰ যোগেদি স্পষ্ট ৰূপত প্ৰকাশিত হৈছে।

৪.২ সামাজিক প্ৰসংগৰ চিত্ৰকল্প :

চিত্ৰকল্প শব্দটো ভাঙি ইয়াক অগা-পিছাকৈ উপস্থাপন কৰিলেই অৰ্থ ওলাই পৰে। অৰ্থাৎ কল্প আৰু চিত্ৰ; কল্পনাৰে

অঁকা চিত্ৰ। ইয়াত আকৌ অন্য চিত্ৰত উপলব্ধি ৰং, ৰেখা ইত্যাদিৰ স্থান শব্দই দখল কৰে। কবিতাৰ এটি প্ৰধান উপকৰণ হৈছে চিত্ৰকল্প। প্ৰস্তুত কাকতত আলোচ্য হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতাত প্ৰাপ্ত চিত্ৰকল্পবোৰক পাঁচটা ভাগত ভাগ কৰি বিচাৰ কৰিব পাৰি। মনত ৰখা দৰকাৰ যে চিত্ৰকল্পৰ এই বিভাজন কবিতাৰ সমাজতাত্ত্বিক বিচাৰৰ বাবে নিৰ্ধাৰণ কৰি লোৱা হৈছে। হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতাৰ সামগ্ৰিক চিত্ৰকল্পৰ বিভাজন ইয়াতকৈ বেলেগ হ'ব। সেই পাঁচটা ভাগ হৈছে - অসমৰ নৈসৰ্গিক অৱস্থাৰ চিত্ৰণ, অসমৰ গ্ৰামীণ জীৱনৰ সৈতে জড়িত বিভিন্ন প্ৰসংগ, অসমৰ সমাজ জীৱনৰ বিভিন্ন দুৰ্যোগৰ প্ৰসংগ, অসমীয়া সমাজ জীৱনৰ ঋতুকালীন চৰিত্ৰ আৰু জনজাতীয় জীৱনৰ বিভিন্ন অনুৰংগ।

অসমৰ নৈসৰ্গিক অৱস্থাৰ ক্ষেত্ৰত কবিয়ে প্ৰধানকৈ অসমৰ অৰণ্য, সেই অৰণ্যত উপলব্ধি বনজ সম্পদৰাশীৰ ৰূপ-বৈচিত্ৰ্যক কবিতাত চিত্ৰকল্পৰ ৰূপত উপস্থাপন কৰিছে। এই উপস্থাপনৰ যোগেদি অসমৰ সম্পদৰ ক্ষেত্ৰত থকা সমৃদ্ধি আৰু সেই সম্পদৰ চিন্তাকৰ্ষক চৰিত্ৰৰ প্ৰসংগ উপস্থাপনৰ প্ৰয়াস কৰিছে। এই সম্ভাৱনাময় অৱস্থাৰ পিছতো অসমে সঠিক ৰূপত ইয়াৰ পৰা লাভান্বিত হ'ব নোৱাৰাৰ লগতে সম্ভাৱনাৰ বহু পথ এতিয়াও ৰুদ্ধ হৈ থকাৰ কথা প্ৰকাশ কৰিব বিচাৰিছে। অসমৰ গ্ৰামীণ জীৱনৰ সৈতে জড়িত প্ৰসংগবোৰক প্ৰধানকৈ আকৌ দুটা ভাগত ভাগ কৰিব পাৰি — অসমৰ কৃষি-অৰ্থনীতিৰ সৈতে সংযুক্ত প্ৰসংগ; লোককলা, লোকশিল্প আৰু লোক-অনুষ্ঠান সম্পৰ্কীয় প্ৰসংগ। কৃষিজগত সম্পৰ্কীয় বিভিন্ন প্ৰসংগৰে হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতাবোৰ ভৰি থকা দেখা যায়। এই সম্পৰ্কীয় প্ৰধান প্ৰসংগকেইটা হৈছে — পথাৰ, ধান, ৰোৱনী, দাৱনী, কাচি, নাঙল, ভুই ৰোৱা, ডাঙৰি বন্ধা ইত্যাদি। কবিতাসমূহত প্ৰধানকৈ ধানৰ চিত্ৰধৰ্মী প্ৰয়োগ সঘন। ধানক কবিয়ে কৃষকৰ সৰ্বশেষ সম্বলৰ লগতে কষ্টৰ চূড়ান্ত ফল, চকুলোৰ উৎস, সম্ভাৱনাৰ সঁফুৰাৰ ৰূপত উপস্থাপন কৰিছে। ইয়াৰ লগতে কৃষিকাৰ্য্যৰ যোগেদি পৰিচালিত অসমৰ অৰ্থনৈতিক আধাৰ, অসমীয়া সমাজৰ সম্প্ৰীতিৰ আধাৰ হিচাপে কৃষিকৰ্ম, অসমীয়া চেতন্য (প্ৰধানকৈ মূল্যবোধৰ পৰিচালক হিচাপে), কৃষি বা কৃষিসম্বন্ধীয় সামাজিক গাঁথনিৰ চিত্ৰকল্পৰ মিতবাক্যেৰে উপস্থাপনৰ প্ৰয়াস কৰিছে। কবিৰ দৃষ্টিত কৃষি অসমৰ অৰ্থনৈতিক আধাৰ হ'লেও সামাজিক গঠন আৰু ইয়াৰ পৰিশীলনৰ প্ৰধান বিষয় হৈছে কৃষি বা

পথাৰকেন্দ্ৰিক সমাজ-ব্যৱস্থা। উৎসৱ-অনুষ্ঠান সম্পৰ্কীয় প্ৰসংগৰ চিত্ৰকল্পৰ ক্ষেত্ৰত প্ৰধানকৈ বিহু সম্বন্ধীয় বিভিন্ন দিশ উপস্থাপন কৰিছে। হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতাত ব'হাগ মাহটোৰ লগতে বিহু সম্পৰ্কীয় (কেউটা বিহুৰে) বিভিন্ন চিত্ৰকল্প পোৱা যায়। ভোগালীৰ ভোগৰ মাজতো কবিয়ে দৈন্যজীৱনৰ কিছু প্ৰসংগ দেখা পাইছে। ব'হাগ বিহুৰ প্ৰসংগ হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতাত প্ৰচুৰ বুলিব পাৰি। বিহুক কবিয়ে জাতীয় চেতন্য উদ্বেলিত কৰিব পৰা শক্তি হিচাপে চাইছে। ব'হাগ বিহু সম্পৰ্কীয় চিত্ৰকল্পৰ যোগেদি বিহু, বিহুৱান, ঢোল-পেঁপাৰ মাতৰ সেই হেৰাই যাব ধৰা সামাজিক অৱস্থাক লৈ কবি অন্তৰেৰে বাউল হৈ পৰিছে। ব'হাগ বিহুৰ মূলগত সম্প্ৰীতি, ঐক্যবোধ ইত্যাদিৰ লগতে বিহুৰ দিনতো সংঘটিত কিছু ঘটনাৰ প্ৰসংগেৰে সামাজিক জীৱনত বিহুৰ মৰ্য্যাদাত আঘাত হোৱাৰ প্ৰসংগবোৰত আলোকপাত কৰি সমাজ বিৱৰ্তনৰ প্ৰসংগ পোহৰলৈ আনিছে। কাতিবিহুকেন্দ্ৰিক প্ৰচলিত দৈন্য দিনৰ চিত্ৰকল্পৰ ঠাইত কবিয়ে সম্ভাৱনা আৰু আশাৰ চিত্ৰ কবিতাৰ মাজলৈ আনিছে। ভোগালী বিহু উদ্‌যাপনৰ সময়ছোৱা এক যন্ত্ৰণাময় আৰু ত্যাগৰ পৰৱৰ্তী আশাৰ এছোৱা সময় হোৱাৰ লগতে শীতে জুৰুলা কৰা প্ৰসংগ প্ৰতীক ৰূপত উপস্থাপন কৰিছে। ইয়াৰ লগতে মেজীৰ জুইৰ চিত্ৰকল্পক প্ৰতিবাদৰ এটি প্ৰতীকৰ ৰূপত চিত্ৰিত কৰিছে। লোককলা, লোকশিল্প আৰু লোক-অনুষ্ঠান সম্পৰ্কীয় বিভিন্ন দিশৰ চিত্ৰকল্পও হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতাত প্ৰসংগক্ৰমে প্ৰয়োগ হোৱা দেখা যায়। লোকসমাজৰ বিভিন্ন প্ৰসংগক লৈ কবিৰ আন্তৰিক একাত্ম চেতনাৰ আঁত ধৰিয়েই এই প্ৰসংগবোৰ কবিতাৰ মাজলৈ আনিছে। লোকশিল্পগত দিশবোৰৰ ভিতৰত অসমৰ পৰম্পৰাগত শিল্প, এই শিল্পবোৰৰ নিৰ্মাণ আৰু প্ৰয়োগৰ দিশবোৰ চিত্ৰকল্পিক প্ৰকাশৰ পশ্চাদপটৰ দিশ হিচাপে আলোচনা কৰিব পাৰি। লোকশিল্পগত প্ৰসংগবোৰৰ ভিতৰত লোকবাদ্য, কমাৰশাল, বাঁহ-বেতৰ শিল্প ইত্যাদি প্ৰসংগত আলোকপাত কৰি অসমীয়া সমাজ-ব্যৱস্থাৰ লোকশৈল্পিক চেতনাৰ প্ৰসংগ আলোকিত কৰিছে। ঠিক সেইদৰে লোককলাৰ দিশত বয়নশিল্পৰ সৈতে জড়িত প্ৰসংগ, ভাস্কৰ্য্য কলাৰ অনুৰংগ, নিত্য-ব্যৱহাৰ্য বিভিন্ন সামগ্ৰীৰ প্ৰস্তুত কলা আৰু প্ৰয়োগক নেপথ্যত ৰাখি কবিতাত চিত্ৰকল্পৰ ব্যৱহাৰ বা বিন্যাস কৰিছে। এইবোৰৰ লগতে লোক-অনুষ্ঠানৰ বিভিন্ন প্ৰসংগও কবিতাত চিত্ৰকল্পৰ যোগেদি পোহৰলৈ আনিছে। সেইবোৰৰ ভিতৰত গৰখীয়া

সবাহ, আইসবাহ, নাওখেল বা নাওখেলৰ গীত, বিবাহ ইত্যাদি লোক-অনুষ্ঠানৰ প্ৰসংগ কবিতাবোৰত পোৱা যায়। নক'লেও হ'ব যে এই প্ৰসংগবোৰ কবিৰ মানসিক জগতৰ নেপথ্যত ক্ৰিয়া কৰা সামাজিক জীৱনটো, কবি পৰিচালিত সামাজিক অৱস্থাৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতৰ পৰা উঠি অহা।

অসমীয়া সমাজ আৰু প্ৰাকৃতিক জীৱনৰ ঋতুকালীন চৰিত্ৰগত দিশবোৰ হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতাত প্ৰকাশ পোৱা দেখা যায়। এই ঋতুকালীন পৰিৱেশৰ ভিতৰত প্ৰধানকৈ দুটা দিশৰ ক্ষেত্ৰতহে কবিয়ে গুৰুত্ব আৰোপ কৰা দেখা যায়। সেইকেইটা হৈছে ঋতুকালীন নৈসৰ্গিক চিত্ৰ আৰু আনটো হৈছে ঋতুকালীন প্ৰাকৃতিক দুৰ্যোগ। ঋতুকালীন নৈসৰ্গিক চিত্ৰ প্ৰয়োগত কবিৰ বিশেষ কৃতিত্ব দেখা যায়। ঋতুকালীন নৈসৰ্গিক প্ৰকৃতিৰ ক্ষেত্ৰত প্ৰধানকৈ অসমৰ অৰণ্য অঞ্চলৰ বিশেষ বৈশিষ্ট্যগত দিশবোৰ, অসমৰ অৰ্থনীতিৰ প্ৰধান দিশ কৃষিক কেন্দ্ৰ কৰি গঢ় লোৱা প্ৰধানকৈ কৃষিৰ সূচনা আৰু সামৰণিক লৈ গঢ় লোৱা সমাজ-প্ৰাকৃতিক নৈসৰ্গ প্ৰকাশত কবিয়ে বিশেষ গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছে। ইয়াৰ লগতে ঋতু পৰিৱৰ্তনৰ সৈতে সংঘটিত প্ৰাকৃতিক অৱস্থাৰ সৈতে মানসিক অৱস্থা, ক্ষণভংগৰ জীৱন, পুনৰ ঋতুৱে প্ৰকৃতিক সজাই তোলাৰ দৰে মানসিক অৱস্থা-ব্যৱস্থাৰ পুনঃগঠনৰ প্ৰসংগৰ সামঞ্জস্য প্ৰকাশৰ প্ৰয়াস কৰিছে। মানুহ মায়েই থকা আশাব্যঞ্জক বা সমৃদ্ধ দিনৰ একান্ত কামনাৰ ভাব প্ৰকাশৰ বাবেও কবিয়ে সামাজিক-প্ৰাকৃতিক নৈসৰ্গিক অৱস্থাৰ প্ৰসংগ কবিতাত উপস্থাপন কৰাৰ প্ৰয়াস কৰিছে। ঋতুকালীন দুৰ্যোগ সম্বন্ধীয় দিশৰ বিচাৰ ঋতুকালীন পৰিৱেশ সংক্ৰান্তীয় প্ৰসংগৰ আনটো দিশ। প্ৰধানকৈ অসমৰ বানপানী সমস্যাক কবিগৰাকীয়ে বহু পৰিমাণে কবিতাত প্ৰকাশ কৰিছে। এই প্ৰসংগ উপস্থাপন কৰাৰ প্ৰধান কাৰণ সমস্যাটো উত্থাপনৰ লগতে বানপানীৰ প্ৰসংগ অন্য বহু দিশৰ ৰূপক হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰা। কবিয়ে বানপানীৰ কেৱল এটা প্ৰসংগ উচ্চাৰণ কৰি বহু অনুচ্চাৰিত সমস্যাৰ চিত্ৰকল্প বা অন্তৰংগ ভাৱবস্তু হিচাপে প্ৰতিষ্ঠা কৰাৰ প্ৰয়াস কৰিছে।

অন্তিমটো প্ৰসংগ অৰ্থাৎ জনজাতীয় জীৱনৰ বিভিন্ন চিত্ৰৰ বা চিত্ৰকল্প উপস্থাপনৰ প্ৰসংগটো বিশেষ বহল নহয় যদিও কেইবাটাও বৈশিষ্ট্যপূৰ্ণ দিশ এই চিত্ৰকল্প প্ৰয়োগৰ দিশেৰে উপস্থাপন কৰিছে। এইসমূহৰ ভিতৰত চাহ-জনগোষ্ঠীগত জীৱনৰ চিত্ৰ, আঙ্গামী নগা জীৱনৰ অনুৰংগ, আপং খোৱাৰ প্ৰসংগ, টাইফাকে গাঁৱৰ প্ৰসংগ কবিতাত

চিত্ৰকল্পৰ শৈলীৰে উপস্থাপন কৰাৰ লগতে সামাজিক জীৱন সম্পৰ্কীয় শব্দ, বাক্যাংশৰে উপস্থাপন কৰিছে। জনগোষ্ঠীয় বা জনজাতীয় জীৱন প্ৰসংগ উপস্থাপনৰ ক্ষেত্ৰত কবিৰ কেৱল সামাজিক সম্প্ৰীতি প্ৰকাশেই লক্ষ্য নহয়; ইয়াৰ লগতে প্ৰকৃতি আৰু মানুহৰ সৰল সম্পৰ্ক, সাংস্কৃতিক জীৱনৰ সৈতে জড়িত হৈ থকা কৰ্মমুখী জীৱনস্পৃহা কবিতাত প্ৰয়োগ কৰা চিত্ৰকল্পৰ পশ্চাদপটৰ সামাজিক সত্য।

৪.৩ অন্যান্য সামাজিক প্ৰসংগ :

হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতাসমূহত কিছুমান সামাজিক প্ৰসংগ আছে যিবোৰ আলোচ্য অন্য দুটা দিশৰ সৈতে একেলগে আলোচনা কৰাত কিছু অসুবিধা দেখা যায়। কবি ভট্টাচাৰ্যই প্ৰাত্যহিক জীৱনৰ নিৰাপত্তা বা সহজ ভাষাত সম্ভাসবাদ সম্পৰ্কীয় বিভিন্ন প্ৰসংগক কবিতাৰ যোগেদি প্ৰকাশ কৰিছে। সম্ভাসবাদৰ যোগেদি এটা শ্ৰেণী পৈশাচিক তৃপ্তিৰে শক্তি প্ৰদৰ্শনত কৃতকাৰ্য হোৱা, এটা শ্ৰেণীয়ে সেই শক্তিক ঢাল হিচাপে লৈ আত্মগমন হৈ থকা আৰু তৃতীয়তে সকলো হেৰুৱাবলৈ সদা সন্তপ্ত হৈ থকা — এই তিনিটা শ্ৰেণীৰ কথা প্ৰকাশ কৰিছে। ইয়াৰে তৃতীয় শ্ৰেণীৰ লোকসকল অৰ্থাৎ সাধাৰণ জনতাৰ জীৱনৰ সৈতে জড়িত হৈ থকা সামাজিক-মানসিক যন্ত্ৰণা প্ৰকাশহে কবিৰ প্ৰধান উদ্দেশ্য। সামাজিক অৱস্থা একোটাক লৈ সমাজৰ নিৰাৱেগ অৱস্থা এটাৰ পৰা মানুহক জাগৰিত কৰি সমাজ পৰিৱৰ্তনৰ আকাংক্ষা কৰাৰ কিছু প্ৰসংগও কবিতাবোৰত আছে। এই প্ৰসংগতে আকৌ কেতিয়াবা সামাজিক অৱস্থা-ব্যৱস্থা ভাঙি নতুন সমাজ গঢ়াৰ ইচ্ছাও কিছু ক্ষেত্ৰত দেখা যায়। সামাজিক বৈষম্যৰ দিশত প্ৰধানকৈ অৰ্থনৈতিক শ্ৰেণী সম্পৰ্কীয় দ্বন্দ্বৰ কিছু দিশো কবিতাবোৰত দেখা পোৱা যায়। এনে বৈষম্যৰ আঁত ধৰিয়েই আকৌ কোনো কোনো কবিতাত বিচ্ছিন্নতাবাদী আৰু বিদ্ৰোহী চেতনাৰ দেখ-নেদেখ চিত্ৰও দেখা পোৱা যায়। অৰ্থনৈতিক প্ৰসংগতে কৃষি অৰ্থনীতিৰ সৈতে জড়িতভাৱে মহাজনী শৈলীৰ ব্যৱস্থা, ঋণগ্ৰস্ততা ইত্যাদি প্ৰসংগও উত্থাপিত হৈছে। সামাজিক প্ৰধানকৈ ৰাজনৈতিক ব্যৱস্থাত জড়িত হৈ থকা কলাধন, দুৰ্নীতি ইত্যাদি প্ৰসংগক লৈও কবিয়ে সচেতনতা প্ৰকাশ কৰা দেখা পোৱা যায়। কবি ভট্টাচাৰ্যৰ বহুবোৰ কবিতাত সামাজিক জীৱনৰ বিৱৰ্তনৰ চিত্ৰও প্ৰকাশ পাইছে। এই বিৱৰ্তনক লৈ কবি ঠায়ে ঠায়ে সুখী যদিও সামগ্ৰিকভাবে সুখী হ'ব পৰা নাই। এই বিৱৰ্তনে আনি দিয়া মূল্যবোধৰ তাৰতম্য, সামাজিক জীৱনৰ

অর্থনৈতিক কাঠামোত পেলোৱা বিৰূপ প্ৰভাৱ, সাংস্কৃতিক জীৱনত এই বিৰতনে কৰা ক্ষতিৰ প্ৰসংগক লৈ কবি যথেষ্ট চিন্তিত। ইয়াৰ লগতে আকৌ বিৰতনৰ যোগেদি অহা নতুন মূল্যবোধৰ ভাল দিশবোৰক লৈও কবিয়ে আশা পোষণ কৰাৰ লগতে তাক আদৰণি জনোৱাও দেখা যায়। বহুকেইটা কবিতাতে কবিয়ে সামাজিক অৱস্থাৰ প্ৰতি আস্থা ৰখা দেখা যায়। এই আশা বা প্ৰত্যাশাৰ যোগেদি নতুন প্ৰজন্মৰ নতুন দৃষ্টিত সমাজে অধিক গতিময়তা লাভ কৰিব বুলি কবিয়ে বিশ্বাস ৰাখিছে। ইয়াৰ লগতে ‘বন্দীশালৰ দুৱাৰ ভাঙি’^৫ জাতীয় প্ৰসংগৰ যোগেদি ৰাজনৈতিক, অৰ্থনৈতিক, সামাজিক প্ৰধানকৈ ধৰ্ম, জাতি ইত্যাদি সম্পৰ্কীয় বান্ধোনৰ পৰা মুক্ত হৈ নতুন চিন্তাৰ বাবে আশা পোষণ কৰিছে। কৃষি সম্পৰ্কীয় বিষয়বোৰৰো পুনৰ জনপ্ৰিয় হোৱাৰো কবিয়ে আশা প্ৰকাশ কৰিছে। নতুন দিনবোৰ সকলো দিশৰ পৰা সুখৰ আৰু সমৃদ্ধ হোৱাক লৈ কবি আশাবাদী। অস্থিৰ সামাজিক অৱস্থা, প্ৰচুৰ নিৰাপত্তাহীনতা, অনিশ্চিত জীৱনৰ চিত্ৰও কবিতাবোৰত আছে। এই অৱস্থাক লৈ কবিৰ নিজৰ মাজতে কেতিয়াবা দ্বন্দ্বও দেখা যায়। এহাতে অস্থিৰ অৱস্থাক লৈ উদ্বেগ আৰু আনহাতে ‘বন্দুকটো উম দি বুকুতে থাকক’^৬ এই দুই প্ৰসংগক উদাহৰণ হিচাপে দৰ্শাব পাৰি। কবিৰ আদৰ্শগত সাম্যবাদী চিন্তা-চেতনাৰে সামাজিক জীৱনক চোৱাৰ প্ৰয়াসো দুই-এটা কবিতাত দেখা যায়।

৫.০ উপসংহাৰ :

৫.১ সামগ্ৰিক অধ্যয়ন আৰু সিদ্ধান্ত : ‘সাহিত্যৰ সমাজতত্ত্ব’ অধ্যয়নৰ বিধাগত অধ্যয়ন দিশৰ পৰা এটি গুৰুত্বপূৰ্ণ দিশ হৈছে কবিতাৰ সমাজতাত্ত্বিক অধ্যয়ন। সাহিত্যৰ বিৰতনৰ দিশৰ পৰা কবিতাৰ অগ্ৰগতি অন্য সাহিত্য বিধাৰ তুলনাত বহু পুৰণি। প্ৰস্তুত অধ্যয়নত কবিতাৰ সমাজতত্ত্ব বিষয়টো অধ্যয়নৰ বাবে কবি হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতাক আধাৰ হিচাপে গ্ৰহণ কৰা হৈছিল। এই অধ্যয়নত প্ৰধানকৈ সৌন্দৰ্যতাত্ত্বিক দৃষ্টিৰে কবিতাৰ প্ৰতীক আৰু চিত্ৰকল্পত সংপৃক্ত সামাজিক প্ৰসংগ উদ্ধাৰ কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছিল। উল্লিখিত দিশ দুটাৰ লগতে সামগ্ৰিক বিচাৰত দেখা পোৱা সামাজিক প্ৰসংগ কিছুমানো বিচাৰ কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছিল। কবি ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতাত সামাজিক প্ৰসংগ বা কবিতাৰ সমাজতত্ত্ব দৃষ্টিৰে হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতা বিচাৰ কৰাৰ অন্তত দেখা গ’ল যে কবিতাবোৰত প্ৰতিফলিত সামাজিক প্ৰসংগ বহুমুখী নহ’লেও উল্লিখিত দিশবোৰ

প্ৰভাৱশালী। কবি ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতাত প্ৰৱেশ ঘটাত সামাজিক প্ৰসংগবোৰ কবি পৰিচালিত সমাজখনৰ লগতে ইতিমধ্যে কবিয়ে এৰি অহা সমাজ আৰু সামাজিক চেতনাৰ পৰা উদ্ভৱ হোৱা। হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতাত সামাজিক প্ৰসংগ বিচাৰৰ অন্তত তলত দিয়া সিদ্ধান্তসমূহত উপনীত হ’ব পৰা গ’ল -

➤ হীৰেন ভট্টাচাৰ্যক কবিতাৰ প্ৰধান শৈলী বহু পৰিমাণে আত্মজৈৱনিক বা ব্যক্তিসাপেক্ষ। নৈৰ্ব্যক্তিক চেতনাৰ প্ৰকাশক যিবোৰ কবিতা ৰচনা কৰিছে সকলোবোৰতে বহু পৰিমাণে আত্মপক্ষৰ গাত ভেজা দিয়া দেখা যায়। সেইবাবে কবিতাৰ সামাজিক প্ৰসংগবোৰতো কবিৰ আত্মজৈৱনিক চেতনাৰ প্ৰচুৰ প্ৰয়োগ লক্ষ্য কৰা যায়। এই চেতনাৰ বাবে হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতাৰ সামাজিক প্ৰসংগৰ সকলোবোৰ দিশ কবি সন্মুখীন হোৱা সামাজিক ব্যৱস্থাৰ দ্বাৰা কবিতাৰ প্ৰেক্ষাপট নিৰ্মাণ হোৱা বুলিব পাৰি।

➤ অসমীয়া গ্ৰাম্য সমাজৰ বিভিন্ন প্ৰসংগবোৰক কবি ভট্টাচাৰ্যই প্ৰধানকৈ তিনিটা ভাগত ভাগ কৰি আলোচনা কৰিছে। সেই অনুসৰি সামাজিক, সাংস্কৃতিক আৰু অর্থনৈতিক এই তিনিটা দিশৰ আলোচনা কৰিছে। এই দিশবোৰ আলোচনা কৰোঁতে কবিয়ে প্ৰধানকৈ মধ্যবিত্ত আৰু নিম্নবিত্ত সমাজৰ জীৱনৰ সৈতে জড়িত প্ৰসংগবোৰক অধিক গুৰুত্ব দিছে।

➤ কবিতাত সামাজিক প্ৰসংগ আলোচনা কৰোঁতে কবিয়ে অসমৰ সমাজ জীৱনৰ সৈতে জড়িত ৰক্তাক্ত এটি সময়ক বিশেষ গুৰুত্ব সহকাৰে আলোচনা কৰিছে। এই প্ৰসংগবোৰৰ নেপথ্য হিচাপে কবিয়ে অসম বা সমগ্ৰ পৃথিৱীৰে মানুহৰ তেজেৰে ৰক্তাক্ত পৰিৱেশৰ সূচনা কৰা মানুহবোৰ সামৰি তিনিটা শ্ৰেণীৰ কথা প্ৰকাশ কৰিছে। এটা শ্ৰেণী পৈশাচিক তৃপ্তিৰে শক্তি প্ৰদৰ্শনত কৃতকাৰ্য্য হোৱা, এটা শ্ৰেণীয়ে সেই শক্তিক ঢাল হিচাপে লৈ আত্মমগন হৈ থকা আৰু তৃতীয়তে সকলো হেৰুৱাবলৈ সদা সন্তপ্ত হৈ থকা এটা শ্ৰেণীৰ কথা এই প্ৰসংগত উল্লেখ কৰিব পাৰি। ইয়াৰে তৃতীয় শ্ৰেণীৰ লোকসকল অৰ্থাৎ সাধাৰণ জনতাৰ জীৱনৰ সৈতে জড়িত হৈ থকা সামাজিক-মানসিক যন্ত্ৰণা প্ৰকাশহে কবিৰ প্ৰধান উদ্দেশ্য।

➤ কবিতাবোৰত কবিৰ সমাজ-ৰাজনৈতিক দৃষ্টি হিচাপে সাম্যবাদী দৰ্শনেৰে সামাজিক ব্যৱস্থা সূচনাৰ ইচ্ছা এটাও প্ৰকাশ পাইছে। কোনো কোনো ঠাইত এই দৰ্শনৰ পৰা কিছু পৰিমাণে কবি ফালৰি কাটি অহাও দেখা গৈছে।

অসমীয়া সামাজিক গাঁথনিৰ লিপিত খাই থকা কিছু ভাৰতীয় দাৰ্শনিক চেতনাৰ প্ৰতিনিধি হিচাপে কবিৰ এই বিচ্যুতি ঘটা যেন বোধ হয়।

৫.২ অধ্যয়নৰ সীমাবদ্ধতা আৰু ভৱিষ্যত অধ্যয়নৰ সম্ভাৱনা : সাহিত্য আৰু সমাজৰ সুদূৰপ্ৰসাৰী সম্পৰ্কক সঠিক আৰু প্ৰণালীবদ্ধ অধ্যয়নৰ এটি দৃষ্টিকোণ ‘সাহিত্যৰ সমাজতত্ত্ব’ৰ অনুশীলনত কিছু কম পৰিমাণে বিকশিত এটি দৃষ্টিকোণ হৈছে ‘কবিতাৰ সমাজতত্ত্ব’। ‘কবিতাৰ সমাজতত্ত্ব’ অধ্যয়নৰ বাবে এই কাকতখন প্ৰস্তুত কৰা হৈছিল। এই কাকতত সাহিত্যৰ সমাজতত্ত্ব অধ্যয়নৰ বিধাগত আৰু সাহিত্যৰ সাধনগত অধ্যয়নৰ অন্যান্য দিশবোৰ বাদ দিয়া হৈছে। ইয়াৰ লগতে প্ৰায়োগিক দিশতো

কেৱল হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতাকহে আধাৰ হিচাপে গ্ৰহণ কৰা হৈছে। কবিতাৰ সমাজতত্ত্ব অধ্যয়নৰ বাবে সৌন্দৰ্য্যতাত্ত্বিক দিশৰ অন্যান্য দিশবোৰ এৰি কেৱল প্ৰতীক আৰু চিত্ৰকল্পৰ যোগেদি বৰ্ণিত কবিৰ সামাজিক প্ৰতিপাদ্যকহে আলোচনাৰ মাজলৈ অনা হৈছে। অন্যান্য দিশবোৰৰো অধ্যয়নে এই দৃষ্টিভংগীটোৰ অধ্যয়নক সমৃদ্ধ কৰিব বুলি আশা কৰিব পাৰি। ইয়াৰ লগতে অন্যান্য সামাজিক প্ৰসংগ শিতানত আলোচ্য দিশবোৰো বেলেগে বেলেগে একোটা প্ৰসংগ হিচাপে অধ্যয়ন কৰাৰ সম্ভাৱনা বহন কৰে। তেনে প্ৰণালীবদ্ধ অধ্যয়নে ‘কবিতাৰ সমাজতত্ত্ব’ আৰু ‘হীৰেন ভট্টাচাৰ্যৰ কবিতা’ দুয়োটা দিশকে সমৃদ্ধ কৰিব বুলি আশা কৰিব পাৰি। □

প্ৰসংগ সূত্ৰ :

১. মহেন্দ্ৰ বৰা, সাহিত্য-উপক্ৰমণিকা, পৃ. ৮১
২. ৰবি ৰঞ্জন, সাহিত্য কা সমাজশাস্ত্ৰৰ সৌন্দৰ্য্যশাস্ত্ৰ, পৃ. ৪৪
৩. মৈনেজৰ পাণ্ডেয়, সাহিত্য কে সমাজশাস্ত্ৰ কী ভূমিকা, পৃ. ২১৯
৪. মহেন্দ্ৰ বৰা, পূৰ্বোক্তিত, পৃ. ৩১
৫. বিপুলজ্যোতি শইকীয়া (সম্পা.), হীৰেন ভট্টাচাৰ্য ৰচনাৱলী, পৃ. ১৫২
৬. তদীয় (সম্পা.), হীৰেন ভট্টাচাৰ্য ৰচনাৱলী, পৃ. ১০৫

গ্ৰন্থপঞ্জী :

মূলগ্ৰন্থ :

শইকীয়া, বিপুলজ্যোতি (সম্পা.). *হীৰেন ভট্টাচাৰ্য ৰচনাৱলী*. গুৱাহাটী - ১, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, দ্বিতীয় প্ৰকাশ, এপ্ৰিল, ২০২৩.

সহায়ক গ্ৰন্থ :

অসমীয়া :

- গগৈ, লীলা (সম্পা.). *আধুনিক অসমীয়া সাহিত্যৰ পৰিচয়*. ডিব্ৰুগড় - ১, বনলতা, পঞ্চম সংস্কৰণ, জুন ২০১৭.
- গোস্বামী, মালিনী আৰু আহমেদ, কামালুদ্দিন (সম্পা.). *আধুনিক অসমীয়া কবিতাৰ তিনিটা স্তৰ*. ডিব্ৰুগড় - ১, বাণী মন্দিৰ, প্ৰথম সংস্কৰণ, জুলাই, ২০০৯.
- ডেকা, হৰেকৃষ্ণ. *আধুনিকতাবাদ আৰু অন্যান্য প্ৰবন্ধ*. গুৱাহাটী - ১, পুনৰ প্ৰকাশ, ফেব্ৰুৱাৰী, ২০২০.
- নাথ, ভণিতা (সম্পা.). *আধুনিক অসমীয়া কবি আৰু কবিতা ৰামধেনুৰ পৰা সাম্প্ৰতিকলৈ*. গুৱাহাটী - ১, পূৰ্বাঞ্চল প্ৰকাশ, প্ৰথম প্ৰকাশ, মে’ ২০১৭.
- পাদুন, নাহেন্দ্ৰ. *গঠনবাদৰ কথা আৰু অন্যান্য প্ৰসংগ*. ডিব্ৰুগড় - ১, কৌস্তভ প্ৰকাশন, দ্বিতীয় মুদ্ৰণ, আগষ্ট, ২০২২ খ্ৰীষ্টাব্দ.
- বৰগোহাঞি, হোমেন (সম্পা.). *অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী ষষ্ঠ খণ্ড*. গুৱাহাটী - ৩০, ABILAC, দ্বিতীয় প্ৰকাশ, মাৰ্চ ২০১২.
- বৰগোহাঞি, মামণি গগৈ (অনু.). *সংস্কৃতিবাদ, উত্তৰ সংস্কৃতিবাদ আৰু প্ৰাচ্য কাব্যতত্ত্ব*. নতুন দিল্লী - ১, সাহিত্য অকাডেমি, প্ৰথম প্ৰকাশ ২০১৫.
- বৰা, মহেন্দ্ৰ. *সাহিত্য-উপক্ৰমণিকা*. গুৱাহাটী - ১, ষ্টুডেণ্টচ ষ্ট’ৰ্চ, চতুৰ্থ সংস্কৰণ, আগষ্ট, ২০১১.
- বৰা, ৰাজীৱ. *বিৰতন অনুবৰ্তন অসমীয়া কবিতাৰ আলচ-বিলচ*. ডিব্ৰুগড় - ১, বনলতা, প্ৰথম সংস্কৰণ, নৱেম্বৰ, ২০১৯.
- বেজবৰা, নীৰাজনা মহন্ত. *পাঠকৰ দৰ্শনত অসমীয়া সাহিত্য*, ডিব্ৰুগড় - ১, বনলতা, প্ৰথম প্ৰকাশ, জানুৱাৰী ২০০৭.
- , *সাহিত্যৰ সমাজতত্ত্ব সিদ্ধান্ত আৰু প্ৰয়োগ*, ডিব্ৰুগড় - ১, বনলতা, প্ৰথম সংস্কৰণ, ২০১১.
- ভট্টাচাৰ্য, পৰাগ কুমাৰ. *সাহিত্য সংজ্ঞা আৰু আংগিক*. গুৱাহাটী - ১, জ্যোতি প্ৰকাশন, প্ৰথম প্ৰকাশ, নৱেম্বৰ, ২০০২.
- মজুমদাৰ, বিমল. *সাহিত্যৰ তত্ত্ব আৰু প্ৰয়োগ*. গুৱাহাটী - ১, জ্যোতি প্ৰকাশন, প্ৰথম প্ৰকাশ, মাৰ্চ ২০১১.
- শাস্ত্ৰী, মনোৰঞ্জন. *সাহিত্য-দৰ্শন*, গুৱাহাটী - ১, চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, সপ্তম প্ৰকাশ ২০১৪ চন
- হিন্দী গ্ৰন্থ :**
- জৈন, নিৰ্মলা (সম্পা.). *সাহিত্য কা সমাজশাস্ত্ৰীয় চিন্তন*. দিল্লী বিশ্ববিদ্যালয়, হিন্দী মাধ্যম কাৰ্য্যায় নিৰ্দেশালয়, দিল্লী-৭, সংশোধিত সংস্কৰণ, চিতম্বৰ ২০০৯.
- পাণ্ডেয়, মৈনেজৰ. *সাহিত্য কে সমাজশাস্ত্ৰ কী ভূমিকা*. পঞ্চকুলা, হাৰিয়ানা গ্ৰন্থ অকাডেমী, চতুৰ্থ সংস্কৰণ, ২০১৪.
- ৰঞ্জন, ৰবি. *সাহিত্য কা সমাজশাস্ত্ৰৰ সৌন্দৰ্য্যশাস্ত্ৰ*. নয়া দিল্লী - ২, বাণী প্ৰকাশন, প্ৰথম সংস্কৰণ, ২০১২.
- সিং, নামবৰ. *ইতিহাসৰ ওৰে আলোচনা*. ডৰিয়াগঞ্জ, ৰাজকমল প্ৰকাশন, নয়া দিল্লী - ২, পহলি আবৃত্তি, ২০২২.

ইংৰাজী গ্ৰন্থ :

- Goldmann, Lucien. *Essay on Method in the Sociology of Literature*. United States of America, Telos Press, 1980.
- Hall, John. *The Sociology of Literature*. London, Longman Group Limited, 1979.
- Laurenson, Diana T. and Swingewood Alan. *The Sociology of Literature*, New York, Schocken Books Inc, 1972.
- MacMillen, Sarah Louise. *Literature in the Dawn of Sociological Theory*. New York, Lexington Books, November 2021(ebook).

য়েছে দৰজে ঠংচিৰ শৱ কটা মানুহ উপন্যাসত 'অন্য' ৰ ইতিহাসৰ প্ৰতিফলন

সাৰাংশ :



ড° শিখা দেবী নাথ

প্ৰচলিত মূলসুঁতিৰ ইতিহাস ৰচিত হয় বিজয়ী বা ক্ষমতাশালীৰ পক্ষৰ কাহিনীৰে। এনে ইতিহাসক মহাবৃত্তান্ত (Grand Tradition) আখৰিত ইতিহাস বোলা হয়। পৰাজিত আৰু সাধাৰণ মানুহৰ কাহিনী মহাবৃত্তান্ত আধাৰিত মূলসুঁতিৰ ইতিহাসত পোৱা নাযায়। এই ক্ষেত্ৰত সাহিত্যই সেই মানুহখিনিৰ কাহিনীক তুলি ধৰি বহুসময়ত সমান্তৰাল ইতিহাস স্বৰূপে কাম কৰে। য়েছে দৰজে ঠংচিৰ শৱ কটা মানুহ ইতিহাসৰ আঁৰত থাকি যোৱা মানুহৰ কাহিনী আৰু সংগ্ৰাম প্ৰতিফলন কৰা এনে এখন উপন্যাস। ১৯৬২ চনৰ চীন-ভাৰত যুদ্ধৰ সময়ত উত্তৰ-পূব ভাৰতৰ অৰুণাচল প্ৰদেশৰ টাৱাং জিলাৰ জনজাতীয় মানুহখিনি আটাইতকৈ বেছি ক্ষতিগ্ৰস্ত হৈছিল। এই যুদ্ধ সম্পৰ্কীয় ইতিহাসত দুয়োখন ৰাষ্ট্ৰৰ সামৰিক, ৰাজনৈতিক কুট-কৌশল, ভাৰতৰ সামৰিক-অৰ্থনৈতিক ক্ষতিৰ বিৱৰণ পোৱা যায় যদিও টাৱাঙৰ জনজাতীয় মানুহখিনিৰ ক্ষতি তথা মানসিক যন্ত্ৰণাৰ (Mental Trauma) বিষয়ে পোৱা নাযায়। কিন্তু ক্ষতিগ্ৰস্ত সেই সাধাৰণ মানুহখিনি তথা তেওঁলোকৰ যন্ত্ৰণাও ইতিহাসৰ এক অন্যতম অংশ। শৱ কটা মানুহ উপন্যাসখনত অলিখিত অথচ ইতিহাস এক গুৰুত্বপূৰ্ণ অংশস্বৰূপ এই কাহিনী সন্নিৱিষ্ট হৈছে। এই গৱেষণা পত্ৰত উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত ইতিহাসৰ মহাবৃত্তান্তই ঢাকি থোৱা 'অন্য' বা প্ৰান্তীয় হিচাপে পৰিগণিত মানুহৰ কণ্ঠ তথা চেতনা নিম্নবৰ্গীয় অধ্যয়নৰ পোহৰত বিষয়-বিশ্লেষণ পদ্ধতিৰে অধ্যয়ন কৰা হৈছে।

বীজ শব্দ :

অন্য (Other), অধিবৃত্তান্ত (Meta Narrative), ইতিহাস, মহাবৃত্তান্ত (Grand Tradition), প্ৰান্তীয়, ক্ষুদ্ৰ বৃত্তান্তবোৰে (little Narrative)।

০.১ বিষয়ৰ পৰিচয় :

য়েছে দৰজে ঠংচি অসমীয়া ভাষাত সাহিত্য চৰ্চা কৰা মূলগতভাৱে অৰুণাচলৰ ছেৰদুকপেইন জনজাতিৰ লেখক। অৰুণাচল প্ৰদেশত বসবাস কৰা বহুকেইটা জনজাতিৰ জীৱনধাৰা, সমাজ-ব্যৱস্থাৰ বিভিন্ন দিশসমূহ তেওঁৰ গল্প আৰু উপন্যাসৰ মাজেৰে প্ৰতিফলিত হৈছে। অৰুণাচলত বসবাস কৰা জনজাতিসমূহৰ ভিতৰত এটা প্ৰধান জনজাতি হৈছে মনপা। মংগোলীয় জনগোষ্ঠীৰ অন্তৰ্গত মনপাসকল বৌদ্ধ ধৰ্মাৱলম্বী। মনপাসকলৰ জীৱনৰ আধাৰত অসমীয়া ভাষাত বৰ্তমানলৈকে দুখন উপন্যাস ৰচনা হৈছে আৰু দুয়োখনেই ঠংচিৰ দ্বাৰা ৰচিত। অধ্যয়নৰ বাবে নিৰ্বাচিত শৱ কটা মানুহ (২০০৪) নামৰ উপন্যাসখন অসমীয়া উপন্যাসৰ ইতিহাসত এক বিশিষ্ট সংযোজন। দৰজে নিজে এজন জনজাতীয় লেখক হিচাপে ভৌগোলিক, ৰাজনৈতিক, অৰ্থ-

অংশকালীন সহকাৰী অধ্যাপক,
অসমীয়া বিভাগ
ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয় (অসম)
☎ ৮৬৩৮৮৭৯৪৭৬
✉ sikhanath121@gmail.com

সামাজিকভাৱে প্ৰান্তীয় জনজাতীয় সমাজখনক প্ৰান্তৰ পৰাই লক্ষ্য কৰি সাধাৰণভাৱে প্ৰচলিত সাহিত্য পৰম্পৰা তথা ইতিহাসৰ মহাবৃত্তান্ত (Grand Tradition) আৰু অধিবৃত্তান্ত (Meta Narrative) প্ৰান্তীয় বা উপেক্ষিত হৈ থকা সেই সমাজৰ স্থানীয় বৃত্তান্তবোৰৰ বৰ্ণনাৰ যোগেদি লিখিত ইতিহাসে একাধৰীয়া কৰা স্থানীয় মানুহৰ ইতিহাসৰ উপস্থাপন তেওঁৰ লেখনিৰ এক প্ৰধান বৈশিষ্ট্য।

বৃত্তান্ত হৈছে কোনো কথাবস্ত্তৰ বৰ্ণনা। বৰ্ণনা অনুসৰি বৃত্তান্তবোৰক বিভিন্ন ভাগত ভগোৱা হয়। মহাবৃত্তান্ত হ'ল এক কৌশলগত সিদ্ধান্ত, যিয়ে কোনো বৃত্তান্তক পাঠকে গ্ৰহণ কৰাৰ ক্ষেত্ৰত মনত এক নিৰ্দেশ সৃষ্টি কৰে। অৰ্থাৎ মহাবৃত্তান্তই সাধাৰণতে প্ৰভাৱশালী শ্ৰেণীৰ কাহিনী বৰ্ণনা কৰি পাঠকৰ মনত কিছুমান ধাৰণাৰ সৃষ্টি কৰে। মহাবৃত্তান্তক আশ্ৰয় কৰি অধিবৃত্তান্ত (Meta Narrative) নিৰ্মাণ হয়। এনে বৃত্তান্তত কোনো ঐতিহাসিক ঘটনাৰ অভিজ্ঞতা, সামাজিক-সাংস্কৃতিক পৰিঘটনা তথাকথিত সাৰ্বজনীন সত্য বা সাৰ্বজনীন মূল্যৰ ভিত্তিত সামগ্ৰীকৰণ কৰা হয়। মহাবৃত্তান্ত আৰু এনে সামগ্ৰীকৃত অধিবৃত্তান্তৰ মাজত ক্ষুদ্ৰ আঞ্চলিক বৃত্তান্তবোৰে (little Narrative) স্থান নাপায়। আনহাতে ইতিহাস হৈছে অতীতৰ সৌৰৰণি বা অভিলেখ, যি সাধাৰণতে মহাবৃত্তান্ত আধাৰিত। মহাবৃত্তান্ত আধাৰিত ইতিহাসৰ ব্যাখ্যা আধিপত্যবাদী হ'ব পাৰে। প্ৰচলিত এনে ইতিহাসত স্থানীয় মানুহৰ (Native people) চেতনা আৰু জীৱন সংগ্ৰামৰ ছবি সদায় তল পৰি ৰয়। ইতিহাসে উপেক্ষা কৰা এনে মানুহ অথবা বিষয়ক বুজাবলৈ 'প্ৰান্তীয়', 'অন্য', 'নিম্নবৰ্গীয়' আদি অভিধা ব্যৱহাৰ কৰা হয়। *শৱ কটা মানুহ* উপন্যাসখনত মহাবৃত্তান্তৰ পৰিবৰ্তে এনে কিছুমান ক্ষুদ্ৰ স্থানীয় বৃত্তান্ত কিছুমানৰ বৰ্ণনা হৈছে য'ত 'অন্য' অথবা প্ৰান্তীয় শ্ৰেণীৰ মানুহৰ চেতনাৰ সন্ধান পাব পাৰি। অৰুণাচলৰ মনপা জনজাতিৰ লোকসকলে মৃত মানুহৰ শৱ এশ আঠ টুকুৰাকৈ কাটি নদীত উটুৱাই দি সংকাৰ কৰে। *শৱ কটা মানুহ* জনক মনপা ভাষাত 'থাম্পা' বোলা হয়। এটা জনজাতিৰ মৃতদেহ সংকাৰৰ এনে এটা পৰম্পৰা আৰু এজন থাম্পাৰ জীৱন কাহিনীৰ আঁত ধৰি টাৱাং জিলাত বাস কৰা মনপাসকলৰ জীৱন-সমাজত চীন-ভাৰতৰ কৃষ্ণ-ৰাজনৈতিক সম্পৰ্কৰ প্ৰভাৱ, ১৯৬২ চনৰ যুদ্ধ, যুদ্ধত মনপা মানুহৰ মৃত্যু, ১৯৫২ চনত অৰুণাচলৰ টাৱাং প্ৰশাসন তিব্বতৰ পৰা ভাৰত চৰকাৰলৈ হস্তান্তৰ, বৌদ্ধধৰ্মী মনপাসকলৰ জীৱনত 'দালাই লামা'ৰ প্ৰভাৱ আৰু গুৰুত্ব, ১৯৫০ চনৰ ভূমিকম্পত মনপা

মানুহৰ মৃত্যু আদি বিভিন্ন ঘটনা উপন্যাসখনত চিত্ৰিত হৈছে। সমাজ ব্যৱস্থাত 'অন্য' (other) বুলি বিবেচিত হোৱা এটা পৰম্পৰা তথা সামগ্ৰীকৃত ধাৰণা তথা সত্যৰ আধাৰত ৰচিত যুদ্ধ সম্পৰ্কীয় লিখিত ইতিহাসৰ বৰ্ণনাৰ আঁৰত থাকি যোৱা অথবা প্ৰান্তীয় মানুহৰ ক্ষুদ্ৰ বৃত্তান্তবোৰৰ বৰ্ণনাৰ জৰিয়তে যুদ্ধকালীন ভাৰতৰ অৰুণাচলৰ টাৱাং জিলাৰ স্থানীয় মনপা মানুহখিনিৰ অৱস্থা তথা তেওঁলোকৰ মানসিক যন্ত্ৰণাৰ ইতিহাসক উপন্যাসখন উপস্থাপন কৰা হৈছে।

০.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য আৰু গুৰুত্ব :

য়েছে দৰজে ঠংছিৰ শৱ কটা মানুহ উপন্যাসত 'অন্য' ৰ ইতিহাসৰ প্ৰতিফলন শীৰ্ষক গৱেষণা পত্ৰৰ মুখ্য উদ্দেশ্য হৈছে সাহিত্যৰ এক অন্যতম বিধা উপন্যাসত মহাবৃত্তান্ত আধাৰিত ইতিহাসৰ আঁৰত থাকি যোৱা ক্ষুদ্ৰ অথচ গুৰুত্বপূৰ্ণ বৃত্তান্তসমূহ *শৱ কটা মানুহ* উপন্যাসত কেনেদৰে প্ৰতিফলিত হৈছে সেয়া অধ্যয়ন কৰা।

সাহিত্য সমাজৰ উপৰিসৌধ তথা সমান্তৰাল ইতিহাস। গতিকে ইতিহাসৰ অকথিত কাহিনী, বৃত্তান্ত জনাৰ ক্ষেত্ৰত সাহিত্য সহায়ক হৈ উঠে। সেয়েহে বৰ্তমান সময়ত ইতিহাসবিদসকলে 'নিম্নবৰ্গীয় ইতিহাস তত্ত্ব' নামেৰে ইতিহাস অধ্যয়নৰ নতুন ধাৰাটোত ইতিহাসৰ তথ্য সন্নিৱিষ্ট কিন্তু মূলসুঁতিৰ ইতিহাস হিচাপে বিবেচিত নোহোৱা বিভিন্ন সমলৰ লগতে সাহিত্যৰ যোগেদি ইতিহাসৰ অধ্যয়ন কৰি ইতিহাসক এক নতুন ৰূপ দিবলৈ চেষ্টা কৰিছে। এই ক্ষেত্ৰত ৰাজনৈতিক-সামাজিক যুদ্ধ-বিগ্ৰহ, দ্বন্দ্ব, বিদ্ৰোহেৰে পূৰ্ণ উত্তৰ-পূৰ্ব ভাৰতৰ মূলসুঁতিৰ ৰাজনৈতিক ইতিহাসে নোকোৱা ৰাজনৈতিক-সামাজিক অস্থিৰতাৰ ভোক্তাভোগী সাধাৰণ মানুহখিনিৰ কণ্ঠ তথা চেতনা জানিবলৈ ইতিহাস আধাৰিত সাহিত্যৰ অধ্যয়নৰ প্ৰয়োজন আছে। সেই দিশৰ পৰা ৬২ চনৰ যুদ্ধ বিধ্বস্ত অৰুণাচলৰ প্ৰান্তীয় জনজাতীয় সমাজখনৰ সম্পৰ্কে জানিবলৈ সেই সমাজৰে এজন লেখক হিচাপে য়েছে দৰজে ঠংছিৰ নিৰ্বাচিত উপন্যাসখন অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আছে।

০.৩ অধ্যয়নৰ তত্ত্ব আৰু পদ্ধতি :

বিষয়টো অধ্যয়নৰ বাবে নিম্নবৰ্গীয় ইতিহাস তত্ত্বক তাত্ত্বিক আধাৰ হিচাপে গ্ৰহণ কৰা হৈছে। ইটালীৰ সমাজবাদী লেখক আন্টনিও গ্ৰামছিয়ে তেওঁৰ *Prison Notebook* গ্ৰন্থত পোন প্ৰথমবাৰৰ বাবে Subaltern শব্দটো ব্যৱহাৰ

কৰিছিল। গ্ৰামছিয়ে ব্যৱহাৰ কৰা Subaltern শব্দটোৰ বাংলা প্ৰতিশব্দ হিচাপে ৰণজিৎ গুহই ‘নিম্নবৰ্গীয়’ শব্দটো ব্যৱহাৰ কৰিছে। গুহই ভাৰতীয় জাতীয়তাবাদৰ ইতিহাসত ঔপনিৱেশিক আৰু বুৰ্জোৱা উচ্চবৰ্গৰ আধিপত্য দেখা যায় বুলি সমালোচনা কৰি ইতিহাসত ‘অন্য’, ‘খলুৱা’, ‘অ-উচ্চবৰ্গীয়’ কণ্ঠৰ অধ্যয়নৰ পোষকতা কৰিছিল। পৰৱৰ্তী সময়ত ডেভিদ হাৰ্ডিমেণ, পাৰ্থ চেটাৰ্জী, গায়ত্ৰী চক্ৰৱৰ্তী স্পিভাক আদি চিন্তাবিদৰ হাতত নিম্নবৰ্গীয় ইতিহাস তত্ত্বই বিকাশ লাভ কৰে। এই তত্ত্বৰ মূল লক্ষ্য হ’ল পৰম্পৰাগত ইতিহাসত তল পৰি ৰোৱা প্ৰান্তীয় মানুহৰ কণ্ঠস্বৰ উলিয়াই আনি প্ৰতিষ্ঠা কৰা। গতিকে সামগ্ৰিকভাৱে ক’ব পাৰি যে নিম্নবৰ্গীয় অধ্যয়ন তত্ত্ব হৈছে অন্য বা প্ৰান্তীয়ৰ ইতিহাস (The others History), জাগৰণৰ ৰাজনীতি, আন্দোলন আৰু নিজস্ব ইতিহাস নিৰ্মাণৰ প্ৰয়াসৰ ইতিহাস।

অধ্যয়নৰ পদ্ধতি হিচাপে বিষয়-বিশ্লেষণ পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

০.৪ বিষয়ৰ বিশ্লেষণ :

আও থাম্পা ওৰফে দ্যাৰগে নৰবুৰ নামৰ এজন মনপা সম্পদায়ৰ ব্যক্তিৰ বৰ্ণনাৰে শৰ কটা মানুহ উপন্যাসখনৰ কাহিনী আৰম্ভ হৈছে। নিজৰ জন্মপ্ৰদত্ত নাম দ্যাৰেগা নৰবু প্ৰায় লোপ পাই আও থাম্পা নামেৰে পৰিচিত মানুহজনৰ কাম হ’ল শৰ কটা, মদ খাই অল্লীল ভাষাৰে গাঁৱৰ মানুহক গালি-গালাজ কৰা, মৰাশক সংকাৰ কৰি আহি তাৰ তেজ-পুজ চৰ্বি লগা দুগন্ধময় কপোৰেৰে ঘৰত শুই পৰা, পিছদিনা পুনৰ শুৱাৰ পৰা উঠি মৰাশ কাটি সংকাৰ কৰিবলৈ যোৱা। থাম্পাৰ পৰিয়াল বুলিবলৈ তেওঁৰ পত্নী গুইচেংমু আৰু বিকলাংগ জীয়েক ৰিজোম্বা। এনে এজন থাম্পাৰ বৰ্ণনাৰে আগবঢ়া কাহিনীটোৰ গতিত লাহে লাহে উন্মোচিত হৈছে থাম্পাৰ শৈশৱ, কৈশোৰ যৌৱন, প্ৰেম, চীন-ভাৰতৰ যুদ্ধই চূড়মাৰ কৰা পৰিয়াল, প্ৰেম, স্বপ্ন আৰু হঠাৎ পৰিৱৰ্তিত হোৱা জীৱনৰ যন্ত্ৰণাময় ইতিহাস। এক ৰক্তাক্ত আৰু যন্ত্ৰণাময় অব্যক্ত ইতিহাসৰ সাক্ষী হৈছে আও থাম্পা। আও থাম্পাৰ জীৱন বৰ্ণনাৰ মাজেৰে প্ৰকাশিত বৃত্তান্তৰো তেওঁৰ কেৱল ব্যক্তিগত বৃত্তান্ত নহয় বৰং ইতিহাসৰ আঁৰত থাকি যোৱা উপেক্ষিত মানুহৰ সামগ্ৰিক বৃত্তান্ত।

ৰাষ্ট্ৰ আৰু সমাজ-কাঠামোৰ বিভিন্ন ক্ষেত্ৰত ক্ষমতাৰ বিন্যাসে সৃষ্টি কৰা উপেক্ষিত প্ৰান্তীয় মানুহৰ প্ৰতিনিধি হ’ল আও থাম্পা। শৰ কটা ব্যক্তিক অসমীয়া সমাজত ‘চণ্ডাল’

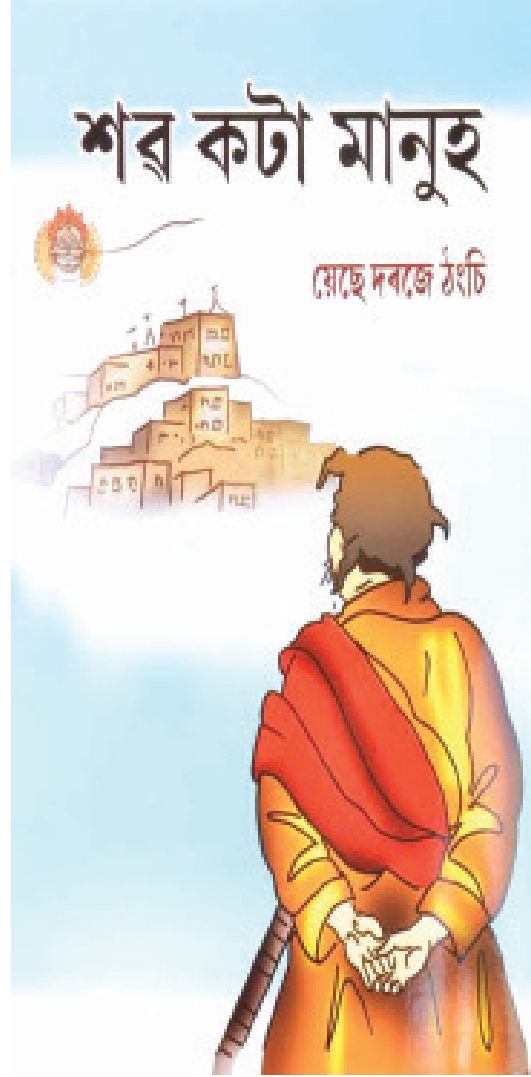
শব্দৰে বুজোৱা হয়। ভাৰতীয় বৰ্ণবাদী সমাজ ব্যৱস্থাৰ ক্ষমতাৰ বিন্যাসত চণ্ডাল এজনৰ সামাজিক স্থিতি যথেষ্ট নিম্নতাপৰ। সামাজিক অৱস্থানৰ বাবে তেনে ব্যক্তিবিশেষ বা ‘সমূহ’ৰ কাহিনী বা টমা’ক ইতিহাসেও স্থান নিদিয়ে। গতিকে তেনে এজন ব্যক্তিক নায়ক হিচাপে উপস্থাপন কৰি বৰ্ণনা কৰা কাহিনী আৰু উপন্যাসখনৰ নামটোৱে কেন্দ্ৰ বিচ্যুত প্ৰান্তীয় মানুহৰ কাহিনীকে বহন কৰিছে।

ঔপন্যাসিকে প্ৰত্যক্ষভাৱে কোনো ৰাজনৈতিক ইতিহাসৰ পৰ্যালোচনা কৰা নাই, কিন্তু সেই ইতিহাস নিৰ্মিত সাধাৰণ মনপা মানুহখিনিৰ চেতনা আৰু যন্ত্ৰণাৰ স্মৃতি উপন্যাসখনত চিত্ৰিত কৰিছে। গণ-প্ৰজাতান্ত্ৰিক চীনৰ দ্বাৰা তিব্বত অধিগ্ৰহণ, অধিগ্ৰহণৰ কাৰণ হিচাপে ধৰ্মপ্ৰধান সামন্ততন্ত্ৰৰ পৰা তিব্বতক মুক্তি দিয়াৰ চীনৰ যি আদৰ্শগত তাগিদা, ১৯৫৯ চনত তিব্বতী বিদ্ৰোহৰ পাছত ভাৰতে দালাই লামাক আশ্ৰয় দিয়াৰ পাছত দুয়োখন দেশৰ মাজত সীমা সংঘৰ্ষ আদি জটিল ৰাজনৈতিক কথাবোৰ আও থাম্পা অথাৎ দ্যাৰগে নৰবুৰ দৰে সাধাৰণ মনপা মানুহখিনিৰ বোধৰ বাহিৰৰ কথা আছিল। একো নুবজাকৈয়ে তেওঁলোক ক্ষমতাৰ ৰাজনীতিৰ অংশ হৈ পৰি তাৰ ভয়ংকৰ আৰু যন্ত্ৰণাময় ফলাফলৰ ভুক্তভোগী হৈ জীৱন কটাব লগা হৈছে। ৰাজনৈতিক বাদ-বিবাদে সাধাৰণ সৰল যুৱক দ্যাৰগে নৰবুক নিষ্ঠুৰ ‘থাম্পা’লৈ পৰিণত কৰিছে। নৰবুৰ প্ৰেমিকা ৰিজোম্বা ‘আনে চাংপে’ অৰ্থাৎ সন্মাসীলৈ পৰিণত হৈছে। নৰবু দ্যাৰগে, ৰিজোম্বা, জিগমে, তাৱা, প্ৰেমা আদি উপন্যাসখনৰ সৰু বৰ চৰিত্ৰবোৰৰ মাজতে আছে ‘অন্য’ নিৰ্মাণৰ প্ৰক্ৰিয়াৰ ইতিহাস।

দ্যাৰগেৰ ফ্লেচবেকৰে আৰম্ভ হোৱা উপন্যাসখন বৰ্ণনা অনুসৰি দ্যাৰগেৰ কৈশোৰ-যৌৱনৰ সময়খিনিত আৰম্ভ হৈছিল চীন-ভাৰতৰ যুদ্ধৰ বিভীষিকা। মাও চেং টুৰ দ্বাৰা তিব্বতৰ অধিগ্ৰহণৰ পাছত টাংৱালৈ অহা দলে দলে ভগনীয়া, জিলাখনত ভৰি পৰা জাক জাক ভাৰতীয়, সৈন্য, সঘনাই আকাশত যুদ্ধ বিমানৰ উৰণ আদিয়ে ঠাইখন অস্থিৰ কৰি তুলিছিল। এনে ৰাজনৈতিক, সামাজিক অস্থিৰতাৰ সময়তো দ্যাৰগে নৰবুৰ দৰে সাধাৰণ মানুহখিনিৰ মাজত একতা আৰু প্ৰেম আছিল। ক্ষমতা দখলৰ ৰাজনীতিৰ আওভাও নোপোৱা মানুহখিনিয়ে সাধাৰণভাৱে দুবেলা দুমুঠি অন্নৰ বাবে পৰিশ্ৰম কৰিছিল। কিন্তু দুখন ৰাষ্ট্ৰৰ ক্ষমতা বিস্তাৰৰ ৰাজনীতি আৰু শত্ৰুতাৰ যুদ্ধখনে নৰবুৰ লগতে টাৱাং

জিলাৰ মনপা মানুহখিনিৰ জীৱনৰ গতি সলনি কৰি পেলালে। দ্যাৰগে নৰবুক পৰিশ্ৰমী যুৱক এজনৰ পৰা আধা-পাগল, অসভ্য, নিষ্ঠুৰ থাম্পালৈ পৰিৱৰ্তিত কৰিছিল। যুদ্ধই নিধন কৰা নিজৰ আত্মীয় স্বজন, বন্ধুক নিজ হাতে সংকাৰ কৰাৰ পাছত দ্যাৰগেই চেতনা হেৰুৱাই নিজৰ মাকক জীৱন্ত অৱস্থাত কাটি টুকুৰা-টুকুৰ কৰিছিল। মাকক হত্যা কৰাৰ অনুশোচনা, যুদ্ধই কাটি নিয়া আত্মীয়-স্বজনৰ যন্ত্ৰণাময় স্মৃতি বুকুতলৈ জীয়াই থকা দ্যাৰগে নৰবুক কাহিনীয়ে সম-সাময়িক মনপা মানুহখিনিৰ যন্ত্ৰণাময় স্মৃতিৰ ইতিহাসকে প্ৰতিফলিত কৰে, যি ইতিহাস উচ্চশ্ৰেণী নিৰ্মিত মূলসুঁতিৰ সমাজ-ৰাজনৈতিক ইতিহাসৰ বিষয়বস্তু হ'ব পাৰে বুলি ভৱা নহয়। সেয়েহে আমাৰ প্ৰচলিত ইতিহাসত তিব্বতৰ গণ আন্দোলন, বৌদ্ধ ধৰ্মৰ ওপৰত জোৰকৈ কমিউনিষ্ট আদৰ্শৰ জাপি দিয়াৰ প্ৰচেষ্টা, ভাৰত চীনৰ যুদ্ধৰ বৃত্তান্ত সন্নিৱিষ্ট হৈছে কিন্তু দ্যাৰগে নৰবুয়ে প্ৰতিনিধিত্ব কৰা ৰাজনৈতিক কন্দলত পুতলাৰ দৰে বৰাহাত হোৱা মনপা মানুহখিনিৰ জীৱন কাহিনী সন্নিৱিষ্ট নহয়। এই ক্ষেত্ৰত 'অন্য' বা প্ৰান্তীয়ৰ ইতিহাস সম্পৰ্কে গ্ৰায়ত্ৰী চক্ৰৱৰ্তী স্পিডকে লিখিছিল “.... in the context of colonial production, the subaltern has no history and cannot speak..”^১ অৰ্থাৎ ঔপনিবেশিক উৎপাদনৰ ইতিহাসত নিম্নবৰ্গীয় মানুহৰ কোনো ইতিহাস নাই, তেওঁলোক নিমাত। ইতিহাসত নিমাত Subaltern বা নিম্নবৰ্গীয় সজ্জাৰে সজ্জায়িত কৰিব পৰা প্ৰান্তীয় মনপা মানুহখিনিৰ জীৱনৰ বৃত্তান্তক ইতিহাসৰ আঁৰৰ পৰা তুলি আনিছে ঔপন্যাসিকে।

নিম্নবৰ্গীয় প্ৰান্তীয় মানুহৰ এটা প্ৰধান সমস্যা হ'ল ঐতিহাসিক উত্তৰণৰ সমস্যা। প্ৰান্তীয় মানুহক সদায় আধিপত্যকাৰী ৰাজনৈতিক শক্তিয়ে নিজৰ স্বাৰ্থৰ বাবে ব্যৱহাৰ কৰে। ৰাজনৈতিক ক্ষমতাৰ হস্তান্তৰ হয়, ৰাজনৈতিক ইতিহাসৰ পট পৰিৱৰ্তন হয় কিন্তু শ্ৰমজীৱী সাধাৰণ মানুহখিনিৰ অৱস্থাৰ কোনো উত্তৰণ নহয়। টাৱাং জিলাৰ মনপাসকলৰ অৱস্থাও ৰাজনৈতিক পট পৰিৱৰ্তনে উত্তৰণ ঘটোৱা নাই বৰঞ্চ অধিক শোচনীয় হৈ কৰি তুলিছিল। আধিপত্যকাৰী ৰাজনীতি বা আদৰ্শৰ পৰা বহু আঁতৰত অৱস্থান কৰা এই মানুহখিনিয়ে অৰুণাচল তিব্বতৰ অধীন হৈ থাকোঁতেও অমানুষিক পৰিশ্ৰম কৰাৰ লগতে তিব্বত চৰকাৰৰ যি শোষণৰ বলি হৈছিল, পৰৱৰ্তী সময়ত অৰুণাচল ভাৰতত অন্তৰ্ভুক্তকৰণ, তিব্বতী বিদ্ৰোহ আৰু ভাৰত-চীনৰ যুদ্ধৰ আদি সমগ্ৰ ৰাজনৈতিক উত্থান-পতনৰ



প্ৰক্ৰিয়াবোৰতো একেদৰে শোষিত আৰু লাঞ্চিত হৈছিল। উপন্যাসখনত সেই প্ৰসংগবোৰ প্ৰকাশ হৈছে এনেদৰে—

“আগৰ দৰে তিব্বতীয় উচ্চ বিষয়াসকলৰ বোজা, তেওঁলোকে মনপাসকলৰ পৰা সংগ্ৰহ কৰা কৰৰ শস্যৰ বোজা কঢ়িয়াবলগা নহ'লেও ভাৰতীয় বিষয়া আৰু সৈন্যবাহিনীৰ বোজা কঢ়িয়াওতে মনপা মানুহবিলাকৰ পিঠি কুজা হ'বলৈ আৰম্ভ কৰিলে.....”^২

শোষিতৰ পিঠিৰ বোজা ইতিহাসৰ পৰিৱৰ্তনে লাঘব কৰিব নোৱাৰে। আধিপত্যকাৰী শ্ৰেণীৰ ক্ষমতা বাঢ়ে, প্ৰভাৱ বাঢ়ে কিন্তু সাধাৰণ মানুহে সদায় মৌলিক প্ৰয়োজনবোৰৰ বাবে কঠোৰ সংগ্ৰাম কৰিব লাগে। উপেক্ষিতৰ পিঠিৰ বোজা

লাঘব নহয়। ৰাজনৈতিক কন্দলে সাধাৰণ মানুহক আটাইতকৈ বেছি ক্ষতিগ্ৰস্ত কৰে। চীন-ভাৰতৰ যুদ্ধৰ আগৰ পৰাই টাৱাঙৰ মনপা মানুহখিনি ভৌগোলিক, ৰাজনৈতিক তথা আৰ্থ-সামাজিক দিশৰ পৰা প্ৰান্তীয় ‘সমূহ’ হিচাপেই বিবেচিত হৈ আহিছিল। যুদ্ধই তেওঁলোকক বেছি ক্ষতিগ্ৰস্ত আৰু লাঞ্চিত কৰি অধিক উপেক্ষিত শ্ৰেণী হিচাপে নিৰ্মাণ কৰিছে। যুদ্ধৰ বাবে ঠাইখনত ভৰি পৰা ভাৰতীয় সেনাৰ দ্বাৰা সেই সময়ত বহু স্থানীয় মনপা নাৰী ধৰ্ষিতা হৈছিল। আকৌ, সেই সেনাৰে টেলিফোনৰ তাৰৰ বোজা কঢ়িয়াই লুমপোত নামৰ সীমান্ত অঞ্চললৈ যোৱা দ্যাৰগেৰ আটাইবোৰ বন্ধু-বান্ধবীৰ লগতে বহুবোৰ মনপা মানুহ, চীনা আৰু ভাৰতীয় সেনাৰ আক্ৰমণ-প্ৰত্যাক্ৰমণত নিহত হৈছিল। বহু মানুহ গৃহহাৰা হৈছিল। দ্যাৰগেৰ প্ৰেমিকা বান্ধবী বিজোন্মা, জিগমে আৰু চাংদ্ৰাকপায়ৰ প্ৰেমিকা নিৰুদ্দেশ আৰু নিহত হৈছিল। সেই ভংগৰ সময়ৰ ইতিহাসে দিয়াৰ যন্ত্ৰণাৰ উমান দ্যাৰগে কথাত পোৱা যায় এনেদৰে—

“মই নিজে গাঁও এৰা নাছিলো। চীনা যুদ্ধই মোক গাঁওৰ পৰা বিছিন্ন কৰি দিলে, মোৰ মানুহ বিলাকৰ পৰা মোক বিছিন্ন কৰি দিলে।”^৩

আত্মীয়ৰ পৰা বিছিন্ন, প্ৰেম আৰু স্বপ্ন ভংগৰ যন্ত্ৰণাই মানসিক ভাৰসাম্যহীন কৰি পেলোৱা দ্যাৰগেৰ দৰে উপেক্ষিত মানুহৰ কণ্ঠই ক্ষমতাৰ বাবে যুজ-বাগৰ কৰা ৰাজনীতি আৰু সমাজৰ কেন্দ্ৰীয় অৱস্থাত থকা শক্তিবোৰ স্পৰ্শনকৰে। বঞ্চনা আৰু চকুপানীৰ কাহিনী লৈ তেওঁলোক নীৰৱে ইতিহাসৰ আন্ধাৰত পৰি থাকে।

প্ৰান্তীয়তা সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰা নিম্নবৰ্গৰ ইতিহাসতকৈ ইয়াক যে নিম্নবৰ্গৰ চেতনা স্বতন্ত্ৰ অথচ পৰাধীন।^৪ অৰ্থাৎ নিম্নবৰ্গৰ লোকসকল পৰাধীন হ’লেও তেওঁলোকৰ চেতনা নিজীৱ আৰু পৰাধীন নহয়। নিম্নবৰ্গীয় লোকসকলে কেৱল উচ্চবৰ্গীয়ৰ দ্বাৰাই পৰিচালিত হৈ নাথাকি বহু সময়ত স্বতন্ত্ৰ ধৰণেৰে সংগঠিত হোৱাও দেখা যায়। *শৱ কটা মানুহ* উপন্যাসখনতো দেখা যায় যে যুদ্ধৰ ভয়াবহতা আৰু নিষ্পাপ আত্মীয়ৰ অকাৰণ মৃত্যুয়ে মানুহখিনিক মানসিক যন্ত্ৰণা দিয়াৰ লগতে তেওঁলোকৰ নিজৰ অস্তিত্বকো উপলব্ধি কৰোৱাইছে। উপন্যাসখনত তাৰ বৰ্ণনা আছে এনেদৰে—

“টাৱাংচু নদীৰ ওপৰৰ দলঙখনো ভাৰতীয় সৈন্যসকলে বোম মাৰি উৰুৱাই দিলে। গুলী লাগি তাতেও হেনো আমাৰ মনপা মানুহ বহুত মৰিল। আমাৰ মানুহবিলাক নিজৰ ঘৰ-

বাৰী এৰি পলাব নালাগিছিল। পলাই তেওঁলোকে মূৰ্খামী কৰিছে। যি ৰজাই নাথাকক আমাৰ প্ৰজাৰ কি? যাৰেই তলত নাথাকক আমাৰ পিঠিৰ বোজা লাঘব হ’বনে?”^৫

যুদ্ধত নিজৰ বন্ধু-বান্ধব হেৰুৱা, আত্মীয়ৰ পৰা বিছিন্ন হোৱা এজন মনপা বৃদ্ধৰ উল্লিখিত কথাখিনিয়ে ৰাজনৈতিক কন্দলত নিপীড়িত সাধাৰণ মানুহৰ স্ব-সত্তাৰ অস্তিত্ব সম্পৰ্কে মনত হোৱা বোধোদয়কে প্ৰতিবিস্তিত কৰে।

উচ্চবৰ্গৰ মানুহে নিম্নবৰ্গৰ প্ৰান্তীয় মানুহৰ প্ৰতি পোষণ কৰা হীন মনোভাৱ আন এক ঐতিহাসিক সত্য। এই সত্য মহাবৃত্তান্তৰে নিৰ্মিত ইতিহাসত উন্মোচিত নহ’লেও প্ৰান্তীয় সমাজৰ লেখক হিচাপে এই সত্যক ঠংচিয়ে উপন্যাসখনৰ কিছু বৰ্ণনাত উন্মোচিত কৰিছে। অৰুণাচলৰ জনজাতীয় সমাজখনতো জাত-পাতৰ বিভেদ আছে। সেই সমাজখনতো ক্ৰম অনুসাৰে এটা জনজাতিয়ে আন এটা জনজাতিক হীন বুলি গণ্য কৰে। পথাৰত কাম কৰি থকা দ্যাৰগেৰ এৰেষ্ট কৰিবলৈ অহা পুলিচৰ এ-এছ-আই তাওজিঙে দ্যাৰগেৰ মাৰ-পিট কৰি মনপা সম্প্ৰদায়টোক অপমানজনক গালি পৰাৰ বৰ্ণনাৰ মাজেৰে এই জাতিগত উচ্চাভিলাষ আৰু নিম্নজাতিৰ প্ৰতি হীন মনোবৃত্তিৰ প্ৰতিফলন হৈছে এনেদৰে—

“পচা মনপাসকলৰ পচা শৱ কটা মানুহ, মদাহী মনপাসকলৰ শৱ কটা থাম্পা মনপা, গৰু খোৱা মনপা.....”^৬

মহাবৃত্তান্তৰ আঁৰত থাকি যোৱা ক্ষুদ্ৰ বৃত্তান্তত সাৰ্বজনীনতাৰ বিৰুদ্ধে অস্থায়ী চিন্তা, বিভিন্নতা, বহুত্ব পাৰ্থক্য আদিয়ে গুৰুত্ব পাই। এই চিন্তাক উত্তৰ-আধুনিকতাবাদী লেখক ফচোঁৱা লিওটাৰে মহাবৃত্তান্তৰ বিপৰীতে ক্ষুদ্ৰ বৃত্তান্ত হিচাপে ব্যাখ্যা দিছে। *শৱ কটা মানুহ* উপন্যাসখনতো যুদ্ধৰ বিৰবৰ্ণৰ বিপৰীতে যুদ্ধই সাধাৰণ মানুহৰ মনত জীৱনত সৃষ্টি কৰা বেমেজালি তথা মানসিক যন্ত্ৰণাৰ চিত্ৰণৰ লগতে মহাবৃত্তান্তত ‘অন্য’ বুলি বিবেচিত মনপা মানুহখিনিৰ চিন্তা-ধাৰণা, বিশ্বাস, পৰম্পৰাক তুলি ধৰা হৈছে। ইয়াৰ উপৰিও মনপাসকলৰ খাদ্যাভাস, পৰম্পৰাগত লোক উৎসৱ - টোৰগ্যা, লোচেৰৰ বৰ্ণনা, অৰুণাচলৰ পাংচেপা জনজাতিৰ মাজত থকা মাজত থকা বিষকন্যা সম্পৰ্কীয় অন্ধবিশ্বাসৰ প্ৰসংগ উপন্যাসখনত পোৱা যায়।

প্ৰভাৱশালী মহাবৃত্তান্তত সাধাৰণতে উচ্চ জাতিৰ বীৰগাথা অথবা নায়কৰ কাহিনীয়ে কেন্দ্ৰীয় সূত্ৰ হিচাপে কাম কৰে। কিন্তু এই উপন্যাসখনত সেই পৰম্পৰা ভাঙি

এজন সাধাৰণ শৰ কটা ব্যক্তিক নায়ক হিচাপে উপস্থাপন কৰি তেওঁৰ জীৱন সংঘাত, আদৰ্শ আৰু উত্তৰণৰ কাহিনী বৰ্ণনাৰ মাজেৰে প্ৰান্তীয় মানুহৰ স্বকীয় সত্তাটোক তুলি ধৰিছে।

উপন্যাসখন ভাষাগত দিশৰ পৰাও দেখা যায় যে ঔপন্যাসিকে এটা ভাষিক stereotype বাগ্‌ধাৰা ভাঙিছে। অৰুণাচলৰ ভাষাসমূহৰ লিপি নথকা বাবে অসমীয়া, ইংৰাজী বা হিন্দী আদি ভাষাতে অৰুণাচলৰ সাহিত্যিকসকলে সাহিত্য সৃষ্টি কৰে। সাধাৰণতে এখন সুকীয়া ৰাজ্যৰ এটা প্ৰভাৱশালী ভাষিক পৰম্পৰাত অৰুণাচলৰ জনজাতিসমূহৰ কাহিনীক যি গতানুগতিক ধৰণে উপস্থাপন কৰা হয় তাৰ পৰিৱৰ্তে সেই প্ৰভাৱশালী ভাষিক পৰম্পৰাৰ ভিতৰতে থাকি ব্যতিক্ৰমী এটা কাহিনীৰ উপস্থাপন, লগতে মনপাসকলৰ মাতৃভাষাৰ প্ৰচুৰ শব্দ অথবা শব্দাংশৰ ব্যৱহাৰে পাঠগত আৰু এটা নিৰ্দিষ্ট ভাষিক আধিপত্য ভঙাটো উপন্যাসখন লক্ষণীয় দিশ।

০.৫ উপসংহাৰ :

নিম্নবৰ্গীয় বা প্ৰান্তীয় মানুহৰ ইতিহাস সম্পৰ্কে আণ্টনিও গ্ৰামচিয়ে লিখিছিল যে, “...‘ছাবল্টাৰ্ন’ অৰ্থাৎ নিম্নবৰ্গ শব্দৰে বুজোৱা লোকসকলৰ ইতিহাস সমাজ, ৰাষ্ট্ৰ আৰু ৰাষ্ট্ৰগোষ্ঠীৰ ইতিহাসৰ লগত একাকাৰ হৈ থাকে।”^১ অৰুণাচলৰ স্থানীয় মনপা মানুহখিনিৰ জীৱনৰ ইতিহাসো ৰাষ্ট্ৰ অথবা ৰাষ্ট্ৰ গোষ্ঠীৰ ইতিহাসৰ লগতে জড়িত হৈ আছিল। তেওঁলোকৰ স্বতন্ত্ৰ অস্তিত্ব উমান ৰাষ্ট্ৰৰ প্ৰচলিত ইতিহাসে নিদিয়ে। আমাৰ ৰাষ্ট্ৰৰ ইতিহাসে নোকোৱা ৰাজনীতিগত কন্দলে নিৰ্মাণ কৰা প্ৰান্তীয় মানুহে পোৱা উপেক্ষা আৰু শোষণৰ সঁচা ইতিহাসৰ বৰ্ণনা উপন্যাসখনত য়েছে দৰজে ঠংচিয়ে তুলি ধৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। প্ৰান্তীয় সমাজখনৰে অংশীদাৰ হিচাপে ঔপন্যাসিকে অধিক জীৱন্ত ৰূপত ‘অন্য’ বুলি বিবেচিত শ্ৰেণীসমূহৰ ক্ষুদ্ৰ বৃত্তান্ত কিছুমানৰ বৰ্ণনাৰ জৰিয়তে তেওঁলোকৰ সত্তা পোহৰলৈ আনিছে। □

প্ৰসংগ সূত্ৰ :

১। Gayatri Chakravorty Spivak, *Can the Subaltern Speak?*, p.28

২। য়েছে দৰজে ঠংচি, *শৰ কটা মানুহ*, পৃ.৬০

৩। উল্লিখিত, পৃ.১০১

৪। পাৰ্থ চট্টোপাধ্যায়, ‘ভূমিকা নিম্নবৰ্গৰ ইতিহাস চৰ্চা’, *নিম্নবৰ্গৰ ইতিহাস*, গৌতম ভদ্ৰ, পৃ.৮

৫। য়েছে দৰজে ঠংচি, পূৰ্বোল্লিখিত, পৃ.১২৩

৬। উল্লিখিত, পৃ.৭৭

৭। “The Subaltern classes by definition are not unified and can't until they are not able become a 'State': Their history therefore, is intertwined with the history of states and groups of state.”

---- Quinton Hoare and Geoffrey Nowell Smith (eds and trns.), *Selection from the Prison Notebooks of Antonio Gramsci*, p.202-203

গ্ৰন্থপঞ্জী:

অসমীয়া

ঠংচি, য়েছে দৰজে. *শৰ কটা মানুহ*. প্ৰথম প্ৰকাশ, বনলতা, ২০০৮

তাঁতী, কমল কুমাৰ. *নিম্নবৰ্গ সমাজ-ঐতিহ্য*. প্ৰথম প্ৰকাশ, আখৰ প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, ২০০৭

ঠাকুৰ, নগেন. (সম্পা.). *এশ বছৰৰ অসমীয়া উপন্যাস*. দ্বিতীয় প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, ২০১২

ভদ্ৰ, গৌতম আৰু পাৰ্থ চট্টোপাধ্যায় (সম্পা.). *নিম্নবৰ্গৰ ইতিহাস*, ৮ ম মুদ্ৰণ, আনন্দ পাব্লিশাৰ্চ, কলকতা, ২০১৫

Hoare, Quentin, and Geoffrey N. Smith, editors. *Selection Form The Prison Notebooks*. ElecBook, 1971

Spivak, Gayatri C. “Can the Subaltern Speak?”

ইমৰান শ্বাহৰ জবানবন্দী উপন্যাসত সমাজ পৰিৱৰ্তন

সংক্ষিপ্তসাৰ :



জ্যোৎস্না বড়ো

ৰামধেনু যুগৰপৰা সাম্প্ৰতিক সময়লৈকে সাহিত্যিক সমুদ্রিশালী কৰি অহা এগৰাকী গল্পকাৰ তথা ঔপন্যাসিক হ'ল ইমৰান শ্বাহ। ইমৰান শ্বাহৰ লেখাসমূহ স্বকীয় মহিমা আৰু গৰিমাৰে সংপৃক্ত। তেখেতৰ ভালেকেইখন উপন্যাস সমাজৰ দায়বদ্ধতাক লৈ ৰচনা কৰিছে। সাহিত্যৰ জৰিয়তে তেখেতে সমাজৰ বাস্তৱ ৰূপটো দাঙি ধৰিবলৈ সক্ষম হৈছে।

ইমৰান শ্বাহৰ কেইবাখনো উপন্যাসৰ ভিতৰত 'জবানবন্দী' এখন সুখপাঠ্য উপন্যাস। জবানবন্দী উপন্যাসত উজনি অসমৰ মুছলমানসকলৰ সমাজ-জীৱনৰ বিভিন্ন দিশ সামৰি লোৱা হৈছে। ইছলাম যে কেৱল এটা ধৰ্মই নহয়, ই যে এটা জীৱনপদ্ধতি উপন্যাসখনিত সাৰুৱা বক্তব্যসমূহৰ জৰিয়তে ফুটাই তোলা হৈছে। উপন্যাসখনিত দেখা যায় উজনিৰ অসমীয়া মুছলমানসকলৰ সমাজৰ পৰিৱৰ্তনৰ বিভিন্ন দিশ। জবানবন্দী উপন্যাসৰ জৰিয়তে অসমীয়া মুছলমানৰ সমাজখনৰ তেতিয়াৰ আৰু এতিয়াৰ পৰিৱৰ্তনটো অধ্যয়ন কৰা সুযোগ পাইছে।

সময় পৰিৱৰ্তনশীল। সময়ৰ সোঁতত মানুহে নতুনক আদৰি ল'বলৈ বাধ্য। ইমৰান শ্বাহৰ জবানবন্দী উপন্যাসত সামাজিক, সাংস্কৃতিক লগতে অন্যান্য পৰিৱৰ্তনৰ দিশসমূহ আছে। গৱেষণা পত্ৰখনৰ জৰিয়তে পৰিৱৰ্তনসমূহৰ বিষয়ে এটি আলোচনা দাঙি ধৰা হ'ব।

বীজশব্দ :

সাহিত্য, উপন্যাস, সমাজ, পৰম্পৰা।

০.০০ অৱতৰণিকা :

গল্পকাৰ তথা ঔপন্যাসিক ইমৰান শ্বাহৰ জন্ম হয় শিৱসাগৰ জিলাৰ ধাইআলি গাঁৱৰ এটিনবাব পৰিয়ালত ১৯৩৩ চনৰ ২৩ নৱেম্বৰ তাৰিখে। তেখেতে প্ৰাথমিক শিক্ষা গ্ৰহণ কৰে ধাইআলিস্থিত প্ৰাথমিক বিদ্যালয়ত। প্ৰাথমিক শিক্ষা সমাপ্ত কৰি শিৱসাগৰ চৰকাৰী উচ্চ মাধ্যমিক বিদ্যালয়ত নাম ভৰ্তি কৰে। ১৯৫২ চনত ইমৰান শ্বাহে গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়ৰ অধীনত মেট্ৰিক পৰীক্ষা দি প্ৰথম স্থান লাভ কৰিছিল। ইমৰান শ্বাহে ১৯৫৫ চনত শিৱসাগৰ কলেজত অসমীয়া বিভাগত অনাৰ্চ লৈ বি.এ. মহলাত নামভৰ্তি কৰে। তাৰ পাছত গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়ত অসমীয়া বিভাগত নামভৰ্তি কৰে। তেখেতশিৱসাগৰ কলেজত অধ্যাপকহিচাবে যোগদান কৰিছিল। ২০১৩ চনত বৰপেটাৰোডত অনুষ্ঠিত হোৱা বাসন্তৰ সংখ্যক অসম সাহিত্য সভাৰ সভাপতি আছিল।

ইমৰান শ্বাহে ছাত্ৰ অৱস্থাতে 'বনবাসী' নামৰ কাব্য সংকলনখনেৰে সাহিত্যৰ জগতত আত্মপ্ৰকাশ কৰে। শ্বাহে অসমীয়া সাহিত্যলৈকেইবাখনো উপন্যাস অৱদান হিচাপে

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়
☎ ৮৪৭১৮১৪৯৩৬
✉ borojyotsna61@gmail.com

দিছে। তেওঁৰ উপন্যাসসমূহ হৈছে — সংগীতৰ সিপাৰে (১৯৫২), অনমিতা (১৯৮০), ক্ৰান্তিৰেখা (১৯৮৩), বন্ধদুৱাৰ (১৯৮৪), সাগৰিকা (১৯৮৫), বৰ্ণালি (১৯৮৫), কবি পুলিচ আৰু এটা কবৰেই যথেষ্ট (১৯৮৬), জবানবন্দী (১৯৮৮), বনজ্যোৎস্না (১৯৯৫), তানসেন (২০০০), তথাপি সাগৰ (২০০৫), নাগফনা (২০১০)। ইমৰান শ্বাহ অসমীয়া সাহিত্য জগতত এগৰাকী গল্পকাৰ ৰূপে বিশেষ খ্যাতি অৰ্জন কৰি আহিছে। তেখেতৰ গল্পসংকলন সমূহ হৈছে— বন্দী বিসংগমে কান্দে (১৯৬০), পিয়ামুখচন্দা (১৯৬১), ইত্যাদি (১৯৬৪), শিখাৰ মিনতি (১৯৬৫), পথিক (১৯৬৫), পোৰামাতিৰ মালিতা (২০০৩), স্পৰ্শৰেখা (২০০৬), ইমৰান শ্বাহৰ নিৰ্বাচিত গল্প (২০০৯), কুকুহা (২০১২), হয়তোবা দেবদাস (২০১৭), দোকমোকালি (২০১৮)। ইমৰান শ্বাহক গীতিকাৰ হিচাপে জনা যায় ‘টোভাঙি টো’ গীতৰ পুথি ৰচনা কৰিছে। এনেদৰে তেওঁ অনুবাদ সাহিত্য, নাটক, প্ৰবন্ধ আদি ৰচনা কৰিছে। বৰ্তমান সময়লৈকে তেওঁ সাহিত্যচৰ্চা অব্যাহত ৰাখিছে।

ইমৰান শ্বাহৰ আটাইকেইখন উপন্যাসৰ ভিতৰত বহু চৰ্চিত উপন্যাসখন হ’ল জবানবন্দী। এই উপন্যাসখনত উজনি অসমৰ অসমীয়া মুছলমানৰ সমাজ জীৱনত থকা বিভিন্ন কথাৰ লগতে আধুনিকতাই কেনেদৰে প্ৰভাৱ পেলাইছে তাকে দেখুৱাইছে। ডাক্তৰ মোমাইটি, মৌলানা চাহেব, বকুনত দদাইটি, ৰংপুৰীয়া ককাইটি, কাদিৰ ভিষ্টি আদি সৰু-বৰ বিভিন্ন চৰিত্ৰৰ মাজেদি সমাজখনৰ বিভিন্ন দিশ দাঙি ধৰিছে। লেখকে উপন্যাসখনত কেতবোৰ দিশ অৱতাৰণা কৰিছে— বুৰঞ্জী (ডুৰ্ৰকী মেম আৰু নিখিৰাম ফাৰৱেলৰ প্ৰসঙ্গ), কবৰস্থানৰ আধ্যাত্মিকতা, সাম্প্ৰতিক গণতন্ত্ৰৰ স্বৰূপ, ধৰ্মৰ ধাৰণা, বিজ্ঞান আৰু ধৰ্মৰ বিৰোধ, দুখন বিয়াক কেন্দ্ৰ কৰি দেখুওৱা পৰিৱৰ্তন, মুছলমানসকলৰ ক্ৰমে লুপ্ত পাব ধৰা ৰাজধানী (সমূহীয়াভোজ) উৎসৱতাৰ ঠাই পালে বৰাখানাই, গাঁৱৰ শিক্ষিত চাকৰিয়াল এচামে প্ৰব্ৰজন কৰিলে নগৰলৈ, অৰ্থলিপ্সাৰে গঢ়ি উঠা এচাম লোক উদাহৰণস্বৰূপে— মোমাইটিৰ পুত্ৰ লতিফ আৰু ৰংপুৰীয়া ককাইটিৰ ল’ৰা বৌচনৰ দৰে চৰিত্ৰ, শিক্ষা-দীক্ষাৰ ক্ষেত্ৰত স্থান পালে আধুনিক পশ্চিমীয়া শিক্ষা আদি। এই দিশসমূহক কেন্দ্ৰ কৰিয়ে উজনিৰ অসমীয়া মুছলমান সমাজৰ পৰিৱৰ্তনসমূহ বিচাৰ কৰা হ’ব।

০.০১ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য :

এই গৱেষণা পত্ৰৰ জৰিয়তে ইমৰান শ্বাহৰ ‘জবানবন্দী’ উপন্যাসত প্ৰতিফলিত পৰিৱৰ্তিত সমাজখনক পোহৰলৈ অনাটোৱেই প্ৰধান লক্ষ্য আৰু উদ্দেশ্য।

০.০২ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি আৰু পৰিসৰ :

মূল বিষয়টি অধ্যয়নৰ বাবে বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে। সমাজ সচেতন লেখক ইমৰান শ্বাহৰ উপন্যাসৰ বিষয় যথেষ্ট বহল। এই অধ্যয়নত ‘জবানবন্দী’ উপন্যাসৰ সমাজৰ পৰিৱৰ্তনক পৰিসৰৰ অন্তৰ্ভুক্ত কৰি আলোচনা কৰা হৈছে।

০.০৩ মূল বিষয়বস্তু বিশ্লেষণ :

ইমৰান শ্বাহৰ জবানবন্দী উপন্যাসখনত অসমীয়া মুছলমান সমাজখনৰ পৰিৱৰ্তন দাঙি ধৰা হৈছে। বিশ্বায়নৰ প্ৰভাৱত অসমীয়া সমাজখনৰ লগতে অসমীয়া মুছলমান সমাজখনৰো পৰিৱৰ্তন হৈছে। তেখেতে শৈশৱৰ লগত যোৱাটো শতিকাৰ আশীৰ দশকৰ সমাজখন দুটা যুগৰ দুখন সমাজৰ লগত ৰিজাই চাইছে। উপন্যাসখনত অসমীয়া মুছলমানৰ দৈনন্দিন জীৱনৰ খাৱন-বোৱন, ধৰ্মীয় আচাৰ-ৰীতি, লোকবিশ্বাস, বিয়া-বাৰু, শিক্ষা-দীক্ষা আদি দিশত হোৱা পৰিৱৰ্তনৰ কথা অৱগত কৰিছে।

সময় পৰিৱৰ্তনৰ লগে লগে মানুহৰ মাজত যি পৰম্পৰাগতভাৱে যি বিশ্বাস আছিল সেইয়া ক্ৰমাৎ নাইকীয়া হৈ যাব ধৰিছে। আগৰদিনত অসমীয়া সমাজত বেমাৰৰ-আজাৰ হ’লে অপদেৱতা লভা বুলি জৰাফুকা কৰিছিল। এইনীতি সমান্তৰালকৈ অসমীয়া মুছলমান সমাজতো দেখা যায়—

“দেৱাই-পানী কৰিলোঁ। গুণ ধৰা নাছিল। মায়ে বাৰে বাৰে কৈছিল, হেৰৌ, দেৱাইমখা খেমেখাই নুখুৰাবিচোন, এইবোৰ অচিৰ। দেৱাইত বাঢ়িবহে। ঘাইকৈ মাইৰ কথাতেই ল’ৰাটোৰ গাত বসতি-তাবিজ লমা-লমে ওলমিছিল।”

(পৃ. ৩)

কিন্তু বৰ্তমান তাৰ পৰিৱৰ্তে আধুনিকতাৰ পৰশ পৰি চিকিৎসা বিজ্ঞানৰ প্ৰভাৱ পৰিছে। যদিও একেবাৰে এই পৰম্পৰা কমি যোৱা নাই। অৱশ্যে এইবিশ্বাসক একাংশ অসাধু লোকে ব্যৱসায় হিচাপে লোৱা হৈছে। এনেদৰে—

“আজি আৰু সেইবোৰ ক’ত লিম-হাকিমৰ জামানাত। আজিকালি দোল-ফঁহতি, তাবিজ-তুলাজ বিজিনেচ হৈ

গৈছে। কিবা বুজিলিনে এতিয়া, প্ৰফেচৰ।”

(পৃ. ৯)

মানুহে জন্ম গ্ৰহণ কৰিলে এদিন মৃত্যুবৰণ কৰিব, মানুহৰ মৃত্যুৰ পাছত যি ঠাইত বখা হয় তাৰ ধাৰণা উ পন্যাসখনত ব্যক্ত কৰিছে। অসমীয়া মুছলমান সমাজত এই ঠাইক কবৰস্থান বোলে। সাধাৰণতে বিভিন্ন গছ-গছনিৰে আৱৰা এটুকুৰা জয়াল ঠাই। এই ঠাইৰ সৈতে কিছুমান ভূত-প্ৰেত থকাৰ কথাও বিশ্বাস কৰা হয়। কিন্তু সেই ভয়লগা কবৰস্থান এতিয়া দেখিবলৈ পোৱা নাযায়। এই ক্ষেত্ৰতো পৰিৱৰ্তনে চানি ধৰিছে এনেদৰে—

“আজিকালি আমাৰ কবৰস্থান বাতি বিজুলী বাতি জ্বলে। চাৰিওফালে পকীবেৰা। চকুত লগা গেট। পকা কাটাৰ-কটা জানাজা ঘৰ। লা-ৱাৰিচ-মুৰ্দাঘৰ। খাদিমৰো পকা ঘৰ কিন্তু তেতিয়াৰ পৰিৱেশ বেলেগ আছিল।... নতুন মানুহৰ বাবে কবৰস্থানত একো নাই মৰালাচ পেলাই দিয়া এটুকুৰা জেগা মাথোন। যাৰ অন্য একো তাৎপৰ্য নাই।

(পৃ. ১৭)

মুছলমান সমাজত ধৰ্মীয় আচাৰ-ৰীতি ক্ষেত্ৰতো পৰিৱৰ্তন আহিছে। তেওঁলোকৰ আজান দিয়াৰ পৰিৱৰ্তনৰ কথা ঔপন্যাসিকে কৈছে—

“তাহানি হেনো একোজন মুৰাজ্জিনে আজান দিলে দুমাইল দূৰতো মানুহে চাফ শুনিছিল। আজিকালিতো মাইক নহ'লে নচলেই।”

(পৃ. ...)

আকৌ দেখা যায় আগৰ মানুহে গভীৰ আন্তৰিকতাৰে ধৰ্মীয় ৰীতি-নীতি পালন কৰিছিল। কিন্তু আজিকালি বাহ্যিক দিশৰ প্ৰতিহে আকৰ্ষিত হোৱা দেখা যায়। ঔপন্যাসখনত উল্লেখ থকা মতে—

“ধুংতেৰি। হেৰৌ ‘চালাত’ৰ অৰ্থ বুজা মানুহ বাঢ়িছে ক'ত। বেছিভাগতো দাড়ি ৰাখি ৰবীন্দ্ৰনাথ। শব্দ, শব্দ, শব্দ আৰু কোঢ়াল। আগতে ধৰ্ম কৰিবলৈ মানুহ নিজানলৈ



গৈছিল। আজিকালি ৰাজপথলৈ ওলাই আহে। প্ৰচেন কৰে।”

(পৃ. ৫)

মুছলমান সমাজত এসময়ত প্ৰচলিত ৰেয়াজ বৰ্তমান নাইকীয়া হৈছে। এই ৰেয়াজ হৈছে বিয়া-সবাহ আদি উৎসৱ, মৃতকৰ ঘৰখনক সাজুনা দিবলৈ অথবা মহৰমৰ মাহৰ দহ দিনত এনেধৰণৰ পুথি সুৰলগাই গোৱা হয়। ঔপন্যাসিকে এই ৰেয়াজৰ প্ৰসংগ আনিছে এনেদৰে—

“এহ সেই সুৰ ধৰি এজনে পঢ়ে। জুম পাতি এজাকে শুনে...। পাহৰিলোৱে নহয় সেইবোৰ গোটেইগাল। আমি আৰু তোমাৰ শুনি শুনিহে শিকা। নপঢ়া মানুহ। আজিকালি ৰেয়াজ নাই। ক'তনো মনত থাকিব।” (পৃ. ৭১)

মছজিদৰ ইমাম নিযুক্তিৰ ক্ষেত্ৰতো পৰিৱৰ্তন আহিল। কামৰ বিনিময়ত সকলোৱে টকা পাছত দৌৰা হ'ল।

বিবাহ এটি সামাজিক অনুষ্ঠান। গাঁৱৰ ৰাইজে উলাহ-মালহৰে বিবাহ অনুষ্ঠান পাতে মুছলমান সমাজত এইপদ্ধতিক ‘নিকাহ’ বুলি কোৱা হয়। এই অনুষ্ঠানৰ যিবোৰ নীতি-নিয়ম যেনে— কইনা চোৱাৰ পৰ্বৰ পৰা আৰম্ভ কৰি বিদায় দিয়ালৈকে সকলোতে যেন এতিয়া পৰিৱৰ্তনৰ জোৰাৰ

উঠিছে। ঔপন্যাসিকে দুখন বিয়াক কেন্দ্ৰ কৰি এই পৰিৱৰ্তনবোৰ দাঙি ধৰিছে। আগৰ দিনৰ বিয়া বুলিলে সততে মনলৈ অহা ছবিখন হৈছে চৈদ্যা গৰুগাড়ী লগতেবৰযাত্ৰী, বিয়া নাম লগতে আন্তৰিকতা ভৰা আমোদজনক ধেমালি। শ্বাহে মৌলানা চাহেবৰ বিয়াৰ কথাৰে এখন নিভাঁজ গাঁৱলীয়া বিয়াৰ বৰ্ণনা দিছে—

“নেহাত কমেও চাৰিকুৰি এশ বছৰৰ আগৰ কথা। কইনাৰ ঘৰ পোন্ধৰ কুৰি মাইলমান নিলগত। চৈ দিয়া গৰুৰ গাড়ীৰে পাৰ্টি গৈছিল। ওচৰৰ কইনা হ’লে দৰা ঘোঁৰাতো মাজৰ ফালে ঘোঁৰা-বাগী। শেষৰ ফালে মতৰ।” (পৃ. ৭)

আকৌ দেখা যায় —

“একেবাৰে শেষৰখন গাড়ীত জেনান। চৈৰ আগে পিছে পৰ্দা ভিতৰত খেৰৰ ওপৰত

শীতলপাটী। মৌলানা চাহেবে নুশুনাকৈ নিম্ন স্বৰত বিয়ানাম গাই গৈছে। সেইবোৰ গীত-মাত বহুদিন হ’ল বিচাৰি পাব নোৱাৰাকৈ হেৰাল।” (পৃ. ৭)

আনহাতে দেখা যায় প্ৰফেচৰৰ ভিনীয়েক কাদিৰ নামৰ ব্যৱসায়ীজনৰ একমাত্ৰ উচ্চ শিক্ষা লাভ কৰা ছোৱালী ফাৰহাৰ। বিয়া মানে বিয়াৰ উপলক্ষত এটা ৰাজসিক উৎসৱ। ঔপন্যাসিকৰ ভাষাত—

“ফাৰহাৰ বিয়াত বিশেষ ধৰণৰ ফটকা, শুদ্ধকৈ ক’ব হ’লে ক্ৰেকাৰ ফুৰিছিল দুহেজাৰ টকাৰ। ৰভা নহয় পেঙেল আৰু সাজ-পাৰ নহয়, ডেকৰেশ্যন পাৰ্টিটোৰ বিল হৈছিল ত্ৰিহেজাৰ টকা। মিঠাই আহিছিল গুৱাহাটীৰপৰা ট্ৰাকত। দিনে এখন। খানাবন্ধা পাকৈত খানচামা আহিছিল আমাৰ পূব-পশ্চিমৰ তিনিখন নগৰৰপৰা গঞা-জ্ঞাতিসকলোকে দাৱাত দিয়োতে দহোকুৰি কোৱা হৈছিল কমচে কম তিনিদিন ঘৰত কোনেও চাহ এপিয়লা তামোল এখনো নেযায়। চৌকা বন্ধ। দৰা আদৰাৰ ফুল আহিছিল কলিকতাৰ পৰা প্লেনেৰে বৰফত ৰখা ৰজনীগন্ধা। আলহিৰ গাড়ী পাৰ্ক কৰিবলৈ ওচৰৰ এখন পথাৰ সুবিধাজনকভাৱে ঠিক কৰি লোৱা হৈছিল। ইত্যাদি, ইত্যাদি।” (পৃ. ১৩)

জবানবন্দী উপন্যাসত উজনি অসমৰ অসমীয়া মুছলমানসকলৰ বিয়া এখনৰ সকলো দিশেই সুন্দৰভাৱে উপস্থাপন কৰিছে। লগতে পৰিৱৰ্তনবোৰ কেনেদৰে আহিছে সেই কথাটো অৱগত কৰিছে। সেই সময়ৰ বিয়া এখনত থকা নানান প্ৰসংগ, সন্দৰ্ভত থকা আমেজ অন্তৰংগত

আছিল আজিকালি দেখা নাযায়। ঔপন্যাসিকৰ ভাষাত—

“আজিকালি সৰু বিয়া, বৰবিয়া চবতে বৰ বেছি হিচাপ-নিকাচ বৰবিয়া চবতে লৌকিকতা। লৌকিকতা হওঁতে তেতিয়াও আছিল। সমাজ থাকিলে লৌকিকতা থাকিবই। কিন্তু তেতিয়াৰ মানুহে লৌকিকতাত বিশ্বাস কৰিছিল। আজিকালি মাত্ৰ পালন কৰে। ফলত এই পালন অধিকাংশ ক্ষেত্ৰত পুতলা-খেলৰ নিচিনা হৈ পৰে। একোখন যেন ব্যংগ চিত্ৰ।” (পৃ. ১৪)

আকৌ দেখা যায় বিবাহৰ বাবে ছোৱালী চোৱাৰ ক্ষেত্ৰত কেনেধৰণৰ নীতি মানিব লাগে বা কেনেদৰে বাচনি কৰিব লাগে লেখকে তাৰ বৰ্ণনা দিছে—

“হেলিম বৰাৰ জীয়েকৰ ঘৰৰ বিয়াত। নাকটো হেৰিয়াৰ অউ, কিবা কয়। খুন্দনা মাৰিডাল চালে চাবই নেলাগে আগটোপোলা। ধুনে-পেচেও পখিলা।... এই নেলাগে আইহে। তেনেজনী বোৱাৰী। দুশ্ৰেণী পঢ়িলে কি হ’ল? মাত মাতিলে হেৰিয়াৰ অউ, কিবা কয়, নামঘৰৰ ভোৰতাল তাপ মাৰে। চুলি সাপ-নেজীয়া। আকৌ ৰংটো বগা হ’লে কি হ’ল। বগাৰ জানো নাই। এই জাত নিস্তেজ।” (পৃ. ৫৯৯, ৬০০)

অসমীয়া মুছলমান গাঁওসমূহৰ যি নিভাঁজ প্ৰকৃতি সেইয়া পৰিৱৰ্তনৰ সোঁতত নগৰমুখী হ’বলৈ ধৰিলে। মানুহে আধুনিকতাক ইমানেই আকোঁৱালি লৈছে যে যাৰ ফলস্বৰূপে মূলৰ অস্তিত্ব হেৰুৱায় পেলোৱাৰ উপক্ৰম ঘটিছে। লেখকে কৈছে—

“আজিকালিতো আগৰ অনেক কথাই নোহোৱা হ’ল। আগৰ মুছলমান গাঁৱৰ চেহেৰাও আগৰ নিচিনা নোহোৱা হৈ আহিছে। সময়ৰ গতি। সকলোসলনি হয়েই। হ’বই। একেবাৰে মানুহ নেথাকে নহয়। তথাপি শিপা বুলি কথা এটা আছে। শিপাৰ অলপমান প্ৰয়োজন নোহোৱা নহয়।” (পৃ. ২৮)

অসম এখন কৃষি প্ৰধান ৰাজ্য। বিজ্ঞান আৰু যান্ত্ৰিক প্ৰযুক্তিবিদ্যাই এই কৃষিখণ্ডক আধুনিক কৰি পেলাইছে। ফলত কৃষিৰ সৈতে জড়িত বহুতো সামগ্ৰী বিলুপ্তিৰ পথত, ঠিক তেনেদৰে কৃষিৰ লগত জড়িত কিছুমান অনুষ্ঠানো বিলুপ্ত হ’ব ধৰিছে। আন আন জাতি-জনজাতিৰ দৰে অসমীয়া মুছলমানসকলে খেতি চপোৱাৰ পাছত লগে-ভাগে এখাজ খায় ‘ৰাজচনী’ নামৰ এক অনুষ্ঠান পাতিছিল। কিন্তু এতিয়া

এই অনুষ্ঠান ক্ৰমাৎ লুপ্ত হোৱাৰ পথত সেয়ে ঔপন্যাসিকে এই অনুষ্ঠান ৰোমন্থন কৰিছে —

“এতিয়া ইমান বছৰৰ মূৰত ভেজাল যুগে পেট-জিভা-ৰুচি আনকি লোভ পৰ্যন্ত ভেজাল কৰি পেলোৱাৰ পিছত এতিয়া ৰাজচনীৰ মালিতা খাবলৈ কেনেকুৱা লাগিলহেঁতেন ক’ব নোৱাৰোঁ। তেতিয়া কিন্তু অমৃত যেন লাগিছিল।” (পৃ. ৫৪)

মানুহৰ জন্মৰ পাছত নামাকৰণৰ পৰ্বই এটা প্ৰাচীন পৰম্পৰা। উপন্যাসখনতো এই কথা উল্লেখ কৰিছে মুছলমান সমাজত আল্লাহৰ নিৰান্নবৈ নামৰ লগত সম্বন্ধ ৰাখি নামাকৰণ কৰা কথা আছিল। আজিকালি মানুহৰ শিক্ষা-দীক্ষা বাঢ়িল। আৰবী-পাৰ্চী সুন্দৰ জ্ঞান থকা মোল্লা-মৌলবাদীসকল হ’ল। গতিকে আগৰ নামসমূহ যেনে— আলি, আহমদ, হুছেইন, সোনাই, কলীয়া, ফুলজান, ৰাজু, ৰূপহী, কপাহী, চেনেহী আদি নামৰ প্ৰচলন কমি আহিল। তাৰ ঠাই পালে আধুনিক ইংৰাজী ভাষাত চৰ্চিত নাম। উদাহৰণস্বৰূপে মোমাইটিৰ ল’ৰা লতিফৰ চহৰতে ডাঙৰ-দীঘল হোৱা দুই সন্তানৰ নাম ডিম্পি আৰু চিম্পি।

অকল এইবোৰ দিশতে লেখক সিঁমাবদ্ধ থকা নাই, খেল-ধেমালিৰ দিশটোৰ প্ৰতিয়ো লেখক সচেতন। খেল-ধেমালি মানুহৰ জীৱনৰ অংগ। অতীতত খেলা খেল বৰ্তমান পাহৰনিৰ বুকুত জীন যাব ধৰিছে। তেতিয়াৰ খেলৰ লগত এতিয়াৰ খেলৰ মাজত পাৰ্থক্য আহি পৰিছে। থলুৱা খেলবোৰৰ পৰিৱৰ্তে বিদেশীমূলীয় খেলৰ প্ৰৱেশ ঘটিছে। লেখকে খেলৰ প্ৰসংগত কৈছে—

“সেই খেলবোৰ হেৰাই গ’ল। সেইবোৰ খেল আৰু আজিৰ খেলৰ মাজত কি আকাশ-পাতাল পাৰ্থক্য। আজিকালিৰ খেলবোৰতবিজ্ঞান আছে আন্তৰ্জাতিকতা আছে। আৰু হয়তো বহুত কিবা-কিবি আছে। কিন্তু সেইবোৰ খেলত থকা স্মৃতি, আন্তৰিকতা, অন্তৰংগতা কিমান আছে ভাবি চাবলগীয়া। টিংটুঙলি কেইটামান লৈ আপোন পাহৰি উমলি থকা শিশুৰ খেলখনতকৈ মধুৰ আৰু মহৎ খেল কিবা আছেনে? ক্ৰমাগত খেলে খেলাৰ চৰিত্ৰ হেৰুৱাই প্ৰফেশ্যনৰ চৰিত্ৰ আহৰণ কৰিব ধৰিছে। আৰু খেলৰ বাঘজৰিডাল হাতত লৈছে স্বয়ং কুটনীতি দেৱতাই।” (পৃ. ৭১)

উপন্যাসখনৰ আন এটা দিশ হৈছে একাংশ দুৰ্নীতিপৰায়ন, ভোগবাদী লোকৰ আৰিৰ্ভাৱ হৈছে। আগৰ

দিনৰ সহজ-সৰল মনৰ পৰিৱৰ্তে নিজৰ স্বার্থ জড়িত কাৰণত লিপ্ত হৈছে। লেখকে ৰহমতৰ ঘৰত পতা খানাৰ যোগেদি তাকে বুজাব বিচাৰিছে—

“তাৰ একমাত্ৰ মতলব হ’ল মানুহখিনিক তাৰ ঘৰত গোট খুউৱা। উগাৰি যোৱাকৈ খুৱাই মাত মাতিব নোৱাৰা কৰা। কিবা এটা ভোট আহি আছে হেনো। অলপ বুজন বিধৰ। দৰ্কাৰ হ’ব। আৰু সেইটো ভোটত এবাৰ জিকিলেই হেনো এইবোৰ খা-খৰচ নাম-নাচ যেন হৈ যাব।” (পৃ. ৬১২)

দিনে দিনে মানুহৰ মনবোৰ পৰিৱৰ্তন হৈছে। শিক্ষা-দীক্ষা কৰি চাকৰি লৈ নগৰমুখী হৈছে। য’ত নিজৰ গাঁওখনক একেবাৰেই পাহৰি পেলাইছে। নগৰলৈ গৈ ঘৰ-বাৰী বনাই আধুনিক হৈ পৰিছে। মনবোৰ আত্মকেদ্ৰীক লগতে অৰ্থলিপ্সা বাঢ়িছে। উপন্যাসনত থকা এনে এটা চৰিত্ৰ হ’ল ডাক্তৰ মোমাইটিৰ ল’ৰা লতিফ। ডাক্তৰ মোমাইটিয়ে পুতেক লতিফক লৈ দেখিছিল ডাঙৰ হৈ উকীল হ’ব, সমাজৰ কাৰণে ভাল কাম কৰিব কিন্তু সেই সপোন বাস্তৱতপৰিণত নহ’ল। যুগৰ পৰিৱৰ্তনৰ সোঁতত লতিফ উতি গ’ল। লতিফ ধন ঘটাব উদ্দেশ্যে দুৰ্নীতিত নামিল, কম দিনৰ ভিতৰতে টকা-পইচা, ঘৰ-বাৰী কৰি টাউনতে থাকিবলৈ ল’লে। এইক্ষেত্ৰত ডাক্তৰ মোমাইটিৰ পুতেক লতিফ আৰু ৰংপুৰীয়া ককাইটিৰ পুতেক ৰৌচনৰ চৰিত্ৰৰ মাজত পাৰ্থক্য নাথাকিল।

শিক্ষাৰ কথা ক’বলৈ হ’লে পশ্চিমীয়া শিক্ষাই অসমীয়া সমাজখনতবাৰুকৈয়ে প্ৰভাব পেলাইছে। অসমীয়া মুছলমান মধ্যবিত্ত সমাজখনতো এই প্ৰভাৱ দেখা যায়। বিশেষকৈ নিজৰ সন্তানক ইংৰাজী মাধ্যমৰ বিদ্যালয়তপঢ়োৱাবলৈ লৈছে। উদাহৰণস্বৰূপে লতিফৰ সন্তান ডিম্পিআৰু চিম্পি পশ্চিমীয়া ইংৰাজী শিক্ষা গ্ৰহণ কৰোৱাইছে। যাৰ ফলস্বৰূপে সিহঁতে গাঁৱলৈ আহি অসমীয়া ভাষাৰ পৰিৱৰ্তে ইংৰাজী ভাষাত কথা পাতিছে—

“হোৱাটচ ডে ডুয়িং মান্মা? ইজিট নামাজ অৰ চামথিং? ইয়া। ইট ইজ। বাট কোৱায়েট। ইটচ প্ৰেয়াৰ। ডে মাইট মাইণ্ড। বাট মান্মী। এই চবটো হোৱাইচ ডে, আ জোনাৰ, জোনাৰ কেন্ন ডু। হোৱাই আঙ্কল, গ্ৰেণ্ডপা। ষ্ট্ৰেঞ্জ।” (পৃ. ১১১)

শেষত ঔপন্যাসিকে মোমাইটি টুকুৱাৰ পোন্ধৰ হয়তো বিছ বছৰৰ পাছত হোৱা পৰিৱৰ্তনৰ কথা কৈছে—

“আজি যদি ডিম্পি-চিম্পি ইয়ালৈ আহে, দেখিব কত পৰিৱৰ্তন ঘৰেঘৰে টিভি। গাড়ী। আৰু কত কি। হৈছে।

হৈয়ে আছে। নতুন নতুন ঘৰ। দেখিলেই ভাল লগা অনেক মানুহ। নতুন মানুহ। কিন্তু... এয়া সমৃদ্ধি নে আকাল?"
কোনে ক'ব? (পৃ. ১১৬)

এনেদৰে লেখকে উপন্যাসখনত আৰম্ভণিৰ পৰা শেষলৈকে উজনি অসমৰ অসমীয়া মুছলমান সকলৰ সমাজখনত দেখা পোৱা পৰিবৰ্তনসমূহ দাঙি ধৰিবলৈ সক্ষম হৈছে।

০.০৪ উপসংহাৰ :

আলোচনাটিৰ শেষত ক'ব পাৰি যে ইমৰান শ্বাহৰ 'জবানবন্দী' উপন্যাসতখনত অসমীয়া মুছলমানৰ সমাজখনত দেখা পৰিবৰ্তনসমূহ সুন্দৰ ৰূপত দেখুৱাবলৈ যত্ন কৰিছে। যাতে বৰ্তমানৰ প্ৰজন্মই অতীতৰ দিনৰ সামাজিক, সাংস্কৃতিক লগতে অন্যান্য উল্লেখ থকা দিশসমূহ বিচাৰ কৰি চাবলৈ সুযোগ পায়। □

প্ৰসংগটীকা :

১. গোস্বামী, মায়াশ্ৰী আৰু দাস, কৰবী (সম্পা.) : বনবাসী-বৈভৱ, ২০১৪, পৃ. ১০০
২. সদ্যোক্ত, পৃ. ১০১
৩. সদ্যোক্ত, পৃ. ১০২
৪. সদ্যোক্ত, পৃ. ১০৩
৫. সদ্যোক্ত, পৃ. ১০৪
৬. সদ্যোক্ত, পৃ. ১০৫
৭. সদ্যোক্ত, পৃ. ১০৬
৮. সদ্যোক্ত, পৃ. ১০৭

গ্ৰন্থপঞ্জী :

১. গোস্বামী, মায়াশ্ৰী আৰু দাস, কৰবী (সম্পা.) : বনবাসী-বৈভৱ, পূৰ্বাঞ্চল প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, ২০১৪
২. দত্ত, পল্লৱী : ইমৰান শ্বাহৰ নিৰ্বাচিত গল্প : নিৰ্বাচিত গল্পৰ আধাৰত এটি বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন, প্ৰাচ্য বিদ্যাৰ্ণৱ ড° মহেশ্বৰ নেওগ অসমতত্ত্ব গৱেষণা সংস্থান অসম সাহিত্য সভা, যোৰহাট, ২০১৮
৩. মিশ্ৰ, কৃষ্ণ কুমাৰ (সম্পা.) : ইমৰান শ্বাহৰ ৰচনাৱলী- ১, কথা পাব্লিকেচন, গুৱাহাটী, ২০১১
৪. মিশ্ৰ, কৃষ্ণ কুমাৰ (সম্পা.) : ইমৰান শ্বাহৰ ৰচনাৱলী- ২, কথা পাব্লিকেচন, গুৱাহাটী, ২০২১
৫. শ্বাহ, ইমৰান : জবানবন্দী, লয়াৰ্ছ সংস্কৰণ, ১৯৯৬

অসমৰ নৱবৈষ্ণৱ সাহিত্যৰ ব্যক্তি স্বতন্ত্ৰতা আৰু সামাজিক ন্যায়



ড° গুণীন শইকীয়া

সংক্ষিপ্ত সাৰ :

নৱবৈষ্ণৱ আন্দোলনৰ প্ৰভাৱ ভাৰতীয় সমাজ জীৱনত সুদূৰপ্ৰসাৰী। ভাৰতৰ আন আন প্ৰান্তৰ দৰে অসমতো শংকৰদেৱৰ নেতৃত্বত এই নৱ-বৈষ্ণৱ আন্দোলনে প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল। পঞ্চদশ শতিকাত শংকৰদেৱৰ আবিৰ্ভাৱ অসমীয়া সমাজ জীৱনৰ বাবে এক যুগান্তকাৰী ঘটনা। যিটো সময়ত ৰাজনৈতিক দুৰ্যোগৰ লগতে সামাজিক ভাৱে সমাজ জীৱনৰ গাঁথনি শোচনীয়ভাৱে জৰ্জৰিত হৈছিল, প্ৰাচীন সামন্তীয় ব্যৱস্থাই সমাজ খন বিশৃংখল কৰি পেলাইছিল। সেই সময়তে শংকৰদেৱৰ চিন্তাই অন্ধকাৰ আচ্ছন্ন সমাজখনৰ বৈষম্য নিৰ্মূলকৰণত আগভাগলৈ অসমীয়া জাতীয় জীৱনলৈ নৱজাগৰণ আনিলে। পঞ্চদশ শতিকাৰ কঠোৰ জাতিভেদ, সামন্ততান্ত্ৰিক ধ্যানধাৰণাক প্ৰত্যাহ্বান জনাই শংকৰদেৱ আৰু নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ প্ৰচাৰক সকলে কেৱল আধ্যাত্মিক মুক্তিৰ পথ দেখুৱালে এনে নহয় মানসিক উন্নতিৰ উপায়ো প্ৰদান কৰিলে।

নৱবৈষ্ণৱ সাহিত্যই অসমৰ সামাজিক কাঠামোলৈ আনা পৰিৱৰ্তনৰ মানসিকতাই কি দৰে লোকমনত সুদূৰপ্ৰসাৰী প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰিছিল তাক অনুধাবন কৰাৰ, লগতে নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ প্ৰাসংগিকতা বিচাৰ কৰিবলৈ নৱবৈষ্ণৱ সাহিত্যৰ উদাৰ আদৰ্শৰ বিষয়ে গৱেষণাৰ প্ৰয়োজন। নৱবৈষ্ণৱ সাহিত্যত প্ৰকাশিত ব্যক্তি স্বতন্ত্ৰতা আৰু সামাজিক ন্যায়ৰ প্ৰসংগটো স্পষ্ট কৰিবলৈ প্ৰাচীন আৰু আধুনিক চিন্তা নায়কৰ ন্যায়ৰ ধাৰণাৰে বিষয় বস্তুৰ বিশ্লেষণ কৰি গৱেষণা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰা হৈছে।

বীজ শব্দ :

ব্যৱস্থা-ব্যক্তিস্বতন্ত্ৰতা, সামাজিক ন্যায়, নৱবৈষ্ণৱ সাহিত্য, শ্ৰেণী বৈষম্য, গণতান্ত্ৰিক ব্যৱস্থা।

অৱতৰণিকা :

সপ্তম শতিকাৰ পৰা সপ্তদশ শতিকালৈকে ভাৰতত গঢ় লৈ উঠা ভক্তি আন্দোলনে কঠিন সামাজিক স্তৰ, জাতি ব্যৱস্থা, ধৰ্মীয় গতানুগতিকতাক অতিক্ৰম কৰি এক নিৰাকাৰ দেৱতাৰ প্ৰতি ব্যক্তিগত ভক্তিত গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছিল। বৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ সাহিত্যিক ৰচনা আৰু সামাজিক সক্ৰিয়তাৰ যোগেদি ভক্ত কবি আৰু সন্তসকলে সৰ্বাংগীণ সমতা আৰু আধ্যাত্মিক ঐক্যৰ পোষকতা কৰিছিল। ভক্তি আন্দোলনৰ এটা মূল উদ্দেশ্য আছিল জাতি ব্যৱস্থা আৰু সামন্তবাদী সামাজিক স্তৰ বিভাজনক প্ৰত্যাহ্বান কৰা। কবীৰ, গুৰুনাৰক, সন্ত কবি টুকাৰামৰ দৰে ভক্তি আন্দোলনৰ সন্তসকলে সমাজৰ স্তৰ ভিত্তিক গাঁথনিৰ বিভাজনক লৈ প্ৰশ্নৰ অৱতাৰণা কৰি অধিক সমতাবাদী সমাজ এখনৰ বাবে সকলোকে আহ্বান জনাইছিল। মীৰাবাই ৰামানুজ, জ্ঞানেশ্বৰৰ প্ৰভৃতি

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
কুমাৰ ভাস্কৰ বৰ্মা সংস্কৃত আৰু
পুৰাতন অধ্যয়ন বিশ্ববিদ্যালয়,
নলবাৰী (অসম)

☎ ৯৮৬৪১৩০৯০০
✉ jintu.saikia29@gmail.com

সমস্ত সকলে জোৰ দিছিল সামাজিক ঐক্য প্রতিষ্ঠাত। তেওঁলোকে বিশ্বাস কৰিছিল যে ঈশ্বৰৰ প্ৰতি ভক্তি হৈছে সাম্প্ৰদায়িক বিভাজনৰ বাহিৰত ঐক্যৰ প্ৰকৃত পথ। শংকৰদেৱৰ নেতৃত্বত বিকাশ পোৱা অসমৰ নৱ বৈষ্ণৱ ধৰ্মই ভক্ত সকলক ব্যক্তিগত গণতান্ত্ৰিক অধিকাৰ প্ৰদানত বিশেষ ভূমিকা পালন কৰিছিল। পঞ্চদশ শতিকাৰ নৱ বৈষ্ণৱ কবি সকলে ব্যক্তি স্বতন্ত্ৰতাৰ জৰিয়তে সামাজিক ন্যায় প্রতিষ্ঠাত গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰিছিল। ব্যক্তি স্বতন্ত্ৰতা শব্দটো ইংৰাজী Individual Liberty শব্দটোৰ প্ৰতিৰূপ। লেটিন শব্দ 'Liber' ৰ উৎপত্তি হৈছে। যাৰ আভিধানিক অৰ্থ মুক্ত বা স্বাধীন। খ্ৰীষ্টীয় চতুৰ্দশ শতিকাত 'Liberty' শব্দটোৰ প্ৰথম প্ৰয়োগ দেখিবলৈ পোৱা যায়। ধৰ্মীয়ক্ষেত্ৰত ব্যক্তিৰ স্বতন্ত্ৰতাৰ ধাৰণাটোৱে এজন ব্যক্তিয়ে ৰাষ্ট্ৰ, ধৰ্মীয় কৰ্তৃপক্ষ বা সমাজৰ নীতি নিয়মৰ দৰে বাহ্যিক শক্তিৰ অথবা হস্তক্ষেপ বা জোৰ জবৰদস্তি অবিহনে নিজৰ ধৰ্মীয় বিশ্বাস নিৰ্বাচন, অনুশীলন আৰু প্ৰকাশ কৰাৰ অধিকাৰ আৰু ক্ষমতাক বুজায়। ইয়াত ব্যক্তিৰ বিশ্বাস, উপাসনা আৰু ধৰ্মীয় আচাৰ ব্যৱহাৰৰ বিষয়ে ব্যক্তিগত সিদ্ধান্ত লোৱাৰ স্বায়ত্তশাসনৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰা হয়।

ৰাষ্ট্ৰসংঘৰ (United Nation) সাধাৰণ সভাত ১৯৪৮ ত Universal Declaration of Human Rights (UDHR) ৰ ঘোষণাত ইয়াক এক মৌলিক মানৱ অধিকাৰ হিচাপে গ্ৰহণ কৰা হৈছে।

UDHR ৰ ১৮নং অনুচ্ছেদতো প্ৰত্যেক ব্যক্তিৰ চিন্তা আৰু ধৰ্মৰ স্বাধীনতাৰ অধিকাৰ সন্নিৱিষ্ট আছে। য'ত ধৰ্ম বা বিশ্বাস সলনি কৰাৰ স্বাধীনতা আৰু শিক্ষা, অনুশীলন, পূজাপাতন আদিৰ ক্ষেত্ৰত নিজৰ ধৰ্মীয় বিশ্বাস প্ৰকাশ কৰাৰ স্বাধীনতা অন্তৰ্ভুক্ত কৰা হৈছে। সেইদৰে সামাজিক ন্যায়ৰ ধাৰণাটোৰ উৎপত্তি হৈছে এখন ন্যায়পৰায়ণ সমাজ গঢ়িতোলাৰ ধাৰণাটোৰ পৰা। আমি সকলো জানো Justice অৰ্থাৎ ন্যায় শব্দটো লেটিন ভাষাৰ "Jungere"ৰ পৰা উদ্ভূত হৈছে; যাৰ অৰ্থ হৈছে একেলগে বান্ধি ৰখা। এই কথাটোৰ প্ৰসংগত ক'বলৈ গ'লে 'ন্যায়'ৰ অৰ্থ হ'ল সমাজ এখনৰ ব্যক্তিসকলক একেলগে বান্ধি ৰখা আৰু তেওঁলোকৰ মাজত ভাৰসাম্য ৰক্ষা কৰা। যাৰ ফলত মানৱ সম্পৰ্ক বৃদ্ধি পায়। এখন ন্যায়পৰায়ণ সমাজ গঢ়ি প্ৰতিজন ব্যক্তিৰ স্বকীয় মৰ্যাদা বা পৰিচয় অবিহনেও সমান সুযোগ, সম্পদ আৰু সুৰক্ষাৰ সুবিধা লাভ কৰিব পৰাকৈ সমাজৰ সকলোৰে

মংগল সাধনেৰে ব্যৱস্থাগত বৈষম্য দূৰ কৰাই হৈছে ইয়াৰ মূল লক্ষ্য। সামাজিক ন্যায় ধাৰণাৰ শিপা বিচাৰিলে প্ৰাচীন সভ্যতা আৰু দাৰ্শনিক পৰম্পৰাত দেখিবলৈ পোৱা যায়। প্লেটো আৰু এৰিষ্টটলৰ দৰে দাৰ্শনিক সকলে সুযম সমাজৰ প্ৰেক্ষাপটত ন্যায়ৰ বিষয়ে আলোচনা কৰিছিল। য'ত ব্যক্তিসকলে নিজৰ সামৰ্থ্য আৰু গুণ অনুসৰি নিজৰ ভূমিকা পালন কৰে। পৃথিৱীৰ বহু ধৰ্মত ধৰ্মীয় পৰম্পৰাই সামাজিক ন্যায়ৰ পোষকতা কৰা দেখা যায়।

বিশেষকৈ সপ্তদশ আৰু অষ্টাদশ শতিকাত নৱজাগৰণৰ চিন্তাৰ উত্থানে সমগ্ৰ পৃথিৱীতে সামাজিক ন্যায়ৰ আধুনিক ধাৰণাক প্ৰসাৰিত কৰিছিল। জন লক, জিন-জেক ৰুছ, ইমানুৱেল কাণ্টৰ দৰে চিন্তাবিদ সকলে ব্যক্তিগত অধিকাৰ, আইনৰ আগত সমতা আৰু গণতান্ত্ৰিক অংশগ্ৰহণৰ ধাৰণাটোক প্ৰচাৰ কৰিছিল। দাৰ্শনিক ৰুছ'ৱে তেওঁৰ গ্ৰন্থ 'দ্যা ছ'চিয়েল কন্ট্ৰাক্ট'ত সামাজিক ন্যায় তত্ত্বই সমতা, সামূহিক অংশগ্ৰহণ আৰু ব্যক্তিগত স্বাৰ্থতকৈ সাধাৰণ মংগলৰ অগ্ৰাধিকাৰ দিয়াত গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছিল। তেওঁ এনে এখন ন্যায়পৰায়ণ সমাজৰ পোষকতা কৰে য'ত ক্ষমতা সকলো নাগৰিকৰ সুবিধাৰ বাবে ব্যৱহাৰ কৰা হয় আৰু বৈষম্যক নূন্যতম কৰা হয়। ঔদ্যোগিক বিপ্লৱৰ সময়ত ঊনবিংশ আৰু বিংশ শতিকাত সামাজিক ন্যায়ৰ ধাৰণাটোৱে অধিক আনুষ্ঠানিক ৰূপ ল'বলৈ আৰম্ভ কৰে। কাৰ্লমাৰ্ক্সৰ দৰে চিন্তাবিদে পুঁজিবাদী ব্যৱস্থাৰ সমালোচনা কৰি ধন আৰু ক্ষমতাৰ সমতাৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি অধিক ন্যায়পৰায়ণ সমাজ এখনৰ আহ্বান জনাইছিল। এই সময়ছোৱাত শ্ৰমিকৰ অধিকাৰ, নাৰীৰ অধিকাৰ, বৰ্ণ সমতা, ন্যায় আৰু সমতাৰ অন্যান্য কাৰণৰ পোষকতা কৰা বিভিন্ন সামাজিক আন্দোলনৰো উত্থান ঘটিছিল। বিংশ আৰু একবিংশ শতিকাতো সামাজিক ন্যায়ৰ বিকাশ ঘটিছে আৰু ইয়াৰ ভিতৰত অৰ্থনৈতিক বৈষম্য, বৰ্ণবৈষম্য, লিংগ সমতা, শিক্ষা আৰু স্বাস্থ্যসেৱাৰ সুবিধা আৰু পৰিৱেশ ন্যায়ৰ বিষয় সমূহ অন্তৰ্ভুক্ত হৈছে। নাগৰিক অধিকাৰ আন্দোলন, নাৰীবাদী আন্দোলন আৰু বিশ্ব ন্যায় আন্দোলনৰ দৰে আন্দোলনে সকলোৰে বাবে এখন ন্যায় সমাজ নিশ্চিত কৰিবলৈ গাঁথনিগত সংস্কাৰৰ প্ৰয়োজনীয়তাক মোকাবিলা কৰিবলৈ সামাজিক ন্যায়ৰ ধাৰণাটো সম্প্ৰসাৰিত কৰিছে।

এইক্ষেত্ৰত অসমৰ পঞ্চদশ শতিকাৰ সন্ত পণ্ডিত শ্ৰীমন্ত শঙ্কৰদেৱ আৰু তেওঁৰ নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ আন গুৰু সকলৰ

আধ্যাত্মিক, সাংস্কৃতিক আৰু সামাজিক অৱদান অনস্বীকাৰ্য। ব্যক্তি স্বতন্ত্ৰতা আৰু সামাজিক ন্যায়ৰ ওপৰত অসমৰ নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ গুৰু সকলৰ মতামত আছিল প্ৰগতিশীল। তেওঁলোকে আধুনিক গণতন্ত্ৰৰ ধাৰণা প্ৰতিষ্ঠা হোৱাৰ বহু আগতেই জাতি, শ্ৰেণী, সামাজিক মৰ্যাদা নিৰ্বিশেষে সকলো মানুহৰ সমতাৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছিল আৰু সমসাময়িক সমাজতন্ত্ৰত কঠিনভাবে শিপাই থকা জাতি ব্যৱস্থাক নাকচ কৰিছিল। এই সমগ্ৰ প্ৰক্ৰিয়াত সাহিত্যই বিশেষ ভূমিকা পালন কৰা দেখা যায়। সেয়ে এই গৱেষণা পত্ৰৰ জৰিয়তে অসমৰ নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ সাহিত্যত অন্তৰ্ভুক্ত ব্যক্তি স্বতন্ত্ৰতা আৰু সামাজিক ন্যায়ৰ দৰে গণতান্ত্ৰিক চিন্তাই সামন্তবাদী চিন্তাক কিদৰে প্ৰত্যাৱৰ্তন জনাইছে তাৰ বিশ্লেষণ আগবঢ়োৱা হৈছে।

অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব :

পঞ্চদশ শতিকাৰ শংকৰদেৱৰ ভক্তি আন্দোলন কেৱল আধ্যাত্মিক বিপ্লৱ নাছিল ই আছিল অসমীয়া সমাজৰ বাবে এক নৱজাগৰণ। ভক্তি ধৰ্ম অৰ্থাৎ একশৰণ নামধৰ্মৰ অন্যতম বৈশিষ্ট্য হ'ল ঈশ্বৰ আৰু ব্যক্তিৰ মাজত এক সৰল বিশ্বাসৰ পোনপটীয়া সম্পৰ্ক স্থাপন। ইয়াকে কৰিবলৈ যাওঁতে সমসাময়িক সামন্তীয় সামাজিক গাঁথনি আঁতৰাই সমতাবাদী সমাজ প্ৰতিষ্ঠাৰ বাবে আতি, লিংগ বা সামাজিক মৰ্যাদা নিৰ্বিশেষে ব্যক্তিৰ আত্মনিৰ্ভৰশীলতা, সামাজিক সমতা আৰু ধৰ্মীয় অধিকাৰ প্ৰদানৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছিল। শংকৰ দেৱৰ নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মমতে জাতি ভেদ, সামন্ততান্ত্ৰিক ধ্যানধাৰণাকে প্ৰত্যাৱৰ্তন জনাই কেৱল আধ্যাত্মিক মুক্তিৰ পথ দেখুৱালে এনে নহয় মানসিক উন্নতিৰো উপায় প্ৰদান কৰিলে। এই ক্ষেত্ৰত সমালোচক হীৰেণ গোঁহাঁইৰ মন্তব্য উল্লেখযোগ্য-

“শংকৰ দেৱৰ চিন্তা যদি আমি মন দি অধ্যয়ন কৰোঁ, হৃদয়ত ধাৰণ কৰোঁ তেনেহ'ল এই অৰাজকতা, বিশৃংখল অমানুষিকতাৰ পৰা আমি মুক্তি পাম নিশ্চয়।” (হীৰেণ গোঁহাঁই ৰচনাৱলী -২৭৯ পৃষ্ঠা)

দেখা যায় বৰ্তমানৰ বহুজাতিক পুঁজিবাদৰ প্ৰেক্ষাপটত, প্ৰায়ে বহুজাতিক নিগম সমূহে ধন আৰু ক্ষমতা মুষ্টিমেয়ৰ হাতত কেন্দ্ৰীভূত কৰাৰ প্ৰৱণতাত সমাজত শ্ৰেণীৰ বিভাজনৰ সৃষ্টি কৰে লগতে দুৰ্বল সম্প্ৰদায়সমূহক প্ৰান্তীয়কৰণ কৰে। ইয়াৰ ফলত প্ৰান্তীয় সম্প্ৰদায় সমূহ

ক্ষতিগ্ৰস্ত হয়। ইয়াৰ পৰা পৰিত্ৰাণ পাবলৈ ভক্তি ধৰ্মৰ ব্যক্তিগত ভক্তি আৰু বাহ্যিক বস্তুগত সম্পদৰ ওপৰত আভ্যন্তৰীণ আধ্যাত্মিক সংযোগৰ দ্বাৰা ভক্তি কাঠামোতোক শক্তিশালী কৰি আধ্যাত্মিক ভাৱে সচেতন বিশ্ব সমাজৰ দৃষ্টিভংগী এটা গঢ়ি তুলিব পৰা যায়।

অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য :

ক) নৱবৈষ্ণৱ আন্দোলনৰ মূল ব্যক্তি সকলে কিদৰে বৈষম্য আৰু বৰ্জনক সমৰ্থন কৰা সমসাময়িক সামাজিক গাঁথনি সমূহৰ পৰিৱৰ্তে আধ্যাত্মিক ভক্তিৰ আভ্যন্তৰীণ গুণৰ ওপৰত গুৰুত্ব দি সাম্যবাদী সমাজ এখনৰ অহ্বান জনাই গৈছে তাৰ অধ্যয়ন আগবঢ়োৱা।

খ) নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মই অসমৰ সামাজিক কাঠামোলৈ অনা পৰিৱৰ্তনৰ নৱবৈষ্ণৱ সাহিত্যৰ যোগেদি কি দৰে লোকমনত স্থায়ী হ'ল তাক অনুধাবন কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰাটোৰে এই অধ্যয়নৰ মূল অভিষ্ট।

গ) শংকৰদেৱৰ নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মই বৰ্তমানৰ আধুনিক বিশ্ব অৰ্থনৈতিক ব্যৱস্থাৰ এই পৃথিৱীখনত ভক্তি আন্দোলনে প্ৰদান কৰিব পৰা সামাজিক ন্যায় আৰু সকলো ব্যক্তিৰ প্ৰতি মৰ্যাদা কিমান ফলপ্ৰসূ আছিল তাক বিচাৰ কৰি চোৱা হ'ব।

অধ্যয়নৰ পৰিসৰ :

মহাপুৰুষ শ্ৰীমন্তশঙ্কৰদেৱ আৰু তেওঁৰ অনুগামী শিষ্য-প্ৰশিষ্য সকলে নৱবৈষ্ণৱ সাহিত্যৰ মাজেৰে সমাজৰ শোষিত-নিপেষিত জনগণৰ নৈতিক, আধ্যাত্মিক আৰু সামাজিক উত্তৰণৰ বাবে মানুহৰ মন মননৰ পৰা বৰ্ণবাদী, জাতিভেদ দূৰ কৰিবলৈ পোষণ কৰা মানসিকতা অধ্যয়নত গুৰুত্ব আৰোপ কৰাৰ লগতে ব্যক্তিৰ স্বতন্ত্ৰতা আৰু সামাজিক ন্যায়ৰ প্ৰসংগ সমূহক বিভিন্ন দিশেৰে কৰা বিশ্লেষণ আলোচনাটিক সামৰি লোৱা হৈছে।

অধ্যয়নৰ পদ্ধতি আৰু উৎস :

প্ৰস্তাৱিত বিষয়টিৰ অধ্যয়নৰ ক্ষেত্ৰত সমাজতাত্ত্বিক দৃষ্টিকোণেৰে নৱবৈষ্ণৱ সাহিত্যত প্ৰকাশপোৱা ব্যক্তিস্বতন্ত্ৰতা আৰু সামাজিক ন্যায়ৰ দৰে গণতান্ত্ৰিক ধাৰণা সমূহৰ বিচাৰ কৰিবলৈ বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হৈছে। আনহাতে মূল বিষয়ৰ লগত সংগতি ৰাখি স্বতন্ত্ৰতা আৰু ন্যায়তত্ত্ব বিশ্লেষণেৰে গৱেষণাৰ বিষয়টো প্ৰস্তুত কৰোঁতে মন্ত্ৰাগৰত পুৰাণ, কীৰ্ত্তন, নামঘোষা আদি গ্ৰন্থ, বিভিন্ন তাত্ত্বিক গ্ৰন্থ, সম্পাদিত

গ্ৰন্থ, প্ৰকাশিত প্ৰবন্ধ, আদিৰ পৰা তথ্য আহৰণ কৰা হৈছে।

পূৰ্বকৃত অধ্যয়নৰ সমীক্ষা :

শংকৰ দেৱে তেখেতৰ নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ জৰিয়তে সমসাময়িক সমাজৰ এটা শ্ৰেণীৰ লগত আন এটা শ্ৰেণীৰ সৈতে থকা অস্পৃশ্যতা, ধৰ্মীয় গতানুগতিক তাক অতিক্ৰম কৰি একক আৰু প্ৰায়ে নিৰাকাৰ দেৱতাৰ প্ৰতি ব্যক্তিগত ভক্তি গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছিল। পৰৱৰ্তী পৰ্যায়ত তেওঁৰ শিষ্য-প্ৰশিষ্য সকলে এই আদৰ্শ সাহিত্যিক ৰচনা আৰু সামাজিক সক্ৰিয়তাৰ যোগেদি জনসাধাৰণৰ মাজত বিয়পাই দিয়ে। ব্যক্তি স্বতন্ত্ৰতাৰ যোগেদি সামাজিক ন্যায়ৰ গণতান্ত্ৰিক ধাৰণা সম্পৰ্কে বিশেষ প্ৰণালীবদ্ধ বিশ্লেষণ বা বিতং আলোচনা পৰিলক্ষিত হোৱা নাই।

লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাই 'শ্ৰী শ্ৰী শংকৰদেৱ' (১৯১৪), 'History of vaishnavism in India' (1934) বাণীকান্ত কাকতিয়ে 'শংকৰদেৱ', বিৰিঞ্চি কুমাৰ বৰুৱাই 'Sankardev Vaishnava Saint of Assam', মহেশ্বৰ নেওগে 'যুগনায়ক শংকৰদেৱ' বুলি এখন গ্ৰন্থ ৰচনা কৰিছে, সেইদৰে শিৱনাথ বৰ্মানে 'শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱ আৰু তেওঁৰ উত্তৰ সুৰীসকল' (১৯৯৩), শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱৰ কৃতি আৰু কৃতিত্ব' (১৯৮৬), বাপচন্দ্ৰ মহন্তই 'ঐতিহাসিক পটভূমিত মহাপুৰুষ শংকৰদেৱ' (১৯৮৭), 'যুগান্তৰত শংকৰদেৱ' (১৯৯১), 'শংকৰদেৱ ব্যক্তিত্ব আৰু সত্ৰব্যৱস্থা' (২০০৫), নগেন শইকীয়াই 'শ্ৰী শ্ৰী শংকৰদেৱ' (১৯৮৫), আনন্দ বৰমুদৈয়ে 'যুগনায়ক শংকৰদেৱ সংগ্ৰহণ আৰু আত্মীকৰণ' (২০১৪) গ্ৰন্থত শংকৰদেৱৰ সম্পৰ্কে বিভিন্ন জন সমালোচকৰ দৃষ্টিভংগী আৰু শংকৰদেৱৰ সাহিত্য, কলা, সংগীত, নৃত্য সম্পৰ্কে উল্লেখ কৰি শংকৰদেৱৰ শিল্পী সত্ত্বাক বিশ্লেষণ কৰা দেখা যায়। সমালোচক হীৰেণ গোহাঁইয়ে 'অসমীয়া জাতীয় জীৱনত মহাপুৰুষীয়া পৰম্পৰা' (১৯৮৭) শীৰ্ষক গ্ৰন্থত মহাপুৰুষীয়া ধৰ্মৰ আৰ্থ-সামাজিক, সংস্কৃতি, ঐতিহাসিক দিশসমূহৰ বিচাৰ বিশ্লেষণেৰে এক বিদ্যায়তনিক আৰু অধ্যয়ন সুলভ আলোচনা আগবঢ়াইছে। বিশেষকৈ গ্ৰন্থখনত অসমৰ জাতীয় জীৱনত মহাপুৰুষীয়া পৰম্পৰাৰ ইতিবাচক আৰু নেতিবাচক প্ৰভাৱ সমূহ স্পষ্টকৈ দেখুৱাইছে। ময়ূৰ বৰাই সমাজ-চেতনাৰে 'জাতিভেদ প্ৰথা আৰু শংকৰদেৱ' শীৰ্ষক গ্ৰন্থত জাতীয় জীৱনৰ পুনৰুত্থানকাৰী মহাপুৰুষজনাৰ ভাবাদৰ্শ আৰু মানসিকতাৰ যুক্তিশীল পৰ্যালোচনা আগবঢ়াইছিল।

সম্পাদনা গ্ৰন্থ হিচাপে বাণীকান্ত শৰ্মাই আচাৰ্য মনোৰঞ্জন শাস্ত্ৰীৰ 'অসমৰ বৈষ্ণৱ-দৰ্শনৰ

ৰূপৰেখা' (১৯৯১), সত্যজিৎ কলিতাৰ 'শ্ৰীমন্ত শঙ্কৰদেৱ সৃষ্টি আৰু চিন্তা' (২০১৯) গ্ৰন্থত শংকৰদেৱ বা বৈষ্ণৱ

আন্দোলনৰ বিভিন্ন দিশৰ ওপৰত আলোকপাত কৰিছে।

গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়ৰ অধীনত সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাই 'The Neo-vaishnavite Movement and Satra Institution of Assam' মহেশ্বৰ নেওগে "Sankardeva and his times"

মহাপুৰুষ শ্ৰীমন্ত শঙ্কৰদেৱ বিশ্ববিদ্যালয়ৰ অধীনত প্ৰগতি প্ৰসাদ বৰাই "Sankardev and Social Intergration of North-east India with Special Reference to the Formation of Greater Assamese Society: A study from Historical perspective" আৰু জীৱ কান্তনাথে "Humanism as reflected in the life and literature of Sankardeva. A critical Study" শীৰ্ষক কেইবাখনো গবেষণা গ্ৰন্থ প্ৰস্তুত কৰিছে। এই সকলোবোৰ ৰচনা আৰু গৱেষণাৰ মাজত কেৱল অসমৰ নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ সাহিত্য সমূহত ব্যক্তি স্বতন্ত্ৰতা আৰু সামাজিক ন্যায়ৰ দিশটোৰ অধ্যয়ন পৰিলক্ষিত হোৱা নাই। নৱবৈষ্ণৱ সাহিত্যৰ এই গুৰুত্বপূৰ্ণ দিশটোক আধুনিক সমাজ তাত্ত্বিক ধাৰণাৰে অধ্যয়নৰ যথেষ্ট আৱশ্যকতা আছে।

মূল বিষয়ৰ আলোচনা :

পঞ্চদশ শতিকাৰ অসমৰ সমাজ জীৱনৰ সন্ত পণ্ডিত তথা নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ প্ৰৱৰ্তক শ্ৰীমন্ত শংকৰ দেৱে আধ্যাত্মিক, সাংস্কৃতিক আৰু সমাজ জীৱনলৈ যি অৱদান আগবঢ়ালে তেওঁৰ পৰৱৰ্তী কালৰ শিষ্য সকলেও তেওঁলোকৰ সাহিত্য কৰ্মৰ যোগেদি নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ আদৰ্শ আৰু দৰ্শনক ধৰি ৰাখিবলৈ সক্ষম হৈছিল।

সমসাময়িক সমাজখনত প্ৰচলিত তন্ত্ৰ-মন্ত্ৰ, যাগ-যজ্ঞ উপাসনা আৰু বিবিধ ধৰ্মীয় উপাসনা পদ্ধতিয়ে সমাজৰ বিভিন্ন স্তৰৰ জনসাধাৰণক বহুধাবিত্ত কৰি তোলাৰ সময়তে অন্ধবিশ্বাস আৰু কুসংস্কাৰেৰে আছন্ন কৰি ৰখা সমাজখনত মানুহক মানুহ হিচাপে জীয়াই থকাৰ মৰ্যাদা প্ৰদানৰ উদ্দেশ্যে শংকৰদেৱে মধ্যযুগত সমগ্ৰ ভাৰতজুৰি প্ৰৱাহিত হোৱা নৱ-বৈষ্ণৱ ভক্তধৰ্মৰ সৈতে সকলোকে

পৰিচয় কৰাই দি সুস্থ আৰু আধ্যাত্মিক জীৱন যাপনৰ পথটি প্ৰশস্ত কৰি তুলিছিল। ইয়াৰ বাবে নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ গুৰু সকলে মৌলিক সৃষ্টিকৈও বিভিন্ন সংস্কৃত গ্ৰন্থৰ অনুসৃষ্টিৰে অসমৰ নৱবৈষ্ণৱ সাহিত্যিক সমৃদ্ধ কৰিলে। এই গ্ৰন্থ সমূহৰ ভিতৰত বিশেষকৈ শ্ৰীমদ্ভাগৱতপুৰাণ, কীৰ্ত্তন, নামঘোষা, ভক্তি ৰত্নাৱলী আদি গ্ৰন্থ বিশেষ ভাৱে উল্লেখযোগ্য। শংকৰদেৱে তেখেতৰ সমকালীন সমাজখনক পুংখানুপুংখভাবে বিশ্লেষণ কৰি সমাজখনৰ সকলো স্তৰৰ প্ৰগতিৰ বাবে বিভিন্ন উপায় আৰু কৌশল অৱলম্বন কৰিছিল। বিশেষকৈ জাতি-লিংগবৈষম্য, নিম্নশ্ৰেণীৰ বাবে উচ্চবৰ্ণৰ দ্বাৰা আৰোপিত ধৰ্মীয় আচৰ-নীতি সমূহ এক সহিব নোৱাৰা বোজাত পৰিণত হৈছিল। বৰ্ণবাদী শ্ৰেণীটোৱে ‘মনুসংহিতা’ৰ গহীনালৈ অৱান্ধা শ্ৰেণীটোৰ ওপৰত চলোৱা সম্ভাৰ লগতে ব্ৰাহ্মণক ন্যায় আৰু ধৰ্মৰ জীৱন্ত প্ৰতীক আখ্যাৰে ব্ৰাহ্মণ পুৰোহিত সকলে মনুসংহিতাৰ দোহাই দি শূদ্ৰৰ মনে প্ৰাণে দাসত্বৰ যি বীজ সুমুৱাই দিব বিচাৰিছিল তাৰ বিৰুদ্ধে শংকৰদেৱৰ দ্বাৰা প্ৰৱৰ্তিত বৈষ্ণৱ ধৰ্মই এক প্ৰত্যাহ্বান ৰূপে থিয় দিলে। নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মই ব্ৰাহ্মণ সকলৰ দ্বাৰা সঘনে সংৰক্ষিত জাতিভেদৰ মাজত আবদ্ধ হৈ থাকিব নুখুজিলে। পৰম্পৰাগত সমাজত প্ৰায়ে প্ৰান্তীয়কৰণ কৰা নিম্নবৰ্ণলোক সকলক মাজত সম-আসন দিবলৈ এক ঈশ্বৰ (কৃষ্ণ) ৰ প্ৰতি ভক্তিত মনোনিৱেশ কৰি মূৰ্তি পূজাক প্ৰত্যাহ্বান জনাই শংকৰদেৱে এক সমতাবাদী পৰিৱেশৰ সৃষ্টি কৰিলে। সামাজিক পটভূমি তথা সামাজিক মৰ্যাদা নিৰ্বিশেষে সকলো ভক্তই ধৰ্ম আচৰণ কৰিবৰ উদ্দেশ্যে সামূহিক জীৱনত সমানে অংশগ্ৰহণ কৰিব পৰাকৈ নামঘৰ নিৰ্মাণ কৰিলে।

গাৰো, ভোট, অসম, যৱন, মিৰি, কছাৰী সকলো পতিত জাতিকে নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্ম গ্ৰহণৰ বাবে উপযুক্ত বুলি বিবেচনা কৰি নামঘৰৰ মজিয়াত সকলোকে স্থান দিলে। দাৰ্শনিক পণ্ডিত ইমানুৱেল কান্টে সামাজিক ন্যায়ৰ ধাৰণাত এনে অনুষ্ঠানৰ গুৰুত্ব সম্পৰ্কে উল্লেখ কৰিছে। তেওঁৰ মতে ন্যায়ৰ বাবে মানুহৰ অধিকাৰ আৰু স্বাধীনতাক সম্মান কৰাটো প্ৰয়োজনীয় আৰু মানৱ মৰ্যাদাৰ এই সম্মানক সুৰক্ষিত আৰু প্ৰসাৰিত কৰিবলৈ সামাজিক প্ৰতিষ্ঠান সমূহ ৰচনা কৰা হৈছে। শংকৰদেৱে তেওঁৰ ধৰ্মৰ আদৰ্শ প্ৰকাশ কৰি ভাগৱতত কৈছে-

ব্ৰাহ্মণ ক্ষত্ৰিয় বৈশ্য ইটো তিনি জাতি

নুশুনিবে হৰি ভকতিত কাণ পাতি।

শূদ্ৰসৰ আছায় কৈৱৰ্ত আদি কৰি।

অন্ত্যজ পৰ্য ভজিবক মহা হৰি ॥

অপ্ৰয়াসে লভিবে ঈশ্বৰ মহাজ্ঞান।

এতেকে কলিত শূদ্ৰ কৈৱৰ্ত প্ৰধান ॥ (শ্ৰীমদ্ভাগৱত, দশম)
নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্ম-আচৰণত সকলো মানুহৰ সম অধিকাৰৰ বিষয়ে শংকৰদেৱে সাহিত্যত প্ৰকাশ কৰিলে এইদৰে-

“নাহি ভকতিত জাতি-অজাতি বিচাৰ

হৰিৰ ভক্তিত সমস্তৰে অধিকাৰ। (ভক্তি ৰত্নাৱলী)

আৰু পৰম নিৰ্মল ধৰ্ম হৰি নাম কীৰ্তনত।

সমস্ত প্ৰাণীৰ অধিকাৰ। (কীৰ্তন)

শংকৰ দেৱৰ এই বিশ্বজনীন আদৰ্শই সমাজৰ সকলো স্তৰৰ লোকক স্ব-অধিকাৰ প্ৰদান কৰাৰ লগতে ব্যক্তিৰ মৰ্যাদা বৃদ্ধি কৰিলে। ইয়াতে আত্মশক্তি আৰু অধিকাৰৰ প্ৰতি সচেতন হৈ সমাজৰ প্ৰান্তীয় স্তৰৰ লোকসকল নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ প্ৰতি আকৰ্ষিত হ’ল। বিভিন্ন জাতি-উপজাতিৰ লোকৰ লগতে প্ৰান্তীয় স্তৰৰ লোকৰ প্ৰতি প্ৰদান কৰা এই অধিকাৰক আধুনিক সমাজতাত্ত্বিকৰ ভাষাৰে সামাজিক ন্যায় বুলি ক’ব পাৰি।

এই খনিত জন লকৰ সামাজিক ন্যায়ৰ ধাৰণাৰ কথা উল্লেখ কৰিব পাৰি। জন লকৰ সামাজিক ন্যায় তত্ত্বৰ মূলতে আছিল প্ৰাকৃতিক অধিকাৰ আৰু প্ৰাকৃতিক অবস্থা সম্পৰ্কী এক বহুল ৰাজনৈতিক দৰ্শন লকৰ মাত প্ৰাকৃতিৰ অৱস্থা হৈছে এনে এক অৱস্থা যত ব্যক্তি সকল মুক্ত আৰু সমান হয়। এই অৱস্থাত মানুহে সাধাৰণতে ইজনে সিজনৰ স্বাভাবিক অধিকাৰক সম্মান কৰে। লকে প্ৰকৃতিৰ অৱস্থাত সমতাৰ গুৰুত্বৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছিল, য’ত কোনোৱেই সহজাতভাৱে আন এজনতকৈ উচ্চ বা হীন নহয়।

ভাৰতীয় আধুনিক চিন্তাবিদ গোপাল গুৰুৱে সামাজিক ন্যায়ৰ ক্ষেত্ৰত আশ্বেদকাৰে আগবঢ়োৱা দলিত সকলৰ ৰাজনৈতিক আৰু সামাজিক মুক্তিৰ বিষয়টোক কাঠামো ৰূপে গ্ৰহণ কৰি নিজস্ব ব্যাখ্যা আগবঢ়াইছে। গুৰুৰ মতে, প্ৰকৃত ন্যায়ৰ লগত কেৱল আইনী আৰু ৰাজনৈতিক অধিকাৰেই নহয় সামাজিক আৰু সাংস্কৃতিক পৰিৱৰ্তনে জড়িত হ’ব লাগিব। ইয়াৰ অৰ্থ হ’ল জাতি ব্যৱস্থাক সকলো ৰূপতে প্ৰত্যাহ্বান জনোৱা বা ভাঙি পেলোৱা প্ৰতিষ্ঠান বা

মতাদৰ্শ ইত্যাদি। প্ৰান্তীয়কৰণৰ প্ৰেক্ষাপটত সামাজিক ন্যায়ৰ ওপৰত এক সমালোচনাত্মক দৃষ্টিভঙ্গীৰে তেওঁ যুক্তি আগবঢ়াইছিল। জাতিভিত্তিক বৈষম্য আৰু বৰ্জনৰ বিষয়টোক সম্বোধন নকৰাকৈ ভাৰতত সামাজিক ন্যায় লাভ কৰিব নোৱাৰি। তেওঁ এইটোও জোৰদি উল্লেখ কৰিছিল যে জাতি ব্যৱস্থাই সামাজিক সম্পৰ্ক আৰু সুযোগ সমূহক গভীৰ ভাৱে প্ৰভাৱিত কৰি আহিছে। দেখা যায় এনেধৰণৰ আধুনিক চিন্তাৰ বহু আগতেই পঞ্চদশ শতিকাত শংকৰদেৱৰ প্ৰগতিবাদী চিন্তাৰ ভাৱাদৰ্শই অজ্ঞান আৰু অন্ধকাৰ আচ্ছন্ন সমাজখনক বৈষম্যৰ নিৰ্মলকৰণত যি আগভাগ ল'লে তাৰ প্ৰতিফলন কীৰ্ত্তনৰ পদৰ

মাজতে প্ৰতিধ্বনিত হৈছে।

“ব্ৰাহ্মণৰ চাঙালৰ নিবিচাৰি কুল।

দাতাত চোৰত যাৰ দৃষ্টি এক তুল।।

নীচত সাধুত যাৰ ভৈল এক জ্ঞান।

তাহাকেসে পণ্ডিত বুলিয়া সৰ্বজন।। ১৮২১

(কীৰ্ত্তন ঘোষা, ষষ্ঠবিংশ খণ্ড)

নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মত জাতি-বৰ্ণ-সম্প্ৰদায় নিৰ্বিশেষে সকলো সমান। সৰ্বশক্তিমানৰ ওচৰত সকলোৰে সমান মৰ্যাদা।

গীততো এইকথা উল্লেখ আছে -

‘সৰ্বব্ৰহ্মত প্ৰস্তুতাত্মাং সৰ্বব্ৰহ্মতানি চাত্মনি।

ইক্ষতে যোগ-যুক্তাত্মাং সৰ্বব্ৰহ্ম সমদৰ্শিন।। (গীতা ৬/২২)

অৰ্থাৎ যোগিয়ে সকলো ভূতত আত্মাক দেখে আৰু আত্মাত সৰ্বা ভূতক দেখে।

তেওঁ সকলোতে সমদৰ্শী তত্ত্বটোৰ আত্মা পৰমাত্মাৰ সংযোগত অদ্বৈতবাদৰ চিৰ শ্বাস্থত সত্যৰ কথা স্বীকাৰ কৰি সমস্ত জীৱজগতত সৰ্বব্যাপি ঈশ্বৰৰূপী সৰ্বশক্তিমান এক সত্তাৰ অস্তিত্বৰ কথা স্বীকাৰ কৰিছে। জগতৰ প্ৰতিটো জীৱই হ'ল

পৰমাত্মাৰ অংশ শংকৰদেৱে গীতাৰ এই ধাৰণাই বৰগীতত শংকৰদেৱে উল্লেখ কৰিছে -

‘যত জীৱ জংগম কীট পতংগম

অগনগ জগ তেৰি কায়া।

(বৰগীত, নাৰায়ণ কাহে ভকতি কৰো তেৰা)

নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ সাহিত্যৰ সামৰাদৰ এই ছবিখন কীৰ্ত্তন ঘোষাত প্ৰকাশিত হৈছে এনেদৰে

“কুকুৰ শূগাল গদৰ্ভৰো আত্মাৰাম।

জানিয়া সবাকো পৰি কৰিবা প্ৰণাম। ১৮২৩

সমস্ত ভূতত বিষ্ণু বুদ্ধি নোহে যাৱে।

কায়বাক্য মনে অভ্যাসিয়া এহি ভাৱে।

(কীৰ্ত্তন ঘোষা ষষ্ঠবিংশ খণ্ড।)

তেওঁ এই ধৰ্মতত্ত্বতে সমস্ত নাথাকি মানৱীয় গুণৰ দ্বাৰা সমাজৰ প্ৰতিজন লোৱা সমৃদ্ধ হ'বলৈ কিছু সজ গুণৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছে। এই সজ গুণ হ'ল-

ঈৰ্ষা অসূয়া-প্ৰীতি, দম্ভ-অহংকাৰ আদিৰ পৰা মুক্ত হৈ মানুহক ভাল পাবলৈ শিকা।

কীৰ্ত্তনত উল্লেখ আছে-

বিশেষতঃ মনুষ্য গণত যিটো নৰে

বিষ্ণু বুদ্ধি ভাবে সৰ্বদায়ে মান্য কৰে।

ঈৰ্ষা অসূয়া তিৰস্কাৰ অহংকাৰ

সৰে নষ্ট হোৱৈ তেৱে তাবক্ষণে তাৰ ।।

১৮২১ (কীৰ্ত্তন ঘোষা, ষষ্ঠবিংশ খণ্ড)

শংকৰদেৱৰ নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ আটাইতকৈ গুৰুত্বপূৰ্ণ হ'ল ব্যক্তিস্বতন্ত্ৰতা। য'ত ব্যক্তিগত বিশ্বাস, উপাসনা আৰু ধৰ্মীয় আচাৰ ব্যৱহাৰৰ বিষয়ে ব্যক্তিগত সিদ্ধান্ত লোৱাৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰা হৈছে। কোনো মধ্যস্ততাকাৰী বা পুৰোহিত নোহোৱাকৈ এজন ব্যক্তিয়ে ঈশ্বৰৰ লগত সম্পৰ্ক স্থাপন কৰিব পাৰে, ঈশ্বৰৰ ভক্ত হ'ব পাৰে, দাস হ'ব পাৰে। যাগযজ্ঞৰ দৰে ব্যৱহাৰ ব্যৱস্থা এটাক নস্যাৎ কৰি ঈশ্বৰ আৰু ব্যক্তিৰ মাজত এক সৰল বিশ্বাসৰ পোনপটীয়া সম্পৰ্ক স্থাপন কৰিবলৈ আটাইতকৈ সৰল আৰু সহজ পন্থা হিচাপে নৱবৈষ্ণৱ ভক্তি ধৰ্মক প্ৰতিষ্ঠা কৰিলে। মাধৱদেৱেও তেওঁৰ অপূৰ্ব ৰচনা নামঘোষাৰ পদৰ মাজত ভক্ত সেৱকক ঈশ্বৰৰ লগত সংযোগ স্থাপনৰ উদ্দেশ্যে ‘মঞি’, ‘মই’, ‘মোৰ’ দৰে অহং শব্দৰ কৌশলী প্ৰয়োগ কৰি পদ ৰচনা কৰিছে।

ক) মঞি দুৰাচাৰ কেৱলে তোমাৰ

অপৰাধী নাৰায়ণ।

ক্ষমিয়োক হৰি লৈয়ো দাস কৰি

পশিলো হেৰা শৰণ।। (নামঘোষা ১৮৩)

খ) হে যদুপতি মই মুঢ়মতি

নাজানো সেৱা তোমাৰ

কেৱলে তোমাৰ চৰণ পঙ্কজ

শৰণ কৰিলো সাৰ।। (নামাঘোষা ১৮৫)

গ) নমো কৃষ্ণদেৱ পাৰ্শী বুলি কেৱ

মোক মোৰ নোবোলয়।

পতিত পাৱন জানিয়া তোমাত

আপুনি গৈলো বিক্ৰয়।। (নামাঘোষা ১৯১)

জন ষ্টুয়াৰ্ট মিলেও উদাৰতাবাদ, উপযোগীতাবাদ আৰু ব্যক্তিগত স্বাধীনতাৰ নীতিৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি সামাজিক ন্যায়ৰ তত্ত্ব গঢ়ি তুলিছিল। মিলৰ ‘অন লিবাৰ্টি’ (১৮৫১) নামৰ গ্ৰন্থত সুযোগৰ সমতাক সমৰ্থন কৰিছিল। তেওঁ নাৰীৰ ভোটাধিকাৰ আৰু লিংগ সমতাৰ প্ৰবল সমৰ্থক আছিল। তেওঁৰ আনখন গ্ৰন্থ ‘The Subjection of women’ (১৮৬৯) নামৰ ৰচনাখনত যুক্তিৰে লিংগ বৈষম্য সামাজিক অন্যায়েৰ এক প্ৰধান ৰূপ আৰু সমাজৰ প্ৰগতিৰ বাবে ৰাজহুৱা আৰু ৰাজনৈতিক জীৱনত নাৰীৰ সম্পূৰ্ণ অংশগ্ৰহণৰ লগতে প্ৰান্তীয় গোটৰ অধিকাৰৰ পোষকতা কৰিছিল। ভাৰতীয় চিন্তাবিদ অমৰ্ত্য সেনেও এখন সমাজত মূল্যবোধৰ বহুৱক স্বীকৃতি দি বৈষম্যই মানুহৰ পূৰ্ণতা পূৰ্ণ জীৱন যাপনৰ ক্ষমতাক কেনেদৰে প্ৰভাৱিত কৰে তাক উল্লেখ কৰিছে। তেওঁ সামৰ্থ্যৰ দৃষ্টিভংগীৰে মানৱৰ স্বাধীনতা আৰু সুযোগ সম্প্ৰসাৰণৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছিল।

ভাৰতৰ ভক্তি আন্দোলনৰ ক্ষেত্ৰত কোনো জাতি, বৰ্ণ, লিঙ্গৰ ভেদ নাই সকলো মানৱেই ভক্তিৰ পথ গ্ৰহণ কৰিব পাৰে। সগুণ ভগৱানৰ সৈতে প্ৰেম বা শ্ৰদ্ধা আৰু বিশ্বাসৰ সম্পৰ্কই হৈছে ভক্তি। সগুণ ভগৱানৰ উপাসনা বা অৰ্চনা দুৰ্বল, অনুন্নত, নিৰক্ষৰ মূৰ্খ সকলোৰে পক্ষে উৎকৃষ্ট পছন্দ। স্ত্ৰী মন্তাগৰত গীতাৰ নৱম অধ্যায়ত ইয়াৰ উল্লেখ আছে-

‘মাংহি পাৰ্থ ৰূপাশ্ৰিত্য যেইপি স্যুঃপাপযোনয়ঃ।।

স্ত্ৰিয়ো বৈশ্যাস্তথা শূদ্ৰাস্তুই পি যাস্তি পৰাংগতিম্।।

(গীতা ১/৩১)

অৰ্থাৎ ‘হে পাৰ্থ, যি মোৰ আশ্ৰয় গ্ৰহণ কৰে সি যদি অস্ত্ৰজ নাৰী, বৈশ্য বা শূদ্ৰও হয় তথাপি তেওঁ পৰম গতি লাভ কৰে। শংকৰদেৱেও ইয়াকে তেওঁৰ নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ আদৰ্শ হিচাপে গ্ৰহণ কৰি কীৰ্তনত লিখিছে-

“নলাগে ভক্তিত দেৱ দ্বিজ ঋষি হইবে।

নলাগে সন্তুত শাস্ত্ৰ বিস্তৰ জানিবে।।

তপ জপ যজ্ঞ দান সবে বিড়ম্বন।

কেৱল ভক্তিত তুষ্ট হোন্ত নাৰায়ণ।

(কীৰ্তন ৬/১৫/১৬৫)

নাৰীৰ মৰ্যাদা ৰক্ষাৰ ক্ষেত্ৰতো নৱবৈষ্ণৱ সাহিত্যই বিশেষ গুৰুত্ব আৰোপ কৰিলে। শংকৰদেৱৰ ৰচনা সমূহৰ মাজত বহু নাৰী চৰিতই সৰল ৰূপত উজ্জলি উঠিল। এইবোৰ ভিতৰত ৰুক্মিণী চৰিত্ৰটো বিশেষ ভাৱে উল্লেখযোগ্য। এই চৰিত্ৰটো সম্পৰ্কত দয়ানন্দ পাঠকে এনেদৰে মন্তব্য কৰিছে।

“শংকৰদেৱৰ মনত শ্ৰী কৃষ্ণপত্নী ৰুক্মিণীৰ এক বিশেষ স্থান আছে। এই স্থান বা মৰ্যাদা যে কেৱল এক সাধাৰণ অনুৰাগ বা আকৰ্ষণতেই সীমাবদ্ধ তেনে নহয়। ৰুক্মিণীৰ চৰিত্ৰৰ সৰলতা, স্বাভাৱিক নাৰীসুলভ ভাবাবেগ, স্বল্পভাষীতাৰ কথা ক বাদ দিলেও এই গৰাকী মহিয়সী নাৰীৰ চৰিত্ৰৰ ব্যক্তিত্বৰ মাজেৰে শংকৰদেৱে নিজৰ ভক্তি ধৰ্মৰ আদৰ্শকো যে প্ৰাঞ্জল-প্ৰকট কৰিব খুজিছিল সেই কথাও পৰিস্ফুট হৈ পৰে।”

(শ্ৰীমন্ত শঙ্কৰদেৱঃ সৃষ্টি আৰু চিন্তা। দয়ানন্দ পাঠক ৭৭ পৃষ্ঠা)

ধৰ্ম চৰ্চাত নাৰীৰ অধিকাৰৰ বিষয়ে নৱবৈষ্ণৱ সাহিত্যত শংকৰদেৱে উল্লেখ কৰিছে-

স্ত্ৰী বাল্য বৃদ্ধ সমস্তৰে অধিকাৰ।

চণ্ডালকো কৰে নামে তেখনে উদ্ধাৰ। ১৩ ।।

(দ্বিতীয় স্কন্ধ, শ্ৰীমদ্বাগৱত)

এয়া আছিল শংকৰদেৱৰ গণতান্ত্ৰিক দৃষ্টিভংগী।

শংকৰদেৱৰ আৰু তেওঁৰ শিষ্য নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ সন্ত সকলে অনুভৱ কৰিব পাৰিছিল যে অসমৰ দৰে বিভিন্ন জাতি জনগোষ্ঠীৰ ৰাজ্য এখনত সকলো জনগোষ্ঠীৰ অংশগ্ৰহণ অবিহনে ভক্তি ধৰ্মক আওৰাই নিয়া সম্ভৱ নহয়। সেয়ে তেওঁ, নগা, গাৰো, ভোট, কছাৰী, কৈবৰ্ত, কায়স্থ, ব্ৰাহ্মণ, যৱন মিছিং, বনিয়া আদি প্ৰতিটো সম্প্ৰদায়ৰ লোকক ‘আতৈ’ বাব প্ৰদান আৰু সত্ৰ বা নামঘৰৰ বিভিন্ন বিষয় বাব ভগাই দি নতুন উপাধি প্ৰদানেৰে জাতি গঠন প্ৰক্ৰিয়াটো আওৰাই নিয়ে তাৰ ফলত সৃষ্টি হ’ল এখন বৰ্ণহীন সমাজ। নৱবৈষ্ণৱ সাহিত্যৰ প্ৰতিটো পৃষ্ঠাতে এই আদৰ্শৰ প্ৰতিফলন ঘটিল শংকৰদেৱে ভাগৱতত উল্লেখ কৰিছে।

‘কিৰাত কছাৰি খাসি গাৰো মিৰি

যৱন কঙ্ক গোৱাল

অসম মূলক ৰজক তুৰক

কুৰাচ মেচ চণ্ডাল।।৫৩

আনো পাগী নৰ কৃষ্ণ সেৱকৰ

সম্পত্ত পবিত্ৰ হয়।

ভকতি লভিয়া সংসাৰ তৰিয়া

বৈকুণ্ঠ সুখে চলয়।।৫৪ (শ্ৰী ভাগৱত, দ্বিতীয় স্কন্ধ)

মাধৱ দেৱেও তেখেতৰ সাহিত্যৰ মাজত নৱবৈষ্ণৱ
ধৰ্মৰ গণতান্ত্ৰিক চেতনা প্ৰকাশ কৰিছে এইদৰে-

আমাৰ নিৰ্মল ভকতিত দুৰাচাৰো তৰে কোনো চিত্ৰ
‘আমাক ভজিয়া চাণ্ডালো তৰে সংসাৰ

স্ত্ৰী, শূদ্ৰ, বৈশ্য আদি যত বিষয়ত মাত্ৰ সদা ৰত
মোক ভজি সুখে ইসৰে হোৱে উদ্ধাৰ।

ব্ৰাহ্মণ ক্ষত্ৰিয় পুণ্য তনু মোক ভজি তৰিবেক পুনু
অতি অদভূত নাহিকে কোনো সংশয়।

ৰাজ ঋষি তনু আছা পায়ানিত্য অসুখ লোক জানি
অভিশ্ৰীয়ে মোক ভজ সখি ধনঞ্জয়। ৬১০

(নামঘোষা, মহিমা ১৪৭পৃষ্ঠা)

অৰ্থাৎ কৃষ্ণৰ ভক্তিত সমাজৰ প্ৰান্তীয় স্তৰৰ চণ্ডালব্ৰাহ্মণ,

ক্ষত্ৰিয়, স্ত্ৰী, শূদ্ৰ, বৈশ্য বৰ্ণৰ লোকৰ লগতে ৰজা আৰু ঋষি
সকলোৰে বাবে একে জনেই ঈশ্বৰ আছিল। ইয়াৰ মাজত
বৰ্ণাশ্ৰম নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ বিশ্বজনীনতাও প্ৰকাশ পাইছে।

উপসংহাৰ :

সমসাময়িক জাতিভেদ, সামন্ততান্ত্ৰিক ধ্যান ধাৰণাক
প্ৰত্যাহ্বান জনাই শংকৰদেৱৰ মানৱতাবাদী আদৰ্শই সমাজৰ
প্ৰতিটো জনগোষ্ঠীক সমমৰ্যাদাৰ বাট মুকলি কৰি দিলে।
সামাজিক বিভাজনৰ বাধাৰ প্ৰাচীৰখন ভাঙি দি
ঐশ্বৰিকতাৰ সৈতে ব্যক্তিক সংযোগৰ যি অনুমতি প্ৰদান
কৰিছিল সি নৱবৈষ্ণৱ সাহিত্যৰ মাজত স্পষ্ট হ’ল।
লগতে নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ আভ্যন্তৰীণ ভক্তিৰ আধ্যাত্মিক
অনুশীলনৰ বাবে ব্যক্তিকেন্দ্ৰিক দৃষ্টিভংগীৰ পথ প্ৰশস্ত
কৰিলে। নৱবৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ নতুন সমাজ নিৰ্মাণৰ ধাৰণা
ইমানেই প্ৰভাৱী হ’ল যে মহাপুৰুষীয়া ধৰ্ম অসমৰ
জাতীয় জীৱনৰ অবিচ্ছেদ্য অংশ হৈ পৰিল। □

সহায়ক মুখ্য সমল :

১। দত্তবৰুৱা, হৰিনাৰায়ণ। শ্ৰী মদ্ভাগৱত (সম্পূৰ্ণ)। দত্তবৰুৱা পাবলিচিং কোম্পানী, প্ৰাইভেট লিমিটেড, ৩১ নং সংস্কৰণ। ২০১৬, গুৱাহাটী-১

২। মহন্ত, বাপচন্দ্ৰ (সম্পা)। বৰগীত। ষ্টুডেণ্ট’ৰ ১৯৯২, পাণবজাৰ-১

৩। হাজৰিকা, দীপক (সম্পা)। কীৰ্ত্তন ঘোষা আৰু নামঘোষা। বনলতা, এপ্ৰিল ২০১৭, গুৱাহাটী-১

গৌণ সমল :

১। কলিতা, সত্যজিৎ। শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱে পাণবজাৰ-১ সৃষ্টি আৰু চিন্তা। অশোক পাব্লিকেশ্বন গুৱাহাটী-১

২। নেওগ, মহেশ্বৰ। অসমীয়া সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা। চন্দ্ৰ প্ৰকাশন, ১৯৯৯, গুৱাহাটী-১

৩। নেওগ, ডিম্বেশ্বৰ। নতুন পোহৰত অসমীয়া সাহিত্যৰ ব্ৰঞ্জী। শূৰনি প্ৰকাশন, ১৯৯৩ গুৱাহাটী-১

৪। বৰা, ময়ূৰ। জাতিভেদ প্ৰথা আৰু শংকৰদেৱ। আঁক-বাক তৃতীয় প্ৰকাশ ২০১৯ গুৱাহাটী-১

৫। বৰমুদৈ, আনন্দ। যুগনায়ক শংকৰদেৱ সংগ্ৰহন আৰু আত্মীকৰন। অসম পাবলিচিং কোম্পানী, ফেব্ৰুৱাৰী-২০১৪ গুৱাহাটী-১

৬। মহন্ত, বাপচন্দ্ৰ। ঐতিহাসিক পটভূমিত মহাপুৰুষ শংকৰদেৱ। বনলতা ১৯৯৯ ডিব্ৰুগড় ১

৭। শাস্ত্ৰী, মনোৰঞ্জন। অসম বৈষ্ণৱ-দৰ্শনৰ ৰূপৰেখা। সম্পাদনা বাণীকান্ত শৰ্মা, বাণী প্ৰকাশ, প্ৰথম প্ৰকাশ ১৯৯১

৮। Guru, Gopal and Sundar Sarukkai. Experience, caste and the everyday social. oxford university press, August. 2019

৯। Locke, John. Two Treatises of Government everyman. January, 1989.---. An essay concerning human understanding. Dover publications inc. june 1959

১০। Mill, John Stuart. The subjection of women. Edited by Alan P.F Sell oxford university press, 1994 ---.

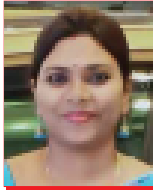
১১। On liberty. Edited by David spitz. Hackett publishing company 201

১২। Shakil, Albeena and gopal guru (ED). Spheres of Injustice. Taylor & Francis Books Indian pvt. Ltd, January 2023

১৩। Sen, Amartya . The idea of justice. Penguin India, January 2010

এধানী মাহীৰ হাঁহি : ঔপনিৱেশিক আমোলত অসমৰ সামাজিক পট পৰিৱৰ্তনৰ জীৱন্ত দলিল

সংক্ষিপ্ত সাৰ :



ড° উৎপলা দাস

সাহিত্য অকাডেমি বঁটা প্ৰাপক, অসম সাহিত্য সভাৰ সভাপতিৰ আসন অলংকৃত কৰা মহিম বৰাদেৱৰ একেধাৰে কবি, ঔপন্যাসিক, গল্পকাৰ, প্ৰবন্ধকাৰ, নাট্যকাৰ, অনুবাদক আৰু এগৰাকী দক্ষ শিশু সাহিত্যিক। ইয়াৰ উপৰিও তেওঁ এগৰাকী শিক্ষাবিদ। নগাওঁ মহাবিদ্যালয়ৰ অসমীয়া বিভাগত তেওঁ সুদীৰ্ঘ কাল অধ্যাপনা কৰে। যুদ্ধোত্তৰ যুগত এগৰাকী প্ৰতিষ্ঠিত গল্পকাৰ হিচাপে খ্যাতি অৰ্জন কৰা মহিম বৰাই কেইবাখনো উপন্যাস ৰচনা কৰে। ১৯৯৭ চনত প্ৰকাশিত এধানী মাহীৰ হাঁহি বৰাদেৱৰ এখন অনন্য উপন্যাস হোৱাৰ লগতে অসমীয়া সাহিত্যৰো অন্যতম শ্ৰেষ্ঠ উপন্যাস বুলিব পাৰি। ইয়াত সহজ-সৰল ভাৱাপন্ন এধানী মাহী আৰু ভাগিনীয়েক দেউকণৰ সম্পৰ্কক লৈয়ে উপন্যাসখনৰ কাহিনীবস্তু নিৰ্মাণ হৈছে। সাধাৰণ যেন লগা এটা কাহিনীক উপস্থাপন কৰিবলৈ যাওঁতে অসমৰ সমাজ-সংস্কৃতিৰ লগতে ৰাজনৈতিক আৰু অৰ্থনৈতিক দিশেও ইতিহাসৰ ৰূপত ধৰা দিছে। প্ৰকাশৰ ফালৰ পৰা এই উপন্যাস স্বাধীনতাৰ পাছৰ হ'লৈও ঔপন্যাসিকে পাতনিতে কাহিনীৰ সময় সম্পৰ্কে স্পষ্ট ভাৱে উল্লেখ কৰিছে।

সাহিত্য সমাজৰ দাপোন। নিঃসন্দেহে বৰাদেৱৰ এই সাহিত্যই প্ৰাক স্বাধীনতাকালীন অসমৰ এখন বাস্তৱ ছবি ধৰি ৰখাত সাৰ্থক হৈছে। এগৰাকী গাঁৱলীয়া, সৰলমনা, দায়িত্বশীল এধানী উদাৰ-সহিষ্ণু, সংযমী, কৰ্মদক্ষ আৰু আদৰ্শ অসমীয়া নাৰী হিচাপে প্ৰতিষ্ঠিত হৈছে। সকলো পৰিস্থিতিতে মুখত হাঁহি লৈ ফুৰা এধানী মাহী এগৰাকী পাকৈত শিপিনী। জীয়ৰী, বোৱাৰী, বিধবা তিনিওটা স্তৰ পাৰ কৰা মাহী এফালে গ্ৰাম্য সভ্যতাৰ ধাৰক-বাহক হিচাপে প্ৰকাশ্য হৈছে। দেউকণৰ মাজেৰেও অসমৰ ৰীতি-নীতি, আচাৰ-আচৰণ, খেল-ধেমালী, লোকভাষা, লোকচিকিৎসা আদি সকলোৱে জুমুৰি দি থকা 'এধানী মাহীৰ হাঁহি' লোক-সংস্কৃতিৰো মৌ ঘৰ। আমাৰ এই গৱেষণা পত্ৰত অসমীয়া সমাজখনৰ সাংস্কৃতিক গৌৰৱৰ লগতে ঔপনিৱেশিক আমোলত সলনি হ'বলৈ ধৰা সাংস্কৃতিক স্বৰূপৰ বিষয়ে বিশ্লেষণাত্মক ৰূপত দাঙি ধৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

সূচক শব্দ :

চাহ বাগিছা, চাহাব, অসমীয়া, ঔপনিৱেশিক, লোকসংস্কৃতি।

অৱতৰণিকা :

সাহিত্যৰ বিভিন্ন অংগসমূহৰ ভিতৰত এক অন্যতম কলা হৈছে উপন্যাস। উপন্যাস বাস্তৱ জীৱনৰ কলাসন্মত প্ৰকাশ। উপন্যাসৰ মাজেৰে মানৱ জীৱনৰ পূৰ্ণাংগ, সুস্থ

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
বি. বৰুৱা কলেজ (স্বা.)
গুৱাহাটী, অসম
☎ ৯৬৭৮৯৬৩৮৬২
✉ utpaladas@bboroahcollege.ac.in

আৰু বৈচিত্ৰপূৰ্ণ চিত্ৰ প্ৰকাশ পায়, যাৰ বাবে উপন্যাসে সমাজৰ সকলো স্তৰৰ লোকৰে অন্তৰ স্পৰ্শ কৰি আহিছে। কলেবৰত দাঙৰ হোৱাৰ বাবে এই শ্ৰেণীৰ সাহিত্য কৰ্মই সমাজ সংস্কৃতিৰ ধাৰক-বাহক হ'বলৈ নিজৰ বাহু সম্পূৰ্ণকৈ মেলিব পাৰে।

সাহিত্য সৃষ্টি আৰু বিকাশৰ বাবে এখন সুস্থিৰ সমাজ আৰু তাত বিৰাজ কৰা সুস্থিৰ পৰিৱেশৰ নিতান্তই প্ৰয়োজন। ঊনবিংশ শতিকাত অসমত সাহিত্য সৃষ্টিৰ বাবে তেনে পৰিৱেশৰ অভাৱ হৈছিল। সেয়েহে এই সময়ছোৱাত উপন্যাসে জন্ম লাভ কৰিলেও অসমীয়া উপন্যাসে বিংশ শতিকাতহে বিকাশ লাভ কৰিবলৈ ধৰে। বিংশ শতিকাৰ প্ৰথম কেইবাটাও দশকত এই গতি বহু পৰিমাণে খৰতকীয়া হয়। তেনে সময়ৰে সাহিত্যিক হৈছে মহিম বৰা। পুতলা ঘৰ, হেৰাৰা দিগন্তৰ মায়া, এধানী মাহীৰ হাঁহি আৰু বন্দুলি ফুলৰ ৰং ইত্যাদি তেওঁৰ দ্বাৰা ৰচিত আৰু এই আটাইকেইখন উপন্যাসেই অসমীয়া সাহিত্যৰ অমূল্য ৰত্ন। সমাজ জীৱনৰ নান ৰঙীন পটভূমিৰে তেওঁ চাৰিওখন উপন্যাসেই পাঠকক সুকীয়া সোৱাদ প্ৰদান কৰিছে। গভীৰ জীৱনবোধ, সমাজ সচেতনতা, ভাষিক-সাংস্কৃতিক দায়বদ্ধতা আদিৰে সমাৱেশ তেওঁৰ উপন্যাসৰ মূল উপজীব্য।

সহজ-সৰল মানুহৰ অকৃত্ৰিম বাস্তৱ চিত্ৰ প্ৰকাশিত তেওঁৰ আটাইকেইখন উপন্যাসেই সুখপাঠ্য। ইয়াৰোপৰি গ্ৰাম্য সমাজখনৰ সুখ-দুখ, আশা-আকাংক্ষা, মানসিক দ্বন্দ্ব, সমস্যা আদি প্ৰকাশিত সিদ্ধহস্ত হোৱা হেতুকে 'এধানী মাহীৰ হাঁহি'ৰ দৰে উপন্যাস সৃষ্টি সম্ভৱ হৈছে। উপন্যাসখনৰ আৰম্ভণিৰ পৰা পৰিসমাপ্তিলৈকে অসমৰ লোক-সংস্কৃতিয়ে এটা ছাতিৰ দৰে চৰিত্ৰবোৰক নিজতে সামৰি ৰাখিছে। লোক ৰীতি-নীতি, লোকধৰ্ম, লোকভাষা, লোকোক্তি, লোককলা, লোকশিল্প সকলোবোৰ প্ৰাণবন্ত ৰূপত আজিও প্ৰবাহিত হৈ আছে। একেদৰে লোকসংস্কৃতিৰ সকলো দিশলৈ আহিব ধৰা পৰিৱৰ্তনবোৰ কেনেকৈ অসমীয়া সমাজলৈ আহিল সেই দিশলৈও উপন্যাসিক সচেতন। এই ক্ষেত্ৰত বাগানৰ সমাজখন আৰু ব্ৰিটিছ চাহাব, বঙালী লোকক কৰা অনুকৰণক বাস্তৱ ৰূপত দাঙি ধৰিছে। এহাতে গ্ৰাম্য সমাজখন আৰু পৰিৱৰ্তন হ'বলৈ ধৰা গ্ৰাম্য চেতনাৰ চহৰীয়া সমাজখনক একেলগে কাহিনীৰ মাজেৰে গতি কৰোৱাত অতিৰ সাৰ্থক হৈছে উপন্যাসিক।

অসমৰ লোক-সংস্কৃতিৰ বাস্তৱ ছবি :

গতিময়তা সকলো সমাজৰ অবিচ্ছেদ্য অংগ। যিমানো মনুষ্য, দুৰ্বল আৰু সীমিত নহওঁক, পৰিৱৰ্তন প্ৰক্ৰিয়া সকলো সমাজ জীৱনতে সক্ৰিয় হৈ থাকে। ব্ৰিটিছ শক্তিয়ে খোপনি পোতাৰ পিছত অসমীয়াৰ জীৱনলৈ পৰিৱৰ্তন আহিল। সাহিত্য-সংস্কৃতি সকলোতে এই পৰিৱৰ্তনে নিজৰ স্বাক্ষৰ বহণ কৰিলে। উপন্যাসধৰ্মী ৰচনাৰ পৰা ক্ৰমে উপন্যাস সাহিত্যৰ বিকাশ হ'ল। সাহিত্য সমাজৰ দাপোন। সকলো শ্ৰেণীৰ সাহিত্যই এখন সমাজক প্ৰতিনিধিত্ব কৰে। সাহিত্যিক হিচাপে মহিম বৰাও এই ক্ষেত্ৰত ব্যতিক্ৰম নাছিল। বিংশ শতিকাৰ দ্বিতীয়-তৃতীয়-চতুৰ্থ দশকৰ সমাজখনক পটভূমি হিচাপে লৈ ৰচনা কৰা বৰাদেৱৰ 'এধানী মাহীৰ হাঁহি' উপন্যাসত সেই সময়ৰ অসমীয়া সমাজখনৰ বাস্তৱ ছবি দাঙি ধৰা হৈছে। লোকগীত-মাত, প্ৰবাদ-প্ৰৱচন, যোজনা-পটন্তৰ, জটুৱা-ঠাচ আদিৰে চহকী অসমীয়াৰ লোকভাষায়ে সমাজ চিত্ৰ প্ৰকাশত সহায়ক হৈছে।

ক) মৌখিক সাহিত্যৰ উপস্থাপন :

লোকসাহিত্য বা বাচিক কলা (Oral literature) ৰ সৈতে নিবিড় সম্পৰ্ক থকা উপাদানে সহজ ভাষাত লোকভাষা (Folk speech)। পৰম্পৰাগত ভাৱে মুখ বাগৰি অহা এই লোকভাষা সাধাৰণতে পৰিমার্জিত আৰু কোনো ৰীতিৰ মাজত আৱদ্ধ নহয়। সেয়ে লোকভাষাত বৈয়াকৰণিক বিধিৰ সীমাৰেখাও নিৰ্ধাৰিত নহয়। তথ্য পি ই সাধু বা কৰ্মিত ভাষাৰ তুলনাত যে এলাগী হ'ব তেনে নহয়। বৰং এক বুজাব নোৱাৰা মাধুৰিয়ে লোকভাষাক সামৰি আছে। বৰাদেৱৰ এধানী মাহীৰ হাঁহি উপন্যাসৰ পাতে পাতে তেনে বহু উদাহৰণ পাব পাৰি। যেনে — অৱশেষত বৌটিৰ কথা ৰজিল। এদিন মোমাইদেউ ছুটীত আহি ৰেলেৰে কুৰি মাইল আৰু খোজকাঢ়ি পাঁচ মাইল নিয়াৰ পিছত সন্ধিয়াৰ আগে আগে ককাদেউতাৰ চোতালত ভৰি দিলোঁগৈ/এধানী মাহী নথকা হ'লে পাটকুঁৱাৰ পৰা হেপুটি হেপুটি পানী তুলি নিজেই গা-ধুব লাগিলহেঁতেন /মই মাহীৰ পিছে পিছে ঘূৰি মাহীক ইটো সিটো কামত লা-ধু কৰি দিবলৈ ধৰোঁতেই মাহীৰ মনে চেবালে, ...। 'মোৰ মূৰৰ চুলিৰ সমান আয়ুস লৈ তই দুকুৰি বছৰ জীয়াই থাকিবি। মোৰ আয়ুসখিনি দি যাম, যমৰজাক কৈ। মইনো জীয়াই থাকি সংসাৰত কি কচুপাত ফুলাম ?' — এধানী মাহীৰ মুখত সততে দেখা পোৱা এনে বহু উক্তিৰে

উপন্যাসত ৰংকাৰ তুলিছে। গ্ৰাম্য সৰলতাৰে পৰিপূৰ্ণ অথচ উচ্চ শিক্ষাৰ দ্বাৰা শিক্ষিত নোহোৱা এধানীৰ কথাৰ মাজতে লুকাই আছে অভিজ্ঞতাৰ বৰঘৰ আৰু জ্ঞানৰ ভাণ্ডাৰ। তথা লোকোক্তিৰে ভৰা কথোপকথনে অসমৰ গ্ৰাম্য সৰলতাৰ লগতে অসমীয়া ভাষাৰ চহকী স্বৰূপো প্ৰকাশ কৰিব পাৰিছে— ‘সাঁতোৰ সাঁতোৰ বাঁউসীৰ বলে, সাঁতুৰিব নোৱাৰিলে যে বসাতলে !’ ফাট দিয়া ঐ বসুমতী পাতালে লুকাওঁ ‘হা কৰিলেই হুমুনিয়াহ ধৰিব পাৰে !’ ‘ইস, ইস, য’ৰে গোঁসাই ত’তে থাকিল ।’ ‘হোলাৰ ভাই মোলা ।’ ‘সাত ঘাটৰ সৈয়া ।’ ‘কথা গৰকা ছোৱালী ।’ ‘য’ত ৰাজ, ত’ত কাজ ।’ ‘টিক বলধা ওলাই মাটি, মাক চাইহে জীয়েক জাতি ।’ ‘চাউল উকলিব ।’ ‘ক’ত জনমৰ মূৰে পাণ-তামোলৰ বাৰী; ক’ত জনমৰ মূৰে পুত্ৰৱতী না ।’ ‘গা হ’ল তিয়ঁহৰ জালি ।’

খ) পৰম্পৰাগত ভৌতিক সংস্কৃতিৰ উপস্থাপন :

ভৌতিক সংস্কৃতিৰ দিশত অসমৰ চহকী স্বৰূপ আজিও বিশ্বৰ বুকুত জিলিকি থকা বিধৰ । কাঁহ-পিতলৰ বাচন, পাট-মুগাৰ বস্ত্ৰ, পৰম্পৰাগত সোণ-ৰূপৰ গহণা, বাহ-বেতৰ শিল্প, লাৰু-পিঠা, শাক-পাতৰ জুতিৰ ৰন্ধন শৈলী আদিৰ কথা কৈ শেষ কৰিব নোৱাৰা ধৰণৰ । যদিও কাহিনী সৰু তথাপি বিন্দুৰ বুকুত সিন্ধু বুলিলে ভুল কৰা নহ’ব । বৰাদেৱৰ উপন্যাসখন যদিও বিংশ শতিকাৰ শেষৰটো দশকত প্ৰকাশিত হৈছিল, তথাপি তেওঁ পাতনিতে কোৱা, ‘১৯২৫-৪০ মানলৈ এই সময়খিনিত সামাজিক, ৰাজনৈতিক, অৰ্থনৈতিক আৰু বিশেষকৈ জাতীয় জীৱনত সুদূৰ প্ৰসাৰী প্ৰভাৱ পেলাব পৰা ঘটনা ঘটিছিল, যাক এখন সৰু উপন্যাসে সামৰিব নোৱাৰে ।’— এই মন্তব্যই স্পষ্ট কৰে যে স্বাধীনতাৰ আগৰ সময়ছোৱাৰ সামাজিক, ৰাজনৈতিক, অৰ্থনৈতিক পট নিৰ্মাণত উপন্যাসৰ কাহিনীবস্তুৰে বিশেষ ভূমিকা পালন কৰিব ।

বিংশ শতিকাৰ চহকী অসমীয়াৰ ঘৰ-সংসাৰ স্বৰূপ প্ৰকাশ কৰিবলৈ যাওঁতে উপন্যাসিকে লিখিছে — ‘ককাদেউতাৰ ঘৰ চৌহদ বৰ বহল, পিছফালে গৈ পথাৰকো সামৰিছে । তিনিপূৰামান মাটিৰ বাৰীখনেই । একেবাৰে শেষৰ ফালে জাতি আৰু ভলুকা বাঁহৰ বাৰীখন, য’ত কুঠাৰ ঘূৰাব নোৱাৰি । ৰোৱাতলিও বহুত । আধিত চলে ।’ বাৰীয়ে ভেটিয়ে পথাৰৰ ধন ধানে একেবাৰে জয়-জয় ময়-ময় অৱস্থাৰ উমান সহজতে পাব পাৰি । কিন্তু আধুনিক সময়ত চহকীৰ সংজ্ঞা সলনি হৈছে । এটা সুবিশাল বঙলাৰ সন্মুখত

এখন দেশী-বিদেশী ফুলৰ বাগিছা আৰু একাষে বিদেশী কোম্পানীৰ গাড়ী ৰখা ঘৰ । সময়ৰ লগে লগে পৰম্পৰা যেন সলনি হৈছে ।

বিংশ শতিকাৰ কেইবা দশকৰ ইতিহাস বহণ কৰা এই উপন্যাসত সেই সময়ৰ নাৰীৰ সৌন্দৰ্যত খোপাৰ গুৰুত্ব আৰু বিশেষত্বৰ এখন মনোৰম ছবি দেখা গৈছে — ‘প্ৰায় আঁঠু চোওঁ চোওঁ চুলিকোছা মাহীয়ে চম্ভালি থকা টান হৈ পৰে; প্ৰায়ে উধনীয়া খোপা এটা মাৰি কেইবাবাডালো কাঁটা খুঁচি থয়’ । অসমৰ গ্ৰাম্য সমাজতো পৰম্পৰাগত পদ্ধতিৰে চুলি আৰু ছালৰ যত্নৰ এক বাস্তৱসন্মত বৰ্ণনা মহিম বৰাদেৱৰ উপন্যাসখনিত প্ৰকাশিত হৈছে এনেদৰে— ‘সেইদিনা মাহীয়েও মোক দেখুৱাই মূৰ ধুব । তাৰ আগ দিনাই মাহীয়ে বেৰত আঁৰি থোৱা ভীমকলৰ শুকান বাকলি তিনিটামান জুইত পুৰি ছাই কৰি নাৰিকলৰ কোৰোকাত ভৰাই বাটি বা পিতলৰ ঘটি এটাৰ ওপৰত থৈ তাত অলপ পানী ঢালি দিব,— ছাইখিনিত । কোৰোকাৰ তলফালে ফুটা এটা থাকেই, কাৰণ গোটা নাৰিকলটো ভঙাৰ আগতে তাৰ চকুয়েদি বিদ্ধা কৰি পানীখিনি আগতে উলিয়াই লয় । তাত খেৰৰ খৰিকা ভৰাই দি পানী ঢালি দিলে চোকা খাৰণী টোপাটোপকৈ সৰি তলৰ পাত্ৰত ৰাতিটোৰ ভিতৰত আধাকাপ, একাপমান জোখৰ খাৰণী পানী জমা হয় । আগদিনাই এমুঠিমান মাটি দাইল বাকলিৰে আন এটা পাত্ৰত তিয়াই থ’ব । ওঁ টেঙাৰ দিনত ওঁবীজ গোটাই মাটিৰ টেকেলি এটাত কলপাতেৰে বান্ধি টেকীশালৰ বেৰত আঁৰি থৈ দিয়েই । মূৰ ধুবৰ সময়ত মাটি মাহৰ চোকোৰা গুচাই পটাত পিহি খাৰণীত মথি তাৰ লগত ওঁবীজ এটা মিলাই থপথপীয়া এবাটি খিচিৰিৰ দৰে বস্তু তৈয়াৰ কৰি উলিয়াই মূৰত ভালদৰে ঘাঁহি গামোচা এখনেৰে টানি গোটেই মূৰটো ঢাকি চুলিখিনিৰে সৈতে ভয়ংকৰ খোপা এটা বান্ধি লৈহে বাকী কামবিলাক কৰি সেই অৱস্থাবেই মোৰ স্নানকাৰ্য্য সমাপন কৰিব ।’ নিজৰ চুলিৰ যত্ন এধানীয়ে ব্যস্ততাৰ মাজতো লোৱা দেখা গৈছে । কেৱল এইয়াই নহয় তেওঁৰ আৰু বহুবোৰ সচেতনতা মন কৰিবলগীয়া । যেনে — ‘তোৰ দাঁতৰ আলু ফুলা মই কেনেকৈ ভাল কৰি দিলোঁ ? সদায় নিমখ মিহি কৰি পিহি লৈ ঘাইতেল ‘সৰিয়হ তেল’ সানি দাঁত ঘাঁহিব, পুৱা আৰু ৰাতি ভাত খোৱাৰ পিছত, আগলৈ কেতিয়াও দাঁতৰ বেমাৰ নহ’ব, দাঁত পোকে নাখাব ।’ নিজৰ চুলিৰ যত্ন যিদৰে লৈছে, একেদৰে মৰমৰ ভাগিনীয়েককো উপদেশ দি কৈছে —

‘বুজিছ দেউকণ, তোৰ চুলি যদি আগলৈ কিচকিচীয়া কৰি
ৰাখিব খুজিছ, কেতিয়াও চাবোন নলগাবি আৰু সপ্তাহে-
দুসপ্তাহে এনেকৈ মূৰ ধুবি, নাৰিকল তেল সানি ম’হৰ শিঙৰ
ফণিৰে লাহে লাহে ফণিয়াবি ।’

পৰম্পৰাগত সমাজ আৰু প্ৰগতিৰ প্ৰতিফলন :

উপন্যাসখনৰ এটা মন কৰিবলগীয়া দিশ হ’ল পৰম্পৰা
আৰু প্ৰগতিৰ মণিকাঞ্চন সংযোগ। প্ৰায় প্ৰতিটো চিত্ৰকল্পৰ
উপস্থাপনত ইয়াৰ সুকীয়া বাখ্যা পোৱা গৈছে। এহাতে
পৰম্পৰা আশ্ৰয়ী গ্ৰাম্য সমাজ আৰু সেই সমাজৰ লোক-
ৰীতি, আচাৰ-বিশ্বাস, চিকিৎসা, সৌন্দৰ্য চৰ্চাৰ সঠিক
ৰূপায়ণত সাৰ্থকতা লগতে একে সময়তে প্ৰগতিবাদী চেতনা
আৰু আধুনিকতাৰ প্ৰলেপ এই দুয়োটা দিশকে একেডাল
দোলেৰে বান্ধিব পাৰিছে। উদাহৰণস্বৰূপে—‘তোৰ
আগলৈকে কাছাৰীত নাজিৰ পেচকাৰ কাম কৰিলে বৰকৈ
ৰ’দে-বতাহে নোলালে ৰংটো আৰু মুকলি হ’ব। আৰু তোৰ
নাক-মুখৰ গঢ় ইমান ধুনীয়া নে গাৰ ৰংটোলৈ কোনেও
চকুকে নিদিব। যোৰাই যোৰাই ছোৱালী দিয়া মানুহ আহিব।
অপেচৰীৰ নিচিনা ছোৱালী, যদিহে পঢ়ি-শুনি চৰকাৰী বিষয়
খোৱা হ’ব পাৰ। সেয়েহে তোক খেল-ধেমালিত সময় নকটাই
মূৰ গুঁজি পঢ়াত মন দিবলৈ কৈ থাকোঁ। এফালে যদি পথাৰত
কাম কৰি কৰি দেহৰ বৰণ ক’লা কৰি তোলা এটা প্ৰজন্মৰ
ছবি প্ৰকাশিত হৈছে; আনফালে পিছৰ প্ৰজন্মলৈ তেনে দিনৰ
পৰিৱৰ্তনৰ আশা দেখা গৈছে। পথাৰত বোকা ৰোৱা, ধান
কটা, মাহ সৰিয়হ তোলাৰ কাম কৰোঁতেই ডেকা-গাভৰুৰ
দেহৰ বৰণ সলনি হৈছে। কিন্তু সময় যে সলনি হৈছে তাৰ
আগতীয়া ইংগিত উপন্যাসখনত আছে। নতুন প্ৰজন্মই
পথাৰত কাম কৰিবলগীয়া নহ’ব। শিক্ষা-দীক্ষাৰে অফিচ-
কাছাৰীৰ নকল নবীচ হ’ব। পৰিতাপৰ কথা এয়ে যে তেন্তে
আমাৰ পথাৰ এতিয়া কাৰ হাতত ?

পৰিৱৰ্তন সমাজৰ এক এৰিব নোৱাৰা চৰ্ত। তথাপি
দেউকণৰ ককাদেউতাকৰ ঘৰৰ সামগ্ৰিক পৰিৱেশ আৰু
মিতামামাৰ ঘৰৰ বৰ্ণনাই সেই সময়ৰ গৃহ নিৰ্মাণশৈলীৰ
এক স্পষ্ট আভাস পাঠকক প্ৰদান কৰিব পাৰিছে। ইয়াৰ
বাহিৰেও উপন্যাসৰ কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ এধানীৰ জৰিয়তে
সংস্কৃতিৰ এক সুকীয়া নিদৰ্শন দাঙি ধৰা হৈছে। ঘৰে-বাৰীয়ে
সকলোতে পাকৈত এধানী এগৰাকী ভাল শিপিনীও।
গোট্টেই গাওঁখনৰ তিৰোতাৰ তাঁত শালৰ যিমান সৰু-বৰ
সমস্যা থাকে, সেইবোৰ সমাধানৰ প্ৰথম ব্যক্তিয়েই এধানী।

উপন্যাসখনত তাঁতশালৰ লগতো বহু লোকবিশ্বাসজনিত
পৰম্পৰা গএগই পালন কৰাটো লক্ষণীয় হৈছে—‘বস্তি
খুৰীৰ তাঁতখনে ইমান আমনি কৰিছে, দিনটোত এবেকেগেতো
ব’ব পৰা নাই, গৰকা দিবই নোৱাৰি, কোছা-কোছে সূতা
ছিগে। শেহত কৈ আহিলো, ই কথাই কথা নহয় খুৰী, খুৰাক
পঠিয়াই দিয়া জুলাই বেজৰ ওচৰলৈ, ডোল-ফোঁহটি এডাল
জৰাই আনক।’ নজৰ লগা, চকু লগা আদিৰ বাবেই
তাঁতশালত কাপোৰ ব’বলৈ শিপিনীয়ে অসুবিধা পায়। তাৰ
প্ৰতিকাৰৰ বাবে তন্ত্ৰ-মন্ত্ৰ আদিৰ আশ্ৰয় লয়। গ্ৰাম্য সমাজে
আকৌ তেনেবোৰ কাৰ্যক অতি নিষ্ঠাৰে পালন কৰে।
এধানীৰ এনে কথাত সমানে হয়ভৰ প্ৰদান কৰা নৰ ৰ’ নজৰ
কথাটো ময়ো মানো ...’ — এই মন্তব্যই এনেধৰণৰ
লোকবিশ্বাস সজোৰে প্ৰকাশ কৰিছে। বিপদ-বিঘিনী তথা
মুখ লগা আদিৰ পৰা হাত সাৰিবলৈ আগতীয়া প্ৰস্তুতি গ্ৰাম্য
সমাজত নথকা নহয়; কিন্তু কেতিয়াবা সেইবোৰেও যেন
কোনোধৰণৰ নিৰাময় প্ৰদান কৰিব নোৱাৰে। সেয়ে গুণী-
মানী বেজৰ আশ্ৰয় ল’বলগীয়াও হয়। অন্ধবিশ্বাস, কুসংস্কাৰ
যি বুলিয়েই কোৱা নহওঁক কিয় সৰল লোকমনে বিশ্বাস
কৰে যে কোনো কোনো মানুহৰ নজৰ ইমান বেয়া যে তেনে
লোকৰ দৃষ্টি পৰাৰ লগে লগে সৰ্বনাশ।

উপন্যাসকৰ কাহিনী অনুসৰি সেই গাঁৱৰ ঔপন্যাসিকৰ
মানস চৰিত্ৰ এধানীয়েই যে বোৱা কটাৰ কাম জানে তেনে
নহয়, আন তিৰোতাবোৰেও তাঁতত বোৱা কটা কৰাত বৰ
পাকৈত বুলি অনুমান কৰিব পাৰি। এধানীৰ পাৰদৰ্শিতা
আনতকৈ স্বভাৱতে বেছি বুলিব পাৰি। গাঁৱৰ কোনো লোকৰ
ঘৰৰ তাঁতখনৰ কিবা অসুবিধা হ’লে প্ৰথমে তেওঁকেই মতা
হয়—‘মৰাৰ খবৰটো পোৱাৰ দিনা, মাহী গ’ল ওচৰৰে এঘৰৰ
তাঁতখনে বৰ আমনি কৰা বুলি শুনি। তেনেকৈ ওচৰৰ মানুহে
মাহীক মাজে মাজে মাতি নিয়েই। মাহীয়ে যিখন তাঁতৰ
আমনি ভাঙিব নোৱাৰে, তেতিয়াহে গৃহস্থঘৰে, তিনিমাইল
দূৰৰ তুলাই বেজক খবৰ দিয়েগৈ।’ উপন্যাসৰ বিভিন্ন স্থানত
এনে বহুবোৰ লোকবিশ্বাস আৰু তন্ত্ৰ-মন্ত্ৰৰ প্ৰভাৱৰ কথা
প্ৰকাশ পাইছে—‘তাঁত বাটি কৰোঁতে, বা শালত উঠাওঁতে,
হিংসুক তিৰোতা আহি তাঁতখন চোৱাৰ ছলতে বালি-ধূলি
কেইটামান মাৰি দিলেই তাঁতত কেণা লাগিবলৈ ধৰে, সূতা
ছিঙে, বাঁচৰ কাঠি ভাঙে, মাকোঁ সৰি পৰে, নানা ধৰণৰ
জঞ্জাল আৰম্ভ হয়। তেতিয়াই গৃহিণীৰ গা চেবায় আৰু বেজৰ
হতুৱাই পানী বা সৰিয়হ জৰাই আনি শনিবাৰে বা মঙলবাৰ

এটাত ছটিয়াই দিলেই তাঁতখন সলসলীয়া হয়।’ ইয়াতেই লুকাই আছে সৰল মনৰ অগাধ বিশ্বাস। পাট কাপোৰ বওঁতে আগতেই তাবিজ ডোল আদিৰ ব্যৱস্থা কৰে। বিশ্বাস, অন্ধবিশ্বাস যিয়েই প্ৰকাশ নহওঁক কিয়, এটা কথা নিশ্চিত যে বিংশ শতিকাত অসমীয়া নাৰীয়ে নিজেই বোৱা-কটা কৰি সাজ-পোছাক নিজেও পিন্ধিছিল আৰু আনকো উপহাৰ দিছিল। মোমোয়েক সখী অৰ্থাৎ মিতা মামাৰ ঘৰলৈ প্ৰথমবাৰ যাওঁতে পইচাৰ লগত এখন ফুলাম গামোছাও দেউকণক দিয়াৰ উদাহৰণ মন কৰিবলগীয়া। আনহাতে বাগিছাৰ সমাজত তেনে কোনো আচাৰ আছিলনে নাই সেই সম্পৰ্কত ঔপন্যাসিক নিমাত। অসমীয়া সমাজৰ অতিথিপৰায়ণ স্বৰূপ প্ৰকাশত বৰাদেৱৰ এনে প্ৰচেষ্টা শলাগনীয়। ইয়াৰ উপৰিও গ্ৰাম্য সৰলতা উপন্যাসৰ সকলো স্থানতে বৰ সৰস। হিংসা, কপটতাৰ কোনো আঁচোৰ এধানীৰ চৰিত্ৰত পাবলৈ নাই। সেয়ে দেওকণক দিয়া গামোছাৰ ফুল দেখি পাকৈত শিপিনী এধানীয়েও সেই ফুল টোলাৰ কথা কৈছে — ‘গামোচাৰ ফুলটো আৰু বোৱনটো হ’লে বৰ শলাগিলে। এই ফুলটো ৰাখিব লাগিব, নতুন চানেকী, পদুম কলি, ঠাৰি, পাত, বোধহয় ছোৱালীজনীৰ মাকৰ হাতৰ।’ — এই উক্তিত শিল্পীসূলভ দুগৰাকী নাৰীৰ চিত্ৰ প্ৰকাশিত হৈছে। এগৰাকী সেই সময়ত অনুপস্থিত, তথাপি তেওঁ সেই ক’লাক প্ৰশংসা আন এগৰাকী শিল্পীয়ে মুক্ত মতে কৰিছে। কিন্তু সেই সময়ছোৱাত যে হিংসা আৰু কপটতা মানুহৰ মাজত নাছিল তেনে নহয়, বিশেষকৈ নাৰী সমাজত সেইবোৰ ভৰপূৰ মাত্ৰাত থকাৰ কথা ঔপন্যাসিকে অতি কৌশলতাৰে উপস্থাপন কৰিছে।

সামাজিক ৰীতি-নীতিৰ উপস্থাপন :

লোক ৰীতি-নীতি পালনৰ ক্ষেত্ৰত অসমীয়া সমাজখন আজিও বিশেষভাৱে একক। গতিকে বিংশ শতিকাৰ প্ৰথম ছোৱাত কেনে হ’ব পাৰে সেইয়া উপলব্ধি কৰাটো ইমান কঠিন নহ’ব। ৰাতিপুৱা শোৱাপাটি এৰাৰ পৰা ৰাতি আকৌ শোৱাপাটি লোৱালৈ বিভিন্ন লোকাচাৰৰ দ্বাৰা পৰিচালিত হৈ আহিছে। বিশেষকৈ জন্ম-মৃত্যু-বিবাহ আদিৰ বাহিৰেও আন বহুবোৰ লোক ৰীতিয়ে অসমীয়াৰ স্বাভিমান গদ গদ। এইখিনিতে উপন্যাসৰ পাতনিতে থকা দৃশ্য্যৱলী মন কৰিবলগীয়া — ‘গৈ পাওঁতেই বাহিৰে বাহিৰে এধানী মাহীয়ে ডাং কোলাকৈ নি কুহুমীয়া গৰমপানীৰে গা-পা ধুৱাই পিন্ধা কাপোৰ-কানি তিয়াই শুদ্ধ কৰি দিয়াৰ পিছতহে ভিতৰ সোমাই বুঢ়ী আইৰ কোলাত বহিব পাৰিলোঁ। মোমাইদেউৰো একেই

অৱস্থা, বাগানত চাহাবৰ লগত যোৱা-গজা কৰা মানুহৰ ‘ডবল’ গা ধোৱা।’ জাতি-ধৰ্ম-বৰ্ণ বৈষম্য থকা এই সমাজত নাৰীৰ ক্ষেত্ৰতো বহু সুকীয়া আচৰণ থকাৰ প্ৰমাণ আছে — ‘... বোৱাৰী কালতে শাখৰ দ্বাৰা ৰং লগাই ক’লা কৰা আলকাতৰাৰ ৰঙৰ বা ডাঠ ফিকা চাহৰ ৰঙৰ দাঁতকেইটা উজলাই কোলাত বহুৱাই মুখ-গাল-মূৰত দিয়া টপাটপ চুমাৰেইটাই মোৰ অহংকাৰ চূৰ্ণ কৰি দিলে ...।’

বিবাহিত নাৰীৰ বাহিৰেও জীয়ৰী-ছোৱালীৰ ক্ষেত্ৰতো বহু সামাজিক ৰীতি-নীতি থকা দেখা গৈছে। এধানীৰ ৰজস্বলাৰ সময়ৰ এক দৃশ্যই তাকেই প্ৰতিপন্ন কৰিছে — ‘মোৰ যমৰ যাতনা হৈছিল মাহীৰ অসুবিধা হোৱাৰ দিন চাৰিটা। সেইকেইদিন মোৰ নিজৰ কাম নিজেই কৰিবলগীয়া হৈছিল। বুঢ়ীআইৰ — হে চুবি, চুবি সেইফালে নাযাবি, সেই খেৰডাল সামৰি লচোন এধানী, কেনেকৈ ভৰি হাত লাগে। — ঘৰত থকা সময়খিনিত মোৰ ক্ষীণ দেহটো কোঁচ খুৱাই সেইকেইদিন আৰু পাৰ কৰি ৰাখোঁ।’

অসমীয়া মানুহে নিজ গৃহৰ পৰা বাহিৰলৈ ওলাই যাবলগীয়া হ’লে ঘৰত থকা গোসাঁই ঘৰত সেৱা কৰিহে যোৱাৰ পৰম্পৰা আজিৰ একবিংশ শতিকাতো নথকা নহয়। বহু ৰীতিৰ অৱশ্যে পৰিৱৰ্তনো মন কৰিবলগীয়া। বিশেষকৈ ৰাষ্ট্ৰনিশাললৈ অন্য মানুহৰ প্ৰৱেশ প্ৰায় নিষিদ্ধ বুলিলে ভুল কৰা নহ’ব। জাতিভেদ প্ৰথাও যে বিংশ শতিকাত সৰব আছিল, সেই কথাও জানিব পাৰি। উচ্চ জাতৰ লোকৰ ঘৰত নিম্ন জাতৰ মানুহে নিজে খোৱা বাচন-বৰ্তনবোৰো ধুই থৈ আহিবলগীয়া হৈছিল। বয়োজ্যেষ্ঠসকলৰ পাগ সুকীয়া থকাৰো প্ৰমাণ বহু সময়ত উল্লেখ পোৱা যায়।

নাৰীৰ মাহেকীয়াৰ সময়তো কঠোৰ নীতি-নিয়মৰ বাঞ্ছন উপন্যাসখনত মূৰ্ত হৈছে। ঘৰৰ এচুকত মাটিত সুকীয়াকৈ কলৰ মঘুনা অথবা ধানখেৰ পাৰি নিজৰ বিচনা পাতি থাকিব লাগে আৰু দৈনন্দিন ব্যৱহাৰ কোনো সামগ্ৰী, মানুহ আদিৰ পৰা সম্পূৰ্ণ নিলগত অৰ্থাৎ স্পৰ্শও কৰিব নোৱাৰিব। তিনি দিনৰ দিনা পালন কৰিবলগীয়া শুদ্ধিৰো বৰ্ণনা উপন্যাসত আছে —

ঔশুদ্ধিৰ দিনা বিছনা কৰি লোৱা খেৰ, কলমঘুনা চোতালৰ এমূৰত নি জ্বলাই দিয়ে। ওচৰৰ তিৰোতা মানুহে আহি পানী তুলি দিয়ে। ঘৰৰ ভিতৰ, অহা-যোৱা কৰা বাট, মাহীয়ে গোবৰ মাটিৰে মচি দিয়াৰ পিছত মোৰ হতুৱাই

তুলসীপাত ছিঙাই, পানীত তিয়াই বুঢ়ী আয়ে খোঁটালিৰ ভিতৰে-বাহিৰে ছটিয়াই দিয়ে।’

কেঁচুৰা জন্মৰ অশৌচি, মানুহে মৃত্যুৰ পাছত পৰিয়ালে, পালন কৰা চোৱা আৰু সেই সময়ৰ নান লোকবিশ্বাস আৰু তেনে সময়ত পালন কৰা ৰীতি-নীতিৰ মনোৰম ছবি অংকণত বৰাদেৱ সার্থক বুলিব পাৰি। নিৰামুহি সুধা, অশৌচৰ বাবে আকৌ সুকীয়া টোপোলা আদি অসমৰ বিংশ শতিকাৰ সমাজখনৰ নিটোল স্বৰূপ দাঙি ধৰিছে। নীতি-নিয়মৰ ক্ষেত্ৰত সেই সমাজ কিমান নিকপকপীয়া আছিল সেইয়া সহজেই অনুমান কৰিব পাৰি। ‘এবাৰ কেঁচুৰা মোমাইদেউক সুকীয়া খাংখনত শুৱাবলৈ যাওঁতে চাদৰৰ আগটো কেনেকৈ ৰাতি শুৱা পালেঙিখনত লাগিল। আইতাই লুকুৱাব বুলি ভাবিছিল, কিন্তু পাপ লাগিব তেওঁৰহে। শাখ্যেকক কৈ দিলে। লগে লগেই চুলি তিয়াই গা ধুবলগীয়া হ’ল।’

কেৱল এয়াই নহয়, দিনটোত ‘তিনি-চাৰিবাৰ গা ধোৱাৰ নিয়ম আছেই।’ ইয়াৰোপৰি — ‘বাহি বিছনা চোৱা দুৰৰ কথা, বোৱাৰীয়ে বাহি গা ধোৱাৰ পিছত শোৱনী-কোঠালৈকে যোৱা মানা, যদিহে ঘৰৰ ৰান্ধনী হয়।’ সেয়েহে ঘৰৰ শাখ্যগৰাকী শৰীৰে পৰালৈকে নিজৰ ভাতমুঠি নিজেই খিজাই খোৱাৰ পৰম্পৰা আছিল। সত্ৰ-নামঘৰৰ ভকত সকলেও সকলোৰে ৰান্ধনিশালৰ ভাতমুঠিও গ্ৰহণ নকৰিছিল। পৰাপক্ষত নিজেই ৰান্ধি খোৱাৰ নানান উদাহৰণ পোৱা যায়। বৰাদেৱেও দেউকণৰ ককাকৰ ঘৰত ভকতৰ বাবে তেনে সুকীয়া ব্যৱস্থা থকাৰ কথা কৈছে।

সামাজিক পৰম্পৰা অনুসৰি নাৰীৰ জীৱনৰ তিনিখন সুকীয়া ছবি প্ৰকাশত সার্থক হৈছে ঔপন্যাসিক — বিয়াৰ আগৰ এধানী, বিয়াৰ পিছত সধৱা এধানী, স্বামী বিয়োগৰ পিছৰ বিধবা এধানী—‘ডাঙৰ হাৰিকেন লেম্পটোৰ উজ্জল পোহৰ মাহীৰ গাটোত সম্পূৰ্ণকৈ পৰাৰ লগে লগে মোৰ কলিজাটোত যেন কোনোবাই খুন্দা এটা মাৰি দিলে। আশ্ৰমত নিজ হাতে নেওথনীত কপাহ নেওথি নিজে ধুনি, পাজি বটি সূতা কাটি নিজে বৈ লোৱা শুধ বগা সাজযোৰা, কপাল জলমলাই তোলা সেন্দুৰৰ ফুট আৰু নাই, উকা কপাল। হাতৰ ঠাৰি দুটা উদং আৰু কাণত নাই মাহীৰ অতি হেঁপাহৰ থুৰীয়াযোৰ।’ অথচ কেইমাহমান আগত সেই এধানীৰ সুকীয়া সৌন্দৰ্যই দেউকণৰ লগতে তেওঁক ভালপোৱা সকলোৰে চকুত ধৰা পৰিছিল — ‘মাহীৰ চেহেৰাই এসপ্তাহৰ ভিতৰত সলনি হৈ গ’ল, গাত মাহ-তেল-হালধিৰ পানী আৰু কপাল

আৰু শিৰৰ সেওঁতাত দগমগীয়া সেন্দুৰৰ ফোঁট লেৰাৰ লগে লগে হাতত সোণৰ আৰু আঙুলিত বিধে বিধে আঙঠি আৰু কাণত নতুন থুৰীয়া, ডিঙিত জোনবিৰি, — পিন্ধাত মুগাৰ মেখেলা আৰু মুগাত ৰিহা, হাতদীঘল ব্লাউজ, মিহি সূতাৰ গুণাৰ পাৰি দিয়া চাদৰ ... মহাক পাই যে মাহী আনন্দিত হৈছিল, মই মাহীৰ মুখলৈ চায়েই ধৰিব পাৰিছিলোঁ।’

‘এধানী মাহীৰ হাঁহি’ উপন্যাসত লোক-সাংস্কৃতিক সমলৰ বিচাৰ-বিশ্লেষণত মূখ্য ভূমিকা পালন কৰিছে এধানী মাহীৰ বিয়াখনে। সমাজ ব্যৱস্থা, ৰীতি-নীতি, লোকবিশ্বাস আদি সকলোবোৰ মনোৰম ৰূপত এই বিয়াত প্ৰকাশ পাইছে — ‘অৱশ্যে মাহীৰ বিয়াৰ সম্পৰ্কতে সামাজিক বহুত নিয়ম-নীতি বহুত নতুন কথা মই জানিব পাৰিছিলো, যিবিলাক পাঠ্যপুথিত নাই বা স্কুলত পঢ়োৱা নহয়। এই বিশেষ উদ্ভি়ে উপন্যাসখনক মহাকাব্যিক শাৰীলৈ উন্নীত কৰিছে। পৰম্পৰাগতভাৱে সামাজিক নীতি, মূল্যবোধ আদিবোৰ, পাঠ্যপুথিৰ অন্তৰ্ভুক্ত নহয়। অথচ ই প্ৰতিজন মানুহৰে জীৱনৰ এক এৰাব নোৱাৰা অংশ আৰু তেনেবোৰ শিক্ষাই আমাক প্ৰদান কৰে একোখন সুস্থ সমাজে। এই ক্ষেত্ৰত পৰিয়ালৰ ভূমিকা অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ। উপন্যাসখনত আৰম্ভণিৰ পৰা শেষলৈকে এটা আদৰ্শবান পৰিয়াল, সেই পৰিয়ালৰ ৰীতি-নীতিৰ বাস্তৱ নিদৰ্শন দাঙি ধৰাত ক’তো কৃপনালী কৰা নাই— মান ধৰা, কইনাই দৰাঘৰৰ মানীসকলক সন্মান অনুযায়ী কাপোৰ-গামোচা আদি শৰাইত আগবঢ়াই দি সেৱা কৰিব লাগে আৰু তেওঁলোকেও সন্মান অনুসৰি আখলি টকাটো কইনাক দিহে গ্ৰহণ কৰিব লাগে।’ এইখিনিতে মন কৰিবলগীয়া কথা এয়ে যে এই সমগ্ৰ কাৰবাৰটো ঔপন্যাসিকে বাস্তৱসন্মতভাৱে পৰ্যবেক্ষণ কৰিছে — ‘মাহীৰ দৰাৰ ফালৰ সেই জঞ্জাল নাই যদিও মুকুন্দ মোমাইদেউইহঁতে, মামীয়ে বোৱা চেলিং, গামোচা দি আশ্ৰমৰ মানুহকেইজনকে মান ধৰালে।’ অসমীয়া বিবাহ পৰম্পৰাত আজিও মান ধৰা কাৰ্য চলি আহিছে। উপন্যাসিকে কোৱা জঞ্জাল শব্দটো এই পৰম্পৰাত যেন সঠিকভাৱে খাপ খাইছে।

অসমীয়া লোকসমাজে অতি হেঁপাহেৰে এনে ৰীতি-নীতিবোৰ প্ৰজন্মৰ পিছত প্ৰজন্মলৈ কঢ়িয়াই আহিছে। এধানী মাহীৰ বিয়াখন গাঁৱৰ ঘৰত থকাৰ সময়ত নহ’লে হয়তো দেউকণ বা সেই প্ৰজন্মই তেনে বিয়া আৰু বিয়াৰ লগত জড়িত ৰীতি-নীতি, লোকবিশ্বাস আদিৰ পৰিচয় ভালদৰে লাভ কৰিব নোৱাৰিলে হেঁতেন — একে আৰু বহুত সৰু-

বৰ কথা, নিয়ম-নীতি, যেনে— দৈয়ন দিয়া, কইনাক হোমৰ গুৰিলৈ উলিয়াই নিয়াৰ সময়ত ‘দুৱাৰ ধৰি’ দিয়া, আকৌ কইনাক নোঁৱাবলৈ বটা মাহ-হালধি তেলৰ বাতিটো কুমুদ কৰিব নোৱাৰাকৈ সাৱধানে ৰখা, বেইৰ তলত হাঁহৰ কণী পোতা, কুমুদ কৰিব নোৱাৰাকৈ কণীটো নোঁওৱাৰ পিছত বেইৰ তলৰ পৰা উলিয়াই অনা আৰু আঠমঙলাত সেই কণী দৰা-কইনাক ভাজি খুওৱা ইত্যাদি বহুত কথা মই মাহীৰ বিয়াৰ পৰাই শিকি নিজক আন গুণী-গুণী সমাজৰ লোক হ’লো বুলিয়ে ভাবি লৈছিলো’।

তন্ত্ৰ-মন্ত্ৰ আৰু নানান লোকবিশ্বাসে আৱৰি থকা অসমৰ লোকসমাজত দাঁত পোকে খোৱাৰ চিকিৎসা পদ্ধতি সদায় আলোচনাৰ বিষয় হ’ব পাৰে। ইয়াৰ লগত অসমৰ প্ৰতিখন গাঁৱৰ নানান বিষয়-বিচ্যুত লোকবিশ্বাস থকাৰ প্ৰমাণ সাহিত্যত ৰক্ষিত হৈছে। এধানী মাহীৰ হাঁহি উপন্যাসতো তেনে দৃশ্যৰ অৱতাৰণা কৰিবলৈ যাওঁতে উপন্যাসিকে বিস্তৃত বৰ্ণনাৰ মাজেৰে আগবঢ়াইছে — ‘মোৰ আগতে দাঁত দুটা পোকে খাইছিল, এতিয়াও এফাল এৰাই ক’লা হৈ আছে। ... আমাৰ ঘৰৰ পৰা এমাইলমান আঁতৰত থকা এগৰাকী তিৰোতা মানুহে বাহী মুখেৰে তিনিটা শনিবাৰে বছৰি পোক উলিয়াই।’ মন কৰিবলগীয়া কথাটো হ’ল যে যিগৰাকী তিৰোতাই জৰা-ফুকা কৰিব, তেওঁ বাহী মুখেৰে সেই কাম কৰিব। আকৌ সোমবাৰ, বুধবাৰ বা বৃহস্পতিবাৰ আদিত কৰাৰ বিপৰীতে শনিবাৰেহে এই কামৰ বাবে উচিত বুলি বিবেচনা কৰিছে। বাৰবোৰৰ নাম অনুসৰি সেইবোৰৰ লগত নানান লোকবিশ্বাস অসমীয়া সমাজত আজিও পালন কৰা দেখা যায়। বিশেষকৈ চুলি-নখ আদি কটাৰ সময়ত শনিবাৰ আৰু মঙলবাৰক একেবাৰে এঘৰীয়া কৰাটো শিলৰ ৰেখাত পৰিণত হৈ আহিছে। এনে বিশ্বাসজনিত কথা-কাৰ্যত গঞা সমাজৰ গভীৰ আস্থা জড়িত হৈ থকাটো মনকৰিবলগীয়া।’

উপন্যাসৰ চৰিত্ৰ দেউকণেও তেনে বিশ্বাসতে আস্থা প্ৰকাশ কৰিছে। ‘মানুহগৰাকীয়ে নিজৰ বাৰীৰ মালভোগ কলৰ আগলি পাত কাটি আনি, চোতালৰ এচুকত জেওৰাৰ গুৰিত লহপহকৈ বাঢ়ি থকা দুবৰিৰ আগ তিনিটা ছিঙি আনি, মোক মুখ মেলি তললৈ মূৰকৈ বহিবলৈ দি ভুন ভুনাই মন্ত্ৰ মাতিবলৈ ধৰে। দুবৰিৰ আগ তিনিটা মুখৰ আগত ৰাখি লাহে লাহে জোঁকাৰি থাকে। প্ৰথম দিনাই বেজী যেন মিহি কিন্তু চুটি চুটি তিনি-চাৰিটামান পোক কলপাতৰ পৰা তুলি আনি আমাক দেখুৱালে। পিতাদেউক বৰ বিশ্বাস কৰা যেন

নালাগিলেও মোৰ হ’লৈ দাঁতৰ বিষ কমি যোৱা যেন লাগিছিল।’ দেউকণৰ কুমলীয়া মনটোত তাৰ ক্ৰিয়া সহজতে হ’লেও দেউতাকৰ পৈণত মনত তাৰ প্ৰভাৱ কেনেকুৱা সেয়া স্পষ্ট।

ঔপনিবেশিক আমোলত অসমৰ সামাজিক পৰিৱৰ্তন :

মহিম বৰাদেৱৰ ‘এধানী মাহীৰ হাঁহি’ উপন্যাসত যিদৰে অসমৰ লোক-সংস্কৃতিয়ে প্ৰাণ পাই উঠিছে ঠিক একেদৰে ঔপনিবেশিক আমোলত অসমৰ সলনি হ’বলৈ ধৰা লোক-সংস্কৃতিৰো জীৱন্ত স্বৰূপ প্ৰকাশিত হৈছে। উপন্যাসৰ কাহিনীবস্তুৰ আঁৰে আঁৰে গান্ধীবাদী আন্দোলন আৰু অসমীয়াৰ সক্ৰিয় অংশগ্ৰহণৰ চিত্ৰ স্পষ্ট ৰূপত দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। যদিও এধানী মাহীৰ বিয়াৰ সময়ৰ পৰাহে স্বদেশী আন্দোলনে উপন্যাসত স্থান পাইছে, তথাপি ঔপনিবেশিক আমোলত অসমৰ গাঁৱে-ভূঞা বৈ পৰা আধুনিকতা বিৱৰণ তাৰ আগৰ পৰাই দেখা যায়। দৰাচলতে দেউকণৰ মোমায়েক বাগানৰ চাকৰিয়াল হোৱা হেতুকে এনে পৰিৱৰ্তন সহজেই অনুমান কৰিব পৰা হৈছে। বাগানৰ সমাজখনত ইংৰাজৰ পোনপটীয়া পৰশ আৰু বঙালী লোকৰ দ্বাৰা গঠিত হোৱা সমাজৰ ফলতেই এক নতুন সংস্কৃতিৰ আমদানি হৈছিল বুলিব পাৰি। বাগানবোৰতেই প্ৰথমে ধুতিৰ পৰিৱৰ্তে হাফপেণ্ট, চাৰ্ট পিন্ধা পুৰুষৰ আৱিষ্কাৰ হ’ল; একেদৰে ৰীহা মেখেলাৰ সলনি কলিকতীয়া শাৰী অসমৰ নাৰীয়ে পৰিধান কৰিবলৈ ল’লে। একেদৰে বান বাতিত চাহ-জলপানৰ জুতি লোৱা অসমীয়াৰ ঘৰতো কাপ-প্লেটৰ ব্যৱহাৰ হ’বলৈ ধৰে— ‘কাপ-প্লেট আছে, মোমাইদেউ আহিলে উলিয়ায়। মাজতে টাউনত দহ পইচীয়া দোকানৰ পৰা চাৰিযোৰ জাপানী কাপ-প্লেট কিনি আনি আলমাৰীত সজাই থৈছিল মোমাইদেৱে।’ গাঁৱত থকাসকলে পিতলৰ গিলাচ বা বান বাতিতেই চাহৰ জুতি লয়।

উপন্যাসখনত সুকীয়া সংস্কৃতিৰ পৰিৱেশনিত দুখন সমাজে সমান্তৰালভাৱে গতি কৰিছে। এখনত বাগানৰ ৰান্ধনিৰে ৰন্ধা-বঢ়া কৰিছে; কিন্তু আনখনত আকৌ শৰণ ভজন দিয়াইহে ৰান্ধনিৰ দায়িত্ব অৰ্পন কৰা হয়। তথাপি হাতত লাখুটি লোৱা অৱস্থা পালেও পাকঘৰ নেৰে— ‘ভাতৰ চৰু, গোসাঁইঘৰ কিন্তু এৰা নাই। যিদিনা এৰিবলগীয়া অৱস্থা হ’ব জানিব লাগিব, বুঢ়ী আইৰ চাউল উকলিবৰ সময়।’ এইবিলাকৰ বাহিৰেও কাপোৰ ইষ্ট্ৰি কৰাৰ যি বৰ্ণনা উপন্যাসত পোৱা যায়, তাৰ পৰা এটা কথা স্পষ্টকৈ ক’ব পাৰি যে সেই

সময়ত ইংৰাজ বিষয়াবোৰৰ লগতে বঙালী কেৰাণী-মহৰীবোৰক একপ্ৰকাৰ আদৰ্শ হিচাপে গ্ৰহণ কৰা হৈছিল। প্ৰকাৰান্তৰে বান বাতিত অঙঠাৰে হ'লেও কাপোৰ ইষ্ট্ৰি কৰি গাৰুৰ তলত থৈ পিছৰ দিনা সেই কাপোৰ পিন্ধিছে। এইবিলাকৰ উপৰিও অসমীয়া নিভাঁজ সম্বন্ধবাচক শব্দলৈ অহা পৰিবৰ্তনে সাধাৰণ পাঠকক ব্যথিত কৰিব। বৌটি গুচি 'মা', পিতাদেউ গুচি 'বাবা', 'মিতা'ৰ ঠাই লৈছে বন্ধুৰে। ইংৰাজী মাধ্যমত পঢ়া-শুনা কৰা একাংশ অসমীয়া বঙলা সাহিত্যৰ ভক্ত হোৱাৰ কথা অতি কৌশলেৰে ঔপন্যাসিক দেউকণৰ মাজেদি দাঙি ধৰিছে।

ইয়াৰোপৰিও ঔপন্যাসিকে দ্বিতীয় বিশ্বযুদ্ধৰ ভয়াবহতা বৰ সুক্ষ্মতাৰে পৰ্যবেক্ষণ কৰিছে। এই যুদ্ধই পোনপটীয়াকৈ সমাজৰ ক্ষতি সাধন নকৰিলেও অৰ্থনৈতিক ভাৱে দিয়া মাধ্যমৰ পৰা কোনো লোকেই হাত সাৰিব পৰা নাছিল। পথাৰৰ ধানৰ নৰাৰ পৰা, বাঁহ ইকৰা, ধানখেৰ আদি পেলনীয়া বস্তুৰো দাম বাঢ়িবলৈ ধৰিল। গাঁৱত মৰাপাট উৎপাদন হ'লেও গাঁৱতে এমুঠি মৰাপাট পাবলৈ নোহোৱা হ'ল। চাবোন, দিয়াচলাইৰ দৰে অত্যাৱশ্যকীয় সামগ্ৰীবোৰৰ দাম বাতিটোৰ ভিতৰতে বাঢ়িবলৈ ধৰিল। যদিও সেই সময়ত গাওঁবোৰত কলাখাৰেৰে এক বিশেষ প্ৰক্ৰিয়াৰ দ্বাৰা কাপোৰ ধোৱাৰ পৰম্পৰা পূৰ্বৰ পৰা আছিল, তথাপি যেন গাওঁ-চহৰ সকলোতে গা আৰু কাপোৰ ধুবৰ বাবে চাবোনৰ চাহিদাও ক্ৰমাৎ বৃদ্ধি পাইছিল। সোণ, ৰূপ আদি ধাতুবোৰৰো দাম নিশাটোৰ ভিতৰতে বৃদ্ধি পাইছিল।

সামৰণি :

উপন্যাসখনৰ কাহিনী ৰূপায়ন আৰু পটভূমি বিচাৰ আৰু বিশ্লেষণ কৰিলে এটা স্থিৰ সিদ্ধান্তত উপনিত হ'ব পাৰি যে বৰাদেৱৰ 'এধানী মাহীৰ হাঁহি' এখন মহাকাব্যধৰ্মী উপন্যাস। ইয়াত অসমৰ লোকসংস্কৃতিৰ প্ৰতিটো ভাগেই বাস্তৱ ৰূপত খোদিত কৰা হৈছে। সামাজিক ৰীতি নীতিৰ ক্ষেত্ৰত যি বাখ্যা আগবঢ়াইছে সেয়া কোনো অঞ্চলৰ মাজতে সীমাবদ্ধ নহয়। বৰং ইবোৰৰ সাৰ্বজনীনতাও অনস্বীকাৰ্য। কলেবৰত বহু বিশাল নহ'লেও বিন্দুৰ পৰা সিদ্ধলৈ বৈ থকা বিশালতাৰ বাবে এই উপন্যাসৰ বিশ্লেষণ অলপ জটিল। তথাপি যিমান পাৰি লোক-সংস্কৃতিৰ প্ৰতিটো ভাগ সামৰি মাহীৰ জৰিয়তে বৰাদেৱে বিংশ শতিকাৰ অসমীয়া নাৰীৰ ভীমচৰিত, কাণখোৱা, তুলসী চৰিত্ৰ, গুণমালা, কীৰ্ত্তন আদিৰ পাঠ মুখস্থ থকাৰ উপৰিও কথাই প্ৰতি ফকৰা যোজনা, প্ৰবাদ-

প্ৰবচন আদিৰ লগতে ভকতীয়া শচকুঞ্চ কুঞ্চ, প্ৰভু প্ৰভু' খাচৰ বাস্তৱ স্বৰূপ প্ৰকাশলৈ আটাইবোৰ দিশ সামৰা হৈছে। একেদৰে লোকভাষাৰ নিৰ্ভেজাল ৰূপ এটাও উপন্যাসত ৰক্ষিত হৈছে। তথাপি স্বীকাৰ্য যে সেই সময়ত অসমীয়া ভাষালৈ অহা ভাবুকিও ঔপন্যাসিকে অংকণ কৰিছে। বাগানৰ সমাজত কিদৰে অসমীয়া ভাষাই উড়িয়া, বঙালী, ইংৰাজী আদি ভাষাৰ প্ৰভাৱত মিশ্ৰ ৰূপ ল'বলৈ আৰম্ভ কৰিছে। লগতে শিক্ষিত অসমীয়াই অসমীয়া ভাষা সংস্কৃতিৰ প্ৰতি অনিহা প্ৰকাশ নকৰিলে বঙলাৰ প্ৰতি যে আগ্ৰহ বাঢ়িছিল সেইয়া স্পষ্টকৈ দাঙি ধৰিছে। লোকভাষা সহজ, পোনপটীয়া, প্ৰাঞ্জল আৰু চিত্ৰধৰ্মী। এধানি মাহীৰ ভাষাৰ সাজত এই লক্ষণবোৰ দেখা গৈছে।

প্ৰাকৃতিক লোকজীৱনে উপন্যাসখনত অনন্য মাত্ৰা লাভ কৰিছে। লোকশিল্প, লোককলা, লোকস্থপতিবিদ্যা, লোক আভৰণ, লোক ৰন্ধন প্ৰণালী আদিৰ বাস্তৱ ৰূপায়ণে ভৌতক সংস্কৃতিত চহকী অসমীয়া সমাজক প্ৰতিনিধিত্ব কৰিব পাৰিছে। বানবাটি, পাণধোৱা কাঁহী, হাতীখুজীয়া বাটি আদিৰ লগতে বাবৰি শাকেৰে ৰন্ধা কাঁৱে মাছৰ আঞ্জা, ৰংপুৰীয়া আলুদি ৰন্ধা পাৰৰ মাংস, পালেং শাকৰ আঞ্জা আৰু জলপানৰ ভিতৰত পিঠাগুৰি, সান্দহ গুৰি, লতা উঠোৱা কৰাই গুড়িৰ লগতে ঘিলা পিঠাৰ সৈতে অসমীয়া পৰম্পৰাগত খাদ্যৰ জুতিও উপন্যাসত আছে। এনে সময়তে একাংশ আদ্যৰন্ত পৰিয়ালত চিৰা দৈৰ লগত সমানে লুচিও আহি অসমীয়া ৰন্ধন প্ৰকৰণত ঠাই পোৱাৰ কথাও মন কৰিবলগীয়া। ইয়াৰ বাহিৰেও উপন্যাসৰ কাহিনীৰ মাজেৰে ঢেকীশাল, ধান-মাহৰ ডুলি, পাচি, মাহ পিহা যাঁত, হালধি মছলা পিহা পটা, মাছ বচা মৈদা আদিৰ বাহিৰেও ডলা, খৰাহী, পাচী আৰু সেইবোৰক বান্ধিবলৈ ব্যৱহাৰ কৰা মুগা সূতা আদি বিশেষভাৱে উল্লেখনীয়। ককাদেউতাকৰ ঘৰখন আৰু মিতা মামাৰ ঘৰখনৰ বৰ্ণনাৰ মাজতেই লোক স্থপতি-বিদ্যাৰ পৰিচয় পোৱা যায়। লোক আভৰণৰ ক্ষেত্ৰত বিয়াৰ পিছত মাহীয়েকে পৰিধান কৰা জোনবিৰি-থুৰীয়া বিশেষভাৱে মন কৰিবলগীয়া। লোককলাৰ দিশত অসমীয়া শিল্পীৰ তুলনা যে নাই সেইয়া 'বৃন্দাবনী' বস্ত্ৰৰ পৰা আৰম্ভ কৰি এধানী মাহীৰ হাঁহীৰ এধানী আৰু 'মিতা'ৰ প্ৰথমা পত্নীয়ে বোৱা দেউকণক উপহাৰ দিয়া সেই গামোছখনলৈ প্ৰৱাহিত হৈ আছে।

লোক-সংস্কৃতিত সামাজিক লোকপ্ৰথা, ধৰ্মীয় বিশ্বাস, আচাৰ আদিয়ে গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰে। মৌখিক সাহিত্য

আৰু ভৌতিক সংস্কৃতিৰ মাজতে পৰম্পৰাগত জীৱন। পৰম্পৰাগত জীৱনক সামাজিক লোক-ৰীতিয়ে আবৰি সামৰি আহিছে। উৎসৱ-অনুষ্ঠান, অৱসৰ-বিনোদন আৰু খেল-ধেমালি, লোক-ধৰ্ম, লোক চিকিৎসা আদিৰ সুন্দৰ নিদৰ্শনে বিংশ শতিকাৰ অসমৰ স্বৰূপ ৰক্ষা কৰা উপন্যাসখনেই হ'ল এধানী মাহীৰ হাঁহি। এধানীৰ বিয়াৰ জৰিয়তে বিবাহৰ ৰীতি-নীতি আৰু সামাজিক দায়াবদ্ধতা যিদৰে দাঙি ধৰিছে সেইয়া প্ৰশংসনীয়। একেদৰে এধানীৰ ৰজশ্বলাৰ সময়ত আচাৰ-ৰীতি খুব সুন্দৰকৈ দাঙি ধৰাত সাৰ্থক ঔপন্যাসিক। জন্ম-মৃত্যু সম্পৰ্কীয় লোকাচাৰবোৰো অতি বাস্তৱ ৰূপৰ প্ৰকাশ কৰা হৈছে। লোকবিশ্বাসৰ ক্ষেত্ৰত এক সুকীয়া মাত্ৰা লাভ কৰা ঔপন্যাসখনত মুখ লগা, নজৰ ভঙা তন্ত্ৰ-মন্ত্ৰ, তাবিজ আদিৰো অৱতাৰণা কৰিছে। ভকতীয়া প্ৰথাৰ দ্বাৰা পৰিচালিত গ্ৰাম্য সমাজখনৰ ভক্তি গদগদ স্বৰূপত প্ৰকাশোঁ মন কৰিবলগীয়া। দাঁত পোকে খালে জৰা-ফুকা কৰাৰ লগতে নিমখ আৰু সৰিয়হৰ তেলেৰে দিয়া দাঁতৰ চিকিৎসা, চুলিৰ ঘৰুৱা যতন আদিৰ মাজেৰে উন্নত আৰু পৰিপাতি জাতি হোৱাৰ লগতে প্ৰাকৃতিক সম্পদৰে চহকী হোৱাৰ গৌৰৱো বহণ কৰিব পাৰিছে। শিশু দেউকণে ৰবাব টেঙাৰে ফুটবল খেলা, বৌচিত

আদিৰ জৰিয়তে পৰম্পৰাগত খেল-ধেমালি আৰু আনন্দ-বিনোদন আৰু শিশু মনস্তত্ত্বৰ উপন্যাসখনিত প্ৰকাশ ঘটিছে।

অসমীয়া লোক-সংস্কৃতিৰ চতুৰ্থতম অংগ লোক পৰিৱেশ্য কলাৰ বহুল নিদৰ্শনৰ পৰা ঔপন্যাসিক আতৰি আহিছে। বৃহত্তৰ নগাওঁ জিলাত প্ৰচলিত সত্ৰীয়া পৰিৱেশ্য কলাই সংস্কৃতিৰ বৰঘৰ চহকী কৰি আহিছে। নগাওঁ অঞ্চলৰ বাসিন্দা হিচাপে ভাঙুনা আৰু ৰাস নৃত্যৰ কথা বিশেষভাৱে উল্লেখ থাকিলে ই এক এক তথ্য সংৰক্ষণত সহায়ক হ'লহেতেন। তাৰোপৰি তিনিওটা বিশ্ব লগত জড়িত কোনো ৰীতি-নীতিৰ পৰম্পৰাৰ বিবৰণৰ পৰাও উপন্যাসিক আঁতৰি আহিছে। সেয়েহে উপন্যাসৰ কোনো অংশতে লোকগীতৰ বৰ্ণনা এটিও শুনিবলৈ পোৱা নাযায়। বৰং বাগিছাত থকা অসমীয়াৰ বঙলা সংগীতৰ প্ৰতি সন্মোহনৰ তথ্য উপন্যাসত স্পষ্ট। মুঠতে ব্ৰিটিছৰ অসম আগমণৰ পিছত অসমৰ সমাজ জীৱনলৈ আমোল পৰিৱৰ্তন অহাটো নিশ্চিত। বৰাদেৱে পৰম্পৰা আৰু পৰিৱৰ্তন দুয়োটাকে বোকোচাত লৈ উপন্যাসৰ কাহিনীক সুসংগবদ্ধ কঢ়িয়াই নিছে। সেয়েহে 'এধানী মাহীৰ হাঁহি' উপন্যাস অসমৰ সমাজ জীৱনৰ বাস্তৱ দলিল হিচাপে সদায় সমাদৃত হৈ থাকিব। □

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী :

- ১। কলিতা, ৰমেশ চন্দ্ৰ : ঔপনিবেশিক আমোলত অসম। অশোক বুক ষ্টল, গুৱাহাটী, ২০০৮
- ২। কলিতা, ৰাজেন্দ্ৰ : প্ৰাচীন অসমৰ সংস্কৃতি আৰু বুৰঞ্জী। চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, ২০০৩
- ৩। চৌধুৰী, প্ৰসেনজিৎ : সমাজ সংস্কৃতি ইতিহাস। অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, গুৱাহাটী, ২০০৭
- ৪। নেওগ, শৰৎ চন্দ্ৰ : অসমত প্ৰগতিশীল সাংস্কৃতিক আন্দোলন। বাণী মন্দিৰ, গুৱাহাটী, ২০০১
- ৫। নবহ, জীৱন (সং) : মহিম বৰাৰ ৰচনা সমগ্ৰ। ষ্টুডেন্ট ষ্ট'ৰ, কলেজ হোস্টেল ৰ'ড, গুৱাহাটী, ২০০৮
- ৬। বৰগোহাঞি, যতীন্দ্ৰ কুমাৰ : অসমৰ সাংস্কৃতিক ইতিহাস। অসম সাহিত্য সভা, যোৰহাট, ২০০৭
- ৭। বৰা, মহিম : এধানী মাহীৰ হাঁহি। বনলতা, গুৱাহাটী, দ্বিতীয় প্ৰকাশ, ২০১৩
- ৮। শৰ্মা, নবীন চন্দ্ৰ (সম্পাদক) : অসমৰ সংস্কৃতি-সমী। চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, ২০০০

ৰমা দাশৰ গল্পত নগৰীয়া জীৱন : এটি বিশ্লেষণ



ড° প্রফুল্ল কুমাৰ নাথ

অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়
☎ ৯৮৫৯৯-৭৩৯৫৩
✉ pkn@gauhati.ac.in

সাৰাংশ :

আৱাহন যুগৰ গল্পকাৰসকলৰ ভিতৰত এগৰাকী উল্লেখযোগ্য গল্পকাৰ ৰমা দাশৰ গল্পত নগৰীয়া জীৱনৰ বাস্তৱ চিত্ৰ অংকিত হৈছে। তেওঁৰ গল্পত নৰ-নাৰীৰ যৌন কামনা-বাসনাৰ অবাধ বিচৰণ সততে চকুত পৰে। ৰমা দাশে কল্পনাৰ ৰং-বহন সানি নৰ-নাৰীৰ জৈৱিক কামনা-বাসনাক উপযুক্ত কলা-কৌশলৰ সহযোগত পাঠকৰ সন্মুখত উপস্থাপন কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰিছে। ডেকা-গাভৰুৰ প্ৰেমক কেন্দ্ৰ কৰি ৰচিত হোৱা তেওঁৰ ভালেমান গল্পত নগৰীয়া মধ্যবিত্ত সমাজৰ ৰোমাণ্টিক ভাব-বিলাসিতা, আত্মকেন্দ্ৰিক মনোভাৱ, স্বাৰ্থপৰতা, সংকীৰ্ণতা আৰু জৈৱিক কামনা-বাসনাই অতি মুক্ত ৰূপত আত্মপ্ৰকাশ কৰিছে। মূলতঃ গুৱাহাটী, শ্বিলং আৰু কলিকতাৰ পটভূমিত তেওঁ গল্পসমূহ ৰচনা কৰিছে। দেহ সৰ্বস্ব প্ৰেমৰ বৰ্ণনা, বিবাহ বহিৰ্ভূত প্ৰেম আৰু যৌনতাৰ মুকলিমুৰীয়া বৰ্ণনাই তেওঁৰ গল্পত প্ৰাধান্য লাভ কৰিছে। ইয়াত বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰে ৰমা দাশৰ গল্পত নগৰীয়া জীৱনৰ বিষয়ে আলোচনা কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

সূচক শব্দ :

নগৰীয়া জীৱন, কামনা-বাসনা, ৰোমাণ্টিক ভাব-বিলাসিতা, প্ৰেমৰ দেহসৰ্বস্বতা, প্ৰেম বিহ্বলতা ইত্যাদি।

বিষয়বস্তু অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য :

এই অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য হৈছে ৰমা দাশৰ গল্পত নগৰীয়া জীৱন সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা। আৱাহন যুগৰ গল্পকাৰসকলৰ ভিতৰত ৰমা দাশৰ গল্পই বিষয়বস্তু, চৰিত্ৰ চিত্ৰণ আৰু পৰিবেশ চিত্ৰণত গ্ৰহণ কৰা সুকীয়া বৈশিষ্ট্যৰ বিষয়ে আলোচনাৰ বাবে নিৰ্দিষ্ট বিষয়বস্তু নিৰ্বাচন কৰা হৈছে।

পৰিসৰ আৰু পৰিসীমা :

‘ৰমা দাশৰ গল্পত নগৰীয়া জীৱন’ শীৰ্ষক বিষয়তে আমাৰ আলোচনা সীমিত থাকিব। দাশে গুৱাহাটী, শ্বিলং আৰু কলিকতাৰ পটভূমিত ভালেমান গল্প ৰচনা কৰিছে যদিও নিৰ্বাচিত গল্পৰ আলোচনাতে এই অধ্যয়ন সীমাবদ্ধ থাকিব।

গৱেষণাৰ পদ্ধতি :

নিৰ্দিষ্ট বিষয়বস্তু আলোচনাৰ বাবে বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি গ্ৰহণ কৰা হ’ব।

গৱেষণাৰ সমল : গৱেষণাৰ বাবে মুখ্য আৰু গৌণ উভয়বিধ সমলৰ সহায় লোৱা হ’ব। মুখ্য সমল হিচাপে ‘ৰমা দাশৰ গল্প’ শীৰ্ষক গ্ৰন্থ আৰু গৌণ সমল হিচাপে গল্প সম্পৰ্কীয় বিভিন্ন প্ৰাসংগিক গ্ৰন্থ, গৱেষণা পত্ৰিকা আদিৰ সহায় লোৱা হ’ব।



ড° বনজিৎ ঠাকুৰীয়া

অংশকালীন অধ্যাপক
অসমীয়া বিভাগ,
ছয়গাওঁ মহাবিদ্যালয় (কামৰূপ)
☎ ৯৮৫৪৩-৫০৫২৩
✉ thakuria.banajit1@gmail.com

অৱতৰণিকা :

১৯২৯ চনত আৱাহন কাকত কলিকতাৰ পৰা প্ৰকাশ হোৱাৰ লগে লগে অসমীয়া চুটি গল্পৰ দ্বিতীয়টো যুগৰ সূচনা হয়। আৱাহনে অসমীয়া চুটি গল্পৰ বিকাশ আৰু বিস্তাৰৰ যোগেদি অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসত এটা নতুন যুগৰ সূচনা কৰিবলৈ সক্ষম হয়। পাশ্চাত্য গল্প সাহিত্যৰ বিষয়বস্তু হৃদয়ংগম কৰি আৱাহন যুগৰ চুটি গল্পই ৰূপবস্তু আৰু ভাৱবস্তু উভয় দিশতেই নতুনত্বৰ সূচনা কৰে। আৱাহনৰ পাততেই অসমীয়া চুটিগল্পই বিষয়বস্তু আৰু কলা-কৌশলৰ ক্ষেত্ৰত যথেষ্ট পৰিৱৰ্তন কৰিবলৈ সক্ষম হয়।

জোনাকীত জন্মলাভ কৰা অসমীয়া চুটি গল্পই পৰৱৰ্তীকালত ‘বিজুলী’ (১৯৯০-৯২), ‘উষা’ (১৯০৭-১৬), ‘বাঁহী’ (১৯০৯-৩০), ‘আলোচনী’ (১৯১০-১৯১৭), ‘চেতনা’ (১৯১৫-২৬), ‘মিলন’ (১৯৩০), ‘সাধনা’ (১৯২৪), ‘আসাম হিতৈষী’ (১৯২৫) প্ৰভৃতি বিবিধ আলোচনীৰ মাজেদি বিকাশ লাভ কৰি পৰৱৰ্তী কালত আৱাহনৰ বুকুত বিশেষভাৱে প্ৰতিষ্ঠা লাভ কৰে। এই যুগৰ গল্পকাৰসকলৰ ৰচনাত ‘ৰোমাণ্টিক ভাব-বিলাসৰ উন্মাদনা, কল্পনাৰ মুক্ত গতি, ভাষাৰ সুস্পষ্ট ব্যঞ্জনা আৰু প্ৰগতিশীল ৰীতি’ চকুত পৰে। মহেশ্বৰ নেওগৰ ভাষাত— ‘১৯২৯ চনৰ পৰা আৱাহন ওলাবলৈ ধৰাত গল্প-সাহিত্যৰ অভিনৱ যুগ এটাৰ সৃষ্টি হ’ল। বিষয়-বস্তু, আংগিক, ভাষা সকলো ফালৰ পৰা গল্প উন্মুক্ত আৰু প্ৰগল্ভ হৈ উঠিল।’ (নেওগ, পৃঃ ৩০৩)।

মোপাৰ্ছাঁ, ছেক্‌ভ প্ৰভৃতিৰ দৰে বিশ্বৰ আগশাৰীৰ গল্পকাৰসকলৰ আৰ্হি অনুসৰণ কৰি নতুন নতুন বিষয় গল্পত অন্তৰ্ভুক্তি কৰাৰ লগে লগে মনোবিজ্ঞানী ফ্ৰয়েড আদিৰ চিন্তাৰ দ্বাৰা প্ৰভাৱিত হৈ মানৱ চৰিত্ৰৰ মনোস্তাত্ত্বিক বিশ্লেষণত গল্পকাৰসকলে মনোনিৱেশ কৰিবলৈ ধৰিলে। (নাথ, পৃঃ ৪০)।’ সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাৰ মতে—

‘ফ্ৰয়েড, ইয়ুং, এডলাৰ আদিৰ, বিশেষকৈ প্ৰথমজনৰ, যৌন মনস্তত্ত্বই কোনো কোনো লেখকক প্ৰভাৱিত কৰে। বহু গল্পত যৌন ক্ষুধা বা ৰতি বাসনাই সামাজিক বন্ধন চিঙি যোৱাৰ প্ৰচেষ্টাও দেখা যায়, কিন্তু ৰচনা ভংগীৰ মাধুৰ্য্যই আৰু গল্প গাঁথনিৰ কাৰুকাৰ্য্যই শিল্পসুলভ সৌন্দৰ্য দান কৰি সুখপাঠ্য কৰি তুলিছে।’ (শৰ্মা, পৃঃ ৩১২)।

আৱাহন যুগৰ চুটি গল্পত চহা জীৱনৰ পৰিৱৰ্তে নগৰীয়া জীৱনৰ লাহ-বিলাহ আৰু আত্মমুক্তিৰ প্ৰচেষ্টাই গল্পত প্ৰাধান্য লাভ কৰিলে। মানুহৰ জন্মগত প্ৰবৃত্তি আৰু এই প্ৰবৃত্তিসমূহৰ বিচিত্ৰ কাৰ্যকলাপে মানৱ জীৱনত কেনেধৰণৰ ক্ৰিয়া-প্ৰতিক্ৰিয়াৰ সৃষ্টি কৰে, সেইসমূহ পৰীক্ষা-নিৰীক্ষা কৰি মানৱ জীৱনৰ বাস্তৱ সমস্যাক লৈ গল্প ৰচনাৰ প্ৰতি গল্পকাৰসকল আগ্ৰহী হৈ উঠিল। এফালেদি পাশ্চাত্য গল্পকাৰসকলৰ চুটি গল্পৰ আংগিক, বিষয়বস্তু আৰু কলা-কৌশলৰ প্ৰভাৱ, অন্য ফালেদি ভাৰতৰ স্বাধীনতা সংগ্ৰামৰ যোগেদি লাভ কৰা মুক্তিৰ প্ৰেৰণা— এই দুয়োটাই এই যুগৰ গল্পকাৰসকলক সময়োচিত চিন্তা-ধাৰা, আদৰ্শ আৰু নতুন দৃষ্টিভংগীৰ প্ৰতি আগ্ৰহী কৰি তোলাত চুটি গল্পৰ বিষয়বস্তুৰে গল্পকাৰসকলৰ দৃষ্টি আকৰ্ষণ কৰিবলৈ ধৰিলে। নৰ-নাৰীৰ জৈৱিক কামনা-বাসনা, সামাজিক আৰু অৰ্থনৈতিক সমস্যা, নতুন সামাজিক দৃষ্টিভংগী, বিষয়বস্তুৰ বৈচিত্ৰ আৰু প্ৰকাশভংগীৰ নতুনত্বই আৱাহন যুগৰ চুটি গল্পক সাহিত্যৰ এটা সুকীয়া প্ৰকাৰ ৰূপে প্ৰতিষ্ঠা লাভ কৰাত সহায় কৰিলে। (নাথ, পৃঃ ৪০)। এই যুগৰ গল্প সম্পৰ্কে ‘আধুনিক অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাস’ত শৈলেন ভৰালীয়ে এনেদৰে অভিমত আগবঢ়াইছে—

‘জোনাকীৰ পৰা আৱাহনৰ আগলৈকে এই সময়ছোৱাত অসমীয়া চুটি গল্পৰ পৰীক্ষা চলে আৰু আৱাহনৰ এচাম লেখকৰ হাতত ই সকলোফালৰ পৰা প্ৰসাৰতা লাভ কৰি কলা-কৌশলৰ পৈণত আৰু জনপ্ৰিয়া ৰচনাত পৰিণত হয়। (ভৰালী, পৃঃ ৬৮)।

আৱাহনৰ যোগেদি প্ৰতিষ্ঠা লাভ কৰা গল্পকাৰসকলৰ ভিতৰত প্ৰধানকৈ আৱাহন কাকতৰ প্ৰতিষ্ঠাতা নগেন্দ্ৰ নাৰায়ণ চৌধুৰী, লক্ষ্মীনাথ ফুকন, লক্ষীধৰ শৰ্মা, হলিৰাম ডেকা, ৰমা দাশ, বীণা বৰুৱা, ত্ৰৈলোক্য নাথ গোস্বামী, ৰাধিকামোহন আৰু কৃষ্ণ ভূঞাৰ নাম বিশেষভাৱে উল্লেখযোগ্য। এই গৱেষণা পত্ৰত ‘ৰমা দাশৰ গল্পত নগৰীয়া জীৱন’ শীৰ্ষক বিষয়ত আমাৰ আলোচনা সীমাবদ্ধ ৰখা হ’ব।

বিষয়বস্তুৰ আলোচনা :

ৰমা দাশ (১৯০৯-৮১) ৰ গল্পত যৌন কামনা বাসনাৰ অবাধ বিচৰণৰ চিত্ৰ অংকিত হৈছে। তেওঁৰ গল্পত জৈৱিক বাসনাৰ চিত্ৰবোৰ কল্পনা ৰং-ৰহণ সানি উপযুক্ত কলা-কৌশলৰ মাজেদি তাক পাঠকৰ সন্মুখত দাঙি ধৰাত দাশৰ দক্ষতা প্ৰশংসনীয়। হোমেন বৰগোহাঞিও সম্পাদিত ‘অসমীয়া গল্প সংকলন’ত ৰমা দাশৰ গল্প সম্পৰ্কে এনেদৰে মন্তব্য আগবঢ়াইছে।

‘বিশ্বৰ দশকত বৰ্মা দাশৰ প্ৰেমৰ গল্পই এনে এক ৰোমাণ্টিক ভাব বিলাসৰ সৃষ্টি কৰিছিল, এনে এক মদালস জগতৰ দুৱাৰ পাঠকৰ আগত মুকলি কৰি দিছিল, যাৰ তুলনা অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাসত সতকাই বিচাৰি পোৱা টান।’ (বৰগোহাঞি, পৃঃ ১০৫)

বৰ্মা দাশৰ গল্পত গুৱাহাটী, শ্বিলং আৰু কলিকতা চহৰৰ নগৰীয়া জীৱনৰ বিবিধ সমস্যাৰাজিৰ চিত্ৰ অংকণ কৰিছে। গল্পৰ পটভূমি অনুযায়ী বৰ্মা দাশৰ গল্পক তলত দিয়া ধৰণে বিভক্ত কৰিব পাৰি—

(ক) গুৱাহাটীৰ পটভূমিত ৰচিত গল্প :

ৰে’লৰ ৰোমাঞ্চ (১৯৩৪), ৰুদ্ধ যৌৱন (১৯৩৬), জীৱনৰ এৰাতি (১৯৩৬), প্ৰায়শ্চিত্ত (১৯৩৮), সেতুবন্ধন (১৯৩৯), চলেবলে কৌশলে (১৯৩৪), অবুজ পৃথিৱী (১৯৫৫), অশৰীৰী (১৯৬৪), দুপৰীয়াৰ গল্প (১৯৬০), ধৰ্মৰাজ (১৯৮১), অদৃষ্টৰ মিলন (১৯৮৬), জয় ডেকা শক্তিৰ, ছাটিৰ মাজাজৰী, ন-ৰাজখোৱা, দেৱতা আৰু দেৱী, অভিনৱ, বৈদ্য বেঙা।

(খ) শ্বিলঙৰ পটভূমিত ৰচিত গল্প :

দুৰ্যোগৰ ৰাতি (১৯৩৬), অচল টকা (১৯৩৮), বৰ্ষা যেতিয়া নামে (১৯৩৮), প্ৰেম আৰু পৃথিৱী (১৯৫২), ৰেভোডেন্দ্ৰৰ বিলাস (১৯৫৮), কোন এৰ নতুন মিৰাণ্ডা (১৯৬০), মৰাসুঁতি (১৯৬২), অমৰ কাহিনী (১৯৬৪)।

(গ) কলিকতাৰ পটভূমিত ৰচিত গল্প :

অতীত (১৯৩৬), প্ৰীতি উপহাৰ (১৯৩৬), যৌৱনৰ বিদ্ৰোহ (১৯৩৭), থেকুৱাৰ বাণী (১৯৬১), প্ৰণয়িনী, নিষিদ্ধ আহাৰ (১৯৫৯)।

আগতে উল্লেখ কৰা হৈছে যে বৰ্মা দাশৰ গল্পত নগৰীয়া জীৱনৰ কামনা-বাসনা, জৈৱিক তাড়না প্ৰভৃতি ভিন্ন দিশৰ প্ৰতিফলন ঘটিছে। জৈৱিক কামনা-বাসনা আৰু দৈহিক ক্ষুধাক বিষয় বস্তু হিচাপে লৈ গল্প ৰচনা কৰাৰ বাবে বৰ্মা দাশ এসময়ত যথেষ্ট সমালোচনা সন্মুখীন হ’বলগীয়া হৈছিল। ‘বৰ্ষা যেতিয়া নামে’ গল্প সংকলনখনিৰ পাতনিত তেওঁ ‘জীৱনৰ এৰাতি’ নামৰ গল্পটোৰ কাৰণে কেনেদৰে ককৰ্থনাৰ সন্মুখীন হৈছিল সেই কথা উল্লেখ কৰিছে।

বৰ্মা দাশৰ গল্পসমূহৰ ভিতৰত ‘অবুজ মায়’, ‘কোন এওঁ নতুন মিৰাণ্ডা’, ‘অচল টকা’ আদি বিশেষভাৱে

উল্লেখযোগ্য। তেওঁৰ গল্পৰ সমাজখন আছুতীয়া, জনতাৰ সমাজৰ পৰা ই বহুত দূৰৈত। উদাহৰণস্বৰূপে ‘বৰ্ষা যেতিয়া নামে’, ‘জাহ্নৱী’, ‘জীৱনৰ এৰাতি’ ইত্যাদি গল্পৰ উল্লেখ কৰিব পাৰি।

‘বৰ্ষা যেতিয়া নামে’ গল্পটোৰ আৱাহন যুগৰ এটি অন্যতম শ্ৰেষ্ঠ গল্প। গল্পটোত চিত্ৰা আৰু জয়ন্তৰ যৌৱনে উন্মাদনা অনা মুহূৰ্তবোৰৰ বৰ্ণনা কৰোঁতে গল্পকাৰে প্ৰেমিকা নাৰীৰ কেইবাটিও ৰূপ চিত্ৰিত কৰা দেখা যায়। শ্বিলঙৰ এডমাণ্ড কলেজৰ ডেকা অধ্যাপক জয়ন্ত বৰুৱাৰ পত্নী অঞ্জলিয়ে যোৰহাটত থাকিয়েই ৰাতি ৰাতি টোপনি ক্ষতি কৰি তেওঁৰ স্বামীৰ বাবে উণৰ শ্লিপ অ’ভাৰ গুঠিছে। (নাথ, পৃঃ ৪৫)। নগাঁৱৰ পৰা আসন্ন বিবাহিতা আৰতীয়ে লিখা চিঠিতো দেহ সৰ্বস্ব প্ৰেমৰ ইংগিত পোৱা যায়। তেনেদৰে চিত্ৰা নামৰ আন এগৰাকী প্ৰেমবিহ্বলা নাৰীৰ চিত্ৰ অংকণ কৰা হৈছে। এনেদৰে এখন ভাব বিলাসী শিক্ষিত সমাজৰ নাৰীৰ জৈৱিক কামনা-বাসনাৰ স্বৰূপ ‘বৰ্ষা যেতিয়া নামে’ শীৰ্ষক গল্পটিত অতি সাৰ্থকতাৰে চিত্ৰিত কৰা হৈছে।

‘ৰে’লৰ ৰোমাঞ্চ’ গল্পটোত চিনেমেটিক কৌশলেৰে দুজন বন্ধুৰ ৰে’ল যাত্ৰাত এগৰাকী সুন্দৰী গাভৰুৰ সহযাত্ৰীক লৈ মনলৈ অহা পূৰ্ব ধাৰণা সম্পৰ্কে অৱগত কৰাৰ প্ৰয়াস কৰিছে। শাৰী আৰু হাই-হিল পৰিহিতা যুৱতীগৰাকীক দেখি দুয়ো বন্ধুৱে তেওঁক অনা-অসমীয়া বুলি ভাবিছিল। কিয়নো সেই সময়ত অসমীয়া গাভৰুৱে সাধাৰণতে শাৰীৰ পৰিবৰ্তে বিহা-মেখেলাহে পিন্ধিছিল। গল্পকাৰৰ ভাষাত —

‘কিন্তু গাভৰুৰ ৰূপ-লাৱণ্যত দুয়ো বিমোহিত পৰিছে। গাভৰুৰ গাত অসমীয়া তিৰোতাৰ সাজ-পাৰ বিহা-মেখেলা নাই যেতিয়া গাভৰু অসমীয়া হোৱাটো প্ৰথমেই অসম্ভৱ। কিয়নো আজিকালি জাতীয়তাৰ দিনত অসমীয়া শিক্ষিত মহিলাই পাৰিলে মৰিলেও বিহা-মেখেলাযোৰ লগত নিবলৈ বিচৰা যেন দেখা যায়। তাৰ পিছত বঙালী। ইমানখিনি সুন্দৰ লাৱণ্য আৰু স্বাস্থ্যৰ বিমলশ্ৰী বঙালী ছোৱালীয়ে ১০০ বছৰেও শতসাধ্য কৰিও পাব নোৱাৰে।’

(ৰ. দা. গ. পৃঃ ৩)

উনবিংশ শতিকাৰ প্ৰথমার্ধৰ সময়ছোৱাত ব্ৰিটিছৰ প্ৰশাসনীয় ব্যৱস্থাৰ সুফল স্বৰূপে অসমতো নগৰীয়া সভ্যতাৰ শুভাৰম্ভ ঘটিছিল যদিও সেই সময়ত অসমীয়া

মানুহৰ প্ৰৱল জাত্যাভিমান আছিল। সাজ-পাৰ, অলংকাৰ ইত্যাদিৰ যোগেদি তেওঁলোকে নিজৰ স্বাভিমান আৰু জাতীয়তাবাদী আবেগ প্ৰকাশ কৰিছিল। গাভৰুগৰাকীৰ স্বাধীনচেতিয়া মনোভাৱ, সংকোচহীনতা আদিয়ে তেওঁলোকৰ মনত উদ্ভিগ্নতাৰ সৃষ্টি কৰিছিল। সেয়েহে তেওঁলোকে সংগোপনে গাভৰুগৰাকীক নিৰীক্ষণ কৰিছিল :

‘মনৰ অনিশ্চয়তাত, একোকে নাপাই গাভৰুৰ সুপ্ত সৌন্দৰ্য্যক একান্তমনে চাবলৈ ধৰিলো। খোটাৰিৰ উদ্ভাসিত বিজুলী চাকিৰ কিৰণত নিষ্পদ, শিথিল, গাভৰুৰ ছবিখনি শিল্পীৰ মৰ্মৰ প্ৰতিমূৰ্তিৰ প্ৰহেলিকাৰ নিচিনা আমাৰ চকুৰ আগত পৰি ব’ল। আমাৰ দুয়োৰে দৃষ্টিৰ তলত পৰি প্ৰতিক্ষণে তাৰ ৰূপ মাধুৰী চৰি আহিবলৈ ধৰিলে।’

(১. দা. গ. পৃঃ ৫)

দুয়ো বন্ধুৱে গাভৰুৰ ৰূপ-লাৱণ্য উপভোগ কৰি থকাৰ সময়তে কদৰ্য বৈশিষ্ট্যৰে তেওঁলোকৰ ওচৰত আৱিৰ্ভাৱ হোৱা এগৰাকী অদ্ভুত যাত্ৰীয়ে দুয়োৰে ভাব-চিন্তাত আউল লগাই দিয়ে।

‘এনেতে কোনোবাই আমাৰ ট্ৰেইনৰ খোটাৰিৰ দুৱাৰখন খুলি পেলালে আৰু আমি দুয়ো অবাক আৰু হতভম্ব হৈ দেখিলো যে কদৰ্য বৈশিষ্ট্যৰে অতি অদ্ভুত চেহেৰাৰ যাত্ৰী এজনে মহা আতংকত আহি আমাৰ খোটাৰিৰ ভিতৰত সোমাল। চকুত তাৰ সহিব নোৱাৰা জ্বলন্ত এটা ভিতিৰ অগ্নিশিখা আৰু গোটেই গাই-মূৰে এটি স্পষ্ট উন্মাদৰ ভাব। মূৰৰ দীঘল আৰু ধূলিৰন্ধ চুলিবোৰ যেনিয়ে-তেনিয়ে সিঁচৰতি হৈ আউনি পৰিছে।’

(ৰ. দা. গ. পৃঃ ৫)

‘ৰুদ্ধ যৌৱন’ গল্পটোত এগৰাকী কিশোৰীয়ে তাইৰ মনৰ পছন্দৰ এগৰাকী যুৱকে মুক্ত মনেৰে চিঠি লিখি হৃদয়ৰ অভিব্যক্তি প্ৰকাশ কৰিছে যদিও তাই সেই চিঠি কেতিয়াও ল’ৰাজনলৈ প্ৰেৰণ কৰা নাই। সেইবোৰ তাই সযতনে সাঁচি ৰাখিছে। চিঠিৰ বৰ্ণনাত সেই সময়ৰ সমাজৰ বিচিত্ৰ জীৱনশৈলীৰ কথাই প্ৰাধান্য লাভ কৰিছে। তাই লিখিছে—

‘মই গোটেই চহৰখনৰে মানুহবোৰ চাই থাকো। কোনজন বেচ লুভীয়া, কোনজন কামাসক্ত, কোনজন স্বাৰ্থপৰ, কোনজন প্ৰেমিক, কোনজন বতাহত তেনেই উৰি ফুৰা। মই সেইদৰে সদায় বিচিত্ৰ মানুহবোৰৰ সেই লানি নিচিগা অদ্ভুত বিচিত্ৰ ৰূপবোৰক চাই থাকো।

(ৰ. দা. গ. পৃঃ ৯)

জীৱন আৰু জীৱিকাৰ স্বাৰ্থত চহৰৰ মানুহবোৰে পৰস্পৰৰ মাজত অঘোষিত প্ৰতিযোগিতা আৰম্ভ কৰিছে। ধন উপাৰ্জনৰ কাৰণে নানা ধৰণৰ দুৰ্নীতিত লিপ্ত হৈছে। গ্ৰাম্য জীৱনৰ সৰলতাৰ বিপৰীতে নগৰীয়া জীৱনৰ কৃত্ৰিমতা জটিলতাৰে পৰিপূৰ্ণ সমাজ ব্যৱস্থাৰ আন্তৰিকতাহীনতাৰ লগে লগে অৰ্থসৰ্বোচ্চতাই কেনেদৰে পৰস্পৰৰ মাজৰ আত্মিকৰ সম্পৰ্কত আউল লগাইছে, তাৰ সম্যক চিত্ৰ অংকণ কৰা হৈছে তেওঁলোকৰ গল্পত। শ্বিলঙৰ আধুনিকতাৰ বতাহত উটি-ভাই ফুৰা এচাম আঢ়ায়ন্ত লোকৰ জীৱনৰ অন্তঃসাৰশূন্যতাৰ স্বৰূপ গল্পকাৰে অতি সাৰ্থকভাৱে চিত্ৰিত কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে।

গল্পটোত কিশোৰীগৰাকীয়ে সত্যেনৰ দ্বাৰা প্ৰভাৱিত হোৱাৰ পিচতো ভাগৰি পৰা নাই। পৰিস্থিতিক নিজৰ অধীনলৈ আনি সাহসেৰে জীৱন আগুৱাই নিয়াৰ প্ৰয়াস কৰিছে। ৰমা দাশে তেওঁৰ গল্পত নাৰী চৰিত্ৰসমূহক পৰম্পৰাগত স্তৰতে নাৰাখি সাহসী আৰু স্বাধীনচেতিয়া কৰি তোলাৰ প্ৰয়াস কৰা দেখা যায়। কিশোৰীগৰাকীৰ বক্তব্যৰ মাজেদি তেনে ধাৰণা প্ৰকাশ কৰা হৈছে :

‘ময়ো কম ‘জেদি’ ছোৱালী নহয়। যিটো মোৰ কৰিবৰ মন যায়, হাজাৰ বাধা সত্ত্বেও মই সেইটো কৰিব বিচাৰো। আৰু ইচ্ছা নাথাকিলে কোনোও মোৰ হতুৱাই কোনো কামকে জোৰ কৰি কৰোৱাব নোৱাৰে।’

(ৰ. দা. গ. পৃঃ ১৭)

‘জীৱনৰ এৰাতি’ গল্পত ৰমা দাশে নাৰীৰ সহজাত প্ৰবৃত্তি বিশ্লেষণ কৰি সমাজৰ নাৰী চৰিত্ৰৰ দুটি সুকীয়া দিশৰ ওপৰত পোহৰ পেলাইছে। তেওঁৰ ভাষাত—

‘নাৰী সঁচাকৈয়ে দুবিধ। এবিধ গৃহিণী, আনবিধ প্ৰেমিকা। প্ৰথম বিধেই বিয়া-বাৰু কৰাই নিজৰ স্বামীক লৈ ঘৰ-গৃহবাস কৰি পৰিতৃপ্ত হৈ থাকিব পাৰে। কিন্তু আনবিধে নিজৰ অভিব্যক্তি মতে স্বামী পালেও কেতিয়াও বিবিধ ৰুচি বা মৰমৰ আশ্বাদ নোলোৱাকৈ জীৱনত পৰিতৃপ্তি নাপায়।

(ৰ. দা. গ. পৃঃ ২৫)

নগৰীয়া নাৰীৰ প্ৰেমিকা ৰূপটো ৰমা দাশৰ বহুকেইটা গল্পত ফুটি উঠিছে। বিবাহ-বহিৰ্ভূত সম্পৰ্কৰ যোগেদি স্নেহ নামৰ শিক্ষিতা নাৰীগৰাকীয়ে ‘জীৱিকাৰ এৰাতি’ নামৰ গল্পটোত ডি এছ পি মিষ্টাৰ হকৰ সৈতে অবৈধ সম্পৰ্ক

ৰক্ষা কৰি আহিছে। এখন সুখৰ সংসাৰ থকাৰ পাচতো জৈৱিক ক্ষুধা নিবৃত্তিৰ কাৰণে তাই স্বামীৰ অনুপস্থিতিত বিভিন্ন ধৰণৰ অপকৰ্মত লিপ্ত হৈছে :

‘মোৰ অন্তৰৰ বাসনাৰ ধাৰ এতিয়াও নিস্তেজ আৰু ক্লান্ত হৈ পৰা নাই, সন্মুখত কামনাৰ সম্ভোগৰ আশাৰ আগত, মই সদায় আত্মবিস্মিত হৈ বিহ্বল হৈ পৰোঁ। মোৰ সেই প্ৰাণৰ অবুজ উখল-মাখলক সংসাৰৰ কোনো নীতি বা সমাজৰ শাসনে বান্ধি ৰাখিব নোৱাৰে। ধৰ্ম, বিবেক, শিক্ষা মই সকলোকে বুজোঁ, কিন্তু তাতকৈ বুজোঁ মোৰ অন্তৰৰ ভিতৰত থকা চিৰ ক্ষুধাতুৰ, চিৰ অনতৃপ্তি সেই প্ৰবৃত্তিটোক। (ৰ. দ. গ. পৃঃ ৩০)

ৰমা দাশৰ গল্পত নৰ-নাৰী উভয়ৰে চৰিত্ৰত উন্মুক্ত প্ৰেম, যৌনতা আৰু জৈৱিক কামনা-বাসনাৰ প্ৰতি দুৰ্বলতা দেখা যায়। ‘জীৱনৰ এৰাতি’ গল্পটোত স্নেহ চৰিত্ৰৰ মাধ্যমেদি গল্পকাৰে নৈতিক আৰু আধ্যাত্মিক চিন্তাই নিয়ন্ত্ৰণ কৰিব নোৱাৰা অতৃপ্তি নাৰীৰ বৰ্হিমুখী মনটোৰ প্ৰকাশ ঘটাইছে। কমলাৰ পত্নীৰ সুখৰ বিপৰীতে স্নেহৰ চৰিত্ৰ সম্পূৰ্ণ ওলোটো। তাইৰ নিজৰ মুখেৰেই গল্পকাৰে তাইৰ চৰিত্ৰৰ আভাস দিছে এনেদৰে :

‘কিন্তু মোৰ দৰে তিৰোতাৰ প্ৰাণটো, পৰ্বতৰ ওপৰৰ পৰা বাগৰি অহা জুৰিটিৰ প্ৰাণৰ গতিৰ দৰে সদায় বৰ্হিমুখী। ই প্ৰতিটো খোজতে, প্ৰতিটো মুহূৰ্ততে সদায় নিতা-নতুন ফেনিল ছন্দ তুলি, জীৱনত কেৱল বাগৰি যাব খোজে। সংসাৰৰ কোনো ৰূপ স্থিতিস্থাপকতাৰ মাজত আমি কেতিয়াও সুখ নাপাওঁ।’ (ৰ. দা. গ. পৃঃ৩৩)

নগৰীয়া সমাজত শিক্ষিতা নাৰীয়ে বিবাহ-বহিৰ্ভূত সম্পৰ্ক ৰাখিবলৈ কুস্থাবোধ নকৰে। পৰিয়ালৰ সৈতে মৰমৰ এনাজৰীৰে বান্ধ খাই থাকিও প্ৰাক্তন প্ৰেমিকৰ উপস্থিতিত নিজৰ মনৰ দুৰ্বলতা উজাৰি দি দৈহিক সম্পৰ্ক ৰক্ষা কৰিবলৈও কুস্থাবোধ নকৰা নাৰীৰ নিদৰ্শন স্বৰূপে স্নেহ চৰিত্ৰটো উল্লেখ কৰিব পাৰি।

ৰমা দাশৰ ‘জাহ্নৱী’ গল্পত দুজন প্ৰেমিকৰ মাজত জাহ্নৱী নামৰ যুৱতীগৰাকীৰ প্ৰেম লাভৰ কাৰণে প্ৰতিযোগিতাৰ সূচনা হৈছে। প্ৰণৱে জাহ্নৱীক ভাল পায় আৰু দুয়োৰে মাজত অবাধ মিলা-মিছা বিদ্যমান। কিন্তু পংকজৰ বাদগুণ হৈয়ো জাহ্নৱীয়ে সুযোগ বুজি প্ৰণৱক প্ৰেম নিবেদন কৰিবলৈ কুস্থাবোধ কৰা নাই। জাহ্নৱীৰ

দৰে এগৰাকী বিচিত্ৰ চৰিত্ৰৰ নাৰীৰ অন্তৰৰ প্ৰকৃত বাসনা কি সেয়া প্ৰণৱৰ দৰে প্ৰেমাকাংক্ষি যুৱকে ধৰিব নোৱাৰাটোৱে স্বাভাৱিক। কিয়নো ইতিমধ্যে এজনৰ বাগদত্তা হৈও সুযোগ বুজি আনৰ ওচৰত প্ৰেম নিবেদনা কৰা কাৰ্যই প্ৰেমক যৌন পৰিতৃপ্তিৰ আহিলা হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰা যেন লাগে। মুঠতে প্ৰেম আৰু বিবাহ এই দুয়োটা বিষয়ত সমাজৰ বিধিৰূপ নিয়ম আৰু তাৰ বিপৰীতে নৰ-নাৰীৰ বাসনা চৰিত্ৰতাত্মক কৰাৰ হাবিয়াসৰ মাজত যথেষ্ট পাৰ্থক্য আছে। বিবাহে সামাজিক সুচিতা প্ৰদান কৰিলেও দৈহিক ক্ষুধা নিবাৰণৰ কাৰণে মানুহে সমাজৰ অনুশাসনৰ বিপৰীতেও কাম কৰিব পাৰে।’ (নাথ, পৃঃ ৪৬)

ইন্দ্ৰিয়জ সংবেদনশীলতা ৰমা দাশৰ গল্পত বিশেষভাৱে লক্ষ্য কৰা যায়। নগৰীয়া জীৱনত নৰ-নাৰীৰ অবাধ স্বাধীনতাই সমাজৰ নৈতিক বান্ধোন চিঙি কেনেদৰে জৈৱিক কামনাৰ স্বীকাৰ হৈছে, তাৰ বৰ্ণনা দাশৰ ভালেমান গল্পত দাঙি ধৰা হৈছে।

‘প্ৰয়শ্চিত্ত’ গল্পটোত নগৰীয়া জীৱনৰ মুক্ত জীৱন ধাৰাৰ পৰিচয় পোৱা যায়। হোমেন বৰগোহাঞিয়ে ‘প্ৰয়শ্চিত্ত’ গল্পটোক বিষয়বস্তু আৰু প্ৰকাশভংগী দুয়োফালৰ পৰা অসমীয়া ভাষাৰ এটা সম্পূৰ্ণ বেলেগ জাতৰ বেলেগ ‘স্বাদ’ৰ গল্পৰূপে অভিহিত কৰিছে।

হৰিশ নামৰ এগৰাকী ড্ৰাইভাৰৰ মানসিক দণ্ডই গল্পটোত প্ৰাধান্য লাভ কৰিছে। সত্য পথেৰে জীৱন অতিবাহিত কৰা হৰিশৰ জীৱনলৈ নানা ধৰণৰ ঘাত-প্ৰতিঘাত আহিছে যদিও সেইবোৰৰ পৰা মুক্ত হৈও সি সুস্থিৰভাৱে জীৱন অতিবাহিত কৰিব পৰা নাই। তাৰ মানসিক দণ্ডৰ কাৰণ হৈছে এটা সাধাৰণ দুৰ্ঘটনা, য’ত তাৰ কোনো দোষ নাছিল আৰু আইনগত দিশৰ পৰাও সি নিষ্কৃতি লাভ কৰিছিল। কিন্তু চাৰিত্ৰিক সততাৰ বাবে হৰিশে মানসিক সংঘাতৰ পৰা হাত সাৰিব পৰা নাছিল। সেয়ে হৰিশে পূৰ্বৰ বন্ধুস্বৰূপ সিঙৰ ওচৰলৈ গৈ তাৰ মানসিক অৱস্থাৰ কথা বৰ্ণনা কৰি তাৰ পৰা নিষ্কৃতি লাভৰ বাবে পৰামৰ্শ বিচাৰিছে আৰু বন্ধুস্বৰূপ সিঙে তাক উপদেশৰ সুৰত এনেদৰে কৈছে :

‘জগতত যিয়ে যিমান কম ভাবে সিয়ে যিমান সুখী। তুমি কাৰোবাৰ নিচিনা নজনা ভিকছ এজনীক মটৰেৰে অতৰ্কিতে চেপি মাৰি আজি ইমান দিনে এইদৰে ভাবি ভাবি চেৰাবলিয়া হৈ পৰিছে। মই ইচ্ছা কৰি বেছ দি, মদ

খাই বেছচিয়াৰ হৈ তিনিটাকৈ নগৰৰ ভাল মানুহ বধ কৰিও আজি মহা আনন্দে দোকানত বহি পৰঠা-মাংস চোৱাইছে।’ (ব. দা. গ. পৃঃ ১০০)

এনেদৰে গল্পটোত ব্যক্তিৰ ভাব-চিন্তাৰ মাধ্যমেদি তদন্তীন সমাজৰ সামাজিক প্ৰমূল্যৰ ফোঁপোলা স্বৰূপটো গল্পকাৰে উন্মোচন কৰিছে।

‘সেঁতুবন্ধন’ গল্পটো বিবাহ বহিৰ্ভূত প্ৰেমৰ যোগেদি প্ৰাক্তন প্ৰেমিকৰ সৈতে সম্পৰ্ক ৰক্ষা কৰি চলা উপমা নামৰ এগৰাকী নাৰীৰ চৰিত্ৰই প্ৰাধান্য লাভ কৰিছে। উপমাই বিবাহবন্ধনত আবদ্ধ হোৱাৰ পিচতো পূৰ্বৰ প্ৰেমিক ননীৰ সৈতে সম্পৰ্ক ৰক্ষা কৰি চলিছে আৰু পত্ৰৰ যোগেদি তেওঁৰ হৃদয়ৰ বাৰ্তা মুকলিমুৰীয়াকৈ প্ৰকাশ কৰিছে। বিবাহৰ পিচতো পূৰ্বৰ প্ৰেমিকৰ সৈতে মিলনৰ বাবে থকা অপূৰ্ণ বাসনাই তাক ব্যাকুল কৰি তুলিছে আৰু ননীৰ সংগ সুখ লাভৰ আকাংক্ষা প্ৰকাশ কৰিছে। নগৰীয়া সমাজ জীৱনত সচৰাচৰ একেটা মাত্ৰ বৈষয়িক সম্পৰ্কতে আবদ্ধ নাথাকি মুক্ত মনে শাৰীৰিক আৰু মানসিক সম্পৰ্ক স্থাপন কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা নৰ-নাৰীৰ অভাৱ দেখা নাযায়।

ৰমা দাশৰ গুৱাহাটীৰ পটভূমিত ৰচিত ‘অবুজ মায়া’ গল্পটো দাশৰ অন্যান্য গল্পতকৈ পৃথক। সামাজিক কু-সংস্কাৰৰ পৰিণতিস্বৰূপে সমাজৰ পৰা নিষ্পেষিত হোৱা সেউতি বাইৰ সৈতে সোণৰ আত্মিক সম্পৰ্ক আৰু আন্তৰিকতাৰ বিষয়ে গল্পটোত বাস্তৱসন্মতভাৱে বৰ্ণনা দাঙি ধৰা হৈছে।

গল্পটোত সেউতিৰ কৰুণ পৰিণতিয়ে একময়তা লাভ কৰি পাঠককো পৰিণতিমুখী উৎকণ্ঠাত ডুবাই তুলিছে। গল্পটিত লেখকে সেউতিৰ জীৱন্ত অতীতকে প্ৰত্যক্ষ কৰা নাই, সমাজ বহিষ্কৃত এগৰাকী নাৰীৰ অন্তৰত সুপ্ত হৈ থকা মাতৃ স্নেহৰ কমণীয়তা, সন্তানৰ প্ৰতি ওপজা অহৈতুক মৰমৰ প্ৰতিদান স্বৰূপে নিজৰ জীৱনদান কৰাৰ অনন্য ঘটনাৰ নিখুঁত ৰূপায়ণেৰে পাঠকক নতুন স্বাদ প্ৰদান কৰিছে। সমাজৰ দ্বাৰা পৰিত্যক্ত সেউতি বাইৰ নিঃসংগ জীৱন-যাপন আৰু তেওঁৰ মাতৃসুলভ মৰমৰ আকৰ্ষণত সোণকে মুখ্য কৰি সৰু ল’ৰাবোৰৰ নিত্য তেওঁৰ ওচৰলৈ যোৱা প্ৰভৃতিৰ মাজত এক অবুজ মায়া জড়িত হৈ আছে। সমাজৰ অবিচাৰ আৰু উৎপীড়নত অতিষ্ঠ হৈ সেউতি বায়ে আত্মহত্যাৰে কৰুণ জীৱনৰ সামৰণি মাৰিলে। গল্পটোৰ মাজেদি সেউতি বাইৰ দৰে অসহায়, নিপীড়িত আৰু সমাজৰ

অন্যায়-অবিচাৰৰ বলি হোৱা এগৰাকী অসহায় নাৰীৰ জীৱনৰ কাৰুণ্য অতি মৰ্মস্পৰ্শী ৰূপত প্ৰকাশ কৰা হৈছে। ৰক্ষণশীল অবিবেচক সমাজৰ অবিচাৰৰ ফলতেই যে এখনি সংবেদনশীল প্ৰেমপূৰ্ণ হৃদয়ৰ অধিকাৰী সেউতি বাইৰ জীৱনৰ কৰুণ পৰিণতি ঘটিব, সেইটো সন্দেহাতীতভাৱে সত্য।’ (নাথ, পৃঃ ৪৭)

বিষয়বস্তুৰ বৈচিত্ৰ্য আৰু প্ৰকাশভংগীৰ স্বকীয়তাই ৰমা দাশৰ ‘অবুজ মায়া’ গল্পটো সুকীয়া মাধুৰ্য প্ৰদান কৰিছে। কথনশৈলীৰ অভিনৱত্বই গল্পটোৰ চৰিত্ৰসমূহৰ মানসিক প্ৰকৃতি সুন্দৰভাৱে পৰিস্ফুট কৰি তোলাৰ লগে লগে আবেগ সঞ্চাৰি ভাষাৰ অভিনৱ প্ৰয়োগে গল্পটোৰ পৰিবেশকো জীৱন্ত কৰি তুলিছে। ‘অবুজ মায়া’ গল্পত পৰিবেশৰ বৰ্ণনা কৰি গল্পকাৰে লিখিছে :

‘মোৰ এতিয়াও স্পষ্ট মনত পৰে, আমি যেতিয়া দুপৰীয়া হাফপেণ্টটোৰ জেপে জেপে চুৰি কটাৰী আৰু নিমখৰ টোপোলা লৈ, গছৰ তলে তলে কেঁটা আমকলি আৰু কৰ্জা টেঙা বিচাৰি ওলাইছিলো তেতিয়া সেই সেউতি বাইৰ চোতালতে থকা ডালিম গছজোপাৰ তলত, আমাৰ দীঘলীয়া অভিযানৰ সদায় অন্ত পৰিছিলহি। আৰু আমি সেই ডালিম গছজোপাৰ তলতে পৰি থকা ডাঙৰ শিলবোৰৰ ওপৰত বহি লৈ আমাৰ নিজৰ নিজৰ হাতৰ আৰু জেপৰ সামগ্ৰীবোৰ উলিয়াই লৈ মহা আনন্দৰে ভগাই ভগাই ইপালি-সিপালি খোৱাত লাগি গৈছিলো।

আমাক সেইদৰে দলে-বলে উপস্থিত হোৱা যেন দেখিলেই সেউতি বায়ে সদায় তেওঁৰ তাঁতশালৰ পৰা উঠি আহিছিল আৰু আমাৰ লগত যোগ দি ঠিক আমাৰ সমনীয়া এজন সৰু ল’ৰাৰ দৰে হাঁহি-ধেমালি কৰি তেওঁ নিজৰ ভাগৰ আমকলি আৰু কৰ্জা টেঙা হাত পাতি আমাৰ হাতৰ পৰা খুজি নিছিল। (ব. দা. গ. পৃঃ ১৫৪)

তেজৰ সম্পৰ্কতকৈও হৃদয়ৰ সম্পৰ্ক যে বেছি গভীৰ, সেই কথা গল্পকাৰে সেউতি বাই আৰু সোণৰ মাজত গঢ়ি উঠা আত্মিক সম্পৰ্কৰ জৰিয়তে ফুটাই তুলিবৰ কাৰণে চেষ্টা কৰিছে। সেউতি বাইৰ বক্তব্যৰ মাজেদি সেই কথা স্পষ্ট ৰূপত প্ৰকাশ পাইছে :

‘মইনাইঁত, তোমালোকেতো দেখি আছা, মই জনাত সোণৰ কোনো অহিত চিন্তা কৰা নাই, তাৰ কোনো অন্যায় কৰা নাই। দিনে-নিশাই ভগৱানৰ ওচৰত কেৱল তাৰ মংগলৰ কাৰণে খাতি আছো। তথাপি যদি কিবা কাৰণে

মোৰ দোষ হৈছে মই নজনাকৈ তাৰ অন্যায় কৰিছো তেনেহ'লে তাৰ কাৰণে মই প্ৰায়শ্চিত্ত কৰিবলৈকো সাজু আছো।' (ব. দা. গ. পৃঃ ৫৬)

নগৰীয়া জীৱনৰ সংকীৰ্ণ চিন্তা আৰু আক্ৰোশৰ পৰিৱৰ্তে গল্পকাৰৰ চিন্তাৰ আধুনিকতাই 'অবুজ মায়া' গল্পটোত নতুন আত্মা প্ৰদান কৰিছে। সেউতি বাইৰ দৰে সাধাৰণ নাৰীৰ হৃদয়ৰ বিশালতাৰ বিপৰীতে সোণৰ আইতাকৰ চিন্তাৰ সংকীৰ্ণতা আৰু আগ্ৰাসী মনোভাৱে সোণৰ দৰে শিশুৰ মানসিকতাত গভীৰ প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে।

'প্ৰেম আৰু পৃথিৱীত গল্পৰ নায়কে বিবাহিতা পত্নীৰ প্ৰতি বিতৰ্কিত হৈ পুৰণি প্ৰেমিকা উৎপলাৰ কাষ চাপিছে যদিও তেওঁৰ ঘৰত উৎপলাতকৈ আকৰ্ষণীয় গাভৰু সেউতিক লগ পাই চাল-চলন, কথা-বতৰা আৰু দৈহিক ভংগীমাত আকৰ্ষিত হৈ পৰে :

'এই গাভৰু আৰু বেছি প্ৰজ্বলিত। কথাবোৰ এনেকৈ কয়, প্ৰতি কথাত এনেকৈ হিল্লোল দিয়ে, যেন প্ৰতি কথাৰ মাজেৰে অংগৰ প্ৰতিটো সঞ্চালনৰ ভিতৰে কামনা প্ৰকাশ কৰাটোৱেই জীৱনৰ এটি আৰ্ট কৰি লৈছে।'

(নাথ, পৃঃ ৪৬)

বিবাহিতা জীৱনৰ একঘেয়ামিৰ পৰা মুক্তি বিচাৰি এগৰাকী গাভৰু ডেইজীক লগত লৈ গল্পৰ নায়কে শিলঙত গল্ফলিংকৰ ঘাঁহনিত আপোন পাহৰাকৈ নিজৰ কামনা-বাসনাৰ আকাংক্ষা পূৰণ কৰিছে। দাশৰ অন্যান্য গল্পৰ দৰে 'ৰোডোড্ৰোণ্ডৰ বিলাস' নামৰ গল্পটোতো যৌন আৱেদনৰ চিত্ৰ অংকিত হৈছে। বৰ্ণনাৰ মাধুৰ্য আৰু ভাষাৰ ওজস্বিতাই ৰমা দাশৰ গল্পত সাৰ্থকতা লাভ কৰিছে। তেওঁৰ গল্প সম্পৰ্কত বিশিষ্ট সমালোচক ত্ৰৈলোক্য নাথ গোস্বামীয়ে এনেদৰে মন্তব্য কৰিছে :

'মানৱ মনৰ ৰতি ভাৱক সাহিত্যৰ মাজেদি প্ৰকাশ কৰোতে সি আদি বা শৃংগাৰ ৰসলৈ ৰূপান্তৰিত হয়। এইদৰে বাস্তৱ জীৱনৰ শোকৰ ছবি সাহিত্যত প্ৰতিফলিত হ'লে সি শোক নহৈ কৰুণ ৰস হৈ পৰে। ৰমা দাশৰ হাতত সেইটো হোৱা নাই। বাসনাৰ প্ৰচণ্ডতাই আগত চৰিত্ৰবোৰৰ ব্যক্তিত্ব বিলোপ হৈছে আৰু চৰিত্ৰবোৰে যেন বাসনাৰ মূৰ্ত প্ৰতীক হিচাপেহে পাঠকৰ চকুৰ আগত দেখা দিছে।' (গোস্বামী, পৃঃ ১৩১)

ৰমা দাশৰ 'প্ৰীতি উপহাৰ' নামৰ গল্পটিত আদৰ্শনিষ্ঠ প্ৰেমৰ কাহিনীয়ে ঠাই পাইছে। কিন্তু গল্পটিৰ পৰিণতি অতি কৰুণ। 'মৰাসুঁতি' নামৰ গল্পটিটো এগৰাকী কিশোৰৰ চিত্ৰ অংকণ কৰা হৈছে। 'অচল টকা' নাৰী-পুৰুষৰ প্ৰেমকে প্ৰধান উপজীৱ্য হিচাপে লৈ প্ৰেম, ভালপোৱা আৰু বিৰহৰ তীব্ৰ যন্ত্ৰণাৰ কথা অতি সুন্দৰকৈ প্ৰকাশ কৰা হৈছে।'

(নাথ, পৃঃ ৪৭)

'এটা বেলেগ ৰাতি' গল্পত বিবাহৰ পৰৱৰ্তী প্ৰেমৰ প্ৰসংগই ঠাই পাইছে। অলকে অগ্নিমাৰ সৈতে বিবাহপাশত আবদ্ধ হৈও প্ৰাক্তন প্ৰেমিকা মাধৱীৰ সৈতে চিঠি-পত্ৰৰ যোগেদি সম্পৰ্ক ৰক্ষা কৰি চলিছিল। গল্পটোৰ কাহিনীভাগ আৰম্ভ হৈছে মাধৱীৰ বিয়াৰ নিশাৰে পৰা। স্বামীৰ সৈতে মাধৱীৰ প্ৰেমৰ বিষয়ে অগ্নিমাৰ আগতে জানিছিল যদিও বিয়াৰ বিশেষ দিনটোত অগ্নিমাৰ নিৰ্দিষ্ট সময়ত শোৱাপাতিলৈ নগৈ বহু দেৰিলৈকে ঘৰুৱা কামত ব্যস্ত হৈ আছে আৰু মাধৱীৰ বিয়াৰ খবৰটোৱে তাইৰ মনত বিভিন্ন চিন্তাৰ ধুমুহা আনিছে আৰু অবশেষত অলকৰ সৈতে যুক্তিতৰ্কত লিপ্ত হৈছে :

'মই বেছি ঈৰ্ষাপৰায়ণ হ'ব পাৰো। কিন্তু ইয়াৰ এযাৰো কথা মিছা কোৱা নাই। আপুনি বুকুত হাত দি কেতিয়াও ক'ব নোৱাৰে যে মোক বিয়া কৰোৱাৰ পিচত আপুনি মাধৱীক ভাল পাবলৈ এৰিছিল বা তেনেই পাহৰি যাব পাৰিছিল।' (সমগ্ৰ, পৃঃ ৩০০)

প্ৰেম আৰু বন্ধুত্বৰ মাজৰ সীমাৰেখাডাল উপলব্ধি কৰিব নোৱাৰা বাবে নগৰীয়া জীৱনৰ বহুতো পৰিয়ালৰ পতি-পত্নীৰ মাজত থকা পাৰস্পৰিক সম্পৰ্কৰ মাজত সন্দেহ বৃদ্ধি হ'বলৈ ধৰিছে। যৌথ পৰিয়াল ব্যৱস্থাৰ ভাঙোৱাৰ পৰিণতি স্বৰূপে সৃষ্টি হোৱা একক পৰিয়ালত এককেন্দ্ৰিক চিন্তাৰ প্ৰসাৰৰ পৰিণতি স্বৰূপে স্বামী-স্ত্ৰীৰ পৰিৱৰ্তিত বান্ধোনত বান্ধ খাই থাকিও দাম্পত্য জীৱনত শিথিলতাই আত্মপ্ৰকাশ কৰিবলৈ সুযোগ লাভ কৰিছে।

ৰমা দাশৰ 'দুৰ্যোগৰ ৰাতি' গল্পটো শিলং চহৰৰ পটভূমিত ৰচনা কৰা হৈছে। গল্পটোৰ নায়কে বাসন্তী নামৰ এগৰাকী গাভৰুৰ সৈতে শিলঙৰ বিভিন্ন ঠাইত কটোৱা অন্তৰংগ মুহূৰ্তবোৰৰ বৰ্ণনা দাঙি ধৰা হৈছে। শিলঙৰ পাইন গছৰ তলে তলে মুকলি বতাহত গাত গা লগাই ঘূৰি ফুৰা প্ৰেমিক যুগলে কৰা মুক্ত অভিযাৰৰ বৰ্ণনাই

গল্পটোত স্থান লাভ কৰিছে। গল্পটোত ডেকা-গাভৰুৰ মুক্ত অভিযাৰৰ বৰ্ণনাৰ যোগেদি গল্পকাৰে সেই সময়ৰ শ্বিলঙৰ আচ্যৰন্ত সমাজখনৰ সামাজিক পৰিবেশৰ ইংগিত দিছে। নতুনকৈ আধুনিকতাই প্ৰৱেশ কৰা শ্বিলঙৰ সমাজ জীৱনত নৰ-নাৰীৰ বিচিত্ৰ কাৰ্যকলাপে গল্পটোত প্ৰাধান্য লাভ কৰিছে।

ৰমা দাশে ‘দুপৰীয়াৰ গল্প’ত সমসাময়িক শ্বিলং নগৰৰ সৌন্দৰ্য চেতনাৰ মাধ্যমেদি প্ৰাকৃতিক সৌন্দৰ্যৰ মনোৰম চিত্ৰ অংকণ কৰিছে। তাৰ মাজতে দাশে নগৰীয়া পৰিবেশত কাৰ্যালয়ৰ কৰ্মচাৰীসকলৰ মনৰ বেদনা অতি সাৱলীলতাৰে বৰ্ণনা কৰিছে। শ্বিলঙত সাধাৰণ কৰ্মচাৰীসকলে বন্দিহুৰ জীৱন-যাপন কৰাৰ বিপৰীতে ৰাজকীয় জীৱন অতিবাহিত কৰিছে। কিন্তু ৰাজকীয় জীৱন-যাপন কৰিও বিষয়াসকলে তেওঁলোকৰ পত্নীসকলক সন্তুষ্ট কৰিব পৰা নাছিল। সেইবাবেই তেওঁলোকৰ পত্নীসকলেও জীৱনৰ বাসনা চৰিতাৰ্থ কৰিবৰ কাৰণে দোভাগ নিশা নগৰৰ নিৰ্জন পথত বিচৰণ কৰিছিল। শ্বিলঙৰ পটভূমিত গল্পটোত ৰমা দাশে উচ্চপদস্থ বিষয়া মিত্ৰ চাহাবৰ পত্নীৰ বেশভূষাৰ বৰ্ণনা দাঙি ধৰিছে এনেদৰে :

‘গাত বেছ দামী, সেউজীয়া ৰঙৰ কলা ফুল দিয়া এখন চিঞ্চৰ শাৰী। আচলটো কান্ধৰ একাষে অতি সৰুকৈ পেলাই লোৱা। ইকাষে গাত লিপিত খাই ধৰা, সেই ৰঙৰে, চুটি চিঞ্চৰ এটি ব্লাউজ, বেছ স্পষ্টকৈ ওলাই আছে। কাণত চিকমিককৈ জ্বলি থকা, বাখৰ লগোৱা সোণৰ ৰিং। মুৰৰ চুলিবোৰ নিচেই চুটি আৰু জপৰাকৈ কটা। ওঁঠত লিপষ্টিকৰ প্ৰযুক্ত প্ৰলেপ। চকুৰ দাঁতি আৰু চেলাউৰিবোৰ কলা তুলিকাৰে দাঠকৈ আঁকি লোৱা। বয়স বেগেতে ধৰাৰ কোনো উপায় নাই। তথাপি মুখখনত আৰু দেহৰ মুকলি সকলো অংগতে কামনাৰ যেন কিবা এটি আকৰ্ষণ বিৰিঙি আছে।’ (ৰ. দা. গ. পৃঃ ২৭১-২৭১)

‘কোন এই নতুন মিৰাণ্ডা’ গল্পটোত ব্যৱসায়ত লোকচানৰ সন্মুখীন হোৱা গোমৰ সিঙৰ অৰ্থনৈতিক সচেতনতাৰ পৰিচয় পোৱা যায়। নিৰক্ষৰ হ’লেও তাৰোতো এটা নিজা হিচাপ আছে, বদ্ৰিদাস কেএগই নিশ্চয় তাক ঠগাইছে। কিন্তু সময়ৰ পাকচক্ৰত এই গোমৰ সিঙে এগৰাকী ডাঙৰ ঠিকাদাৰত পৰিণত হ’লগৈ। যুদ্ধৰ আগমনে তাৰ জীৱনলৈ অমূল পৰিৱৰ্তন কঢ়িয়াই আনিলে :

‘কিন্তু যুদ্ধ যেতিয়া আহিল... সি লাবানৰ সেই ভগা চালিখন এৰি ঘৰ ল’লেগৈ ৰিলবঙত। ঠিক কেণ্টনমেণ্টৰ ওচৰত। তাৰ ঘৰৰ সন্মুখত খৰি, কয়লা আৰু কোকৰ কি প্ৰকাণ্ড ডিপো। চাইনবোৰ্ডত ডাঙৰ আখৰেৰে লিখা ‘গোমৰ সিং এণ্ড কোঃ। মিলিটেৰি কুৱেল কণ্ট্ৰেক্টৰ এণ্ড চাপ্লায়াৰ।’ (সমগ্ৰ, পৃঃ ১৫০)

কিন্তু যুদ্ধৰ পৰৱৰ্তী কালত গোমৰ সিঙৰ দৰে সৰু সৰু মানুহবোৰৰ বেপাৰ বন্ধ হ’ল আৰু নতুন সুবিধাবাদী চক্ৰ এটাৰ চক্ৰান্তত তাৰ জীৱন বিষময় হৈ উঠিল। গল্পকাৰে গোমৰ সিঙৰ মানসিক প্ৰতিক্ৰিয়াৰ মাধ্যমেদি তদানীন্তন সমাজত স্বৰূপ উদ্ঘাটন প্ৰয়াস কৰিছে।

ৰমা দাশে কলিকতাত পঢ়িবলৈ যোৱাৰ সময়ত তেওঁৰ কলিকতাৰ সমাজখনৰ সৈতে পৰিচয় ঘটে আৰু কলিকতাৰ পটভূমিত কেইবাটা গল্প ৰচনা কৰে। তেওঁৰ ‘যৌৱনৰ বিদ্ৰোহ’ গল্পটোত অপৰা চলিহা নামৰ লাৱণ্যময়ী গাভৰুগৰাকীৰ সৌন্দৰ্য চেতনা, সাজোন-কাচোন আদিৰ মাধ্যমেদি তেওঁৰ ব্যক্তি সত্ত্বাৰ পৰিচয় দাঙি ধৰিছে। স্কটছৰ ছাত্ৰী অপৰাৰ গল্পটোৰ পুৰুষ চৰিত্ৰ অক্লেশে ডেছডিমনা আখ্যা দিছে। গল্পটোত এহাল প্ৰেমিক-প্ৰেমিকাই পৰিয়াল আৰু সামাজিক নিয়ম-কানুনৰ বান্ধোন ছিঙি কলিকতা চহৰত পঢ়িবলৈ গৈ বিবাহপাশত আবদ্ধ হৈছে যদিও তেওঁলোকৰ বৈবাহিক জীৱন সুখৰ নহ’ল।

উপসংহাৰ :

ৰমা দাশৰ গল্পত নৰ-নাৰীৰ প্ৰেম প্ৰণয়, বিবাহ বহিৰ্ভূত প্ৰেম, সমাজত দেখা দিয়া জাতি-ভেদ-বৰ্ণ-বৈষম্য, বিস্তৰান লোকৰ অহংকাৰ আৰু অৰ্থসৰ্বোচ্চ জীৱন, ভোগাকাংক্ষা, কামনা-বাসনা, যৌনতা প্ৰভৃতি বিভিন্ন বিষয়ে ঠাই পাইছে। দ্বিতীয় মহাযুদ্ধৰ সমকালীন সময়ছোৱাত অসমীয়া সমাজ জীৱনত জাতি-কুলৰ ব্যৱধানে কেনেদৰে সমাজখনত প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰিছিল, তাৰ লগে লগে আচ্যৰন্ত চহকী শ্ৰেণীটোৰ ধনৰ গৰ্ব আৰু সৰ্বসাধাৰণ মানুহৰ প্ৰতি সহানুভূতিৰ অভাৱে নৰ-নাৰীৰ জীৱনলৈ কেনেধৰণৰ ঋণাত্মক চিন্তা কঢ়িয়াই আনিছিল তাৰ আভাস দাঙি ধৰা হৈছে। নগৰীয়া জীৱনৰ কৃত্ৰিমতা, দান্তিকতা, নিচতা, প্ৰভৃতিৰ বাস্তৱ বৰ্ণনাৰে নগৰীয়া সভ্যতাৰ স্বৰূপ অতি সাৰ্থক ৰূপত বৰ্ণনা কৰিছে। তেওঁৰ কেইটামান গল্পত গাঁৱৰ পৰা

নগৰলৈ আহি চাৰিত্ৰিক পৰিৱৰ্তন ঘটাব্যক্তিৰ চৰিত্ৰ অংকণ কৰা হৈছে।

মোপাচাৰ দ্বাৰা প্ৰভাৱান্বিত হৈ ৰমা দাশে নৰ-নাৰীৰ জীৱনত প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰা যৌন প্ৰবৃত্তিৰ চিত্ৰণত ভাৱ প্ৰৱণতাক অধিক প্ৰাধান্য দিছে। তেওঁ যিখিনি সময়ত শ্বিলঙৰ পটভূমিত গল্প ৰচনা কৰিছে, সেই সময়ত শ্বিলং-মেঘালয়ৰ পৰিবৰ্তে অসমৰ ৰাজনধানী আছিল।

ৰমা দাশৰ গল্পসমূহ মূলতঃ নগৰকেন্দ্ৰিক জীৱন আধাৰিত। তেওঁৰ গল্পত নগৰীয়া মানুহৰ আভিজাত্যৰ ফোঁপোলা স্বৰূপ, দৈহিক প্ৰেম, পোৱা-নোপোৱাৰ দোমোজাত মানুহৰ মনৰ অন্তৰ্দ্বন্দ্ব, বিবাহ বহিৰ্ভূত প্ৰেম আৰু যৌন আকৰ্ষণ-বিকৰ্ষণ, প্ৰেমৰ দেহ সৰ্বস্বত্ব আৰু ৰোমাণ্টিক ভাব প্ৰৱণতা, প্ৰেম বিফলতা আদিৰ সাৰ্থক চিত্ৰণ লক্ষ্য কৰা যায়। □

প্ৰাসংগিক গ্ৰন্থ

মুখ্য সমল :

ৰমা দাশ : ৰমা দাশৰ গল্প। ভৱানী প্ৰিণ্ট এণ্ড পাব্লিকেচন, ২০১০ মুদ্ৰিত

গৌণ সমল :

গোস্বামী, ত্ৰৈলোক্য নাথ : আধুনিক গল্প সাহিত্য, গুৱাহাটী, বাণী প্ৰকাশন, ২০০৮ মুদ্ৰিত

নেওগ, মহেশ্বৰ : অসমীয়া সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা, গুৱাহাটী, চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, ১৯৮৫ মুদ্ৰিত

নাথ, প্ৰফুল্ল কুমাৰ : গল্পকাৰৰ সৃজনশীলতা আৰু অসমীয়া চুটিগল্প, গুৱাহাটী, পূৰ্বায়ন প্ৰকাশন, ২০২১ মুদ্ৰিত

বৰগোহাঞি, হোমেন (সম্পা.) : অসমীয়া গল্প সংকলন (প্ৰথম খণ্ড) গুৱাহাটী, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, ১৯৭৫ মুদ্ৰিত

বৰা, অপূৰ্ব (সম্পা.) : অসমীয়া চুটিগল্পৰ ঐতিহ্য আৰু বিৱৰ্তন, যোৰহাট, যোৰহাট কেন্দ্ৰীয় মহাবিদ্যালয় প্ৰকাশন কোষ, ২০১২ মুদ্ৰিত

বৰুৱা, প্ৰদীপ কুমাৰ : অসমীয়া চুটিগল্পৰ অধ্যয়ন, গুৱাহাটী, বনলতা, ২০০৮ মুদ্ৰিত

ভট্টাচাৰ্য, পৰাগ কুমাৰ : গল্পৰ প্ৰসংগ আৰু অসমীয়া গল্প সাহিত্য, গুৱাহাটী, চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, ১৯৯৮ মুদ্ৰিত

ভৰালী, শৈলেন : আধুনিক অসমীয়া সাহিত্যৰ ইতিহাস, গুৱাহাটী, চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, ১৯৮৯ মুদ্ৰিত

শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰ নাথ : অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্তি, গুৱাহাটী, সৌমাৰ প্ৰকাশ, ২০১০ মুদ্ৰিত

নতুন ৰাষ্ট্ৰীয় শিক্ষা নীতি, ২০২০ আৰু শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱৰ শিক্ষা-ব্যৱস্থাৰ প্ৰাসংগিকতা

সংক্ষিপ্তসাৰ :



ড° মনীষা চলিহা

নতুন ৰাষ্ট্ৰীয় শিক্ষানীতি (২০২০)ত অসমীয়া জাতীয় জীৱনৰ স্ৰষ্টা, মহাপুৰুষ শংকৰদেৱৰ নাম ‘মহান পণ্ডিত’ (Great scholar) হিচাপে সন্নিবিষ্ট হোৱাটো উল্লেখনীয়। মনোবিজ্ঞান সন্মত বৃত্তিমূলক প্ৰশিক্ষণ, বিভিন্ন শিকণ মাধ্যমৰ ব্যৱহাৰ, শিক্ষাত আঞ্চলিক ভাষা প্ৰয়োগ, উন্নত শিকণ-শৈলীৰ ব্যৱহাৰ, নতুনত্ব গুণেৰে সমৃদ্ধ পৰম্পৰাগত শিক্ষনত গুৰুত্ব, গনতান্ত্ৰিক আদৰ্শৰ শিক্ষানুষ্ঠান স্থাপন আদিৰ জৰিয়তে শংকৰদেৱে অসমৰ শিক্ষাজগতত এক অভিনৱত্ব প্ৰতিষ্ঠা কৰি গৈছে। শিক্ষা ব্যৱস্থাত গীত-নৃত্যৰ সমাহাৰ, শ্ৰৱণ-মনন-নিদিধ্যাসন তথা আলোচনা, অনুকৰণ পদ্ধতিৰ প্ৰয়োগ, কৰ্মভিত্তিক শিক্ষাদান, শিক্ষাৰ্থী কেন্দ্ৰিক অভিগমন আদিৰ সংযোজনে শংকৰদেৱৰ শৈক্ষিক দৰ্শনক এক বিশেষ মাত্ৰা প্ৰদান কৰিছে। ধৰ্মগুৰু, সাহিত্যিক অথবা সমাজ সংস্কাৰক হিচাপে শংকৰদেৱৰ অৱদান অধ্যয়ন কৰা হ’লেও শিক্ষাবিদ হিচাপে তেখেতৰ ভূমিকাৰ বিষয়ে আলোচনা তেনেই সীমিত। এই গৱেষণাপত্ৰখনিত শংকৰদেৱৰ শৈক্ষিক অৱদান আৰু আধুনিক শ্ৰেণীকোঠাত এইবিলাক প্ৰয়োগৰ সম্ভাৱনীয়তা সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা হৈছে। ৰাষ্ট্ৰীয় শিক্ষা নীতি (২০২০)ৰ সৈতে সামঞ্জস্য ৰাখি শংকৰদেৱৰ শিক্ষা নীতিসমূহৰ প্ৰাসংগিকতা সমূহ এই পত্ৰখনিত আলোচনা কৰা হৈছে। প্ৰাসংগিক ৰচনাৱলীসমূহৰ পৰা মুখ্য আৰু গৌণ তথ্য সংগ্ৰহ কৰি বৰ্ণনাধৰ্মী আৰু বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লৈ উক্ত গৱেষণাপত্ৰখনি প্ৰস্তুত কৰা হৈছে।

সূচক শব্দ : ৰাষ্ট্ৰীয় শিক্ষা নীতি, শৈক্ষিক দৰ্শন, শিকণ শিক্ষণ প্ৰক্ৰিয়া।

অৱতৰণিকা :

নিকোলাচ হনচ নামৰ শিক্ষাবিদজনৰ মতে যিকোনো জাতীয় শিক্ষা পদ্ধতিত (National system of education) সেই দেশৰ তিনিটা দিশে প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰে- (১) প্ৰাকৃতিক দিশ (জাতি, ভাষা, পৰিবেশ) (২) নিৰপেক্ষ দিশ (মানৱতাবাদ, সমাজিকতাবাদ, জাতীয়তাবাদ, গনতান্ত্ৰিকতা বাদ) আৰু (৩) ধৰ্মীয় দিশ।^১ অসমৰ ক্ষেত্ৰত প্ৰাকৃতিক আৰু নিৰপেক্ষ দিশ দুটা বাদ দি যদি ধৰ্মীয় দিশৰ প্ৰভাৱৰ কথা বিবেচনা কৰা যায় তেন্তে শংকৰদেৱৰ অধ্যয়ন অবিহনে এই দিশ অসম্পূৰ্ণ হ’ব। দেখা যায় যে আধুনিক সমস্যাবল্ল শিক্ষা ব্যৱস্থাত শংকৰদেৱৰ শিক্ষানীতিৰ প্ৰয়োগৰ যথেষ্ট গুৰুত্ব আছে। বিদ্রোহী কবি কমলাকান্ত ভট্টাচাৰ্যদেৱৰ মতে..... ‘আসামে মহাপুৰুষ শংকৰদেৱক চিনি নাপালে। বৰ্তমান যুগ সমস্যা

সহযোগী অধ্যাপক
দেৱৰাজ ৰয় মহাবিদ্যালয় (স্বাঃ)
গোলাঘাট (অসম) পিন-৭৮৫৬২১
☎ ৬০০১৯০১৮৬০
✉ manishachaliha7@gmail.com

মতে আসামত এতিয়া সেই শংকৰদেৱ মহাপুৰুষৰ বৈষ্ণৱ প্ৰবৰ্তনৰ দিন আহিছে।^২

মহাপুৰুষ শংকৰদেৱ (১৪৪৯-১৫৫৮খৃ.) “তত্ত্বজ্ঞানী, দাৰ্শনিক, শাস্ত্ৰজ্ঞ পণ্ডিত, প্ৰজ্ঞাৰ অধিকাৰী, কবি, নৃত্য গীত-বাদ্য-বিশাৰদ-সমাজ সংস্কাৰক, চিত্ৰকৰ আৰু দাস্য ভক্তিৰ স্ৰষ্টা।”^৩ সৰ্বগুণাকৰ-প্ৰবল মানসিক শক্তিৰ অধিকাৰী শংকৰদেৱে (গুপ্ত নাম গংগাধৰ) এশ বছৰ বয়সত পদব্ৰজে কাশী পুৰী ভ্ৰমণ কৰি আহিছিল। জীৱীত কালত ৰজাঘৰ, প্ৰজাঘৰ সকলোৱেই শংকৰদেৱক ভগৱান শ্ৰীকৃষ্ণৰ অৱতাৰ হিচাপে বিশ্বাস কৰিলেও তেওঁ কিন্তু নিজকে শ্ৰীকৃষ্ণৰ কিংকৰ অথৱা দাসৰো দাস বুলিহে পৰিচয় দিছিল।^৪

মানবীয়তাৰ বিকাশ সাধনৰ উদ্দেশ্যে শংকৰদেৱে এক বিস্তৃত শিক্ষানীতি প্ৰস্তুত, প্ৰসাৰ আৰু প্ৰতিষ্ঠা কৰিছিল। তেওঁ সত্ৰ-নামঘৰৰ দৰে গনতান্ত্ৰিক শিক্ষানুষ্ঠান স্থাপন কৰি শিশুৰ পৰা বৃদ্ধলৈকে সকলোকে শিক্ষা প্ৰদান কৰি সমগ্ৰ মানৱজাতিৰ কল্যাণৰ বাবে অহোপুৰুষাৰ্থ চেষ্টা কৰিছিল।

অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য :

পৃথিৱীবিখ্যাত মহান শিক্ষাবিদসকলৰ সৈতে ফেৰ মাৰিৰ পৰাকৈ শংকৰদেৱৰ শৈক্ষিক দৰ্শন অতি প্ৰায়োগিক। এই গৱেষণা পত্ৰ খনিৰ জৰিয়তে শংকৰদেৱৰ শিক্ষানীতি সমূহৰ আলোচনা কৰাৰ লগতে নতুন ৰাষ্ট্ৰীয় শিক্ষানীতি (২০২০)ৰ সৈতে সামঞ্জস্য ৰাখি উক্ত শিক্ষানীতি সমূহৰ শৈক্ষিক তাৎপৰ্য মূল্যায়ন কৰিব বিহুৰা হৈছে।

অধ্যয়নৰ পদ্ধতি :

এই গৱেষণা পত্ৰ খনি প্ৰস্তুত কৰোঁতে বিশ্লেষণাত্মক আৰু বৰ্ণনামূলক জৰীপ পদ্ধতি (Analytical and Descriptive Survey Method) ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। নতুন ৰাষ্ট্ৰীয় শিক্ষানীতি (২০২০) আৰু শংকৰদেৱৰ সম্পৰ্কীয় ৰছনাৱলীক তথ্য সংগ্ৰহৰ মুখ্য আৰু গৌণ উপজীৱী হিচাপে লৈ এই গৱেষণা পত্ৰ খনি প্ৰস্তুত কৰা হৈছে।

বিষয়বস্তুৰ বিচাৰ বিশ্লেষণ :

ক) কৌশলী বৃত্তিমূলক প্ৰশিক্ষণ : স্থানীয় কৌশলী বৃত্তিসমূহৰ প্ৰশিক্ষণ প্ৰদান কৰি প্ৰতি গৰাকী

শিক্ষাৰ্থীকে যিকোনো এটা বৃত্তিত দক্ষ কৰি তোলাৰ ধাৰণা শংকৰদেৱৰ শিক্ষানীতিত পোৱা যায়। সম্ভৱত বিশ্বৰ ভিতৰতে এই ক্ষেত্ৰত তেওঁ প্ৰথম শাৰীৰ শিক্ষাবিদ। ১৯৮৮ চনৰ ‘ৰাষ্ট্ৰীয় সাক্ষৰতা মিশ্যন’ৰ অধীনত গ্ৰহণ কৰা কাৰ্যকৰী সাক্ষৰতা (functional literacy)ৰ ধাৰণা বা আদৰ্শ তেওঁৰ শিক্ষাদৰ্শনত আছে। আন্তৰ্জাতিকভাৱে তেওঁ প্ৰথম প্ৰাপ্তবয়স্ক শিক্ষা আঁচনি প্ৰয়োগৰ আগৰনুৰা।

শংকৰদেৱৰ শিক্ষা ব্যৱস্থাত বিভিন্ন বৃত্তিয়াল ফৈদসমূহে নিজা নিজা বৃত্তি পালন কৰি বৈষ্ণৱ সমাজৰ অন্তৰ্ভুক্ত হৈছিল। তেওঁ সাধাৰণ শিক্ষাৰ্থীসকলৰ মাজৰ পৰা গায়ক, বাদক, অভিনেতা আদি সৃষ্টি কৰি একোটা বিশেষ দিশত তেওঁলোকক নিপুণ আৰু পাৰদৰ্শী ব্যক্তি কৰি গঢ়ি তুলিছিল। সাধাৰণ তাঁতীৰ হতুৱাই তেওঁ বৈকুণ্ঠৰ চিত্ৰপট বোৱাইছিল। তেওঁৰ বয়ন শিল্প বিকাশৰ চানেকি আজিও বৃটিছ মিউজিয়ামত সংৰক্ষিত হৈ আছে। তেওঁ সাধাৰণ কৌশলী লোকৰ হতুৱাই সিংহাসন, ময়ুৰাসন, গৰুড়াসন, নামঘৰৰ মনিকুট, খোল-বাদ্য, মুখা আদি নিৰ্মাণ কৰিছিল। শংকৰদেৱৰ অনুপ্ৰেৰণাৰে সাধাৰণ শিক্ষাৰ্থীয়ে স্বৰসাধনা কৰি ধ্ৰুপদী সংগীত, সংস্কৃত শ্লোক আদি আওৰাইছিল। শংকৰদেৱৰ আগৰে পৰাই দেৱগৃহ নিৰ্মাণত শিল-ইটাৰ ব্যৱহাৰ হলেও শংকৰদেৱে কিন্তু বাহঁ-কাঠ-শৰনখেৰৰ দৰে সহজলভ্য সামগ্ৰীৰ সহায়ত হে নামঘৰ-মনিকুট নিৰ্মাণ কৰিছিল। ই আছিল গুৰু-ভকতৰ উমেহতীয়া কৌশলী গুণৰ চৰ্চা। শংকৰদেৱৰ শিক্ষা হ’ল সামগ্ৰিক ব্যক্তিত্বৰ বিকাশ যাতে প্ৰতিজন শিক্ষাৰ্থীয়ে আত্মনিৰ্ভৰশীল হৈ সমাজৰ বোজা নোহোৱাকৈ জীয়াই থাকিব পাৰে। উল্লেখযোগ্য যে শংকৰদেৱৰ শিক্ষানীতিৰ দৰে নতুন শিক্ষানীতি য়েও স্থানীয় কলা-কুশলী (local artists and crafts man) সকলক কেন্দ্ৰ কৰি বৃত্তিমুখী শিক্ষাৰ পৰিকল্পনা কৰিছে যাতে প্ৰতিজন শিক্ষাৰ্থী আত্মনিৰ্ভৰশীল হব পাৰে।

নতুন শিক্ষানীতিয়ে বিদ্যালয় পৰ্যায়ৰ পৰা উচ্চ শিক্ষাৰ পৰ্যায়লৈ একাদিক্ৰমে বৃত্তিমূলক শিক্ষাক সংযুক্ত কৰিছে। এই নীতি মতে স্থানীয় সুযোগ সুবিধাৰ ওপৰত নিৰ্ভৰ কৰিহে বৃত্তিমুখী শিক্ষাৰ কেন্দ্ৰবিন্দু নিৰ্দ্ধাৰণ কৰা হ’ব (পৃঃ ৪৪)। তাৰোপৰি নতুন শিক্ষানীতিয়ে বৃত্তিমূলক শিক্ষাক স্কুলীয়া শিক্ষাৰ লগত সংগত কৰিছে যাতে লাহে লাহে সকলো শিক্ষানুষ্ঠানতে এই শিক্ষা প্ৰদান কৰিব পৰা

যাব। মাধ্যমিক (Middle and Secondary) পৰ্যায়ৰ শিক্ষাত বৃত্তিমুখীতাক কেন্দ্ৰীভূত কৰিব পাৰিলেহে উচ্চ পৰ্যায়ত উন্নত মানদণ্ডৰ বৃত্তিমুখী শিক্ষা প্ৰদান কৰিব পৰা যাব। এনে শিক্ষাই প্ৰতিজন শিক্ষাৰ্থীকে কিবা নহয় কিবা এটা দিশত বৃত্তিমুখী জ্ঞান অৰ্জনত সহায় কৰিব। তাৰোপৰি স্কুলীয়া পৰ্যায়ত (Grade 6-8) শিক্ষাৰ্থীসকলে যিকোনো বৃত্তিমুখী শিল্প যেনে- মিস্ত্ৰী, বিদ্যুৎ মেৰামতি, লোহাৰ কাম, মুৎশিল্প, ফুলখেতি আদিৰ ওপৰত জৰীপ পদ্ধতিৰ জৰিয়তে শৈক্ষিক অভিজ্ঞতা অৰ্জন কৰিব লাগিব। ৰাজ্য চৰকাৰ আৰু স্থানীয় সমাজৰ দ্বাৰা এই বিষয় সমূহ নিৰ্দ্ধাৰণ কৰা হ'ব। তাৰোপৰি স্থানীয় কৌশলী লোকৰ দ্বাৰা (কাঠমিস্ত্ৰী, কমাৰ, কুমাৰ, ফুলখেতিয়ক....) শিক্ষাৰ্থী সকলক দহ দিনীয়া কৰ্মভিত্তিক প্ৰশিক্ষণ প্ৰদান কৰা হ'ব। শিক্ষাৰ ওপৰ স্তৰটো এনে প্ৰশিক্ষণ প্ৰদান কৰা হ'ব। সেয়েহে ক'ব পাৰি যে অসমৰ শিক্ষা ব্যৱস্থাত নতুন শিক্ষানীতিয়ে শংকৰদেৱৰ বৃত্তিমূলক সাক্ষৰতাৰ দৰ্শন ব্যৱহাৰিক প্ৰয়োগৰ বাবে এক বিৰল সুযোগ আনি দিছে। কাৰণ কৰ্মৰ বিভীৰিকা নিবাবন মহাপুৰুষ শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱৰ এক শ্ৰেষ্ঠ অৱদান।^৪

(খ) বিভিন্ন শিকন মাধ্যম আৰু শিকন সজুলিৰ প্ৰয়োগ : শিকন-শিক্ষণ প্ৰক্ৰিয়াত বিভিন্ন মাধ্যম যেনে- নৃত্য, গীত, নাট্য, সংগীত, কলা, সুৰ, ৰাগ, ধ্বনি, বাদ্য, হস্তবিদ্যা আদিৰ প্ৰয়োগ শংকৰদেৱৰ শিক্ষানীতিৰ আন এক সৰ্বাধুনিক মনোবিজ্ঞানসন্মত অৱদান। তেখেতে চিহ্নযাত্ৰা ভাওনা সম্পাদন কৰোঁতে চিত্ৰ অকাঁৰ উপৰিও সাতবৈকুণ্ঠৰ পট আঁকিছিল। নিজে বৰগীতৰ দৰে উচ্চ খাপৰ গীত ৰছনা কৰি সেই গীতত ভোটৰ দেশৰ পৰা ভোৰতাল বা ভোটতাল (চীন দেশ, ম্যানমাৰ আদি দেশলৈকে বিস্তৃত) আনি ব্যৱহাৰ কৰিছিল। কেৱল যে আনৰ দেশৰ বাদ্যই প্ৰয়োগ কৰিছিল তেনে নহয়, তেওঁ থলুৱা জনগোষ্ঠীসমূহৰ পৰা খোলৰ আৰ্হি গ্ৰহণ কৰি নামঘৰ-সত্ৰৰ কীৰ্তন প্ৰসংগত এই দেৱ বাদ্য অপৰিহাৰ্য্য কৰি তুলিছিল। শিক্ষাৰ্থীৰ আকৰ্ষণ বৃদ্ধিৰ ই এক অন্যতম উপাদান। ভকতসকলক একগোট কৰি নিয়মানুবৰ্তিতাৰ জ্ঞান দিবৰ বাবে তেওঁ ডবা-কাঁহ বজোৱাৰ নিয়ম প্ৰবৰ্তন কৰিছিল। নিৰ্দ্ধাৰিত বিষয় শিক্ষণৰ বাবে নিৰ্দ্ধাৰিত সময় ঠিক কৰাৰ দৰে তেওঁ ৰাতিপুৱা, দুপৰ, আবেলি, গধূলি, আগনিশা, শেষনিশা, পুৱতি-নিশাৰ বাবে বিভিন্ন ৰাগ নিৰ্দ্ধাৰণ কৰি নিদিষ্ট ৰীতি অনুসৰণ কৰিছিল। সেইদৰে

অংকীয়া নাটত সুত্ৰধাৰে হাতেৰে অংগী-ভংগী কৰি প্ৰতীকধৰ্মী মুদ্ৰাৰ সহায়ত গীতৰ সৈতে সামঞ্জস্য ৰাখি সম্ভাৱ্য কাহিনীৰ অৱতাড়না কৰাৰ নীতি প্ৰৱৰ্তন কৰিছিল।

শংকৰদেৱৰ শিক্ষানীতিৰ সৈতে তাল মিলাই নতুন শিক্ষানীতিয়েও শিক্ষাক এক সহগামী (concurrent) বিষয় হিচাপে স্বীকৃতি দিছে। শিকন-শিক্ষণ প্ৰক্ৰিয়াত (Pedagogy, policy) শিক্ষাৰ সৈতে স্থানীয় প্ৰাসংগিক উপাদান সমূহ (local context)ক গুৰুত্ব প্ৰদান কৰি নতুন শিক্ষানীতিয়ে শংকৰদেৱৰ শৈক্ষিক দৰ্শনক স্বীকৃতি দিছে। তাৰোপৰি এই শিক্ষানীতিয়ে অতি সৰুৰে পৰাই (ECCE Stage) শিক্ষাৰ্থীসকলক নমনীয় ৰূপত খেলভিত্তিক, কৰ্মভিত্তিক, চিত্ৰ-অংকন, কলা, নাটক আদিৰ মাধ্যমেৰে শিকোৱাৰ পৰামৰ্শ দিছে। এনেধৰণৰ শিক্ষাই শিক্ষাৰ্থীৰ শৰীৰ সঞ্চালন, সংজ্ঞানাত্মক বিকাশ, সামাজিক-আৰ্থিক, নৈতিক-সাংস্কৃতিক আদি দিশৰ বিকাশ সাধনত সহায় কৰিব। শংকৰদেৱৰ শিক্ষানীতি নতুন শিক্ষা ব্যৱস্থাত প্ৰয়োগৰ যথেষ্ট সম্ভাৱনীয়তা আছে কাৰণ শিক্ষাৰ বিভিন্ন স্তৰ অথবা বিভিন্ন বিষয়ৰ সৈতে সংগতি ৰাখি আমি শংকৰদেৱৰ শিক্ষানীতিসমূহ কাৰ্যকৰী কৰি তুলিব পাৰো। কাৰণ শংকৰদেৱৰ পৰিবেশ্য কলাৰ মহৎ শক্তি অপ্ৰতিৰোধ্য। এই আৰ্হি সকলোৰে লোৱাৰ অধিকাৰ আছে। কেৱল ধৰ্মতে সীমাবদ্ধ নাৰাখি এই কলা সমাজৰ নানা মংগলজনক কামত ব্যৱহাৰ কৰিব পাৰি।^৫ বিভিন্ন শৈক্ষিক আদৰ্শ প্ৰচাৰ আৰু প্ৰতিষ্ঠাৰ বাবে এই পৰিবেশ্য কলা অতি উপযোগী মাধ্যম।

গ) শিক্ষাত আঞ্চলিক ভাষা প্ৰয়োগ :

শিক্ষণ হ'ল শিক্ষক আৰু ছাত্ৰৰ মাজৰ এক যোগাযোগ প্ৰক্ৰিয়া য'ত ভাষাই মুখ্যস্থান অধিকাৰ কৰে। এই ক্ষেত্ৰত শিক্ষকসকলে সেয়েহে সহজ, প্ৰত্যক্ষ আৰু প্ৰাকৃতিক ভাষা প্ৰয়োগ কৰিব লাগে।^৬ নতুন শিক্ষানীতিয়ে স্থানীয় ভাষা, ঘৰুৱা ভাষা, মাতৃভাষা আৰু ভাৰতীয় ভাষাসমূহক শিক্ষণ কাৰ্যত ব্যৱহাৰ কৰাৰ পৰামৰ্শ দিছে (পৃঃ ৯)। স্কুলীয়া পৰ্যায়ত এনে ভাষাসমূহৰ প্ৰয়োগে শিকন-শিক্ষণ প্ৰক্ৰিয়া উপভোগ্য আৰু আন্তৰিক (enjoyable and interactive) কৰিব বুলি এই শিক্ষানীতিত আশা কৰা হৈছে। মহান শিক্ষাবিদ শংকৰদেৱৰ শিক্ষা নীতিৰ প্ৰাসংগিকতা এই ক্ষেত্ৰত চমৎকাৰ। খ্ৰীষ্টীয় পঞ্চদশ শতিকাত তেখেতে সংস্কৃত

ভাষাৰ সলনি অসমীয়া, হিন্দী, ওড়িয়া আৰু মৈথালী ভাষাক মিলাই ব্ৰজাৱলী ভাষাৰ সৃষ্টিকৰি ব্যৱহাৰ কৰিছিল। কাব্য-নাট বৰগীতসমূহত এই ভাষাৰ প্ৰয়োগে সমগ্ৰ শিকন-শিক্ষন প্ৰক্ৰিয়াকে উপভোগ্য আৰু আন্তৰিক কৰি তুলিছিল। ভগৱান শ্ৰীকৃষ্ণৰ মাহাত্ম্য বৰ্ণনাৰ জৰিয়তে সাধাৰণ মানুহৰ মাজত একতা, মানৱতা, সংবেদন শীলতা, নৈতিকতা আদি গুণ বিকশাই তুলিবৰ বাবে ব্ৰজাৱলী ভাষাই সৰ্বোত্তম বুলি এতিয়াও বিবেচিত হৈ আছে। ব্যাখ্যা, আলোচনা আৰু শ্ৰৱণ-মননৰ মাজেৰে শংকৰদেৱে ব্ৰজাৱলী ভাষাৰ সহায়ত সমগ্ৰ শিক্ষন প্ৰক্ৰিয়া শিক্ষাৰ্থীৰ মাজলৈ লৈ গৈছিল। আঞ্চলিক ভাষাত নাটক ৰচনা কৰা শংকৰদেৱেই ভাৰতৰ প্ৰথম ব্যক্তি।^৮ শংকৰদেৱৰ শিক্ষানীতিত কীৰ্তনৰ পদ, নাটক-অংক ব্যাখ্যা কৰাৰ দৰেই নতুন শিক্ষানীতিয়ে শিক্ষনৰ ক্ষেত্ৰত কঠিন শব্দসমূহ (technical term) সহজ-সৰল ভাষাত ব্যাখ্যা কৰিবলৈ পৰামৰ্শ দিছে।

ঘ) সকলোৰে বাবে শিক্ষণ (Education for all) :

এজন সফল শিক্ষা মনোবিজ্ঞানী হিচাপে শংকৰদেৱে সকলো লোকৰ বাবে শিক্ষানীতি তৈয়াৰ কৰিছিল। অস্পৃশ্যতা বৰ্জন শংকৰদেৱৰ শিক্ষা দৰ্শনৰ মূল ভেটি-যি-ভেটি কুৰি শতিকাত জাতিৰ পিতা মহাত্মা গান্ধীয়ে সুদৃঢ় কৰিছিল। অৱতাৰী মহাপুৰুষজনাই প্ৰতিষ্ঠা কৰা শিক্ষানুষ্ঠান সকলো জাতি, ধৰ্ম, সকলো বয়স, সকলো পৰ্যায়ৰ লোকৰ বাবে মুক্ত আছিল। সকলো সময়, সকলো স্থানতে গ্ৰহণ কৰিব পৰা শংকৰদেৱৰ মানৱতাবাদী আৰু ৰাষ্ট্ৰীয়তাবাদী শিক্ষাৰ ধাৰণা নতুন শিক্ষানীতিত স্পষ্ট হৈছে। জাতি-বৰ্ণ নিৰ্বিশেষে সকলোৰে ভুক্তিত সমান অধিকাৰ- এই কথা শংকৰদেৱে ঘোষণা কৰি হাতে কামে দেখোৱাই গৈছে। সম্ভৱত ভাৰতবৰ্ষৰ ভিতৰতেই অস্পৃশ্যতা বৰ্জনৰ ক্ষেত্ৰত শংকৰদেৱে অগ্ৰণী সমাজ বিপ্লৱী। তেওঁ গাৰো (গোবিন্দ আতৈ), মিকিৰ (বলাই আতৈ), কছাৰী (ৰাম আতৈ), ভূটিয়া (দামোদৰ আতৈ), মুছলীম (চান্দচাই আতৈ)-সকলোকে ‘এক শৰণ’ প্ৰদান কৰি নৱ বৈধৰ আন্দোলনৰ সহযোগী কৰিব পৰাটো ইতিহাসৰ তাৎপৰ্য পূৰ্ণ ঘটনা। শংকৰদেৱৰ দৰে- “The new education policy must provide to all students, irrespective of their place of residence, a quality education system with particular focus on historical marginalized, disadvantaged and

underrepresented groups। (পৃ. ৪)”

ঘ) মনোবিজ্ঞানসন্মত শিকন-শৈলী : শংকৰদেৱৰ ‘এক শৰণ’ শিক্ষাত সামগ্ৰিক ভাৱে জীৱনৰ প্ৰয়োজনীয় গুণবোৰ শিকোৱা হৈছিল। এনে শিকন কাৰ্যত বিভিন্ন কথা (Story-Telling), সুৰ আৰু শিক্ষক-ছাত্ৰৰ মাজৰ সম্পৰ্ক স্থাপনৰ বিভিন্ন উপাদানসমূহৰ (Kinesics, proxemics, oxulesics, haptics, objectives and vocalics) সহায় লোৱা হৈছিল। ইয়াৰোপৰি ব্যাখ্যা, আলোচনা আদিৰ জৰিয়তে শিক্ষাৰ্থীসকলক শিক্ষাত আত্মনিয়োগ (Self-learning) কৰিবলৈ চেষ্টা কৰা হৈছিল। শংকৰদেৱৰ শিক্ষানীতিৰ মতে শিক্ষা এক আনন্দময় কাৰ্য য’ত শিক্ষাৰ্থীৰ একাত্মতাই সমগ্ৰ শিকন-শিক্ষন প্ৰক্ৰিয়া আধ্যাত্মিক ভাৱে শক্তিশালী কৰি তোলে। শংকৰদেৱে নিজেই অনুপম শিকনৰ অমিয়া শৈলী সমূহ সৃষ্টি কৰিছিল, নিবাচন কৰিছিল আৰু প্ৰয়োগ কৰিছিল। নতুন শিক্ষানীতি অনুসৰি-‘Learning should be holistic, integrated, enjoyable and engaging’। শংকৰদেৱৰ প্ৰাসংগিকতাৰে কব পাৰি নতুন শিক্ষানীতিয়ে শিকন-শৈলী নিবাচন কৰাৰ ক্ষেত্ৰত শিক্ষকসমাজক একচেটিয়া অধিকাৰ প্ৰদান কৰিছে যাতে তেওঁলোকে শ্ৰেণীকোঠাৰ শিক্ষাৰ্থী সকলক অধিক সক্ৰিয় কৰি ৰাখিব পাৰে। এই নীতি অনুসৰি সমাজ আবেগিক(Socio-emotional) দিশক প্ৰাধান্য দি ন ন অভিগমনৰ সহায়ত (Novel Approach) শিক্ষকে শিক্ষাক অধিক ফলদায়ক কৰিব লাগিব (পৃঃ ৩)। অসমৰ জন-জীৱনত অলেখ সামাজিক আবেগিক উপাদান আছে যিবিলাক নতুন শিক্ষানীতিৰ আধাৰত আধুনিক শ্ৰেণীকোঠাত প্ৰয়োগ কৰি ‘নতুন অসমীয়া’ সকলক অধিক প্ৰাণময় আৰু কাৰ্যক্ষম কৰিব পাৰো।

ঙ) গনতান্ত্ৰিক শিক্ষানুষ্ঠান স্থাপন : নিজকে গনতান্ত্ৰিক নেতা হিচাপে প্ৰতিপন্ন কৰি শংকৰদেৱে সত্ৰ আৰু নামঘৰ- এই গনতান্ত্ৰিক শিক্ষানুষ্ঠান দুটা স্থাপন কৰিছিল। উচ্চপৰ্যায়ৰ শিক্ষানুষ্ঠান হিচাপে সত্ৰ আৰু নিম্ন পৰ্যায়ৰ শিক্ষানুষ্ঠান হিচাপে নামঘৰৰ জড়িত হৈ শংকৰদেৱে সামাজিক ন্যায়, মিলা-প্ৰীতি স্থাপন, সহনশীলতাৰ পৰিবেশ আৰু কলা-সংস্কৃতি-সাহিত্যৰ বিকাশ কৰিব বিচাৰিছিল। আধুনিক গনতান্ত্ৰিক উপাদানেৰে ভৰপূৰ সত্ৰসমূহ সকলো প্ৰকাৰৰ শিক্ষনৰ

কেন্দ্ৰবিন্দু। ক’ব পাৰি এই আবাসিক শিক্ষা কেন্দ্ৰ সমূহ পুৰনি গুৰুকুল শিক্ষাৰ নৱ সংস্কৰন। সত্ৰ-নামঘৰ প্ৰতিষ্ঠা আৰু প্ৰসাৰৰ জৰিয়তে শংকৰদেৱে পিছপৰা জাতি-জনগোষ্ঠী সমূহৰ উন্নতি, আৰু শ্ৰেণীভেদ প্ৰথাৰ বিলোপ সাধন কৰিব বিছাৰিছিল। শংকৰদেৱে এনে অনুষ্ঠানৰ জড়িততে তেওঁৰ সামাজিক গনতান্ত্ৰিক দৰ্শন মানুহৰ মাজলৈ লৈ যাব বিছাৰিছিল। ৰাষ্ট্ৰীয় বুজাপৰা আৰু মানৱতাবোধ প্ৰতিস্থাৰ বাবে শংকৰদেৱে সত্ৰ-নামঘৰৰ দৰে শিক্ষানুষ্ঠান সমূহ ব্যৱহাৰ কৰিছিল। তেওঁ আছিল ভাৰতীয় জাতীয় সংহতি (National Integration) আৰু দূৰত্ব শিক্ষাৰ (Distance Learning) প্ৰথম প্ৰতিস্থাপক।^১ শংকৰদেৱে প্ৰতিস্থা কৰা গনতান্ত্ৰিক শিক্ষা সম্প্ৰসাৰণৰ এই লাইখুটা আমি নতুন শিক্ষানীতিৰ মাজেৰে পুনঃপ্ৰতিস্থা আৰু সম্প্ৰসাৰণ কৰিব পাৰো। কাৰন নতুন শিক্ষানীতিয়ে ভাৰতৰ বিভিন্ন সংস্কৃতিৰ জ্ঞান আৰু বৈচিত্ৰতা যাতে প্ৰতিজন ছাত্ৰই উপলব্ধি কৰিব পাৰে তাৰ ওপৰত বিশেষ গুৰুত্ব প্ৰদান কৰিছে (পৃঃ ৫৪)। তাৰোপৰি সামাজিক ন্যায় আৰু সাম্যতা প্ৰতিস্থা কৰি

‘এক ভাৰত শ্ৰেষ্ঠ ভাৰত’ গঢ়ি তুলিবৰ বাবে শিক্ষা একমাত্ৰ যথাযোগ্য সজুলি (Single greatest tool) হিচাপে নতুন শিক্ষানীতিয়ে অনুমোদন কৰিছে (পৃঃ ২৪)।
সামগ্ৰিক সিদ্ধান্ত :

আলোচনাটিৰ পৰা দেখা গল যে শংকৰদেৱ এজন মনোবিজ্ঞান সন্মত চিন্তাচৰ্চাৰে সমৃদ্ধ মহান শিক্ষাবিদ। শিক্ষাৰ্থীৰ সামগ্ৰিক বিকাশ, আনন্দময় শিক্ষন, সমাজ-উন্নতিৰ বাবে শিক্ষাৰ প্ৰয়োগ, শিক্ষানুষ্ঠানত অস্পৃশ্যতা বৰ্জন, শিক্ষাৰ্থী কেন্দ্ৰিক অভিগমন প্ৰতিস্থা, সক্ৰিয় ব্যক্তিগত আৰু সামাজিক শিক্ষাৰ উদগনি আদিয়ে শংকৰদেৱৰ শৈক্ষিক দৰ্শনক সমাধুনিক ভাৱে ব্যৱহাৰ কৰিবলৈ সুচল কৰি তুলিছে। ইয়াৰোপৰি বৃত্তিমূলক সাক্ষৰতা (Vocational literacy) বিকাশৰ বাবে শংকৰদেৱে গ্ৰহণ কৰা প্ৰচেষ্টা বৰ্তমান যুগত অতি প্ৰাসংগিক।

নতুন ৰাষ্ট্ৰীয় শিক্ষানীতি (২০২০)ৰ জৰিয়তে আমি শংকৰদেৱৰ গণতান্ত্ৰিক শৈক্ষিক দৰ্শনক অসমৰ শিক্ষানুষ্ঠান সমূহত প্ৰয়োগ কৰিব পাৰিলে, ই জাতিটোৰ বাবে সাৰ্থক হৈ উঠিব। □

বিদ্ৰ : উক্ত আলোচনা পত্ৰখনি প্ৰস্তুত কৰোঁতে মানৱ সম্পদ বিকাশ মন্ত্ৰালয়ৰ দ্বাৰা প্ৰকাশিত ‘ৰাষ্ট্ৰীয় নতুন শিক্ষানীতি’ (২০২০)ক আধাৰ হিচাপে লোৱা হৈছে।

তথ্যসূত্ৰ :

১. Hans, N.(1958). *Comparative education*. Routledge and Kegan Ltd.
২. আধুনিক অসমীয়া সাহিত্যত শংকৰদেৱ প্ৰসংগঃ প্ৰফুল্ল চন্দ্ৰ বৰা, ষ্টুডেন্টচ ষ্টৰচ, ১৯৯৩ পৃঃ২০।
৩. বিষয় শংকৰদেৱঃ ড° নগেন শইকীয়া, কৌস্তভ প্ৰকাশন, ২০০৮।
৪. শ্ৰীমন্ত শংকৰদেৱঃ মহাপুৰুষৰ শেহতীয়া অৱতাৰ, ড° গকুল গোস্বামীঃ প্ৰান্তিক : ১৬ মে, ২০২১।
৫. পাতনিঃ পুৰনি অসমীয়া সাহিত্য, ড° বাণীকান্ত কাকতি।
৬. নামঘৰঃ চিনিও নিচিনিলাঁ যাক, ড° কৰবী ডেকা হাজৰীকা, ‘আমাৰ অসম’, ৬ আগষ্ট, ২০২১।
৭. Das, B.C.(2006). *Educational technology*. Kalyani Publishers
৮. Borkakoti, S.K.(2015). *Mahapurush Srimanta Sankardeva: Life Philosophy and Works*.
৯. Das, P.C.(1996). *Contributions of Srimanta Sankardeva and his associates towards education amongst the rural folk of Assam*. Doctoral dissertation, Gauhati University, Retrieved from <http://hdl.handle.net/10603/57945>.

বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ উপন্যাসত প্ৰতিফলিত লোক-সংস্কৃতিৰ উপাদান (আইআৰ শতাব্দী উপন্যাসৰ বিশেষ উল্লিখনসহ)



নিৰ্মালী বৰা

সংক্ষিপ্তসৰ :

সংস্কৃতিয়ে মানৱ জীৱনৰ সামগ্ৰিকতাক সামৰি লয়। স্বৰূপতে ইয়াৰ পৰিধি বিশাল। আনহাতে সংস্কৃতিৰ এক ভাগ হিচাপে লোক-সংস্কৃতি লোক জীৱনৰ লগত জড়িত। লোক সংস্কৃতিয়ে কোনো এক লোক সমাজৰ সামগ্ৰিক জীৱন পদ্ধতিক সামৰি লয়। লোক-সংস্কৃতিয়ে কোনো এক লোক সমাজৰ মৌখিক লোক-বিদ্যা, লোকাচাৰ, ভৌতিক সংস্কৃতি আৰু লোক-পৰিৱেশ্য কলা আদিক সামৰি লয়। যিকোনো জাতি বা সমাজৰ প্ৰাণসত্তা নিহিত হৈ থাকে লোকসংস্কৃতিত। আনহাতে সাহিত্য হৈছে সমাজৰ দাপোনস্বৰূপ। এই অৰ্থত সাহিত্যত সংস্কৃতিও প্ৰতিফলিত হয়। বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ প্ৰায়বোৰ উপন্যাসতে অসমৰ ভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ লোক-জীৱনৰ একোখন ছবি প্ৰতিফলন ঘটা দেখা যায়। এক অৰ্থত বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ উপন্যাসত আমি বিভিন্ন লোক-সংস্কৃতিৰ উপাদান দেখিবলৈ পাওঁ। লোক-সংস্কৃতিৰ লগত জড়িত বিভিন্ন উৎসৱ-অনুষ্ঠান, সাজপাৰ, খাদ্যাভাস, লোকগীত, লোক-শিল্প আদি ভট্টাচাৰ্যৰ উপন্যাসত দেখিবলৈ পোৱা যায়। গতিকে আমাৰ এই অধ্যয়নত বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ উপন্যাসত প্ৰতিফলিত হোৱা অসমৰ ভিন্ন লোকসংস্কৃতিৰ উপাদানৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হ'ব।

বীজ শব্দ :

বীৰেন্দ্ৰকুমাৰ ভট্টাচাৰ্য, অসমীয়া, লোকসংস্কৃতি, উপন্যাস।

১.০ অৱতৰণিকা

১.১ বিষয়ৰ পৰিচয়

অসমীয়া সাহিত্যৰ এগৰাকী বিশিষ্ট সাহিত্যিক বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্য। *ৰামধেনু* আলোচনীতে সাহিত্য চৰ্চাৰ আৰম্ভণি কৰা ভট্টাচাৰ্য একেধাৰে ঔপন্যাসিক, গল্পকাৰ, কবি, নাট্যকাৰ, অনুবাদক, প্ৰবন্ধকাৰ ইত্যাদি। যদিও বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্যই সাহিত্যৰ বিভিন্ন শাখাত হাত দিছিল, তথাপি তেওঁক ঔপন্যাসিক হিচাপেহে বেছি পৰিচিত। ভট্টাচাৰ্যক অসমীয়া উপন্যাস সাহিত্যত ৰাজনৈতিক ঔপন্যাসিক হিচাপে জনা যায় যদিও ৰাজনৈতিক ঘটনাৱলীৰ সমান্তৰালভাৱে ভট্টাচাৰ্যৰ উপন্যাসত লোক-সংস্কৃতিৰ বহুতো সমল পৰিলক্ষিত হোৱা দেখা যায়। গতিকে এই অধ্যয়নত ভট্টাচাৰ্যৰ উপন্যাসত পৰম্পৰাগত লোক-সংস্কৃতিৰ সমল কেনেদৰে প্ৰতিফলিত হৈছে তাৰ চমু আভাস দিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হ'ল।

১.২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য আৰু গুৰুত্ব

বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্যৰ উপন্যাসত প্ৰতিফলিত লোক-সংস্কৃতিৰ উপাদান —

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
কৃষ্ণকান্ত সন্দিকৈ ৰাজ্যিক
মুক্ত বিশ্ববিদ্যালয়, খানাপাৰা
গুৱাহাটী, পিন : ৭৮১০২২
☎ ৬০০০২৮০৯৭৯
✉ nirmaliborah84@gmail.com

শীৰ্ষক বিষয়টো অধ্যয়নৰ মূল উদ্দেশ্য হৈছে— বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্য্যৰ উপন্যাসত প্ৰতিফলিত হোৱা লোক-সংস্কৃতিৰ উপাদানসমূহ বিচাৰ কৰা।

লোক-সংস্কৃতিৰ অধ্যয়ন তথা বিচাৰ বিশ্লেষণে সমাজৰ সভ্যতা-সংস্কৃতি মূল্যায়ন কৰাত বিশেষভাৱে সহায় কৰে। বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্য্যৰ লোক-সংস্কৃতি বিষয়ক উপাদান সম্বলিত সৃষ্টিৰাজিক পুংখানুপুংখ অধ্যয়ন, অনুধাৱন আৰু বস্তুনিষ্ঠ বিশ্লেষণেৰে অধ্যয়ন কৰাৰ ক্ষেত্ৰত বিষয়টোৰ গুৰুত্ব আছে।

১.৩ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ

বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্য্যৰ উপন্যাসত প্ৰতিফলিত লোক-সংস্কৃতিৰ উপাদান — শীৰ্ষক বিষয়টোৰ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ হিচাপে আই আৰু শতঘ্ৰী এই দুয়োখন উপন্যাস অন্তৰ্ভুক্ত কৰা হৈছে। এই অধ্যয়নত লোক-সংস্কৃতিৰ চমু পৰিচয় দিয়াৰ লগতে এই দুয়োখন উপন্যাসত প্ৰতিফলিত লোক-সংস্কৃতিৰ উপাদান যেনে— উৎসৱ-অনুষ্ঠান, খাদ্যাভাস, লোকাচাৰ, লোকবিশ্বাস, লোকগীত আদিৰ বিষয়ে আলোচনাৰ পৰিসৰত সামৰি লোৱা হ'ব।

১.৪ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি

বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্য্যৰ উপন্যাসত প্ৰতিফলিত লোক-সংস্কৃতিৰ উপাদান — শীৰ্ষক বিষয়টো অধ্যয়ন কৰোঁতে মূলত পাঠ্যভিত্তিক অধ্যয়ন পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে। লগতে বিষয়বস্তু বিশ্লেষণ কৰিবলৈ বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

তথ্য আহৰণৰ মুখ্য সমল হিচাপে শোণিত বিজয় দাসৰ সম্পাদিত আৰু কথা পাব্লিকেচনৰ দ্বাৰা প্ৰকাশিত বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্য্যৰ ৰচনাৱলী ২ক লোৱা হৈছে। আৰু গৌণ সমল হিচাপে অন্যান্য প্ৰাসংগিক গ্ৰন্থৰ সহায় লোৱা হৈছে।

২.০ লোক-সংস্কৃতিৰ চমু পৰিচয়

সাধাৰণ জনসমাজৰ যি সংস্কৃতি, সেই সংস্কৃতিকে লোক-সংস্কৃতি বুলি কোৱা হয়। অসমীয়া ভাষাত ব্যৱহৃত 'লোক-সংস্কৃতি' শব্দটো ইংৰাজী ভাষাৰ 'Folk lore' শব্দৰ সমাৰ্থক। 'Folk' - অৰ্থ লোক বা জন, 'lore' - অৰ্থ বিদ্যা, lore- পদে সংস্কৃতিক সূচায় বুলি স্পষ্টকৈ কোৱা টান। এই ফালৰপৰা Folk lore - ক বুজাবৰ বাবে লোকবিদ্যা পদটো প্ৰয়োগ কৰাহে অধিক সমীচীন যেন লাগে। (শৰ্মা, ২০২২, পৃ.৪০) লোক-সংস্কৃতি সম্পৰ্কে বিভিন্ন পণ্ডিতে

বিভিন্ন মত পোষণ কৰিছে যদিও ইয়াৰ সকলোবোৰ মত গ্ৰহণযোগ্য বুলিব নোৱাৰি। লোক-সংস্কৃতিৰ পৰিসৰ ইমানেই ব্যাপক যে এটা নিৰ্দিষ্ট সংজ্ঞাত আবদ্ধ কৰাটো টান। লোক-সংস্কৃতিয়ে বিয়া-সবাহ, বিভিন্ন উৎসৱ-পাৰ্বন, ঐতিহ্য, লোকগীত, লোককাব্য, লোকনাট্য, লোকনৃত্য, লোকভাষা, সাধুকথা, প্ৰবাদ-পটন্তৰ, সাঁথৰ, নিচুকনি গীত, লৌকিক চিত্ৰকলা, মৃন্ময় শিল্প, স্থাপত্য, ভাস্কৰ্য্য আদি বিষয়বোৰ সামৰি লয়।

বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ সাংস্কৃতিক উপাদান সংমিশ্ৰিত হৈ অসমীয়া লোক-সংস্কৃতি গঢ় লৈ উঠিছে। যুগ যুগ ধৰি চলি অহা পৰম্পৰা আৰু সমন্বয়ৰ পৰিণতিস্বৰূপে এটা জাতিৰ লোক-সংস্কৃতিয়ে পৰিচয় লাভ কৰে। অসমীয়া লোক-সংস্কৃতিৰ ক্ষেত্ৰটো ইয়াৰ ব্যতিক্ৰম নহয়। অষ্ট্ৰিক, মংগোলীয় আৰু আৰ্য-অনাৰ্য আদি বিভিন্ন জাতিৰ লোক-সংস্কৃতিৰ সংমিশ্ৰণত অসমীয়া লোক-সংস্কৃতি গঢ় লৈ উঠিছে। অসমীয়া সংস্কৃতিত অষ্ট্ৰিক আৰু মংগোলীয় সংস্কৃতিৰ পলস পেলাই সাৰুৱা কৰি থৈ যোৱা বহল পথাৰতেহে আলপাইন আৰু আৰ্য সংস্কৃতিয়ে গা কৰি উঠিছে। (গগৈ, ২০১২, পৃ.২০) বাহ্যিক দিশৰ পৰা ভাৰতীয় লোক-সংস্কৃতি আৰু অসমীয়া লোক-সংস্কৃতি একে যেন লাগিলেও দুয়োটাৰে ধাৰা ভিন্ন, সম্পূৰ্ণ একে নহয়। অসমীয়া সংস্কৃতি সমন্বয়ৰ সংস্কৃতি; কোনো নিৰ্দিষ্ট জনগোষ্ঠীৰ সংস্কৃতি নহয়। আৰ্য, কিৰাত, নিষাদ, দ্ৰাবিড় সকলো সংস্কৃতিৰ উপাদান সংমিশ্ৰিত হৈ অসমীয়া সংস্কৃতি গঢ় লৈ উঠিছে। (গগৈ, ২০১২, পৃ.১৪)

লোক-সংস্কৃতি বুলিলে সাধাৰণ অৰ্থত লোক জীৱনৰ লগত জড়িত গীত-নৃত্য, ধৰ্ম তথা ৰীতি-নীতি, ঘৰুৱা আচাৰ-ব্যৱহাৰ, প্ৰবচন, লোককথা এই সকলোবোৰক বুজা যায়। জনসাধাৰণৰ ধৰ্ম সম্পৰ্কীয় বিশ্বাস, বিভিন্ন প্ৰকৃতিৰ পূজা, জীৱ জন্তু সম্পৰ্কীয় লোকবিশ্বাস, কৃষি সম্বন্ধীয় লোকবিশ্বাস, লোকউৎসৱ, লোকনাট্য, লোকনৃত্য, লোকগীত, খেল-ধেমালি এই সকলোবোৰ উপাদানৰ সংমিশ্ৰণত গঢ় লৈ উঠিছে বাবেহনীয়া অসমীয়া লোক-সংস্কৃতি।

ৰিচাৰ্ড এম, ডৰচনৰ মতে লোকবিদ্যা আৰু লোকজীৱনক মোটামুটিভাৱে চাৰিটা বহল ভাগত বিভক্ত কৰিব পাৰি। ডৰচনৰ নিচিনাকৈ অসমৰ লোক-সংস্কৃতিবিদ নবীন চন্দ্ৰ শৰ্মাই অসমীয়া লোক-সংস্কৃতিক চাৰিটা ভাগত

১. মৌখিক সাহিত্য (oral literature)
২. ভৌতিক সংস্কৃতি (material culture)
৩. সামাজিক-লোক-রীতি-নীতি (social folk custom)
৪. লোক পরিবেশ্য কলা (performing folk arts)

(শর্মা, ২০২২, পৃ.৪৯)

৩.০ বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্য্যৰ উপন্যাসত প্ৰতিফলিত
লোকসংস্কৃতিৰ উপাদান

৩.১ মৌখিক সাহিত্য

(২) ফকরা-যোজনা আর (৩) সাধুকথা —এই তিনটি ভাগত
ভাগ করিছে। (শর্মা, ২০১৮, পৃ. ১৯)

সত্যেন্দ্ৰনাথ শৰ্মাই লোকগীতসমূহকো আকৌ তিনিটা শ্ৰেণীত ভাগ কৰিছে— (১) অনুষ্ঠানমূলক (২) আখ্যানমূলক আৰু (৩) বিবিধ বিষয়ক। ইয়াৰে অনুষ্ঠানমূলক লোকগীতৰ ভিতৰত বিষ্ণুগীত হৈছে অন্যতম। বিষ্ণুগীতসমূহত ডেকা-গাভৰুৰ মনৰ ভাব প্ৰকাশ হোৱা দেখা যায়। অৱশ্যে কিছুমান বিষ্ণুগীতত স্ত্ৰীপুৰুষ নিৰ্বিশেষে যৌৱন অৱস্থাৰ ভাব প্ৰকাশ হোৱা দেখা যায়। তাৰে প্ৰতিফলন ঘটিছে ভট্টাচাৰ্য্যৰ দ্বাৰা ৰচিত *আই* নামৰ উপন্যাসখনিত। উপন্যাসখনিত নুমলী আৰু ৰজত দুয়ো প্ৰেমিক-প্ৰেমিকা কিন্তু দুয়োৰে জাত বেলেগ হোৱাৰ কাৰণে ঘৰত বিয়াৰ সন্মতি দিয়া নাই। নুমলীয়ে গৰু বছৰ আগদিনা হোলাৰ ন পানীত কাপোৰ ধুই থাকোতে চেনাইলৈ মনত পেলাই গাইছে—

কমোৰা তুলাবোৰ যেনেকৈ উৰিছে
তেনেকৈ উৰিবৰ মন।
আজি বোলে উৰুৱা কালি বোলে ভুৰুকা
নাহৰ ফুল ফুলিবৰ বতৰ।
ৰংপুৰ নগৰত ঢোলৰ মাত শুনিবলৈ
গচকত ভাঙিলোঁ যঁতৰ।” (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ. ৩৮)

নুমলীয়ে বিহুগীত গাই থকা শুনি উপন্যাসৰ এটা চৰিত্ৰ
বাছাই নুমলীক জোকাইছে এনেদৰে—

এনেদৰে আমি আই উপন্যাসখনিত বিহুগীতৰ
 প্ৰতিফলন হেৰা দেখিবলৈ পাওঁ। ঠিক সেইদৰে আই আৰু
 শতস্ৰীদুয়োখন উপন্যাসতে আমি কিছুমান জনগোষ্ঠীয় গীতৰ
 প্ৰসংগ উল্লেখ পাওঁ। যেনে— আই উপন্যাসখনত বাছাই
 যেতিয়া বজত আৰু বজতৰ মোমায়েকৰ লগত গাখীৰ
 আনিবলৈ চাপৰিলৈ গৈছে; তেতিয়া চাপৰিত কোনোবাই

মিচিং জনগোষ্ঠীৰ এই নিতম গাইছে। যেনে— “হঠাতে মিৰি নাৰৰ পৰা কোনোবাই এই নিতম গালে। পুৰুষ আৰু নাৰী কণ্ঠ শুনি বাছা থৰ হ’ল। গাভৰুৱে ক’লে, “ব’ল আমাৰ নাৰত বিহু চাৰি।” (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ. ৩৭) সেইদৰে শতঘ্ৰী উপন্যাসত সোণোৱাল কছাৰী জনগোষ্ঠীৰ হাইদাং গীতৰ প্ৰসংগও দেখা যায়। যেনে— উপন্যাসৰ বন্ধুবান্ধব চৰিত্ৰটোৱে যেতিয়া গা ধুবৰ বাবে বাৰ্থৰোমত সোমাইছে তেতিয়া তেওঁৰ “মুখলৈ এটা হাইদাং গীত আহিল।” (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ. ৬১) একেদৰে শতঘ্ৰী উপন্যাসত অমলাই বড়ো গীত, বিয়ানাম, বিহু নাম গোৱাৰ উল্লেখ আছে। যেনে—

“মাজতে এটা বৈছাণ্ডৰ বড়ো গীত গালে তাই, শৈশৱতে শুনা গীত। মনটো ভাল লাগি গ’ল। তাৰ পিছত এটা বিয়া নাম গুণগুণালে, বিয়ানামৰ পিছত এটা সুন্দৰ বিহু নাম।” (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ. ৮৫)

এইদৰে উপন্যাস দুখনত অসমীয়া বিহুগীত, বিয়ানাম আৰু মিচিং, বড়ো, সোণোৱাল আদি জনগোষ্ঠীৰ লোকগীতৰ বিষয়ে উল্লেখ কৰিছে।

৩.১.২ লোকোক্তি :

অসমীয়া লোক সাহিত্যত প্ৰবাদ-প্ৰৱচন, ফকৰা-যোজনা এই এক বিশেষ স্থান অধিকাৰ কৰি আছে। প্ৰাচীন কালৰ পৰাই প্ৰবাদ-প্ৰৱচন, ফকৰা-যোজনা আৰু পটন্তৰে লোকমানসত প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰি আহিছে। বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্য্যৰ উপন্যাসত প্ৰবাদ-প্ৰৱচন, ফকৰা-যোজনা আৰু পটন্তৰৰ বহুল ব্যৱহাৰে তেওঁ কৰ্মক লোক-সংস্কৃতিক সমলৰ ভঁড়াললৈ ৰূপান্তৰিত কৰিছে। ভট্টাচাৰ্য্যৰ আই আৰু শতঘ্ৰী উপন্যাস দুয়োখনিত আমি ইয়াৰ প্ৰয়োগ দেখা পাবোঁ। যেনে—

আই উপন্যাস :

গাই-গোটো পেটে ভঁৰাল হ’ল (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ. ২৩)

গছত কঁঠাল ওঠত তেল, নৌ খাওঁতেই চেল্বেল (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ. ২৪)

ধানটোৱে পতি কণটো, মানুটোৱে পতি মনটো (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ. ২৪)

যাৰ কন্যা তাৰ বিবাহ (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ. ২৬)

কলিৰ শেষত হৈবে কল্কিৰ অৱতাৰ (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ. ৩২)
শতঘ্ৰী উপন্যাস :

কৌৰৱৰ চাউল খাই পাণ্ডৱৰ গুণ গায়। (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ. ৬৮)

এবাৰ সাপে খালে লেজুলৈকো ভয়। (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ. ৭২)
সেই ৰামো নাই, সেই অযোধ্যাও নাই। (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ. ৯১)

৩.২ ভৌতিক সংস্কৃতি :

পৰম্পৰা আশ্ৰয়ী সমাজত (traditional oriented society) পুৰুষ-স্ত্ৰী আদিয়ে কেনেকৈ ঘৰ-দুৱাৰ নিৰ্মাণ কৰে, কেনেকৈ কাপোৰ বোৱে; অথবা খাদ্য-দ্রব্য ৰান্ধে, খেতি-বাতি কৰে, মাছ-কাছ পোহে, মাটি-পানীৰ ব্যৱস্থা কৰে, যন্ত্ৰ-পাতি নিৰ্মাণ কৰে, সাজ-সৰঞ্জাম, বাচন-বৰ্তন প্ৰস্তুত কৰে—আদি চৰ্চাই ভৌতিক সংস্কৃতিৰ প্ৰধান উপজীৱ্য বিষয়। (শৰ্মা, ২০২২, পৃ. ৫১)

৩.২.১ খাদ্যাভাস :

অসমীয়া মানুহৰ প্ৰধান আহাৰ ভাত। ভাতহে প্ৰধান আহাৰ হোৱা বাবে ধান খেতিয়েই অসমৰ প্ৰধান খেতি। অসমীয়া মানুহে অতীজৰে পৰা চাউলৰ পৰা তৈয়াৰ কৰা পিঠাগুৰি, চিৰা, লাৰু, সান্দহ আদি খাদ্যসম্ভাৰৰূপে ব্যৱহাৰ কৰে। বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্য্যৰ উপন্যাসতো অসমীয়া লোকসমাজত ব্যৱহৃত বিভিন্ন খাদ্যবস্তু তথা প্ৰস্তুত প্ৰণালীৰ আভাস পেৰা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে, শতঘ্ৰী উপন্যাসত আছে—

“বেলিয়ে প্ৰায় বৈছাণ্ডত পোৰা মাছেৰে মোক পইতা ভাত আৰু পুৰণি লাওপানী দিছিল। সেই মজা চহৰীয়া মেজত খোৱা ভাতত ক’ত আছে—তাতে কছাৰীক বিয়া কৰালে যদিও প্ৰমীলা আজীৱন বামুণ হৈয়ে থাকিল খোৱা-বোৱাৰ বিষয়ত।” (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ. ৬৭)

আকৌ আছে—

“প্ৰথমতে পচলাৰ আঞ্জা বাকি ল’লোঁ, অসুখৰ মুখতো অমৃত যেন লাগিল। পচলা নহয় যেন পহৰ তৰকাৰিহে। টকালি টকালি খালোঁ। তাৰ পিছত থপথপীয়াকৈ এখন মাছৰ জোল দিলে। তৰকাৰিত পানীৰ সাঁচেই নাছিল, বাটিৰ মুখলৈকে আলু-কৰিৰ টুকুৰা ভৰি আছিল। মোৰ ৰুচিৰ জোখাই আঞ্জা জ্বলা হৈছিল আৰু সেই কাৰণে সেই সেই ভাত দুটিমানৰ সৈতে আঞ্জাখন খালোঁ। ভাজিখন বেছ সোৱাদ হৈছিল, আলু-বেঙেনা-কৰিৰে বেছ সনা-পিঠা হৈ সোৱাদ হৈ পৰিছিল। টেঙা কৰিছিল মচুৰ মাহৰ। সেইখনো উপাদেয় হৈছিল আৰু খাবলৈ লওঁতে ফুৰফুৰীয়া নেমুটেঙা-

গোন্ধ নাকত লাগিলহি। সদৌ শেহত আছিল পাৰৰ আঞ্জা; সেইখনত ফোৰণ দিয়াৰ ফমান বাকি লোৱাৰ লগে লগে গম পালোঁ।” (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ.৯৩)

বিহুৰ সময়ত জলপান তৈয়াৰ কৰাটো অসমীয়া মানুহৰ পৰম্পৰা। তাৰে প্ৰকাশ ঘটিছে আই উপন্যাসখনৰ বাছাৰ মাকৰ চৰিত্ৰত— “এক নতুন উৎসাহত উৰুলিকৃত হৈ চিৰা-সান্দহ বুলিবলৈ আৰু গাখীৰৰ জা-যোগাৰ কৰিবলৈ ধৰিলে। (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ.৩৫)

ঠিক সেইদৰে অসমীয়া জাতি-জনগোষ্ঠী লোকসকলে বিহুৰ উপৰিও অন্য সময়তো জলপান ব্যৱহাৰ কৰে। উদাহৰণস্বৰূপে— “বেয়া নাপাব বিয়নী, খাবলৈ মাতি এনে দুৰ্দৰ্শা হ’ব বুলি কেনেকৈনো জানিব? যাওক, আখলৰ চাঙতে জলপান আছে, নমাই তাৰে এটা আহাৰ খাওকগৈ।” (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ.৭৩)

“ঘৰত মাকে তাক নকৈ খুন্দা চিৰাৰ এটা জলপান দিলে।” (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ.৩৫)

“চাপৰিত নামি সিহঁতে দেখিলে গাখীৰ আনি থোৱা আছিল। কাজেই গৈ পায়ই ৰজত আৰু মোমায়েকে পইচা দি গাখীৰৰ ঘটবোৰ লেখি ভালকৈ নাৱত ভৰালে। তাৰ পিছত মোমায়েকে কাপোৰ এখনত টোপোলা বান্ধি নিয়া কোমল চাউল তিয়ালে। কোমল চাউল কোমলে মানে ৰজতে বাছাক লৈ বহাবোৰ চাবলৈ গ’ল।” (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ.৩৭)

“নাৱত উঠাৰ পিছত এটা খোলত দৈ, কোমল চাউল আৰু গুৰ অলপ দি ৰজতে বাছাক খাবলৈ ক’লে আৰু....” (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ.৩৭)

গতিকে দেখা অসমীয়া মানুহৰ প্ৰধান খাদ্য ভাতৰ লগতে আঞ্জা কেনেদৰে খাই তাৰ আভাস উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত হৈছে। লগতে অসমীয়া মানুহৰ বিভিন্ন জলপান যেনে— চিৰা দৈ, কোমল চাউল, সান্দহ আদিৰ ব্যৱহাৰো উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত হৈছে।

৩.৩ সামাজিক-লোক-ৰীতি-নীতি

৩.৩.১ লোকাচাৰ

প্ৰাচীন কালৰ পৰাই অসমীয়া সমাজত কিছুমান লোকাচাৰ পৰম্পৰাগতভাৱে প্ৰচলিত হৈ আহিছে। এই লোকাচাৰসমূহৰ বাবে অসমীয়া জাতি অন্য জাতি-জনগোষ্ঠীতকৈ পৃথক। অসমীয়া জাতি বিভিন্ন জাতি-জনগোষ্ঠীৰ সমন্বয়ত গঠিত হৈছে যদিও সকলোৰে মাজত

মিল পৰিলক্ষিত হয়। আৰু সেয়াই অসমীয়া জাতিৰ পৰিচয়; যিটো পৰিচয় অনৈক্য মাজত ঐক্য বুলি জনা যায়। বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্য্যৰ আই আৰু শতশ্ৰী উপন্যাসত প্ৰতিফলিত লোকাচাৰক তলত আলোচনা কৰা হ’ল।

৩.৩.১.১ বিবাহ সম্বন্ধীয় অনুষ্ঠান বা লোকাচাৰ :

অসমীয়া সমাজত বিয়া পতাৰ আগতে দৰাঘৰ আৰু কইনা ঘৰৰ মাজত কথা বতৰা হয়। যাক ছোৱালী চোৱা পৰ্ব বুলি কোৱা হয়। এই পৰ্ব বিয়াৰ একেবাৰে প্ৰথম স্তৰত কৰা হয় আৰু ইয়াৰ জৰিয়তে বিয়া আগবঢ়াই নিয়া হয়। এই কাৰ্যৰ দ্বাৰা দৰা ঘৰৰ মানুহে ছোৱালী আৰু ছোৱালীৰ পৰিয়ালৰ বিষয়ে আৰু ছোৱালী ঘৰৰ মানুহে দৰা আৰু দৰাৰ পৰিয়ালৰ বিষয়ে কথা বতৰা পাতে। ভট্টাচাৰ্য্যৰ আই উপন্যাসখনত বাছাৰ ককায়েক বৰমাইনাৰ বাবে মুৰুলীৰ ভনীয়েকৰ হৈ বিয়াৰ প্ৰস্তাৱ দিবলৈ আহিছে; লগতে বিয়া দিবলৈ লোৱা ছোৱালীৰ বৰ্ণনা আৰু পৰিয়ালৰ কথা বৰ্ণনা কৰিছে। তাৰ প্ৰকাশ ঘটিছে এনেদৰে—

“মুৰুলীৰ ভনীয়েকক বৰমাইনালৈ ধৰিবলৈ তেওঁলোক আহিছে। ককায়েক নিৰুদ্দেশ; কাজেই ছোৱালী দিয়াৰ দায়িত্ব তেওঁৰ। মুৰুলীক যোৰহাট পোষ্ট অফিচতে সোমাই দিছে, এতিয়া প্ৰভাক গতাব পাৰিলেই হ’ল। ছোৱালীজনী মিঠা বৰণীয়া, কামে-বনে, স্বভাৱ-চৰিত্ৰই সকলো পিনে ভাল। ইংৰাজী স্কুলৰ দুই-এ শ্ৰেণীলৈকে পঢ়ি তাই পঢ়া সাং কৰিলে। এতিয়া মাইনালৈকে বুলি তাইক ঠিক কৰি তেওঁৰ মাকৰ ওচৰত হাত পাতিছেহি।” (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ.২৬)

তেতিয়া বাছা আৰু বৰমাইনাৰ মাকে কৈছে— “এৰা মোৰো দেহা পৰি আহিছে, ঘৰ ধৰা এজনী মানুহ লাগে। ক’ৰবাত ভাল সম্বন্ধ পালে মোৰো বিয়া কৰিবৰ মন।” (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ.২৬)

উপন্যাসৰ পৰৱৰ্তী অংশত সন্ধ্যাসীয়ে বৰমাইনাৰ মাকক উপদেশ দিছে আৰু সেইমতে বৰমাইনা আৰু প্ৰভাৰ বিয়া ঠিক হৈছে— “ওৰে ৰাতি সন্ধ্যাসীয়ে সেইদিনা শ্লোক মাতি কিবা এটা সাধনা কৰিলে। পুৱালৈ বাছাৰ মাকক মাতি আনি ক’লে— “আই।

কি?

এইখন বিয়া পাতা সকলো শুভ হ’ব।” (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ.৫০)

আনহাতে দৰাৰ মাকে হ'বলগীয়া বোৱাৰীৰ বিষয়ে ককায়েকক নানান প্ৰশ্ন সুধি বিবৃত কৰিছে। যেনে— “ঢেঁকী দিব পাৰে নে নোৱাৰে, কিমানকৈ পঢ়িছিল, তাঁত সূত বয় নে নবয়।” (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ. ৫০) ইত্যাদি।

ছোৱালী ঠিক হোৱাৰ পিছত দৰা ঘৰৰ মানুহে ছোৱালীক আঙুঠি পিন্ধোৱা পৰম্পৰা আছে। আই উপন্যাসখনত দৰাৰ মাকে প্ৰভাক আঙুঠি পিন্ধোৱা কথা উল্লেখ আছে এনেদৰে—

“বৰমইনাৰ মাকে যেতিয়া চাকি দি অতাইছিল। তাইৰ হাঁহি শুনি নিজেও মিচিকিয়াই হাঁহি তাইৰ ওচৰলৈ গৈ প্ৰথমতে তাইৰ হাতৰ পৰা আঙুঠিতো লিৰিকি-বিদাৰি চাই স্বস্তিৰ নিশ্বাস পেলালে। তাৰ পিছত প্ৰভাৰ সোঁহাতখন মৰমতে টানি আনি অনামিকা আঙুলিত একৰকম জোৰ কৰিয়েই আঙুঠিটো পিন্ধাই দিলে।” (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ. ৫১)

সেইদৰে শতগ্ৰী উপন্যাসতো বজতৰ বাবে অমলাক আঙুঠি পিন্ধোৱাৰ কথা পোৱা যায়।

অসমীয়া সমাজত বিবাহৰ আগদিনা জোৰোণ দিয়া প্ৰথা আছে। জোৰোণ হৈছে এক মাংগলিক অনুষ্ঠান। জোৰণৰ দিনা ঘৰৰ দুৱাডলিত আম পাত আঁৰি দৰা-কইনাৰ বাবে মংগল কামনা কৰা হয়। আনহাতে জোৰণৰ দিনা দৰা পক্ষৰ পৰা ছোৱালী পক্ষৰ ঘৰত গৈ কইনাৰ বাবে বিভিন্ন কাপোৰ, অলংকাৰ আৰু সাজোন-কাচোনৰ গহনা-গাথঁৰি প্ৰদান কৰে। শতগ্ৰী উপন্যাসখনত বজতৰ জোৰোণৰ দিনা বজতৰ মাকে ঘৰৰ “দুৱাৰডলিৰ ওপৰত আমপাত আঁৰিছে।” (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ. ৫৯) ঠিক সেইদৰে বজতৰ ভিনিয়েক আথেয়ে “জোৰণৰ বাবে অলংকাৰ আনিছে।” (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ. ৫৯) জোৰণ দিবলৈ যাবলৈ ঘৰৰ সকলোৱে যো-জা কৰিছে। বজতৰ বায়েক বিমলাই জোৰণৰ কাপোৰ-কানি থানথিত লগাইছে। তাৰ প্ৰকাশ ঘটিছে এনেদৰে— “বিমলা, উঠিলি যে, কিবা আছে নেকি?”

আছে দেউতা। জোৰণৰ কাপোৰ-কানিবোৰ থানথিত লগাই বাকচত ভৰাব লাগে।” (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ. ৬০)

ঠিক সেইদৰে বজতৰ দেউতাকে জোৰোণৰ বস্ত্ৰবোৰ দেখি কৈছে— “জোৰোণৰ বাকচটো চালোঁ, মেল খাই আছে। ভিতৰত অলংকাৰ-পাতি ওলাই আছে। বৰ অসাৱধান বিমলা, প্ৰমীলাও। এইদৰে বস্ত্ৰবোৰ পেলাই থওঁতে যদি

চুৰ কৰি লৈ যায়। পূৰা দুহেজাৰ টকা পৰিছে এই জোৰণৰ বস্ত্ৰবোৰত।” (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ. ৬৩)

জোৰোণৰ পিছতে আহে মূল বিয়া। মূল বিয়াৰ বাবে পুৰোহিতৰ হতুৱাই নিৰ্দিষ্ট দিন বাৰ ঠিক কৰি মূল বিয়া উৎসৱ পালন কৰা হয়। শতগ্ৰী উপন্যাসত বজতৰ মাকে প্ৰশান্তৰ বিয়াৰ তাৰিখৰ কথা কৈছে এনেদৰে— “মই পুৰোহিতৰ হতুৱাই দিন-বাৰো চোৱাইছোঁ। ব'হাগৰ পাঁচ তাৰিখে দিন ভাল বুলি কৈছে।” (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ. ৮৭)

ঠিক সেইদৰে আই উপন্যাসতো বিয়াৰ তাৰিখ সম্পৰ্কে আছে এনেদৰে— “ইতিমধ্যে বৰমইনাৰ বিয়াখনো চমু চাপি আহিল। ব'হাগ মাহৰ ২৭ তাৰিখে বিয়া পাতিবৰ বাবে দুয়ো ঘৰে কথা পকাপকি কৰিছে। বাছাৰ মাকে অনুভৱ কৰিলে যে তেওঁৰ দেহাৰ অৱস্থালৈ চাই ব'হাগতকৈও পিছলৈ দিন হোঁহঁকোৱা ঠিক নহয়।” (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ. ৫৩)

৩.৩.১.২ আলহী-অতিথি শুশ্ৰূষা সম্পৰ্কীয় লোকাচাৰ

সামাজিক লোকাচাৰৰ ভিতৰত অন্যতম হৈছে আলহী-অতিথিক কৰা শুশ্ৰূষা সম্পৰ্কীয় লোকাচাৰ। অসমীয়া সমাজত ঘৰলৈ আলহী আহিলে কেনেদৰে শুশ্ৰূষা কৰা হয় তাৰ আভাস আই উপন্যাসত প্ৰকাশ পাইছে।

“আবেলি মনহঁতৰ ককাই-ভাই তিনিটা আহিলত সিহঁতক সি আথে-বেথে সোধ-পোছ কৰিলে, মমাৰল ঘৰৰ পৰিষ্কাৰ মজিয়াত বহুৱাই একোটকৈ পকা জলপান খুৱালে আৰু ছল বুজি তাৰ ব্যৱহাৰত বেয়া নেপাবলৈ অনুৰোধ জনালে।” (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ. ২৪)

ঠিক একেদৰে— “মনৰ ঘৈণীয়েকে বটাত তামোল এখন লৈ তালৈ আগবঢ়াই দি সুধিলে, “আইৰ ভালনে?”

৩.৩.২ লোকবিশ্বাস :

লোকবিশ্বাস সামাজিক লোকাচাৰৰ এক অবিচ্ছেদ্য অংগ। লোকজীৱনৰ পৰম্পৰাগত বিশ্বাসৰ ওপৰত নিৰ্ভৰ কৰি বিবিধ লোকাচাৰ গঢ়ি উঠে। যি আচাৰ-অনুষ্ঠানৰ লগত শুভ-অশুভৰ ধাৰণা জড়িত হৈ আছে, সেইবোৰেই লোকবিশ্বাস। কোনো জনসমষ্টিৰ লোকবিশ্বাসসমূহে তেওঁলোকৰ জীৱনবোধ, সামাজিক প্ৰমূল্যৰ সমল যোগায়। ভট্টাচাৰ্য্যৰ শতগ্ৰী উপন্যাসতো দুই এটা লোকবিশ্বাসৰ উদাহৰণ দেখা পাব পাওঁ। যেনে— যুদ্ধৰ বাবে যেতিয়া বজতে হ'বলগীয়া বিয়াখনৰ বাবে ছুটি নাপালে সেই কথা বজতৰ

মাক প্ৰমীলাই গম পোৱাৰ পিছত মাক প্ৰমীলাৰ বৰ্ণনা দিছে এনেদৰে—

“ৰজতক হেনো যেনে-তেনে আনি দিব লাগে। তেওঁৰ হেনো গোটেই পষেকটো জুৰি সোঁ-চকুটো লৰি আছে। শুক্ল পক্ষত সোঁ চকু লৰা ভয়ানক কথা। আৰু ৰাতি-ৰাতি বৰ বেয়া সপোন দেখে প্ৰমীলাই, মৰা-কটা আৰু ৰক্তপাতৰ। এইবোৰৰ লগত চীনা যুদ্ধৰ অথবা ৰজতৰ সম্পৰ্ক কি তাক মই ভাবি উলিয়াব নোৱাৰিলোঁ।” (ভট্টাচাৰ্য্য, পৃ. ৬৫)

অসমীয়া সমাজত সততে এনেবোৰ লোকবিশ্বাস প্ৰচলন দেখা যায়। সোঁ চকু লৰিলে বা ৰাতি বেয়া সপোন দেখিলে তাক অমংগলৰ প্ৰতীক বুলি বিশ্বাস কৰা হয়।

৪.০ উপসংহাৰ :

“বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্য্যৰ উপন্যাসত প্ৰতিফলিত লোকসংস্কৃতিৰ উপাদান শীৰ্ষক বিষয়টোৰ অধ্যয়নৰ অন্তত আমি তলত উল্লিখিত লোক সংস্কৃতিৰ উপাদানসমূহ প্ৰতিফলিত হোৱা দেখিবলৈ পাবোঁ—

* বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্য্যৰ উপন্যাসত অসমীয়া জাতি-জনগোষ্ঠীৰ মৌখিক লোকগীতৰ উল্লেখ পোৱা যায়।

* বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্য্যৰ উপন্যাসত অসমীয়া জাতি-জনগোষ্ঠীৰ থলুৱা খাদ্যাভাস প্ৰতিফলিত হৈছে।

* বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্য্যৰ উপন্যাসত অসমীয়া জাতি-জনগোষ্ঠীৰ সমাজৰ বিভিন্ন লোকাচাৰ, লোকবিশ্বাস প্ৰতিফলিত হৈছে। □

প্ৰসংগসূত্ৰ আৰু সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী :

- ১। গগৈ, লীলা (২০১১), অসমীয়া লোক-সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা, ডিব্ৰুগড় : বনলতা।
- ২। গগৈ, লীলা (২০১২), অসমৰ সংস্কৃতি, ডিব্ৰুগড় : বনলতা।
- ৩। দত্ত, বীৰেন্দ্ৰ নাথ (১৯৯৮), লোক-সংস্কৃতিৰ স্বৰূপ আৰু অধ্যয়ন, ডিব্ৰুগড় : অসমীয়া বিভাগ ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়।
- ৪। নেওগ, মহেশ্বৰ (২০১৩), অসমীয়া সাহিত্যৰ ৰূপৰেখা, গুৱাহাটী : চন্দ্ৰ প্ৰকাশ।
- ৫। বৰদলৈ, নিৰ্মলপ্ৰভা (২০১৪), অসমৰ লোকসংস্কৃতি, গুৱাহাটী : বীণা লাইব্ৰেৰী।
- ৬। বৰুৱা, বিৰিঞ্চ কুমাৰ (২০১৩), অসমীয়া ভাষা আৰু সংস্কৃতি, নলবাৰী : জাৰ্ণাল এম্প'ৰিয়াম।
- ৭। বৰুৱা, বিৰিঞ্চ কুমাৰ (২০১৫), অসমৰ লোক-সংস্কৃতি, গুৱাহাটী : বীণা লাইব্ৰেৰী।
- ৮। ভট্টাচাৰ্য্য, বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ (সম্পা.), (২০২২). বীৰেন্দ্ৰ কুমাৰ ভট্টাচাৰ্য্যৰ ৰচনাৱলী ২. গুৱাহাটী : কথা পাব্লিকেচন।
- ৯। শৰ্মা, নবীন চন্দ্ৰ (২০২২), অসমীয়া লোক-সংস্কৃতিৰ আভাস, গুৱাহাটী : বাণী প্ৰকাশ মন্দিৰ।
- ১০। শৰ্মা, সত্যেন্দ্ৰনাথ (২০১৮), অসমীয়া সাহিত্যৰ সমীক্ষাত্মক ইতিবৃত্ত, গুৱাহাটী : সৌমাৰ প্ৰকাশ।

ঔপনিবেশিক অসমৰ ইতিহাস চৰ্চাত পুৰাকথা-আখ্যানৰ প্ৰসংগ



চন্দনা দাস

সহকাৰী অধ্যাপিকা, ইতিহাস বিভাগ
ৰঙাপৰা মহাবিদ্যালয়
(গৱেষক, গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়)
📞 ৯৮৬৪৬২৯৪৮৪
✉ chandad97@gmail.com

সংক্ষিপ্ত সাৰ :

আহোম শাসিত অসমত বুৰঞ্জী লিখাৰ যি পৰম্পৰা সেয়া ঔপনিবেশিক কালতো অব্যাহত আছিল। অসমীয়া জাতিৰ ভাষা, লিপি আৰু পৰিচয়কেন্দ্ৰিক যি যুঁজ আনন্দৰাম ঢেকিয়াল ফুকনৰ দিনৰ পৰা আৰম্ভ হৈছিল, সেই যুঁজ কেৱল সাহিত্যৰ মাজতে সীমাবদ্ধ নাছিল। এই সময়ছোৱাতে প্ৰাচীন অসমৰ সৈতে জড়িত বিভিন্ন প্ৰত্নতাত্ত্বিক সমলো উদ্ধাৰ হৈছিল। এই প্ৰত্নতাত্ত্বিক সমলসমূহৰ বিশেষকৈ তাম্ৰ আৰু শৈল লেখসমূহৰ আলমতে পুৰাণ মহাকাব্যৰ বিভিন্ন আখ্যান তথা চৰিত্ৰ অসমৰ ইতিহাসৰ প্ৰথম পৃষ্ঠাত স্থান দিয়া হৈছিল। এই গৱেষণাপত্ৰত ঔপনিবেশিক অসমৰ ইতিহাসৰ চৰ্চা আৰু পুনৰ নিৰ্মাণ তথা পৰিচয় প্ৰতিষ্ঠাৰ যুঁজৰ বিষয়ে আলোচনা কৰা হ'ব।

সূচক শব্দ :

পুৰাণ, মহাকাব্য, ঔপনিবেশ, অসম, পৰিচয়।

অৱতৰণিকা :

আনন্দৰাম ঢেকিয়াল ফুকনে ১৮৫৫ খ্ৰীষ্টাব্দত তেখেতৰ গ্ৰন্থ A Few Remarks on the Assamese Language গ্ৰন্থত উল্লেখ কৰিছে - “অসমীয়া জাতিয়ে ঐতিহাসিক সাহিত্য বিষয়ত যিমান কৃতকাৰ্যতা লাভ কৰিছে আন কোনো বিভাগত তিমান সফল মান হোৱা নাই।” ঊনবিংশ শতিকাতো আছিল ঔপনিবেশিক শক্তি ইংৰাজৰ বিৰুদ্ধে অসমৰ জনচেতনাত জাতীয়তাবাদৰ উন্মেষৰ প্ৰাথমিক পৰ্যায়। ভাৰতবৰ্ষৰ অন্যান্য অঞ্চলৰ দৰেই এই শতিকাত অসমতো বিদেশী সাংস্কৃতিক আধিপত্যবাদৰ প্ৰত্যুত্তৰ স্বৰূপেই ইতিহাস লেখনৰ প্ৰক্ৰিয়া আৰম্ভ হৈছিল। ঊনবিংশ শতিকাৰ মাজভাগৰ পৰা বিংশ শতিকাৰ প্ৰথমৰ্ধৰ সময়ছোৱাত ঐতিহাসিক-পুৰাতাত্ত্বিক অধ্যয়ন, বিভিন্ন সমলৰ উদ্ধাৰে, চিৰাচৰিত বুৰঞ্জী লিখা প্ৰথাৰ বিপৰীতে আধুনিক অৰ্থত ইতিহাস চৰ্চাৰ এক জাগৰণ গঢ়ি তোলা দেখা গৈছিল।

চতুৰ্থ-পঞ্চম শতিকাত আৰম্ভ হোৱা অসমৰ প্ৰাচীন ইতিহাসৰ প্ৰথমছোৱা ধূসৰ আৰু অস্পষ্ট। সেই সময়ৰ অসমৰ শাসক গোষ্ঠী হিচাপে ভৌম-নৰক, ভগদত্ত আৰু বাণ ৰজাৰ দৰে আখ্যানমূলক চৰিত্ৰসমূহৰ বাৰম্বাৰ পুৰাকথা-মহাকাব্যিক সাহিত্যত উল্লেখ সৰ্বপৰ্যায়ৰ অন্যান্য ৰাজনৈতিক ইতিহাসৰ পৰম্পৰাতো দেখা যায়। ১৮২৬ খ্ৰীষ্টাব্দত অসম ঔপনিবেশিক শক্তিৰ আওতালৈ অহাৰ ঠিক তিনিবছৰ পিছতেই বাংলা ভাষাত প্ৰকাশ পাইছিল হলিৰাম ঢেকিয়াল ফুকনৰ “আসাম বুৰঞ্জী”। ১৮৩৬ খ্ৰীষ্টাব্দত বাংলা ভাষাক চৰকাৰী মৰ্যদা দিয়াৰ আগেয়েই বাংলা ভাষাত ৰচিত আৰু প্ৰকাশিত প্ৰথম অসমীয়া ইতিহাসৰ গ্ৰন্থখনৰ সূচনা কৰা হৈছে ভৌম-নৰক বংশীয় আখ্যানৰ



ড° পাৰমিতা দাস

অধ্যাপিকা, ইতিহাস বিভাগ,
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়
✉ paromitadas-history@gmail.com

হৰগৌৰী সংবাদৰ উল্লেখৰে। এই সময়ছোৱাত অসম নামৰ ভূ-খণ্ড আহোমসকলৰ ছশবছৰীয়া ৰাজত্বৰ পৰিকাঠামোৰ শেষ স্তৰৰ বিপৰ্যয় আৰু বিভিন্ন বহিৰংগ প্ৰভাৱ আৰু আভ্যন্তৰীণ বেমেজালিৰ পৰা মুক্ত হোৱাই নাছিল। আহোম স্বৰ্গদেউসকলৰ পৃষ্ঠপোষকতাত বুৰঞ্জী লিখাৰ পৰম্পৰা দুৱৰীয়া বৰুৱা পৰিয়ালৰ সন্তান হলিৰাম ঢেকিয়াল ফুকনৰ নিশ্চয়কৈ অবিদিত নাছিল। তাৎপৰ্যপূৰ্ণ কথা এয়ে যে প্ৰাচীন অসমৰ পুৰাতাত্ত্বিক সমলৰ উদ্ধাৰ বিশেষকৈ শিলালেখ-তাম্ৰলেখ সমূহৰ পাঠোদ্ধাৰৰ আগেয়েই ভৌম-নৰক বংশলতিকাক প্ৰসংগৰ উল্লেখ অসমৰ প্ৰাচীন সাহিত্যিক সমলসমূহৰ প্ৰচলনকে সূচায়। হলিৰাম ঢেকিয়াল ফুকনে বাংলা ভাষাত “সমাচাৰদৰ্পণ” পত্ৰিকাত অসমীয়াৰ পৰিৱৰ্তে হিন্দুস্তানী ভাষা প্ৰচলনৰহে পোষকতা কৰিছিল। গতিকে প্ৰাচীন অসমৰ সৈতে সংযুক্ত আখ্যানমূলক ভৌম-নৰক বংশলতিকাক অৱশ্যে জাতীয়তাবাদৰ উচ্চমুকনিৰ প্ৰাকক্ষণত ব্যৱহৃত আহিলাৰ দৃষ্টিৰে চাব নোৱাৰি। আনহাতে মণিৰাম দেৱানে ১৮৩৮ চনত সম্পূৰ্ণ কৰিছিল বুৰঞ্জী বিবেকৰত্ন শীৰ্ষক এখন বুৰঞ্জী। ফাৰ্চী-বাংলা মিহলি ভাষাত লিখি উলিওৱা এই বুৰঞ্জীখন প্ৰাচীন অসমৰ আখ্যানবিজড়িত কালছোৱা পৰিৱৰ্তে মধ্যযুগতহে কেন্দ্ৰীভূত বুলিব পাৰি।

১৮২৯ খ্ৰীষ্টাব্দত হলিৰাম ঢেকিয়াল ফুকনৰ কেৱল অসম বুৰঞ্জীয়েই প্ৰকাশ হোৱা নাছিল, জন্ম হৈছিল পুত্ৰ আনন্দৰাম ঢেকিয়াল ফুকনৰো। ১৮৩৬ খ্ৰীষ্টাব্দত অসমীয়া ভাষাত প্ৰতিবন্ধকতা আৰোপ তথা বঙলা ভাষা আৰোপৰ যি ঔপনিৱেশিক হঠকাৰী সিদ্ধান্ত, তাৰ প্ৰতিক্ৰিয়া স্বৰূপে আনন্দৰাম ঢেকিয়াল ফুকনৰ নাতিদীৰ্ঘ জীৱনটোৱেই আছিল বিৰোধ আৰু অসমীয়া ভাষাৰ পুনৰ্ভাৱনৰ হকে প্ৰথম যুঁজ। ভাষাকেন্দ্ৰিক পৰিচয়ৰ যুঁজ আৰু সমান্তৰালকৈ ঔপনিৱেশিক শক্তিৰ বিৰুদ্ধে অসমতো মণিৰাম দেৱানৰ নেতৃত্বত মুষ্টিমেয় লোকৰ ১৮৫৭ খ্ৰীষ্টাব্দৰ বিদ্ৰোহত অংশগ্ৰহণ তথা পৰৱৰ্তী কেইবাটাও বিদ্ৰোহৰ (ফুলগুৰি ধোৱা, পথৰুঘাটৰ ৰণ) সূচনা হৈছিল। এই সময়ছোৱাতে কাশীনাথ তামুলী ফুকনৰ অসম বুৰঞ্জীৰ পৰিৱৰ্তিত সংস্কৰণ, হৰকান্ত বৰুৱা সদৰামিনৰ অসম বুৰঞ্জীৰ ৰচনা কৰা হৈছিল (১৮৭০ - ১৮৮০)। ইতিমধ্যে আনন্দৰাম ঢেকিয়াল ফুকনৰ ইংৰাজ বিষয়া এ জে মোফট মিললৈ স্মাৰক পত্ৰ প্ৰেৰণ তথা আমেৰিকান খ্ৰীষ্টান মিছনেৰীসকলৰ সহযোগিতাৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতত প্ৰায় দুকুৰি বছৰৰ অন্তত ১৮৭৩ খ্ৰীষ্টাব্দত

অসমীয়া ভাষাই চৰকাৰী ভাষাৰ স্বীকৃতি লাভ কৰিছিল। ইয়াৰ সমান্তৰালকৈ অসমীয়া ভাষাত ইতিহাস চৰ্চাৰ ধাৰায়ে এক নতুন গতি লাভ কৰিছিল।

তামুলীফুকন আৰু সদৰামিনৰ বুৰঞ্জী দুখনে আহোম ৰাজবংশৰ আগমন আৰু প্ৰতিষ্ঠাত গুৰুত্ব আৰোপ কৰাৰ লগে লগেই অসমৰ ইতিহাস পুনৰ লেখনৰ এক নব্য ধাৰাৰ সূচনা হ’ল। সেয়া আছিল প্ৰাচীন অসমৰ ইতিহাসৰ সৈতে পুৰাকথা-আখ্যানমূলক কাহিনীৰ সংযোজন। ১৮৮০ খ্ৰীষ্টাব্দত প্ৰকাশিত প্ৰথম অসমীয়া আই এ এছ আনন্দৰাম বৰুৱাৰ *Ancient Geography of India* ত মুকলিকৈ স্বীকাৰ কৰা হ’ল যে প্ৰাচীন অসম মহাভাৰত আৰু স্থানীয় প্ৰবাদনুসৰি নৰক-ভগদত্তৰ সৈতে জড়িত। উল্লেখনীয় যে সমসাময়িক অসমীয়া লেখকসকলৰ উপৰিও কেইবাজনো ভূতপূৰ্ব অনুসন্ধিৎসু ইংৰাজ লেখকেও (J.P. Wade, F. Hamilton) অসমৰ ইতিহাসক জাৰি-জোকাৰি পুৰাতাত্ত্বিক সমল, মৌখিক ইতিহাস, দেশীয় সাহিত্যৰ ওপৰত ভেঁজা দি ৰচনা কৰাৰ চেষ্টা কৰিছিল। Hamilton য়ে মূলত থলুৱা ব্ৰাহ্মণ লোকৰ সহায় লৈ মহাভাৰত আৰু কালিকাপুৰাণৰ উদ্ধৃতিৰে এক প্ৰতিবেদনত উল্লেখ কৰিছিল যে, লৌহ যুগত কামৰূপ ভগদত্ত নামৰ এক ৰজাৰ অধীনস্থ আছিল। (পৰৱৰ্তী সময়ত *An account of Assam*, F. Hamilton, হিচাপে প্ৰকাশিত)।

ঔপনিৱেশিক ভাৰত তথা অসমৰ ইতিহাস পুনৰুদ্ধাৰ আৰু লেখনৰ যি নব্য টোৱে ঊনৈশ শতিকাক চুই গৈছিল, পুৰাতাত্ত্বিক সমলৰ উদ্ধাৰতো ঔপনিৱেশিক চিন্তাৰ লেখকসকলে গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছিল, তাৰেই ফলশ্ৰুতিত ১৮৪০ খ্ৰীষ্টাব্দত এছিয়াটিক ছ’ছাইটি অৱ বেংগলৰ গৱেষণা পত্ৰিকাত শালস্তম্ভ বংশৰ ৰজা বনমাল বৰ্মনৰ তেজপুৰ তাম্ৰলিপি আৰু পালবংশৰ ধৰ্মপালৰ ভূমিদানৰ ইংৰাজী অনুবাদ প্ৰকাশ পাইছিল। পৰৱৰ্তী দশকসমূহত ভাৰতৰ মূলপ্ৰান্তত উদ্ধাৰ হৈছিল এলাহাবাদ স্তম্ভলিপি (১৮৮৭) আৰু বৈদ্যদেৱৰ কমৌলি তাম্ৰশাসন (১৮৯২)। ঊনৈশ শতিকাৰ দ্বিতীয়াৰ্ধত লেখসমূহৰ পাঠোদ্ধাৰৰ ঘটনাই অসমৰ ইতিহাসৰ আন এক অধ্যায় মুকলি কৰিছিল সঁচা, কিন্তু সমসাময়িক লেখকসকলৰ ৰচনাত এই লেখসমূহক উপযুক্ত সমল হিচাপে স্বীকৃতি দিয়া হোৱা নাছিল। অথচ মিছনেৰীসকলৰ উদ্যমিতাৰ ফচল অৰুণোদয় (১৮৪৬ খ্ৰীষ্টাব্দত প্ৰথম প্ৰকাশ) পাতত কিছুসংখ্যক বুৰঞ্জীৰ প্ৰকাশ

কৰা হৈছিল। উল্লেখনীয় যে এই সময়ছোৱাতে বোকাৰ পদুমৰ লেখীয়াই ঔপনিৱেশিক শক্তিক ফেৰমাৰি সংস্কৃত পণ্ডিত ধীৰেশ্বৰ ভট্টাচাৰ্যই বলবৰ্মন তৃতীয়ৰ নগাঁও তাম্ৰশাসনৰ পাঠোদ্ধাৰ কালিৰাম বৰুৱাৰ সম্পাদনাত “আসাম” কাকতত প্ৰকাশ কৰিছিল।

প্ৰশ্ন হয় যে জাতীয়তাবাদেৰে উদ্বুদ্ধ তথা নকৈ গঠিত শিক্ষিত অসমীয়াই পুৰাতাত্ত্বিক সমলৰ উদ্ধাৰ তথা নৈব্যক্তিক ইতিহাস লিখন পদ্ধতি গ্ৰহণ কৰাত পিছহঁকা দিছিল নে প্ৰাক-স্বাধীন সমাজ-সাংস্কৃতিক পৰিকাঠামোত অসমীয়াৰ ঐতিহাসিক পৰিচয় নিৰ্মাণত দোমোজাৰহে সৃষ্টি হৈছিল। ইতিমধ্যে আধুনিক অসমীয়া সাহিত্যৰ যোগেদিও পুৰাকথা-আখ্যানকে এক নৱতম ৰূপ দিয়া হৈছিল। ঊনবিংশ শতিকাৰ দ্বিতীয়াৰ্ধৰ পৰাই পৌৰাণিক-ঐতিহাসিক সাহিত্যৰ জোৱাৰ উঠিবলৈ ধৰে। ১৮৭৫ খ্ৰীষ্টাব্দত মহাভাৰতৰ কাহিনী লৈ ৰমাকান্ত চৌধুৰীয়ে “অভিমন্যু বধ” শীৰ্ষক কাব্য আৰু ১৮৭৮-৮০ খ্ৰীষ্টাব্দত ভোলানাথ দাসে “সীতা হৰণ” কাব্যৰ ৰচনা কৰিছিল। বৈদেহী বিচ্ছেদ (দেৱনাথ বৰদলৈ), হৰধনু ভংগ (পূৰ্ণকান্ত শৰ্মা), পৰৱৰ্তী দশকসমূহতো আখ্যানমূলক কাহিনীৰ উপস্থাপনেৰে নিধি লেভী ফাৰৱেলৰ ‘নৰকৰ বিৱৰণ’ শীৰ্ষক কবিতা, বিংশ শতিকাত পদ্মনাথ গোহাঞিবৰুৱাৰ বাণৰজা, জ্যোতিপ্ৰসাদ আগৰৱালাৰ শোণিতকুঁৱৰী, দৈৱচন্দ্ৰ তালুকদাৰৰ ভাস্কৰ বৰ্মা, দণ্ডিনাথ কলিতাৰ সতীৰ তেজ, অগ্নিপৰীক্ষা, অতুলচন্দ্ৰ হাজৰিকাৰ কুৰুক্ষেত্ৰ, নৰকাসুৰ, সীতা আদি নাটকে বৈষ্ণৱ কবিসকলৰ পুৰাকথা-আখ্যানমূলক সাহিত্য সৃষ্টিৰ ধাৰাকে স্বদেশপ্ৰেমৰ জঁকাত সুমুৱাই আত্ম-পৰিচয়ৰ ৰূপ দিয়াত সফল হৈছিল। যিহেতু এই লেখাৰ উদ্দেশ্য ইতিহাস-চৰ্চা কেন্দ্ৰিক, গতিকে সাহিত্য সম্পৰ্কীয় মুষ্টিমেয় সৃষ্টিৰহে উল্লেখ কৰা হৈছে।

বিংশ শতিকাৰ আৰম্ভণিতে আহোম শাসনৰ ছশবছৰীয়া ৰাজত্বৰ গৰিমাৰে পদ্মনাথ গোহাঞিবৰুৱাই অসমৰ বুৰঞ্জী (১৯০৬) আৰু বুৰঞ্জীবোধ (১৯২২) ত আহোমসকলক এক ভিন্ন জাতিসত্তা বুলি উদ্ধৃতি দিছিল। এই ভিন্ন পৰিচায়ক সত্ত্বাক ঔপনিৱেশিক বিষয়াসকল যেনে এডৱাৰ্ড গেইটেও স্বীকাৰ কৰিছিল। অথচ গেইটৰ A History of Assam তে প্ৰথমবাৰৰ বাবে ইতিমধ্যে পাঠোদ্ধাৰ হোৱা লেখসমূহক ভিত্তি কৰি এক ৰাজনৈতিক বংশলতিকাক উপস্থাপন কৰা হৈছিল। অপৰ্যাপ্ত পুৰাতাত্ত্বিক সমল তথা যৎকিঞ্চিৎ আৰু ইউৰোপীয় ঐতিহাসিক ধাৰাক জোৰজুলুমকৈ কেৱল

লেখকেন্দ্ৰিক, বিশৃঙ্খল তথ্যৰে পৰিপূৰ্ণ প্ৰাচীন অসমক পুৰাকথা-আখ্যানেৰে বৃত্তত বন্দী কৰা হৈছিল। এই পুৰাকথাকেন্দ্ৰিক প্ৰাচীনত্বক ঐতিহাসিকভাৱে প্ৰতিষ্ঠা কৰাৰ উদ্দেশ্য আগত ৰাখি সমকালীন ভাৰতীয় জাতীয়তাবাদী ঐতিহাসিকবিদ সকলৰ আৰ্হিত তদানীন্তন কটন কলেজৰ অধ্যাপক তথা সংস্কৃত পণ্ডিত পদ্মনাথ ভট্টাচাৰ্যদেৱে ১৯০৭ আৰু ১৯২৭ খ্ৰীষ্টাব্দত বিৰোধাত্মক মন্তব্য আগবঢ়াই প্ৰাচীন অসমৰ ৰাজনৈতিক বংশলতা ৫০০০ বছৰ পুৰণি বুলি ঠাৱৰ কৰিছিল। সৌভাগ্যক্ৰমে ভট্টাচাৰ্যদেৱেই নৱ-আৱিষ্কৃত ভাস্কৰবৰ্মনৰ নিধানপুৰ তাম্ৰশাসনৰ পাঠোদ্ধাৰ কৰিবলৈ সক্ষম হয় আৰু তেঁৱেই প্ৰথমবাৰৰ বাবে ঐতিহাসিক লেখসমূহৰ সৈতে মহাকাব্যিক তথা পৌৰাণিক সমলসমূহৰ যোগসূত্ৰ স্থাপন কৰে। কাল্পনিক অতীত নিৰ্মাণ আৰু পৰিচয়কেন্দ্ৰিক সংগ্ৰামৰ আঁৰত এনেধৰণৰ বিসংগতিপূৰ্ণ পুৰাকথা-আখ্যানমূলক কাহিনীয়ে যথার্থতে অনুঘটকৰ দায়িত্ব ৰূপায়ণ কৰে। ভট্টাচাৰ্যৰ ধাৰণাকে সৰোগত কৰি কামৰূপ-প্ৰাগজ্যোতিষপুৰৰ পুৰাকথাকেন্দ্ৰিক ঐতিহাসিক পৰিচয় নিৰ্মাণৰ উদ্দেশ্য লৈ স্থাপন কৰা হৈছিল কামৰূপ অনুসন্ধান সমিতিৰ। এই সমিতি কেৱল স্বাধীনতাকামী জাতীয়তাবাদী সকলৰে অনুষ্ঠান নাছিল। তদানীন্তন অসমৰ ৰাজ্যপাল জে এইচ কেৰ, এ. আৰ্ল, টি. গাৰ্ডন, এডৱাৰ্ড গেইটৰ দৰে বিষয়াসকলো এই সমিতিৰ উপদেষ্টা তথা সদস্য আছিল। প্ৰথমেই এই সমিতিয়ে প্ৰাক-আহোম কালৰ পুৰাতাত্ত্বিক সমলৰ উদ্ধাৰ তথা তাৰ অসমীয়া জাতীয়তাবাদৰ দৃষ্টিকোণেৰে ব্যাখ্যাতহে মনোনিৱেশ কৰিছিল। এনে নহয় যে পুৰাকথা-আখ্যানকেন্দ্ৰিক প্ৰাচীন পৰিচয়ৰ ঐতিহাসিক সত্যতাৰ উদ্ঘাটন ইংৰাজ বিৰোধী আছিল, এয়া আছিল সমসাময়িক ইংৰাজ অধীনস্থ মধ্যবিত্তীয় বঙালী সম্প্ৰদায়ৰ কৰ্মচাৰীসকলৰ অসমীয়া ভাষা-সংস্কৃতিৰ বিৰোধৰ উত্তৰ হিচাপে এক পুনৰ্নিৰ্মিত পৰিচয়।

পৰিচয় নিৰ্মাণৰ এই ধাৰাক অন্য এক গতি দিবলৈ সক্ষম হৈছিল ঔপনিৱেশিক কালৰ মধ্যবিত্ত শ্ৰেণীৰ প্ৰতিভূ কনকলাল বৰুৱাই। কামৰূপকেন্দ্ৰিক ৰাজ্য গঠনৰ প্ৰক্ৰিয়াত প্ৰাথমিকতা প্ৰদান কৰা অত্যন্ত গৌৰৱেৰে ৰাজ্যখনক প্ৰাচীন ভাৰতবৰ্ষৰ অংশীদাৰৰূপে উল্লেখ কৰিছে। ১৯৩৩ খ্ৰীষ্টাব্দত প্ৰকাশিত এই গ্ৰন্থখনক সাহিত্যৰথী লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাই ভূয়সী প্ৰশংসা কৰি নিজেও স্বীকাৰ কৰিছিল “সপ্তম শতিকাৰ কামৰূপৰ সুবিখ্যাত ৰজা ভাস্কৰবৰ্মা নৰকৰ বংশৰে”। বাঁহী

আলোচনীৰ নৱম বছৰ, একাদশ-দ্বাদশ সংখ্যাত “বংগৰ প্ৰাচীনত্ব” শীৰ্ষক সমালোচনামূলক লেখাত বেজবৰুৱাই উল্লেখ কৰিছে হিউৱেন চাঙৰ টোকা, যোগিনী তন্ত্ৰৰ উল্লেখৰে অসমৰ প্ৰাচীন ৰাজনৈতিক অৱস্থিতিৰ কথা উল্লেখ কৰাৰ উপৰি শালস্তম্ভ বংশীয় ৰজা হৰ্ষদেৱৰ বংশলতিকাতো নৰক বংশীয় ভগদত্তৰ বুলি উদ্ধৃতিও দিছে।

ঔপনিৱেশিক কালৰ ইতিহাস চৰ্চাৰ যি পদ্ধতি সেয়া আধুনিক অৰ্থত শুদ্ধ আৰু নৈব্যক্তিক নহ'লেও কালিকা পুৰাণ যোগিনী তন্ত্ৰৰ ধাৰাবাহিক প্ৰভাৱ, বৈষ্ণৱ যুগৰ সাহিত্যত আখ্যানসমূহৰ বাৰম্বাৰ উল্লেখ আৰু প্ৰচাৰ হৈছিল। ইয়াৰ ফলশ্ৰুতিতে মোৰামৰীয়া বিদ্ৰোহৰ পৰিপ্ৰেক্ষিতত মায়ামৰা সত্ৰৰ গুৰু পিতামহ দেৱৰ সহযোগত আহোমৰ ৰাজধানী ৰংপুৰত ১৭৯১ খ্ৰীষ্টাব্দত শাসনভাৰ লোৱা স্বয়ম্ভু ৰজা ভৰত সিংহই ১৭৯১ - ৯৬ ৰ মাজৰ কালছোৱাত স্বৰ্ণ আৰু ৰূপৰ মুদ্ৰা উলিয়াইছিল। এই মুদ্ৰা সমূহত ভৰত সিংহই নিজক “ভগদত্ত - কুলদেৱ” বুলি ঘোষণা কৰিছে। প্ৰায় ছশবছৰীয়া আহোম ৰাজ্যৰ শেষ সময়ত পুনৰায় প্ৰজা

বিদ্ৰোহৰ নেতৃত্বই প্ৰাচীন কামৰূপৰ বংশলতাক গ্ৰহণ কৰাটো এক প্ৰতিবাদ আৰু বিৰোধৰ চিন মাত্ৰ।

ইতিপূৰ্বে আলোচ্য ঔপনিৱেশিক কালৰ প্ৰতিখন গ্ৰন্থ, প্ৰতিটো লেখাতে এক সমগোত্ৰীয় বৈশিষ্ট্য পৰিস্ফুট হৈছে। সেয়া হৈছে স্বদেশ প্ৰেম আৰু আঞ্চলিক জাতীয়তাবাদেৰে প্ৰভাৱান্বিত ৰাজনৈতিক অতীত পুনৰ নিৰ্মাণৰ প্ৰৱণতা। ইতিহাসৰ চৰ্চা, সত্যাসত্য নিৰূপণ আৰু স্থানান্তৰণৰ বিগত দুটা শতিকাৰ অনুশীলন আৰু পৰম্পৰা বুলিলেও ভুল নহ'ব। পুৰাতাত্ত্বিক সমলৰ অভাৱ ইতিমধ্যে বহুলাংশে পূৰ্ণ হৈছে যদিও অসমত বিজ্ঞানসন্মত পুৰাতাত্ত্বিক খনন তথা সমলৰ সংৰক্ষণ, উপলব্ধতা এতিয়াও পৰ্যাপ্ত নহয়। যাৰ বাবে বিংশ শতিকাৰ শেষ ভাগত আৰু একবিংশ শতিকাৰ ইতিহাস চৰ্চাৰ বাটচ'ৰাত আজিও পুৰাকথা-আখ্যানকেই স্থান দি অহা হৈছে আৰু এই সমস্যাসমূহৰ সমাধানৰ অবিহনে অসম অদূৰ ভৱিষ্যতেও নৰক-ভগদত্ত বংশী দেৱাৰি ভূমিকা পেই পৰিগণিত হৈ থাকিব। □

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী:

- ১। Barua K.L. The early history of Kamarupa: from the earliest times to the end of the sixteenth century, B.R. Publishing Corporation, 2020, Delhi.
- ২। Gait, E.A. A History of Assam, Thacker Spink and Co. 1906, Calcutta.
- ৩। তামুলী লক্ষ্মীনাথ (সম্পাদিত), হলিৰাম ঢেকিয়াল ফুকনৰ ৰচনাৱলী, অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, ২০০৮ গুৱাহাটী।
- ৪। শৰ্মা কনক, অৱলোকনত অসম-ইতিহাস, বনফুল প্ৰকাশন, ২০১৫, গুৱাহাটী।

লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ সাহিত্যত শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱৰ কৃষ্ণ



ড° ব'দালি চেতিয়া

সংক্ষিপ্তসাৰ :

লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ বিশ্বাস আৰু বিশ্লেষণত 'কৃষ্ণ' হৈছে এক ঐশ্বৰিক সত্তা। অৰ্থাৎ; তেওঁ ভাৰতীয় বিশ্বাস আৰু পৰম্পৰাৰ পৰা আঁতৰি নগৈ তেওঁ কৃষ্ণক পৰমব্ৰহ্ম ঈশ্বৰৰ ৰূপতেই সাহিত্যত প্ৰতিষ্ঠা কৰিছে। বেজবৰুৱাৰ এই 'ঈশ্বৰ' বা 'ভগৱান' কৃষ্ণ শংকৰদেৱ-মাধৱদেৱৰ একশৰণ নাম-ধৰ্মৰ উপাস্য দেৱতা কৃষ্ণৰ সৈতে অংগাংগীভাৱে সম্পৰ্কযুক্ত। কাৰণ পৃথিৱীৰ বিভিন্ন ধৰ্ম-গ্ৰন্থ, ধৰ্মমত আদি তন্নতন্নকৈ অধ্যয়ন কৰাৰ পাছত তেওঁ জীৱন আৰু জগতৰ পৰম-সত্যৰূপে কৃষ্ণৰ সৰাতোকৈ গ্ৰহণযোগ্য ৰূপটো বিচাৰি পাইছিল শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱৰ দ্বাৰা নিকপিত কৃষ্ণৰ মাজত। বেজবৰুৱাৰ *শ্ৰীশংকৰদেৱ* (১৯১১) আৰু *শ্ৰীশংকৰদেৱ আৰু শ্ৰীমাধৱদেৱ* (১৯১৪) গ্ৰন্থদ্বয়ৰ উপৰি *তত্ত্ব-কথা*ৰ অন্তৰ্গত 'কীৰ্তন-ঘোষা আৰু ঘোষা-তত্ত্ব', 'ভক্তি-তত্ত্ব' আৰু 'নাম-ধৰ্ম-তত্ত্ব' শীৰ্ষক তিনিটা প্ৰবন্ধ আৰু অন্যান্য তত্ত্বধৰ্মী লেখাত সঘনে উদ্ধৃত তথা বিশ্লেষিত *কীৰ্তন*, *নামঘোষা* আদি পুথিৰ ঘোষা-পদসমূহৰ মাধ্যমেৰে শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱৰ কৃষ্ণৰ স্বৰূপ কেনেদৰে উপস্থাপিত হৈছে সেই দিশটোকে এই প্ৰবন্ধত অৱলোকন কৰা হৈছে।

বীজ শব্দ :

কৃষ্ণ, লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱা, মাধৱদেৱ, শংকৰদেৱ।

০.০ আৰম্ভণি :

শংকৰদেৱ-মাধৱদেৱৰ সুগভীৰ প্ৰভাৱেৰে সমৃদ্ধ লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ কৃষ্ণ-চেতনা তেওঁৰ সাহিত্যতো সাৱলীলভাৱে প্ৰতিফলিত হৈছে। তেওঁৰ অধিকাংশ তত্ত্বগ্ৰন্থ ৰচনাতে পৰিস্ফুট হৈছে মহাপুৰুষীয়া বৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ আদৰ্শ; যি আদৰ্শ পূৰ্ণৰূপে কৃষ্ণত কেন্দ্ৰীভূত। গতিকে বেজবৰুৱাৰ সাহিত্যত যিগৰাকী কৃষ্ণৰ বহুল উপস্থিতি লক্ষ্য কৰা যায়; তেওঁ মূলতঃ শংকৰদেৱ-মাধৱদেৱৰ দ্বাৰা নিকপিত একশৰণ ভাগৱতী নাম-ধৰ্মৰ একমাত্ৰ উপাস্য দেৱতা 'সনাতন ব্ৰহ্ম'ৰূপী কৃষ্ণ।

লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ কৃষ্ণ-তত্ত্ব প্ৰকাশ পোৱা প্ৰধান গ্ৰন্থ দুখন হৈছে *তত্ত্ব-কথা* (১৯৬৩) আৰু *শ্ৰীকৃষ্ণ-কথা* (১৯৬৮); য'ত ধৰ্ম আৰু ঈশ্বৰ সম্পৰ্কীয় তাত্ত্বিক যুক্তি-ব্যাখ্যাৰ জৰিয়তে কৃষ্ণৰ স্থিতি আৰু স্বৰূপ নিৰ্ণীত হৈছে। গ্ৰন্থ দুখনত সন্নিবিষ্ট প্ৰবন্ধসমূহত *শ্ৰীমদ্ভাগৱত*, *গীতাকে* প্ৰমুখ্য কৰি বেদ, উপনিষদ, পুৰাণ আদি প্ৰাচীন ধৰ্মশাস্ত্ৰৰ লগতে বিভিন্ন ধৰ্মীয় মতবাদ, দৰ্শন আদিৰ আধাৰত কৃষ্ণ চৰিত্ৰটি ব্যাখ্যা কৰা হৈছে। লক্ষ্যণীয়ভাৱে, বেজবৰুৱাৰ এই কৃষ্ণ-বিষয়ক আলোচনাসমূহত তেওঁৰ নিজস্ব অথবা মৌলিক মতামতৰ তুলনাত শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱৰ ঘোষা, পদ আদিৰ উদ্ধৃতি, উদাহৰণ, ব্যাখ্যা আদিৰ পয়োভৰহে অধিক লক্ষ্য কৰা যায়। ক'ব পাৰি

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়
☎ ৭০০২৪৯৬৭০২
✉ rodalichetia@gmail.com

যে, লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ কৃষ্ণই সামগ্ৰিকভাৱে শংকৰদেৱ-মাধৱদেৱৰ কৃষ্ণকেই প্ৰতিনিধিত্ব কৰে।

০.১ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য আৰু গুৰুত্ব :

কৃষ্ণ-প্ৰসংগ আলোচিত লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ সমূহ ৰচনাতে প্ৰত্যক্ষ বা পৰোক্ষভাৱে মহাপুৰুষীয়া পৰম্পৰাই নিৰ্মাণ কৰা কৃষ্ণৰ স্বৰূপটোৱে বিদ্যমান। তথাপি, তেওঁৰ শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱকেন্দ্ৰিক ৰচনাসমূহে স্বাভাৱিকতেই এই ক্ষেত্ৰত সুকীয়া আলোচনা দাবী কৰে। এই গুৰুত্ব অনুধাৱন কৰি মূলতঃ দুটা উদ্দেশ্যৰে এই আলোচনাটি আগবঢ়োৱা হৈছে—

(ক) লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ তত্ত্বধৰ্মী ৰচনাত প্ৰতিফলিত শংকৰদেৱ-মাধৱদেৱৰ কৃষ্ণৰ স্বৰূপটো উন্মোচন কৰা।

(খ) লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ দ্বাৰা আলোচিত শংকৰদেৱ-মাধৱদেৱৰ কৃষ্ণৰ আধাৰত তেওঁৰ কৃষ্ণ-তত্ত্বৰ ধাৰণাটো স্পষ্ট কৰা।

০.২ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ :

আলোচ্য বিষয়টোৰ স্পষ্টতাৰ বাবে এইকেইটা দিশ অধ্যয়নৰ পৰিসৰলৈ অনা হ'ব —

(ক) লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ শংকৰদেৱ গ্ৰন্থত কৃষ্ণ

(খ) লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ মহাপুৰুষ শ্ৰীশংকৰদেৱ আৰু শ্ৰীমাধৱদেৱ গ্ৰন্থত কৃষ্ণ

(গ) লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ তত্ত্বকথা ত শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱৰ কৃষ্ণ

(ঘ) লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ অন্যান্য লেখা/প্ৰবন্ধত শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱৰ কৃষ্ণ :

০.৩ অধ্যয়নৰ উৎস :

বিষয়টি আলোচনাৰ বাবে লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ শংকৰদেৱ-মাধৱদেৱকেন্দ্ৰিক নিৰ্বাচিত ৰচনাৰাজিক মুখ্য উৎস হিচাপে গ্ৰহণ কৰাৰ উপৰি অন্যান্য আনুষংগিক লেখা বা প্ৰবন্ধ-পাতি আদি গৌণ উৎস হিচাপে ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে।

০.৪ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি :

বিষয়টি আলোচনা কৰোঁতে প্ৰধানকৈ বৰ্ণনামূলক আৰু বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে। প্ৰয়োজন সাপেক্ষে তুলনাত্মক পদ্ধতিৰো সহায় লোৱা হৈছে।

১.০ বিষয়বস্তুৰ আলোচনা :

১.১ লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ শংকৰদেৱ গ্ৰন্থত কৃষ্ণ :

১৯১১ চনত প্ৰকাশিত শংকৰদেৱৰ পাতনিতে বেজবৰুৱাই স্পষ্ট কৰিছে যে, গ্ৰন্থখন শংকৰদেৱৰ বিস্তৃত

জীৱন চৰিত নহয়। শংকৰদেৱৰ লগতে মাধৱদেৱৰ জীৱনৰো বহু উল্লেখযোগ্য ঘটনাৱলী গ্ৰন্থখনত বৰ্ণিত হৈছে যদিও তেওঁলোকৰ ৰচনাৰাজিৰ অন্তৰ্নিহিত তাৎপৰ্য বিচাৰ কৰাটোহে লেখকৰ মূল উদ্দেশ্য। এই উদ্দেশ্যৰে শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱৰ সৃষ্ট কাব্য, নাট, গীত-ভটিমা আদিৰ অৰ্থ ব্যাখ্যা কৰিবলৈ যাওঁতে অৱধাৰিতভাৱে বিবৃত হৈছে কৃষ্ণৰ প্ৰসংগ। লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাই এই কৃষ্ণক কেৱল শংকৰদেৱ-মাধৱদেৱৰ কৃষ্ণ-ভক্তি প্ৰচাৰমূলক সাহিত্যৰ আওতাত ৰাখিয়ে আলোচনা কৰা নাই; বৰঞ্চ তেওঁলোকৰ ব্যক্তিগত জীৱন, অসমীয়া সমাজ অথবা অন্যান্য আনুষংগিক দিশৰ সৈতে সাঙুৰি বহুমাট্ৰিক দৃষ্টিকোণেৰে ফঁহিয়াই দেখুৱাইছে।

বিষ্ণুৰ উপাসক শংকৰদেৱ বিষ্ণুৰ আন আন অৱতাৰকৈ কৃষ্ণৰ প্ৰতিহে অনুৰক্ত আছিল। লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ শংকৰদেৱ গ্ৰন্থত শংকৰদেৱৰ শাস্ত্ৰ-অধ্যয়ন আৰু তীৰ্থ ভ্ৰমণৰ অভিজ্ঞতাক তেওঁৰ এই কৃষ্ণ-প্ৰেমৰ কাৰক অথবা উৎসৰূপে চিহ্নিত কৰা হৈছে। কোৱা হৈছে, প্ৰথমবাৰ তীৰ্থ কৰিবলৈ যোৱাৰ পূৰ্বেই ব্ৰহ্ম-পুৰাণ, পদ্মা-পুৰাণ, গীতা, ৰামায়ণ, মহাভাৰত আদিৰ পঠনে শংকৰদেৱৰ মনত বিষ্ণুৰ শ্ৰেষ্ঠত্ব সম্পৰ্কে এটি বিশ্বাস গঢ় দিছিল। এই বিশ্বাস বৃন্দাবন ভ্ৰমণৰ সময়ত লাভ কৰা বৈষ্ণৱসকলৰ সংগই দৃঢ় কৰি তোলে। পৰৱৰ্তী সময়ত ভাগৱত-শাস্ত্ৰ অধ্যয়নে জন্ম দিয়ে কৃষ্ণৱতাৰ প্ৰতি গভীৰ আস্থা। এই বিশ্বাস আৰু আস্থাৰ ভেটিতেই নিৰ্মাণ হৈছিল শংকৰদেৱৰ কৃষ্ণ; যি কৃষ্ণৰ প্ৰেমত উদ্বুদ্ধ হৈ তেওঁ প্ৰচাৰ কৰিছিল একশৰণ ভাগৱতী বৈষ্ণৱ ধৰ্ম।

কৃষ্ণ-ধৰ্ম প্ৰচাৰৰ উদ্দেশ্যে শংকৰদেৱে ৰচনা কৰা গ্ৰন্থসমূহৰ ভিতৰত কীৰ্তন-ঘোষাই প্ৰধান। ভাগৱত, গীতা, পুৰাণ আদি শাস্ত্ৰৰ সাৰ স্বৰূপ এই গ্ৰন্থত 'কৃষ্ণই হৈছে সৰ্ব-অৱতাৰৰ প্ৰধান কাৰণ। কীৰ্তন-ঘোষা ৰ প্ৰথম খণ্ড 'চতুৰ্বিংশতি অৱতাৰ বৰ্ণন'ৰ প্ৰথম কীৰ্তনৰ প্ৰথমটো পদৰ উদ্ধৃতিৰে বেজবৰুৱাই কৈছে—

“প্ৰথমে প্ৰণামো ব্ৰহ্মৰূপী সনাতন। সৰ্ব অৱতাৰৰ কাৰণ নাৰায়ণ— তাৰ এই আৰম্ভণেই এক মুহূৰ্তৰ ভিতৰতে পাঠকক এজন অনাদি অনন্ত সৰ্বশক্তিমান সৰ্বব্যাপী পৰমব্ৰহ্ম ঈশ্বৰৰ ওচৰলৈ লৈ যায়।” (বেজবৰুৱা গ্ৰন্থাৱলী, প্ৰথম ভাগ, ১৬০)

এই পৰমব্ৰহ্ম ঈশ্বৰেই শংকৰদেৱৰ 'কৃষ্ণ'। সাধাৰণ নিৰক্ষৰ লোকৰ বাবে দুৰ্বোধ্য সংস্কৃত গ্ৰন্থত জটিল দাৰ্শনিক তত্ত্বৰ ৰূপত নিহিত কৃষ্ণৰ মাহাত্ম্যক তেওঁ উজু আৰু শুৱলা

ভাষাৰে সহজবোধ্য কৰি তুলিছিল; যাতে কৃষ্ণৰ নাম শ্ৰৱণ-কীৰ্তন কৰি সকলোৱে মুক্তি লাভ কৰিব পাৰে। কাৰণ শংকৰদেৱৰ মতে কলিযুগত কৃষ্ণই হৈছে মানুহৰ একমাত্ৰ মুক্তিৰ উপায় বা পথ। গতিকে, সকলোৰে বোধ আৰু চেতনাত গভীৰভাৱে প্ৰোথিত হ'ব পৰাকৈ শংকৰদেৱে কৃষ্ণক সৰল তথা সৰ্বগ্ৰাহ্য ৰূপত নতুনকৈ নিৰ্মাণ কৰিছিল। তাৰেই উদাহৰণস্বৰূপে, বেজবৰুৱাই অৱতাৰণা কৰিছে শংকৰদেৱৰ *ৰুক্মিণী-হৰণ* পুথি আৰু একে নামৰ নাটখনৰ কথা; য'ত অসমীয়া সৰ্বসাধাৰণ লোকৰ বাবে চিত্তাকৰ্ষক হোৱাকৈ অসমৰ ঘৰুৱা ভাব-ভাষাৰে নিভাঁজ ঘৰুৱা গঢ়ত এই গ্ৰন্থক মনোগ্ৰাহী ৰূপ প্ৰদান কৰা হৈছে। বেজবৰুৱাই কৈছে—“অসমীয়াৰ মাজত এই পুথিৰ দ্বাৰাই, হৰিবংশত থকা কৃষ্ণ-কথা কাব্যময় মনোজ্ঞভাৱে বহলকৈ প্ৰচাৰ কৰাই তেওঁৰ ঘাই উদ্দেশ্য আছিল।” (১৮৩)

অৰ্থাৎ, সাধাৰণ অসমীয়া লোকে সহজে আত্মীয়তা স্থাপন কৰিব পৰাকৈ শংকৰদেৱৰ হাতত অসমৰ পৰিৱেশ-পটভূমিত কৃষ্ণৰ অসমীয়াকৰণ হৈছে। এই কৃষ্ণই অসমৰ সমাজ-জীৱনক সৰ্বত্ৰ প্ৰভাৱান্বিত কৰিব পৰাকৈ ৰচনা কৰা দ্বাদশ স্কন্ধ *ভাগৱত*ৰ সাৰাংশ সদৃশ অন্য এখন গ্ৰন্থ *গুণমালা* সন্দৰ্ভত লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাই কৈছে যে, “মানুহে খাওঁতে শোওঁতে উঠোঁতে বহোঁতেও কৃষ্ণগুণৰাশি গাব পৰা কৰি এই মালাধাৰি শংকৰদেৱে গাঁথিছে।” (১৮৯)

বেজবৰুৱাৰ *শংকৰদেৱ* গ্ৰন্থত শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱৰ বৰগীতৰ কৃষ্ণকো আধ্যাত্মিক আৰু তাত্ত্বিক দৃষ্টিকোণেৰে বিচাৰ কৰি চোৱা হৈছে। কৃষ্ণৰ পৰম পুৰুষত্ব আৰু মানৱী-লীলা প্ৰকাশক বৰগীতসমূহৰ মাধ্যমেৰে ভগৱান কৃষ্ণৰ বিশাল পুৰুষত্ব প্ৰস্ফুটিত হৈছে বুলি মন্তব্য দি তেওঁ দুয়োগৰাকী ঐষ্ট্যৰ বৰগীতত প্ৰতিফলিত কৃষ্ণৰ ছবিখন তুলি ধৰিছে। শংকৰদেৱৰ প্ৰাৰ্থনাসূচক বৰগীতত কৃষ্ণ-ভকতিৰ মহিমা আৰু মাধৱদেৱৰ বাৎসল্য ৰস প্ৰধান বৰগীতত শিশু-কৃষ্ণৰ বাল্য জীৱনৰ নানাবৰ্ণী ছবি প্ৰতিফলিত হৈছে।

মাধৱদেৱৰ বৰগীতৰ কৃষ্ণ গোপীসকলৰ আলাসৰ লাডু হ'লেও তেওঁলোকৰ অবৈধ প্ৰণয়প্ৰাৰ্থী নহয়। এই কথা প্ৰতিপন্ন কৰিবলৈকে লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাই বিদ্যাপতি (১৩৫২-১৪৪৮), চণ্ডীদাস (১৩৭০-১৪৩০) আদি বৈষ্ণৱ কবিসকলৰ প্ৰসংগ টানি আনি কৈছে যে, বৰগীতত ‘পদাবলী’ৰ নিচিনাকৈ কৃষ্ণৰ অবৈধ প্ৰেমৰ চিত্ৰণ মুঠেও নাই। বৰগীতত গোপী তথা সমগ্ৰ গোকুলবাসীয়ে কৃষ্ণৰ অস্তিত্বক স্বীকাৰ কৰিছে বৃন্দাবনৰ অধিষ্ঠাতা দেৱতা

স্বৰূপেহে; যাৰ প্ৰভাৱ জীৱ-জন্তুৰ উপৰি তৰু-তৃণলৈকে বিস্তৃত। এনে এক সৰ্বব্যাপ্ত তথা প্ৰভাৱশালী ঐশ্বৰিক সত্তাৰ প্ৰতি জন্ম হোৱা যি প্ৰেম-ভক্তি ভাব শংকৰদেৱৰ ৰচনাত অনুভূত হয়; সেয়াও বেজবৰুৱাৰ ভাষাত প্ৰেমিক-প্ৰেমিকাৰ সম্ভোগ-স্পৃহাজনিত উদ্ভাস্ত প্ৰেম নহয়; বৰঞ্চ কৃষ্ণৰ দাসৰূপে উৎপাদিত ঈশ্বৰ ভক্তিহে। শংকৰদেৱৰ সৈতে কৃষ্ণ-ভক্তি প্ৰচাৰক চৈতন্যদেৱ (১৮৪৬-১৫৩৩)ৰ ৰাধা আৰু গোপীকেন্দ্ৰিক প্ৰেম-ভক্তি ভাবক তুলনা কৰি বেজবৰুৱাই কৈছে—

“চৈতন্যদেৱৰ ধৰ্মপ্ৰচাৰত কৃষ্ণপ্ৰেমত উন্মত্ততা, কৃষ্ণভাবত আৰু ৰাধিকাৰ ভাবত বিভোৰতা... শংকৰদেৱৰ ধৰ্ম প্ৰচাৰত ভাব-প্ৰৱণতা গান্ধীৰ্যৰে সৈতে মিহলি...। চৈতন্যই কৃষ্ণনাম শুনিলেই বিহুল বাতুল হয়... শংকৰদেৱে কৃষ্ণনাম শুনি ভক্তিত গদগদ হয়।” (২১১)

বেজবৰুৱাই আঙুলিয়াই দিয়া শংকৰদেৱ আৰু চৈতন্যদেৱৰ এই পাৰ্থক্যৰ দ্বাৰা শংকৰদেৱৰ কৃষ্ণৰ সংযত আৰু পৰিশীলিত ৰূপটো অধিক স্পষ্ট হৈ পৰিছে। এই ক্ষেত্ৰত শংকৰদেৱৰ সাহিত্যত ৰাধাৰ অনুপস্থিতিৰ দিশটো বিশেষভাৱে মনকৰিবলগীয়া। বেজবৰুৱাই ইয়াৰ কাৰণ হিচাপে শংকৰদেৱৰ প্ৰচাৰিত ধৰ্মৰ গুৰি *শ্ৰীমদ্ভাগৱত*ৰ কথা উলুکیয়াই কৈছে যে, এই গ্ৰন্থত ৰাধিকা সমূল্যে গুৰুত্বহীন। গতিকে শংকৰদেৱৰ কাব্য, নাট, গীত, ভটিমা আদিতো কৃষ্ণৰ সৈতে ৰাধা মুঠেই সংযুক্ত নহয়। কাৰণ—“শ্ৰীমদ্ভাগৱতত যি নাই, শংকৰদেৱৰ পুথিত, শংকৰদেৱৰ প্ৰচাৰিত ধৰ্মত সি নাই।” (২১০)

গতিকে, শংকৰদেৱৰ কৃষ্ণ সম্পূৰ্ণৰূপে *ভাগৱত*ৰ কৃষ্ণ। লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ *শংকৰদেৱ* গ্ৰন্থত শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱৰ ধৰ্মীয় আদৰ্শ আৰু সৃষ্টিৰাজি সম্পৰ্কীয় ব্যাখ্যা-বিশ্লেষণৰ মাধ্যমেৰে এই গৰাকী কৃষ্ণ; অৰ্থাৎ *ভাগৱত*ৰ ঈশ্বৰ কৃষ্ণৰেই গুণ-গান কৰা হৈছে।

১.২ লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ মহাপুৰুষ শ্ৰীশংকৰদেৱ আৰু শ্ৰীমাধৱদেৱ গ্ৰন্থত কৃষ্ণ :

১৯১৪ চনত প্ৰকাশিত লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ *মহাপুৰুষ শ্ৰীশংকৰদেৱ আৰু শ্ৰীমাধৱদেৱ* এখন জীৱনীমূলক গ্ৰন্থ; য'ত শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱৰ উপৰিপুৰুষৰ পৰিচয়ৰ পৰা বৈকুণ্ঠ প্ৰয়াণলৈকে সুদীৰ্ঘ জীৱন বৃত্তান্ত উপন্যাসোপম শৈলীৰে বৰ্ণনা কৰা হৈছে। গ্ৰন্থখনৰ পাতনিতো বেজবৰুৱাই কৈছে —

“মহাপুৰুষ শংকৰ মাধৱৰ চৰিত্ৰ পুথি কেইবাখনো পঢ়ি মিলাই, আৰু মহাপুৰুষীয়া সত্ৰৰ সন্ত-সাধুসকলৰ মুখে

মুখে প্রচলিত হৈ অহা চৰিত্ৰ, আৰু ঘাইকৈ পিতৃদেৱ দীননাথ বেজবৰুৱাৰ মুখে মুখে শুনা চৰিত্ৰ যি মনত আছিল সেইবোৰো সুঁৱৰি জুকিয়াই লৈ এই চৰিত্ৰৰ কিতাপখনি আমি ৰচনা কৰিছোঁ।” (২১৬)

এই ‘চৰিত্ৰৰ কিতাপ’খনত কৃষ্ণ-ভক্তি প্ৰচাৰক হিচাপে শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱ দুয়োগৰাকীৰে জীৱন-কাহিনী তথা ঘটনাৱলী, চৰিত্ৰসমূহৰ বিৱৰণ, কথোপকথন আদিৰ মাধ্যমেৰে কৃষ্ণ-প্ৰসংগ স্বতঃস্ফূৰ্তভাৱে আহি পৰিছে। কিন্তু; এক জীৱন-চৰিত হিচাপে এই গ্ৰন্থত মূল চৰিত্ৰ দুটিৰ জীৱন-কাহিনীৰ বিবৃতিত স্বাভাৱিকতে লেখকৰ নিজস্ব যুক্তি-ব্যাখ্যাৰ সুৰুঙা নাই। সেয়েহে জীৱনী অংশৰ অন্তত বেজবৰুৱাই এটি ওপৰৰি অংশ সংযোগ কৰি শংকৰদেৱ-মাধৱদেৱৰ একশৰণ নাম-ধৰ্মৰ তত্ত্ব, আদৰ্শ আদি সম্পৰ্কে বিশ্লেষণাত্মক আলোচনা আগবঢ়াইছে; য’ত তাত্ত্বিক দৃষ্টিভংগীৰ আধাৰত মহাপুৰুষীয়া বৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ উপাস্য ঈশ্বৰ হিচাপে কৃষ্ণৰ একক আৰু সৰ্বোচ্চ স্থান নিৰ্ণীত হৈছে।

কৃষ্ণ-নাম জপ কৰাই আছিল শংকৰদেৱৰ জীৱনৰ একমাত্ৰ ব্ৰত তথা সাধনা। কৃষ্ণই তেওঁক বাহ্যিক আৰু আন্তৰিকভাৱে এনেদৰে আচ্ছাদিত কৰি ৰাখিছিল যে, সকলো সময়তে তেওঁ কৃষ্ণ-কথা চৰ্চাতে নিমজ্জিত হৈ থাকিছিল। আলোচ্য গ্ৰন্থখনত এই কথাৰ প্ৰমাণ পোৱা যায় মহাভক্ত নাৰায়ণ ঠাকুৰে সখিয়েক মাধৱদেৱক শংকৰদেৱৰ বিষয়ে সোধা এটি প্ৰশ্ন জৰিয়তে। তেওঁ সুধিছে, “সখি, গুৰুজন দেখোঁ সদায় সকলো সময়তে কৃষ্ণ-কথা আলাপন, শ্ৰৱণ কীৰ্তনত নিমগন থাকে, তেখেতেনো শাস্ত্ৰ ৰচনা কৰিবলৈ কেতিয়া সময় পায়?” (২৫৮)

কেৱল এয়ে নহয়, বৃন্দাবন-যাত্ৰাৰ বাটত নিশা নিদ্ৰিত অৱস্থাতো শংকৰদেৱে হৰিৰ নাম উচ্চাৰণ কৰা দেখি সহযাত্ৰীসকলে কৰা আশ্চৰ্য প্ৰকাশ, পাটবাউসীত নৌকা ভ্ৰমণৰ সময়ত এজন চণ্ডাল আৰু গৰখীয়াৰ মুখত কৃষ্ণৰ নাম শুনি শংকৰদেৱে তেওঁলোকক কৰা প্ৰশংসা তথা চকুলো টোকা আদি ঘটনাৰ বিৱৰণেৰে বেজবৰুৱাই শংকৰদেৱৰ জীৱনত কৃষ্ণ-নামৰ সৰ্বগ্ৰাসী প্ৰভাৱৰ ছবি একোখন তুলি ধৰিছে।

কেৱল শংকৰদেৱৰ ব্যক্তিগত জীৱনতেই নহয়; তেওঁ প্ৰচাৰ কৰা ধৰ্মত কৃষ্ণৰ সৰ্বত্ৰ প্ৰভাৱৰ কথাও বেজবৰুৱাই কোঁচৰজা নৰনাৰায়ণৰ সৈতে শংকৰদেৱৰ শাস্ত্ৰালাপ তথা ধৰ্ম বিষয়ক তত্ত্বগধুৰ আলোচনাৰ প্ৰসংগ উত্থাপনেৰে দাঙি

ধৰিছে। গীতা আৰু ভাগৱতক শাহ হিচাপে গ্ৰহণ কৰি একশৰণ ভাগৱতী ধৰ্ম প্ৰৱৰ্তন কৰা শংকৰদেৱে ৰজাক এই ধৰ্মমত সম্পৰ্কে কৈছে—

“কেৱল কৃষ্ণকহে অচৰ্চনা আৰু ভক্তি কৰিব, কৃষ্ণৰ প্ৰসাদত লোক সংসাৰ সাগৰ তৰিব। গীতা, ভাগৱত য’ৰ পৰাই মই মোৰ ধৰ্মৰ বীজ গ্ৰহণ কৰিছোঁ, সেই গীতা ভাগৱতেও ইয়াকেহে কয়, এইয়ে মোৰ দ্বাৰা প্ৰচাৰিত ধৰ্মমত, এয়ে তাৰ শিক্ষা।” (২৭৫)

শংকৰদেৱৰ কৃষ্ণ-কেন্দ্ৰিক ধৰ্মৰ এই শিক্ষা সকলো শ্ৰেণীৰ মানুহক সমানেই আকৃষ্ট কৰিব পৰাকৈ সক্ষম। নৰনাৰায়ণৰ ৰাজসভাতো ৰজা, প্ৰজা, পণ্ডিত, সভাসদ সকলো শংকৰদেৱৰ কৃষ্ণ-কথা শুনি মুগ্ধ হৈছিল। বেজবৰুৱাই এই গ্ৰন্থত উল্লেখ কৰা মতে, শংকৰদেৱৰ মুখেৰে বৃন্দাবনীয়া বস্ত্ৰত অংকিত কৃষ্ণ-লীলাৰ দৃশ্যবোৰৰ ব্যাখ্যা আৰু বৰ্ণনা শুনি শুনি ৰজা নৰনাৰায়ণৰ মনতো ক্ৰমান্বয়ে কৃষ্ণ-প্ৰেম জাগ্ৰত হৈছিল আৰু শংকৰদেৱৰ প্ৰতি ভক্তি-ভাব গঢ় হৈ উঠিছিল। এই ভক্তিয়ে এসময়ত এনে এক পৰ্যায়লৈ গতি কৰিছিল যে, ৰজাৰ দৃষ্টিত কৃষ্ণ আৰু শংকৰদেৱ একাকাৰ হৈ পৰিছিল।

বেজবৰুৱাৰ বৰ্ণনা অনুসৰি, এদিন ৰাজসভাত ৰজাৰ অনুৰোধত শংকৰদেৱে কৃষ্ণৰ ৰূপ বৰ্ণনা কৰিলে। বৰ্ণনা শেষ হ’লত ৰজাই শংকৰদেৱক তীক্ষ্ণভাৱে নিৰীক্ষণ কৰি কৃষ্ণৰ ৰূপ শংকৰদেৱৰ গাতে দেখিবলৈ পাই ক’লে— “বাপ মোক শৰণ দি উদ্ধাৰ কৰিব লাগে। আপোনাৰ গাতে আপুনি বৰ্ণোৱা ঈশ্বৰৰ ৰূপ মই প্ৰত্যক্ষ কৰিলোঁ।” (২৮৬)

আচলতে, শংকৰদেৱে আজীৱন যি গৰাকী কৃষ্ণৰ গুণানুকীৰ্তন কৰি গ’ল; সেই কৃষ্ণক তেওঁ সম্ভৱতঃ নিজৰ অজ্ঞাতেই নিজৰ মাজত ধাৰণ কৰিছিল। যাৰ বাবে নৰনাৰায়ণৰ দৃষ্টিত তেওঁ কৃষ্ণৰূপে ধৰা দিবলৈ সক্ষম হৈছিল। বেজবৰুৱায়ে নিজস্বভাৱে এই জীৱনীমূলক গ্ৰন্থখনত শংকৰদেৱৰ চিন্তা-চেতনা তথা জীৱন-চৰ্যাক কৃষ্ণ-ভাবনাৰ সৈতে এনেভাৱে সম্পৃক্ত ৰূপত চিত্ৰায়িত কৰিছে যাৰ দ্বাৰা শংকৰদেৱ আৰু কৃষ্ণ কোনোবাখিনিত একেটি চৰিত্ৰত পৰিণত হৈছে। এয়া নিশ্চিতভাৱে কৃষ্ণ আৰু শংকৰদেৱৰ প্ৰতি বেজবৰুৱাৰ সমানুপাতিক শ্ৰদ্ধা আৰু ভক্তিৰেই পৰিণতি।

লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ *শ্ৰীশংকৰদেৱ আৰু শ্ৰীমাধৱদেৱ* গ্ৰন্থখন মাধৱদেৱৰ জীৱন-চৰিত হোৱা

হেতুকে তেওঁৰ জীৱন বৃত্তান্তও বিস্তৃত ৰূপত বৰ্ণিত হৈছে। কিন্তু মাধৱদেৱৰ ধৰ্মীয় মত অথবা কৃষ্ণ বিষয়ক সবহভাগ কথা শংকৰদেৱৰ মাধ্যমেৰেই ব্যক্ত কৰা হৈছে। কিয়নো দুয়োগৰাকীৰ জীৱন আৰু কৰ্মই মূলতঃ কৃষ্ণৰ একেটি স্বৰূপকে প্ৰতিনিধিত্ব আৰু প্ৰতিফলিত কৰে। তথাপি, বেজবৰুৱাৰ এই গ্ৰন্থৰ বিভিন্ন স্থানত মাধৱদেৱৰ মুখেৰেও তেওঁৰ কৃষ্ণসৰ্বস্ব মনোভাবৰ আভাস দাঙি ধৰা হৈছে। উদাহৰণস্বৰূপে, ৰজা লক্ষ্মীনাৰায়ণৰ ৰাজসভাত তেওঁ কৃষ্ণৰ বাহিৰে অন্য দেৱতাক পূজা নকৰাৰ যুক্তি আগবঢ়াইছে এনেদৰে—

“এক শৰণ হৈ কৃষ্ণক ভক্তি কৰোঁতাজনৰ কৃষ্ণৰ বিনে
আন মুক্তিদাতা নাই। যত দেৱ-দেৱী হৰিৰ বিভূতি মাত্ৰ।
...সকলো দেৱ-দেৱী ঈশ্বৰৰ পৰা পৃথক। কৃষ্ণৰ বাহিৰে
দেৱতাত চিদাংশ নাই।” (৩২০)

শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱৰ ধৰ্মমত অনুসৰি কেৱল কৃষ্ণহে চৈতন্য, বাকী দেৱ-দেৱী জড়। গতিকে জড়ৰ উপাসনা অনর্থক। ‘একমেবাদ্বিতীয়ম পৰমেশ্বৰ’; অৰ্থাৎ এগৰাকী অদ্বিতীয় ঈশ্বৰ উপাসনাৰ সমৰ্থনত শংকৰদেৱ-মাধৱদেৱে প্ৰদৰ্শন কৰা এই যুক্তিসমূহ গ্ৰন্থখনৰ জীৱনী অংশৰ অন্তত সংযুক্ত ওপৰঞ্চি অংশত বেজবৰুৱাই নিজস্ব দৃষ্টিভঙ্গী আৰু যুক্তিযুক্ততাৰে বিশ্লেষণ কৰি দেখুৱাইছে। বিশেষকৈ একশৰণ নামধৰ্ম সন্দৰ্ভত প্ৰচলিত কেতবোৰ দ্বিমত, অপব্যাখ্যা আদিৰ যথোপযুক্ত প্ৰত্যুত্তৰ আৰু ব্যাখ্যাৰে তেওঁ শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱৰ কৃষ্ণ-প্ৰধান ধৰ্মমতৰ এক স্পষ্ট ধাৰণা প্ৰদান কৰিছে।

বেজবৰুৱাৰ মতে, শংকৰদেৱে অৱতাৰ বিশ্বাস কৰাৰ বাবে অথবা লীলা-বিগ্ৰহধাৰী কৃষ্ণৰ উপাসনাৰ শিক্ষা দিয়াৰ বাবে তেওঁক বহু ঈশ্বৰবাদী বা পৌত্তলিক সজোৱাটো ভুল। একেদৰে ঈশ্বৰৰ জড় মূৰ্তি উপাসনাৰ বিৰোধী হৈও তেওঁ বৰদোৱাত থাকোঁতে জগন্নাথ দেৱৰ প্ৰতিমা নিৰ্মাণ কৰা নতুবা কীৰ্তন-ঘোষা ত ‘ধ্যান বৰ্ণন অধ্যায়’ সংযোগ কৰাৰ দৰে কথাবোৰৰ স্পষ্টতাৰ খাতিৰত বেজবৰুৱাই কৈছে যে, ঈশ্বৰ-চিত্তাৰ বাবে প্ৰথম অৱস্থাত মানুহক ঈশ্বৰৰ ৰূপ সম্পৰ্কে এটি ধাৰণাৰ দৰকাৰ; অন্যথা মানুহৰ মন স্থিৰ নহয়। শংকৰদেৱে কীৰ্তন-ঘোষা ত কোৱা ধ্যান এক প্ৰকাৰ কৃষ্ণৰ প্ৰতিকৃতিৰ মানস-ধ্যানহে।

কীৰ্তন-ঘোষাৰ অন্তৰ্গত ‘হৰমোহন অধ্যায়’ক অল্লীল আৰু কুৰুচিপূৰ্ণ বুলি অভিহিত কৰা সকলক উদ্দেশ্যিও

বেজবৰুৱাই যুক্তিপূৰ্ণ ব্যাখ্যা দাঙি ধৰিছে। তেওঁ কৈছে, যোগবলেৰে নিজৰ মায়াক জয় কৰি নিজৰ মন শুদ্ধ কৰি ৰখা বুলি অহং ভাব ব্যক্ত কৰা হৰ; অৰ্থাৎ শিৱ মোহিনীৰূপী কৃষ্ণৰ ছলনাত ভোল গৈ নিজৰ ৰিপু দমন কৰিবলৈ ব্যৰ্থ হৈছে। অৰ্থাৎ ; ভগৱান কৃষ্ণই ভক্তৰ দৰ্প-চূৰ্ণ কৰি অহংকাৰশূন্য ভক্তিৰ শিক্ষা দিছে। এই অৰ্থ বিশ্লেষণেৰে বেজবৰুৱাই কীৰ্তন-ঘোষাৰ ‘হৰমোহন’ত অল্লীলতাৰ পৰিৱৰ্তে বেদান্তৰ তাৎপৰ্য আৰোপ কৰিছে।

কৃষ্ণ সম্পৰ্কিত এনেবোৰ প্ৰসংগৰ যৌক্তিক উপস্থাপনৰ বাবেই লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ শ্ৰীশংকৰদেৱ আৰু শ্ৰীমাধৱদেৱ গ্ৰন্থখন শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱৰ জীৱনী হৈও তেওঁলোকৰ একশৰণ নাম-ধৰ্মৰ উপাস্য ঈশ্বৰ কৃষ্ণৰ শ্ৰেষ্ঠত্ব পৰিচায়ক গ্ৰন্থ হৈ পৰিছে।

১.৩ লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ তত্ত্ব-কথা ৰ প্ৰবন্ধত

শংকৰদেৱ - মাধৱদেৱৰ কৃষ্ণ :

বেজবৰুৱাৰ তত্ত্ব কথাৰ কেউটা প্ৰবন্ধতে পৰমব্ৰহ্ম কৃষ্ণৰ যি স্বৰূপ ৰূপায়িত হৈছে; সেয়া প্ৰধানতঃ শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱৰে কৃষ্ণ। কাৰণ তেওঁলোকৰ ধৰ্মমতৰ আলোচনা অথবা ৰচনাৱলীৰ উক্তি, উদ্ধৃতিৰ সঘন উল্লেখ তথা ব্যাখ্যাৰ আধাৰতেই বেজবৰুৱাই সমগ্ৰ তত্ত্ব-কথা ত কৃষ্ণৰ মাহাত্ম্য প্ৰকাশ কৰিছে। সেয়ে হ’লেও, শংকৰদেৱ-মাধৱদেৱ অথবা নাম-ধৰ্ম বিষয়ক সুকীয়া আলোচনা সন্নিৱিষ্ট এটি প্ৰবন্ধ হিচাপে ‘কীৰ্তন আৰু ঘোষাতত্ত্ব’ত কীৰ্তন-ঘোষা আৰু নামঘোষাৰ অন্তৰ্নিহিত তাৎপৰ্যৰ বিস্তাৰিত বিশ্লেষণ পৰিলক্ষিত হয়।

প্ৰবন্ধটোৰ আৰম্ভণিতেই উদ্ধৃত কৰা হৈছে কীৰ্তন-ঘোষাৰ প্ৰথমটো পদ—

“প্ৰথমে প্ৰণামো ব্ৰহ্মৰূপী সনাতন।

সৰ্ব অৱতাৰ কাৰণ নাৰায়ণ।।”

(হাজৰিকা, সম্পা., ১৬)

শংকৰদেৱে কীৰ্তন ৰ আৰম্ভণিতে যিগৰাকী সনাতন ব্ৰহ্মক প্ৰণাম জনাইছে; তেৱেঁই যুগধৰ্ম ৰক্ষাৰ বাবে প্ৰত্যেক যুগতে অৱতাৰ গ্ৰহণ কৰে। ঈশ্বৰ কৃষ্ণও সেই ব্ৰহ্মৰূপী সনাতনৰে এক বিশেষ ৰূপ। ‘ৰূপ’ বুলি কওঁতে ঈশ্বৰ সাকাৰ নে নিৰাকাৰ; এই প্ৰশ্ন মনলৈ আহে। বেজবৰুৱাই ‘কীৰ্তন আৰু ঘোষা-তত্ত্ব’ত কৈছে —

“ঈশ্বৰ প্ৰাকৃতিক আকাৰেৰে সাকাৰ নহয়। তেওঁৰ আকাৰ প্ৰাকৃতিক আকাৰৰ বহিৰ্ভূত অৰ্থাৎ transcen-

dental, কিন্তু তথাপি তেওঁৰ আকাৰ আছেই আছে, নতুবা তেওঁৰ অস্তিত্ব থাকিব নোৱাৰে। এই অৰ্থত ঈশ্বৰ নিৰাকৰ হৈও সাকৰ আৰু সাকৰ হৈও নিৰাকৰ।” (বেজবৰুৱা গ্ৰন্থালী, প্ৰথম ভাগ, ৪১৩)

কৃষ্ণৰ স্বৰূপ সাকৰ অথবা নিৰাকৰ যিয়েই নহওক কিয়; ব্ৰহ্মৰ সকলো ৰূপ বা ধাৰণাই কৃষ্ণৰ স্বৰূপকে প্ৰতিবিম্বিত কৰে। আকৌ, ভক্তই তেওঁক যি ৰূপত ভক্তি কৰে সেই ৰূপে সোধোপা লাভ কৰে। অৰ্থাৎ; কৃষ্ণৰ সুন্দৰ মনোহৰ ৰূপক ভক্তি কৰোঁতাজনে কৃষ্ণৰ সেই ৰূপে অধিকাৰী হৈ সৌন্দৰ্যশালী হৈ উঠে। উদাহৰণস্বৰূপে, বেজবৰুৱাই কীৰ্ত্তনৰ ষষ্ঠ খণ্ড ‘প্ৰহ্লাদ চৰিত’ত বৰ্ণিত বৈকুণ্ঠৰ দ্বাৰপাল জয় আৰু বিজয়ৰ সৌন্দৰ্যৰ কথা কৈছে। শংকৰদেৱৰ বৰ্ণনা অনুসৰি, পদুম ফুলৰ পাহিৰ দৰে চকুযুগল, সুন্দৰ নাসিকা, কাণত কুণ্ডল, শ্যামবৰ্ণ শৰীৰত হালধীয়া বস্ত্ৰ, বক্ষস্থানত সুগন্ধি ফুলৰ মালাৰে সৈতে তেওঁলোকেও বৈকুণ্ঠৰ পতি কৃষ্ণৰ সাইলাখ ৰূপ পৰিগ্ৰহ কৰিছে। একেদৰে, বৈকুণ্ঠৰ অন্য নৰ-নাৰীসকলো কৃষ্ণৰ দৰেই মনোমুগ্ধকৰ সুন্দৰ-সুন্দৰী।

শংকৰদেৱৰ ঈশ্বৰৰ ধাৰণা আনন্দময়, প্ৰেমময় আৰু সুন্দৰ। ঈশ্বৰৰ এনে ৰূপ হৃদয়ত ধাৰণ কৰি ভক্তসকল সন্তোষিত হ’ব পাৰে। কিন্তু এই সন্তুষ্টিৰ বাবে পৰমেশ্বৰৰ চৰণত চূড়ান্ত আত্মসমৰ্পণৰ প্ৰয়োজন; বেজবৰুৱাই যাক ‘absolute resignation’ বুলি কৈছে। সমস্ত পাৰ্থিৱ কামনা-বাসনা পৰিত্যাগ কৰি ঈশ্বৰ কৃষ্ণৰ নামৰ অমৃত পান কৰিবলৈ আহ্বান জনাই মাধৱদেৱেও *নামঘোষা*ৰ আত্ম-উপদেশত কৈছে—

“শুনিয়ে হৃদয় হেৰ ব্ৰহ্মাণ্ড ভিতৰে যত
বস্ত আছে তোকনোজোৰয়।

তাক ত্যাজি কৃষ্ণ নাম অক্ষয় অমৃত পিয়া

সন্তোষক লভিয়ে হৃদয়।।” (হাজৰিকা, সম্পা., ৬৬৪)

শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱে কোৱা এই আত্মসমৰ্পণক বেজবৰুৱাই খ্ৰীষ্টধৰ্মৰ resignation আৰু ইছলাম ধৰ্মৰ মহাবলৱন্ত বিশ্বাসৰ আত্মসমৰ্পণৰ সৈতে তুলনা কৰিছে। ঈশ্বৰত সম্পূৰ্ণৰূপে আত্ম-নিৱেদিত যীশু আৰু মহম্মদৰ জাগতিক মোহশূন্যতাই মহাপুৰুষীয়া বৈষ্ণৱ ধৰ্মৰ unconditional surrender-অৰ ধাৰণাটোকে প্ৰতিনিধিত্ব কৰে। এই চৰম পৰ্যায়ৰ surrender; অৰ্থাৎ ‘চূড়ান্ত সমৰ্পণ’ কেৱল ভক্তিৰ দ্বাৰাহে সম্ভৱ। ‘দেৱৰ দুৰ্লভ

ঈশ্বৰ কৃষ্ণক ভকতিসে কৰে বশ্য’ বুলি কোৱা মাধৱদেৱৰ ঘোষাৰ উদ্ধৃতিৰে বেজবৰুৱায়ে ভক্তিকে entire resignation আৰু ঈশ্বৰ লাভৰ মুখ্য উপায় বুলি কৈছে। এই ভক্তিৰ প্ৰকৃষ্ট মাধ্যম হৈছে ঈশ্বৰৰ নাম শ্ৰৱণ-কীৰ্তন।

‘ভক্তি-তত্ত্ব’ শীৰ্ষক অন্য এটি প্ৰবন্ধতো কৃষ্ণৰ নাম শ্ৰৱণ-কীৰ্তনকে শ্ৰেষ্ঠ ভক্তি ৰূপে বিবেচনা কৰি বেজবৰুৱাই কৈছে যে, ভক্তিয়ে হৈছে ঈশ্বৰৰ কৰুণা লাভৰ একমাত্ৰ পথ। বিশেষকৈ কলি যুগত একান্ত ভক্তিৰ বাহিৰে অন্য কোনো উৎকৃষ্ট উপায় নাই। গতিকে কৃষ্ণ নাম-ধৰ্মই হৈছে শ্ৰেষ্ঠ ভক্তি-ধৰ্ম।

শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱৰ নাম-ধৰ্মৰ শ্ৰেষ্ঠত্ব প্ৰতিপন্ন কৰিবৰ বাবে ‘নামধৰ্ম-তত্ত্ব’ শীৰ্ষক প্ৰবন্ধত বেজবৰুৱাই পৃথিৱীৰ অন্য ধৰ্মৰ উদাহৰণৰ আশ্ৰয় লৈছে। তেওঁৰ বক্তব্য মতে, ঈশ্বৰৰ নাম-কীৰ্তনেই সকলো ধৰ্মৰ বিশিষ্ট উপাসনা। কিয়নো ইছলাম, খ্ৰীষ্টান আদি পৃথিৱীৰ সকলো ডাঙৰ ডাঙৰ ধৰ্মই ঈশ্বৰৰ নাম লোৱাৰ বাহিৰে অন্য একো উপায় নিৰ্দেশ কৰা নাই। এনে সাদৃশ্যৰ ভিত্তিত শংকৰদেৱ-মাধৱদেৱৰ নামধৰ্মৰ বিশ্বজনীনতা প্ৰকাশ কৰিবলৈ গৈ বেজবৰুৱাই কৃষ্ণকো এক উদাৰ মনোভাৱেৰে হিন্দু ধৰ্মৰ গণ্ডীৰ পৰা উলিয়াই আনি কৈছে— “শংকৰ-মাধৱৰ কৃষ্ণই সাংখ্যৰ প্ৰকৃতি-পুৰুষৰ নিয়ন্তা, কাল-মায়াদিৰ অধিকাৰী পৰমপুৰুষ পৰমেশ্বৰ, আৰু খ্ৰীষ্টৰ God the father আৰু মহম্মদৰ ‘আল্লাহো আকবৰ’। (৪৪০)

অন্য ধৰ্মৰ উপাস্য ঈশ্বৰৰ সৈতে শংকৰদেৱ-মাধৱদেৱৰ কৃষ্ণক একাকৰ কৰি বেজবৰুৱাই কেৱল একশৰণ নাম-ধৰ্মৰ মহত্বকে ঘোষণা কৰা নাই; বৰঞ্চ তেওঁৰ নিজৰ কৃষ্ণ-দৰ্শনকো বিস্তৃতি আৰু বিশ্বজনীনতা দান কৰিছে। দৰাচলতে, তেওঁ কৃষ্ণক Mythological Interpretation অৰ্থাৎ পুৰাণবিশেষৰ ব্যাখ্যাৰ সীমাবদ্ধতাৰ পৰা উলিয়াই আনি এক বহল পৃষ্ঠভূমিত প্ৰতিষ্ঠা কৰিলে।

এগৰাকী কৃষ্ণ-ভক্ত তথা ঈশ্বৰবিশ্বাসী ব্যক্তি হিচাপে বেজবৰুৱাৰ ক্ষেত্ৰত এই কথাটোৱে বিশেষ গুৰুত্ব বহন কৰে। কাৰণ মানুহৰ ঈশ্বৰ-বিশ্বাসৰ সৈতে সাধাৰণতে এটা নিৰ্দিষ্ট ধৰ্ম জড়িত হৈ থকা দেখা যায়। বেজবৰুৱাৰ ঈশ্বৰ-চেতনাও অৱশ্যে ধৰ্ম-বহিৰ্ভূত নহয়; কিন্তু সেয়া এক নিৰ্দিষ্ট ধৰ্ম-কেন্দ্ৰিকো নহয়। অৰ্থাৎ হিন্দুৰ উপাস্য ভগৱান হ’লেও কৃষ্ণক তেওঁ হিন্দু ধৰ্ম বা ভাৰতৰ পৰিসীমাত আৱদ্ধ কৰি ৰখা নাই। কৃষ্ণক শংকৰদেৱ-মাধৱদেৱ প্ৰচাৰিত এটি ধৰ্মৰ আধাৰত বিচাৰ কৰিও চৰিত্ৰটোক এনেদৰে এক নিৰ্দিষ্ট ধৰ্মৰ

আওতাৰ পৰা মুক্ত কৰিব পৰাটো নিশ্চিতভাৱে বেজবৰুৱাৰ তাত্ত্বিক-বিচক্ষণতা; লগতে এক প্ৰকাৰ স্পষ্টীকৰণো যে, লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ কৃষ্ণ কেৱল হিন্দু-ধৰ্মৰ প্ৰতিনিধি নহয়।

১.৪ লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ অন্যান্য লেখা/প্ৰবন্ধত শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱৰ কৃষ্ণ :

লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ শংকৰদেৱ-মাধৱদেৱৰ বিষয়ক কেইবাটাও প্ৰবন্ধ বিভিন্ন কাকত আলোচনীত পোৱা যায়। তাৰ ভিতৰত ‘মহাপুৰুষীয়া ধৰ্ম’ (বাঁহী, একাদশ বৰ্ষ, ষষ্ঠ সংখ্যা), ‘মহাপুৰুষ শ্ৰীশংকৰদেৱ’ (বাঁহী, সপ্তম বৰ্ষ, দশম সংখ্যা), ‘শ্ৰীশংকৰদেৱ মহাপুৰুষ’ (বাতৰি, ১৯৩২), ‘শ্ৰীশংকৰদেৱ প্ৰচাৰিত ধৰ্ম সাকাৰ উপাসনা নে নিৰাকৰ উপাসনা’ (বাঁহী, চতুৰ্বিংশ বৰ্ষ, নৱম সংখ্যা), ‘দুইজনা মহাপুৰুষে প্ৰচাৰ কৰা ভক্তিভাৱ’ (আৱাহন, তৃতীয় বৰ্ষ, একাদশ সংখ্যা) আদি প্ৰবন্ধ বিশেষভাৱে উল্লেখযোগ্য। এই প্ৰবন্ধসমূহত একশৰণ নাম-ধৰ্ম সম্পৰ্কীয় আলোচনাৰ মাজেৰে শংকৰদেৱ-মাধৱদেৱৰ কৃষ্ণৰ যি স্বৰূপ উপস্থাপিত হৈছে; সেয়া পূৰ্বৰ আলোচনাত সম্পূৰ্ণৰূপে প্ৰতিফলিত হৈছে। গতিকে পুনঃব্যাখ্যা নিষ্প্ৰয়োজন। কিন্তু ‘মহাপুৰুষ শংকৰ মাধৱৰ সাহিত্যৰ বিষয়ে দু-আষাৰ কথা’ (তিনিদিনীয়া অসমীয়া, ৩য় সংখ্যা) আৰু ‘শ্ৰীশংকৰদেৱ ঈশ্বৰৰ অৱতাৰ নে?’ (বাঁহী, চতুৰ্বিংশ বৰ্ষ) শীৰ্ষক অন্য দুটি প্ৰবন্ধ এইবাবেই বিশেষত্বপূৰ্ণ; কাৰণ প্ৰথমটোত বেজবৰুৱাই শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱক কৃষ্ণৰ সৈতে তুলনা কৰিছে আৰু দ্বিতীয়টোত শংকৰদেৱক কৃষ্ণৰ অৱতাৰৰূপে গণ্য কৰা হৈছে।

‘মহাপুৰুষ শংকৰ মাধৱৰ সাহিত্যৰ বিষয়ে দু-আষাৰ কথা’ত বেজবৰুৱাই অসমীয়া সাহিত্যৰ মহাৰথী শংকৰদেৱ

আৰু মাধৱদেৱৰ প্ৰতিভাক কুৰক্ষিত্ৰ যুদ্ধৰ পাণ্ডৱ পক্ষৰ মহাসাৰথি কৃষ্ণৰ পৰিচালনা শক্তিৰ সৈতে ৰিজাইছে। তেওঁ কৈছে, কৃষ্ণৰ মুখ-নিঃসৃত গীতৰ বুজনিয়ে অৰ্জুনক যুদ্ধক্ষেত্ৰত নমোৱাৰ দৰে শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱৰ গীতাতুল্য কাব্যধাৰায়ে অসমৰ অশিক্ষিত জনগণক সাহিত্য-ক্ষেত্ৰলৈ নমাই আনিবলৈ সক্ষম হৈছিল। এই সাহিত্য আছিল তত্ত্বজ্ঞান আৰু আত্মজ্ঞানৰ উপদেশ জ্ঞাপক। বেজবৰুৱাৰ মতে, এনে গভীৰ জ্ঞান সহজ আৰু শুদ্ধ ৰূপত প্ৰদান কৰাটো কেৱল ঈশ্বৰৰ বাবেহে সম্ভৱ। ‘শ্ৰীশংকৰদেৱ ঈশ্বৰৰ অৱতাৰ নে?’ শীৰ্ষক প্ৰবন্ধত শংকৰদেৱক তেওঁ একে আষাৰে ঈশ্বৰ কৃষ্ণৰ অৱতাৰ বুলি স্বীকৃতি দি কৈছে—

“এই বাবেই শ্ৰীশংকৰদেৱ ঈশ্বৰ কৃষ্ণৰ অৱতাৰ। এই বাবেই তেওঁ জগদগুৰু। ঈশ্বৰে মনুষ্যৰ দেহ ধাৰণ কৰি অৱতাৰ নহ’লে, মানুহক খোলাখুলিকৈ আঁসোঁৱাহ মাৰি কোনে তত্ত্বজ্ঞান আত্মজ্ঞানৰ উপদেশ দিব? (বেজবৰুৱা গ্ৰন্থাবলী, তৃতীয় ভাগ, ২০১৮)

দেখা গ’ল যে, লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ সাহিত্যত শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱৰ কৃষ্ণৰ স্বৰূপ ব্যাখ্যাৰ সমান্তৰালভাৱে শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱো কৃষ্ণৰেই স্বৰূপ হিচাপে প্ৰতিপন্ন হৈছে।

২.০ সামৰণি :

লক্ষ্মীনাথ বেজবৰুৱাৰ কৃষ্ণ স্বৰূপাৰ্থত শংকৰদেৱ আৰু মাধৱদেৱৰ কৃষ্ণ। অৰ্থাৎ তেওঁৰ কৃষ্ণ-ধাৰণাৰ সৈতে শংকৰদেৱ-মাধৱদেৱৰ দ্বাৰা নিকপিত কৃষ্ণ পাৰম্পৰিক আৰু ওতপ্ৰোতভাৱে সম্পৰ্কযুক্ত। বেজবৰুৱাৰ তত্ত্বধৰ্মী ৰচনাসমূহত মহাপুৰুষীয়া নাম-ধৰ্মৰ কৃষ্ণ-কথাৰ প্ৰাধান্যলৈ লক্ষ্য কৰি তেওঁক শংকৰদেৱ-মাধৱদেৱৰ কৃষ্ণৰ শ্ৰেষ্ঠ ব্যাখ্যাকাৰ আখ্যা দিব পাৰি। □

গ্ৰন্থপঞ্জী :

- ১। গোস্বামী, যতীন্দ্ৰনাথ (সম্পা.)। বেজবৰুৱা গ্ৰন্থাবলী, তৃতীয় ভাগ। গুৱাহাটী : সাহিত্য প্ৰকাশ, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০৫। মুদ্ৰিত
- ২। হাজৰিকা, অতুলচন্দ্ৰ (সম্পা.)। বেজবৰুৱা গ্ৰন্থাবলী, প্ৰথম ভাগ। গুৱাহাটী : সাহিত্য প্ৰকাশ, দ্বিতীয় প্ৰকাশ, ২০১৪। মুদ্ৰিত
- ৩। হাজৰিকা, দীপক (সম্পা.)। শ্ৰীশংকৰদেৱ আৰু শ্ৰীমাধৱদেৱৰ প্ৰণীত কীৰ্তন-ঘোষা আৰু নাম-ঘোষা। গুৱাহাটী : বনলতা, দ্বিতীয় প্ৰকাশ, ২০২০। মুদ্ৰিত

বিহুগীতত প্ৰতিফলিত অসমীয়া পৰম্পৰাগত সাজপাৰ : এক আলোচনা



ৰিজুমণি দাস

সাৰাংশ :

লোকগীতত গাঁওলীয়া চহা জীৱনৰ অভিজ্ঞতাৰ সামূহিক বৰ্ণনাৰ চিত্ৰ প্ৰকাশ পায়। জন-জীৱনৰ আবেগ-অনুভূতি নিজস্ব ৰূপত, নিজস্ব ছন্দত আৰু নিজস্ব বৰ্ণনা শৈলীৰে অতি সহজ-সৰল আৰু মনোগ্ৰাহী ৰূপত উপস্থাপন কৰাই লোকগীতৰ প্ৰধান উদ্দেশ্য। লোকগীতৰ অন্তৰ্গত অনুষ্ঠানমূলক লোকগীতৰ শাৰীত বিহুনাটক অন্তৰ্ভুক্ত কৰিব পাৰি। এই বিহুনাটক বা গীত, হুঁচৰি আৰু বনগীত বা গৰখীয়া গীত বা বনঘোষাসমূহ ঋতুসম্পৰ্কীয়। বিহুগীতসমূহত প্ৰধানকৈ প্ৰকৃতিৰ চিত্ৰ, সমাজ-জীৱনৰ চিত্ৰ আৰু জনসাধাৰণৰ মনৰ ভাব চিত্ৰিত হয়।

পুৰণি কালৰে পৰা অসমীয়া লোকসমাজত লোকশিল্পৰ অন্তৰ্গত বয়নশিল্পই এক বিশিষ্ট স্থান লাভ কৰি আহিছে। অসমীয়া বয়নশিল্পীয়ে পাট, মুগা, এড়ী আৰু কপাহ - এই চাৰিবিধ সূতাৰে কাপোৰ প্ৰস্তুত কৰে। অসমীয়া বিহুগীতত অসমৰ ভৌতিক সংস্কৃতিৰ ভিতৰুৱা লোকশিল্পই সামৰা খাদ্যাভ্যাস, ৰন্ধন-প্ৰণালী, আ-অলংকাৰ, বাচন-বৰ্তন, ঘৰসজা সঁজুলি আদি বিবিধ সামগ্ৰীৰ উপৰিও অসমৰ পৰম্পৰাগত সাজপাৰৰ উল্লেখ আছে। এই ভৌতিক সংস্কৃতিৰ উপাদানসমূহৰ সহযোগত বিহুগীতত প্ৰকাশ পোৱা সমাজখন বাস্তৱ আৰু জাতীয় ঐতিহ্যৰ বাৰ্তাবাহক।

গৱেষণা পত্ৰখনত “বিহুগীতত প্ৰতিফলিত অসমীয়া পৰম্পৰাগত সাজপাৰ : এক আলোচনা” শীৰ্ষক বিষয়টি সম্পৰ্কে যথায়থ আলোচনা কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰা হ’ব। গৱেষণাপত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোঁতে বিশ্লেষণাত্মক আৰু বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হ’ব। বিষয়টি সম্বন্ধে প্ৰাপ্ত তথ্যসমূহ পুথিভঁৰাল, বিভিন্ন আলোচনী, গ্ৰন্থ আৰু ইণ্টাৰনেটৰ পৰা লোৱা হ’ব।

বীজ শব্দ :

সাজপাৰ, পৰম্পৰাগত, বিহুগীত, সমসাময়িক সমাজ, পৰিৱৰ্তন।

০.০১ প্ৰস্তাৱনা :

লোক-সাহিত্যই লোক-জীৱনৰ প্ৰতিচ্ছবি প্ৰতিফলিত কৰে। জনসাধাৰণৰ মুখে মুখে পৰম্পৰাগতভাৱে প্ৰচলিত হৈ অহা বাবে ই জন-সাহিত্য বা লোক-সাহিত্য। ‘জন-সাহিত্য ৰাইজৰ সাহিত্য, বিশেষভাৱে লিখা-পঢ়া জনা শিক্ষিত মানুহৰ ৰচনা নহয়। আমি সাধাৰণতে সাহিত্য বুলিলে ছপা কিতাপত পঢ়িবলৈ পোৱা গল্প, কবিতা, নাটক আদিকে বুজোঁ, কিন্তু এই বিলাকত বাদেও গাঁৱলীয়া নাইবা চহৰীয়া মানুহৰ মাজত আৰু একপ্ৰকাৰ সাহিত্যও জীয়াই আছে। এইবিলাক হৈছে মুখে মুখে ৰচনা কৰা আৰু মুখ বাগৰি জীয়াই থকা পুৰণি নাম, পদ, মালিতা, ফকৰা, বচন, সাঁথৰ, সাধুকথা। এই

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
নামৰূপ মহাবিদ্যালয়
ডিব্ৰুগড়, অসম - ৭৮৬৬২৩
☎ ৭০০২৪৯৬৭০২
✉ rijumonid06@gmail.com

পৰম্পৰাগত ৰচনা বিলাকেই জন-সাহিত্য।”

অসমীয়া সমাজ-জীৱনত লিখিত আৰু পৰিমার্জিত সাহিত্য সৃষ্টিৰ আগতে মৌখিক সাহিত্যৰ মাজেদি লোককবিসকলে বহু বৰ্ণময় অভিব্যক্তি মনোত্ৰাহীকৈ প্ৰকাশ কৰিছিল। অসমীয়া লোক-সাহিত্যৰ প্ৰধান বিভাগসমূহৰ এক গুৰুত্বপূৰ্ণ বিভাগ হ’ল লোকগীত। এই লোকগীতসমূহ বিশ্লেষণ কৰি চালোঁই এখন সমাজত প্ৰচলিত ৰীতি-নীতি, লোক-বিশ্বাস, ধৰ্ম, ৰাজনীতি, অৰ্থনীতি আৰু সমাজ-জীৱন পৰিৱৰ্তনৰ বহুবোৰ কথা জানিব পাৰি। বিশেষকৈ সাহিত্যিক দৃষ্টিৰ পৰা এইসমূহ অতি মূল্যবান।

অসমীয়া লোকগীতবোৰৰ ভিতৰত সমাজ-জীৱনৰ ব্যাপক আৰু সৰ্বাত্মক প্ৰতিফলন বিহুগীতবোৰত হোৱা দেখা যায়। হুঁচৰি নাম, বিহুনাংক বা বিহুগীত আৰু গৰখীয়া নাম বা হাবিনাম বা বনঘোষাত চহা-লোকৰ সহজ-সৰল অনুভূতিৰ প্ৰকাশ ঘটা দেখা যায়। সমাজ-জীৱনৰ চিত্ৰ প্ৰকাশ পোৱা এই বিহুগীতবোৰত প্ৰাত্যহিক জীৱনৰ চাল-চলনৰ, ৰীতি-নীতি, চিন্তা-ভাৱনা, আচাৰ-ব্যৱহাৰ, লোকবিশ্বাস, লোকাচাৰ, খেল-ধেমালি, উৎসৱ-অনুষ্ঠান, খাদ্যাভ্যাস, আ-অলংকাৰ, সাজপাৰ, কৃষিকৰ্ম আদি বিভিন্ন দিশৰ সমন্বয়ত গঢ় লোৱা দেখা যায়।

সাহিত্যত, ভৌতিক সংস্কৃতিৰ বিবিধ উপকৰণৰ উল্লিখনে সমাজ-জীৱনৰ স্বকীয়তা প্ৰকাশত অৰিহণা যোগায়। ইয়াৰ মাজেদিয়েই কোনো এটা জাতিৰ শৈল্পিক নিপুণতা, নান্দনিক চেতনা আৰু জীৱন-ধাৰণ প্ৰণালীৰ বিশিষ্টতা প্ৰকাশ পায়। বিহুগীতত অসমৰ ভৌতিক সংস্কৃতিৰ অন্তৰ্গত লোকশিল্পই সামৰা বিবিধ সামগ্ৰীৰ উপৰিও সাজপাৰৰ ছবি প্ৰকাশ পাইছে। বিহুগীতত সাজপাৰৰ উল্লিখনত প্ৰকাশ পোৱা অসমীয়া সমাজখনে জাতীয় ঐতিহ্যক বহন কৰিছে। সেয়েহে গৱেষণা পত্ৰখনত ‘বিহুগীতত প্ৰতিফলিত অসমীয়া পৰম্পৰাগত সাজপাৰ : এক বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন’ শীৰ্ষক বিষয়টি সম্বন্ধে আলোচনা কৰা হ’ব।

০.০২ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আৰু প্ৰয়োজনীয়তা :

অসমীয়া লোকগীতৰ ভঁৰাল সুন্দৰ কৰি ৰখা বিহুগীত আৰু নাম সমূহৰ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব আছে। বিশেষকৈ লোক-সাহিত্য আৰু লোক-সংস্কৃতি এই দুয়োটা দিশেই বিহুগীতত প্ৰকাশ পায়। সেয়ে বিহুগীতত অসমীয়া সাজপাৰৰ উল্লেখ

কেনেদৰে হৈছে, তাৰ বিচাৰৰ প্ৰসংগত কৰা এই আলোচনাৰ গুৰুত্ব আৰু প্ৰয়োজনীয়তা আছে।

০.০৩ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য :

(ক) লোক-সাহিত্যত লোক-সংস্কৃতিৰ সমল কেনেদৰে নিহিত হৈ আছে সেয়া বিচাৰ কৰা।

(খ) হুঁচৰি, বিহুনাংক আৰু বনঘোষাত অসমীয়া সাজপাৰৰ ছবি কেনেদৰে চিত্ৰিত হৈছে সেয়া বিচাৰ কৰা।

(গ) অসমীয়া বিহুগীত সমূহত কেনেদৰে সমাজ পৰিৱৰ্তনৰ লগে লগে ইয়াত প্ৰকাশিত সাজপাৰসমূহৰ পৰিৱৰ্তন হৈছে, সেই দিশসমূহ পোহৰলৈ অনাও এই আলোচনাৰ উদ্দেশ্য।

০.০৪ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ :

গৱেষণা পত্ৰখনৰ প্ৰস্তাৱিত বিষয়টোৰ বাবে কোনো এক নিৰ্দিষ্ট অঞ্চলৰ বিহুগীত বিশেষকৈ আলোচনা কৰা হোৱা নাই। সাধাৰণভাৱে অসমীয়া বিহুগীতত অসমীয়া সাজপাৰৰ উল্লেখৰ পৰিচয় দিবলৈহে চেষ্টা কৰা হৈছে। আলোচনাৰ পৰিসৰৰ বিস্তৃতিৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি - হুঁচৰি গীত, বিহুগীত আৰু বনঘোষাক সামৰি লোৱা হৈছে।

০.০৫ অধ্যয়নৰ উৎস আৰু পদ্ধতি :

নিৰ্বাচিত বিষয়টো আলোচনাৰ বাবে মুখ্য উৎস হিচাপে অসমীয়া হুঁচৰি গীত, বিহুনাংক, বিহুগীত আৰু বনঘোষাক লোৱা হৈছে। গৌণ উৎস হিচাপে পুথিভঁৰাল, বিভিন্ন গ্ৰন্থ, বিভিন্ন কাকত-আলোচনী, বিভিন্ন প্ৰবন্ধ আৰু ইণ্টাৰনেটৰ সহায় লোৱা হৈছে।

বিষয়বস্তু অধ্যয়নৰ ক্ষেত্ৰত বিশেষকৈ বিশেষণাত্মক আৰু বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে।

১.০০ মূল আলোচনা :

১.০১ অসমীয়া বস্ত্ৰশিল্পৰ চমু আভাস :

অসমৰ বস্ত্ৰ শিল্পৰ সামগ্ৰীসমূহক চাৰিটা ভাগত ভগাব পাৰি, যেনে- কপাহ, কস্মল, বন্ধ আৰু কোষজ। কপাহ, কপাহ গছৰ পৰা লৈ ধূনি, সূতা কাটি কপাহী বস্ত্ৰ তৈয়াৰ কৰা হয়। পশুৰ নোমৰ পৰা প্ৰস্তুত কৰা বস্ত্ৰ হৈছে কস্মল বস্ত্ৰ। গছৰ ছাল আৰু গছৰ আঁহৰ পৰা তৈয়াৰী বস্ত্ৰ বন্ধ বস্ত্ৰ আৰু কোষজ বস্ত্ৰ পলুৰ পৰা উৎপাদিত হয়। ‘কপাহৰ খেতি আৰু কপাহৰ সূতা কটা প্ৰথা অষ্ট্ৰিক সকলৰ অৱদান। চীন দেশৰ পৰাই তাঁতবোৰা প্ৰথা অসমলৈ আহে, লগতে

অসমত পাট আৰু মুগা শিল্প তেওঁলোকে আনে।^{১২}

অসমত বহুলভাৱে পোৱা পলুৰ পৰা উৎপাদিত সূতা দুটা শ্ৰেণীত ভাগ কৰিব পাৰি- এটা হৈছে বন্য আৰু আনটো প্ৰতিপালিত। পলুৰ পৰা পোৱা সূতা সমূহ যেনে- মুগা, এড়ী আৰু পাট। মুগা সূতা সোণবৰণীয়া ; ই টপা মুগা আৰু মেজাংকৰি মুগা নামেৰে জনাজাত। এড়ীসূতা ডাঠ, মাখন বৰণীয়া আৰু খহটা। পাট সূতা বগা আৰু এড়ী-মুগাতকৈ অধিক মসৃণ হোৱা দেখা যায়। ‘ৰামায়ণ-মহাভাৰতৰ যুগৰ পৰাই পাটশিল্পৰ কাৰণে অসমে খ্যাতি লাভ কৰি আহিছে। ৰামায়ণত অসমক ‘পলু পোহাৰ’ দেশ বুলি কোৱা হৈছে।^{১৩}

অসমীয়া সাজপাৰ অসমৰ জলবায়ু, অৰ্থনৈতিক অৱস্থা, জীৱিকাৰ বৃত্তি, সামাজিক মৰ্যাদা, সাংস্কৃতিক আৰু ধৰ্মীয় পৰম্পৰাৰ লগত জড়িত। যাৰবাবে অসমীয়া সাজপাৰৰ নিজস্ব বৈশিষ্ট্য ইয়াৰ প্ৰকৃতি, গুণ আৰু ৰূপৰ লগত সংযুক্ত হৈ আছে।

অসমীয়া মহিলাৰ তিনিপদ বস্ত্ৰ হৈছে - ৰিহা-মেখেলা-চাদৰ। এই বস্ত্ৰসমূহ অসমীয়া নাৰীয়ে নিজ হাতেৰে মুগা পলু, পাট পলু আৰু এড়ী পলু পালন কৰি তাৰ পৰা সূতা কাটি উলিয়াই মুগা সূতা, পাট সূতা, এড়ী সূতা প্ৰস্তুত কৰি তাৰ পৰা তৈয়াৰ কৰে।

মহিলাসকলৰ অনুপাতে পুৰুষসকলে চোলা, চুৰীয়া, গামোচা আদি ব্যৱহাৰ কৰে। আহোম শাসন ব্যৱস্থাত পদমৰ্যদা অনুসৰি বিষয়াসকলৰ সাজপাৰ নিৰ্ধাৰণ কৰা হৈছিল আৰু চেলেং কাপোৰ পাণ্ডুৰিৰ ব্যৱহাৰ কৰিছিল।

সময় আৰু ৰাজত্বৰ অন্তৰ্ধানত মহিলাসকলে খনীয়া কাপোৰ, চেলেং কাপোৰ ; পুৰুষসকলে টঙালি, বৰ-কাপোৰ, পাণ্ডুৰি আদি ব্যৱহাৰ কৰিছিল।

১.০২ অসমীয়া সাজপাৰত ফুলৰ চানেকি :

অসমীয়া শিপিনীয়ে ব্যৱহাৰ কৰা আৰ্হি বা নক্সা আৰু ফুলৰ চানেকি ভাৰতবৰ্ষৰ আন ঠাইৰ পৰা পৃথক। বিশেষকৈ অসমীয়া শিপিনীয়ে আঁচু দিয়া, গাৰি দিয়া, পাৰি দিয়া, কেঁচবছা আৰু ফুল বছা কাপোৰ ব্যৱহাৰ কৰে। এইবোৰৰ ব্যৱহাৰ হয় বিশেষকৈ ৰিহা, মেখেলা-চাদৰ আৰু গামোচাত। ফুলৰ চানেকিৰ ভিতৰত অসমৰ প্ৰকৃতিত পোৱা বিভিন্ন ফুল যেনে- পদুম, বাবৰি, টেঙেচি পাত, চম্পা ফুল, ঢেঁকীয়া লতা ইত্যাদি। জীৱ-জন্তু, চৰাই-চিৰিকটিৰ আৰ্হি যেনে- ম'ৰা,

হাঁহ-পাৰ, পখিলা, ভাটৌ, হৰিণ ইত্যাদি। অলংকাৰৰ আৰ্হি যেনে- জোনবিৰি, দুগদুগী, বেনা, থুৰীয়া আদি উল্লেখযোগ্য।

২.০০ বিহুগীতত অসমীয়া সাজপাৰৰ উল্লেখ :

অসমীয়া লোকসমাজত লোকশিল্পৰ অন্তৰ্গত বয়নশিল্পই অতি প্ৰাচীন কালৰ পৰাই এক বিশিষ্ট স্থান লাভ কৰি আহিছে। অসমীয়া বিহুগীতত সাজপাৰৰ উল্লেখ সন্টালনিকৈ পোৱা যায়। ইয়াৰ মাজেদিয়ে জাতিটোৰ নান্দনিকতাৰ লগতে শৈল্পিক নিপুণতাও প্ৰকাশ পায়।

মুগাৰ মছৰা, মাকো, মৰুৱা কাঠৰ যঁতৰ, কেতেকী চৰায়ে সৰু-সূতা কটাৰ প্ৰতীক চিত্ৰ, ঠেকেচি যঁতৰ ভঙাৰ উল্লেখ, ৰঙা ৰিহা গাত লোৱাৰ উল্লেখ, সৰু সূতাৰ চেলেং ইত্যাদি অজস্ৰ প্ৰসংগ বিহুগীতত পোৱা যায়। এই প্ৰসংগসমূহে অসমীয়া মানুহৰ জীৱনৰ লগত থকা বস্ত্ৰশিল্প আৰু সাজপাৰৰ অতি ঘনিষ্ঠ সম্পৰ্কৰ ইংগিত প্ৰদান কৰে। অসমীয়া নাৰীয়ে অতীজৰে পৰা নিজৰ সৌন্দৰ্য বৃদ্ধিৰ বাবে নানান প্ৰসাধন সামগ্ৰীৰ উপৰিও মুগাৰ সাজপাৰ বিহুৰ বতৰত পৰিধান কৰে। বিহুগীতসমূহত প্ৰকাশিত এনেবোৰ পৰম্পৰাগত সাজপাৰৰ যোগেদিয়েই নাৰীৰ সৌন্দৰ্যস্পৃহা আৰু পৰম্পৰাগত মানসিকতাৰ পৰিচয় পোৱা যায়।

২.০১ বিহুগীতত তাঁতশালৰ উল্লেখ :

এইখিনিতে অসমীয়া সমাজ-জীৱনৰ লগত তাঁতশালৰ অংগাংগী সম্বন্ধৰ কথা ক'ব পৰা যায়। বিহুগীতৰ মাজেৰে অসমীয়া জীয়াৰী-বোৱাৰীৰ একচেতীয়া সম্পত্তি এই তাঁতশালখনে তাৎপৰ্যপূৰ্ণ স্থান দখল কৰাও দেখা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে-

- (১) ৰাতিটোৰ ভিতৰত কাটে পাঁজিসূতা
পুৱালৈ তৰিলে তাঁত।
- (২) বহৌ তাঁত পাতত চকু আলিবাটত
মাকো সৰি সৰি পৰে।

২.০২ বিহুগীতত নাৰীৰ সাজপাৰৰ উল্লেখ :

বিহুগীতত সাজপাৰৰ প্ৰয়োগ আৰু বৈচিত্ৰ্য লক্ষ্য কৰিবলগীয়া। অসমীয়া বিহুগীত কেইটামানৰ উল্লেখৰ দ্বাৰা সাজপাৰৰ বৰ্ণনা দিয়া হ'ল। নাৰীৰ সাজপাৰৰ উল্লিখন থকা বিহুগীতৰ কিয়দংশ ; যেনে-

(ক) ৰিহাৰ উল্লেখ :

- (১) অ' আইতা লচপটী

বিহা ল'লা কেঁচ বাছি

দৰা ল'লা মন বাছি

(২) নিচিপৌ চিপৌচি এক অনা চিপ্

চিত কথা নক'লি কঁপা সূতা মুকলি

ঠেহ্ পাতি নাখালি ভাত

এপুৰা সেন্দুৰে জোৰ ফোঁট মাৰিলি

মুগা বিহা মেৰালি গাত।

(৩) হাতৰে শূৰনি হাতৰ গাম খাৰু

কঁকালৰ শূৰনি বিহা।

(৪) হাতে কি নো চাবা ভৰি কিনো চাবা

বুকুতে পদুমৰ কলি,

গাৰি দিয়া বিহাৰে ঢাকিব নালাগে

আপুনি উঠিছে ফুলি।

(৫) খোপাতে আঁৰি গ'ল কপৌফুল এপাহি

বুকুত আঁৰি গ'লি বিহা,

পৰম্পৰা অনুসৰি বিহুৰা গাভৰুৱে মুগাৰ বিহা-মেখেলা পিন্ধাটো অপৰিহাৰ্য্য। মেখেলাৰ ভিতৰত বুটাবছা, চাটন, গুণা কটা, শিংখাপ আৰু মেজাংকৰি মেখেলাৰ লগতে বঙা বঙৰ গুটি ফুলৰ হাচতি ব্যৱহাৰ কৰে। বিহুগীতত উল্লেখ থকা বিহাখনৰ আঁৰি কেঁচ বহা, গাৰি দিয়া বিহা; মেখেলাখন মুগা, সৰু ফুল বহা লগত বঙা চোলা। যৌৱনৰ উন্মুক্ত প্ৰকাশ ঘটা বিহুগীতসমূহত নাৰীয়ে বিহাখনেৰে বুকু ঢাকি লৈ কঁকালত মেৰিয়াই পিন্ধাৰ কথা স্বভাৱ কবিয়ে গীতসমূহত প্ৰকাশ কৰিছে।

আকৌ ওচৰত নোপোৱা বস্তু উপহাৰ হিচাপে দূৰণিৰ দেশৰ পৰা চেনাইয়ে আনি দিয়াৰ উল্লেখ আৰু চেনাইৰ বাবে মৰমৰ আৰু মূল্যবান সাজ শিংখাপযোৰ দলিয়াই দিয়াৰ উল্লেখো বিহুগীতত বিদ্যমান।

(১) ক'লা চোলাই নুশুৱাই তোকে ঐ সাদৰী

বগা চোলাই নুশুৱাই তোকে

বংপুৰ জিলাতে আছে বঙা চোলা

আনি দিম শূৱাৰ তোকে।

পেৰাৰে শিংখাপ দি যাম দলিয়াই

বেহাই যাম প্ৰেমৰে বেহা।

(খ) বঙা চোলাৰ উল্লেখ :

মুগাৰ বিহা মেখেলাৰ লগত বিহুৱতীয়ে পিন্ধা বঙা চোলাটোৱে বিহুৱতীৰ ৰূপ-সৌন্দৰ্য বৰ্দ্ধন কৰিছিল। বিহুগীতত বঙা চোলাটোৰ বৰ্ণনা এনেদৰে আছে -

(১) বঙাকৈ চোলাটি এভনী কোনে চিলাই দিলে

ভনী কোনে বোলাই দিলে ভনী।

(২) অতি বঙা চোলা অ'ৰহেদৈ

নিপিন্ধিবা নাচনী, অ'ৰহেদৈ

চকুত চাটে মাৰি ধৰে ৰহেদৈ।

২.০৩ বিহুগীতত পুৰুষৰ সাজপাৰৰ উল্লেখ :

বিহুগীতত গামোচা, টঙালি, চুৰীয়াৰ উল্লেখ এনেদৰে পোৱা যায় -

(১) আজি বিহু বিহু কালি বিহু বিহু

আমাৰ বিহু কাপোৰ নাই ;

সমনীয়াই সুধিলে কমে কি এবুলি

সৰুতে ঢুকালে আই।

(২) মৰমৰ দীঘে দি চেনেহৰ বাণিৰে

বিহুৱান এজুতি ব'লো,

চেগ চাই বাছিলো চকুৰে লগাখিনি

তোমালৈয়ে বুলি থ'লো।

(৩) আৰু বেলি বিহুতে গামোচা খুজিলোঁ

এইবেলি কাটিছ পাঁজি।

কেলেই লাগিছে একেখন গামোচা

আনি ল'ম তোতকৈ কাজী।

(৪) তুমি কৰি যাবা ৰোৱনী দাৱনি

মইনো বাই যাম হাল

তুমি লগাই ল'বা বিহুৰে গামোচা

মইনো পাতি দিম শাল।

(৫) গামোচা বৈয়ে দিম চুৰীয়া বৈয়ে দিম

সাজি দিবা চেৰেকী উষা।

(৬) বাটে বুলিবৰ পদূলি পদূলি

তুমি কোন গাঁৱৰে ডেকা,

চুৰীয়াৰ ওপৰত বচোৱাল মাৰিছা

তোমাৰে হাঁচতি ফটা।

(৭) হাতে মেলি মেলি ব'লা ঐ আইদেউ

ভৰি মেলি মেলি ব'লা;

বছৰেকৰ বিহুটিত ৰাইজক নিদিলা

কালৈ সামৰি থ'লা।

(৮) ৰঙাকৈ গামোচা মাৰে শেল দিয়া

তুমি তামোল কাটি খোৱা।

গীতসমূহত গামোচাৰ উল্লেখ মনকৰিবলগীয়া। অসমৰ পৰম্পৰাগত জাতীয় প্ৰতীক স্বৰূপ গামোচাখন হেঁপাহেৰে বৈ নিজৰ প্ৰিয়জনক বিহুত উপহাৰ দিয়াটো অসমীয়া লোকৰ পৰম্পৰা। মনৰ ভাব প্ৰকাশ কৰি বিহুৰতীয়ে মৰমৰ দীঘ আৰু চেনেহৰ বাণীৰে মুকুতা বাচি চেনাইলৈ সাঁচি থয় বিহুৱান। তাঁতশালখনক ৰজিতা খুৱাই স্বভাৱ কবিয়ে বিহুগীতত সুৰ আৰোপ কৰিছে। উদ্ভৱত নাচনীয়ে কৈছে গামোচা, চুৰিয়া সকলো চেনাইৰ কাৰণে বৈ দিব পাৰিব, যদিহে তাঁতশালৰ সঁজুলি সাজি দিব পাৰে। প্ৰেয়সীয়ে গামোচা বৈ নিদিয়াৰ কাৰণে চেনাইয়ে খং প্ৰকাশ কৰাও বিহুগীতত প্ৰকাশ পাইছে। আকৌ বিহুগীতত টঙালিৰ উল্লেখো বিদ্যমান। বিহুৱা ডেকাই কঁকালত মেৰিয়াই বন্ধা গুটা বচা ৰঙা ৰঙৰ টঙালিখন বিহুৰ অপৰিহাৰ্য অংগ স্বৰূপ।

গীতসমূহ লোকজীৱনৰ জীৱন-জীৱিকা আৰু সংগ্ৰামৰ পটভূমিত ৰচিত হোৱা বাবে এইবোৰৰ লহৰে লহৰে শ্ৰমৰ গুৰুত্ব আৰু মৰ্যাদা প্ৰকাশ পাইছে। একেদৰে অসমীয়া তাঁতশালখনো ইয়াত উল্লেখযোগ্য। জীৱন যুঁজত পুৰুষ আৰু নাৰীৰ একত্ৰ সহযোগিতাৰ ছবিও ইয়াত প্ৰকাশ পাইছে। আকৌ লহৰী খেলত ডেকাসকলে ইজনে সিজনৰ হাতত বা কঁকালত ধৰা-ধৰিকৈ বৃত্তাকাৰে ঘূৰি ঘূৰি নচা প্ৰক্ৰিয়াত হাঁচতিৰ উল্লেখ মন কৰিবলগীয়া -

(১) ক'তে গৈ আছিল বিহু ধেমেলীয়া

কান্ধতে হাঁচতি লৈ ঐ লহৰীয়া।

(২) ধনলৈ বুলি হাঁচতি বৈছিলোঁ

ফুলতে লাগিলে কেণা

কোনজন ঈশ্বৰে তোমাৰে আমাৰে

ভাঙিব জীৱনৰ জেঙা।

২.০৪ আহোম যুগ আৰু বৃটিছ শাসনকালৰ বিৱৰণত থকা বিহুগীতত সাজপাৰৰ উল্লেখ :

যুগ পৰিৱৰ্তনৰ লগে লগে পূৰ্বৰ গছতল, নৈৰ-ঘাট, ৰজা, ডা-ডাঙৰীয়া, গৃহস্থৰ চোতালৰ বিহু মঞ্চ অভিমুখী

হ'ল। যাৰবাবে পুৰণিকালৰ বিহুৰ সাজপাৰ আৰু আহোম যুগৰ সাজপাৰৰ মাজত আংশিক পৰিৱৰ্তনে দেখা দিলে। আহোম ৰাজত্বৰ আগৰ সময়চোৱাত সৰ্বসাধাৰণ লোকসকলে কপাহী কাপোৰ ব্যৱহাৰ কৰিছিল। আহোম স্বৰ্গদেউ ৰুদ্ৰসিংহই গছতলৰ বিহুক ৰংপুৰৰ বাকৰিত অন্তৰ্ভুক্ত কৰি ৰজাঘৰীয়া মৰ্যাদা প্ৰদান কৰাৰ পিছৰে পৰা সচ্ছল আৰু আচ্যৱন্ত লোকসকলো 'মুগা বা গোমচেং বা পাটৰ চুৰিয়া, চোলা, পাণ্ডৰি আৰু টঙালি ব্যৱহাৰ কৰিছিল।'^৪ যাৰ বাবে এই সময়ত ৰচিত বিহুগীতত আহোম স্বৰ্গদেউৰ পৰম্পৰাগত সাজপাৰৰ উল্লেখ পোৱা যায়। উদাহৰণস্বৰূপে -

(১) স্বৰ্গদেউ ওলালে বাটচ'ৰাৰ মুখলৈ

দুলীয়াই পতিলে দোলা

কাণত জিলিকিলে নৰা জাংফাই

গাত গোমচেঙৰ চোলা।

(২) ত'তে দেখিলোঁ এতেকে চিনিলাঁ

মোৰ ধনৰ এযুৰি ভৰি

শালেকটা চুৰিয়া গুণাকটা পাণ্ডৰি

আহেনো তিৰেবিৰে কৰি।

অসমীয়া ৰণুৱাই বঙাল মাৰিবলৈ যাওঁতে অসমীয়া জীয়ৰী-বোৱাৰীয়ে একে ৰাতিৰ ভিতৰতে কপাহ ধুনি, পাঁজি, কাটি, সূতা কাটি কাপোৰ বৈ দিয়া আৰু অসমীয়া ৰণুৱাই তেনে কৰচ কাপোৰ পিন্ধিহে যুদ্ধলৈ যোৱাৰ কথা বিহুগীতসমূহত প্ৰকাশ পাইছে।

(১) সান্দহ খুন্দি দিয়া খাওঁ প্ৰাণেশ্বৰী

চিৰা খুন্দি দিয়া খাওঁ

ৰাতিৰ ভিতৰতে কাপোৰ বৈ দিয়া

বঙাল মাৰিবলৈ যাওঁ।

(২) ইটো পৰ্বতত কুকুৰা কাটিলো সিটো পৰ্বতত তেজ

নাচনীৰ মূৰতে গুটিফুলৰ গামোচা

যেন ম'ৰা চৰাইৰ নেজ।

(৩) ৰাতি দুপৰলৈ চেনাই ঐ কাটি সূতালাহি

চেনাই ঐ ধনলৈ বিহুৱান ব'লো,

ৰঙাকৈ আঁচুৰে চেনাই ঐ বাছি পাণে কটা

চেনাই ঐ টিপতে লুকুৱাই থ'লো।

পৰৱৰ্তী সময়ত বৃটিছ শাসনত ৰচিত বিহুগীতত প্ৰকাশ পোৱা পুৰুষৰ সাজপাৰ এনেধৰণৰ -

(১) চেহাব আহি আহি বাগিচা খুলিলে

মূৰত চৰু হেন টুপী

কুলিৰে ছোৱালীক মেমনী কৰিলে
মুখত চেলেউডাল ছপি।

৩.০০ বৰ্তমান সময়ত বিহুৰ সাজপাৰৰ পৰিৱৰ্তন :

সাজপাৰৰ জৰিয়তে এটা জাতিৰ সংস্কৃতিৰ লগতে জাতিটোৰ সৌন্দৰ্যবোধ, অৰ্থনৈতিক অৱস্থা আৰু ভৌগলিক অৱস্থান আদি সুন্দৰভাৱে অনুধাৱন কৰিব পাৰি। সাজপাৰ, সাজপাৰত ব্যৱহৃত ফুল, ফুলৰ আৰ্হি, ইয়াৰ প্ৰস্তুত প্ৰণালী আদিয়ে এটা জাতিৰ সাংস্কৃতিক বুৰঞ্জী, কাৰিকৰী দিশৰ উন্নতি আৰু মানসিক দিশৰ বিকাশ আদিৰ পৰিচয় দিয়ে।

বিহুৰ সাজপাৰৰ সন্দৰ্ভত ‘১৯৮৫ চনৰ ৫ - ৬ এপ্ৰিলত যোৰহাটত আৰু একেটা বছৰতে নগাঁৱত অনুষ্ঠিত কৰ্মশালাত সাজপাৰ সম্পৰ্কত কিছুমান সিদ্ধান্ত গ্ৰহণ কৰা হয়।’^৫ বিমানচন্দ্ৰ হাজৰিকাই উল্লেখ কৰা তথ্য অনুসৰি পুৰুষৰ সাজপাৰ- ‘আঁঠুৰ ঘিলা ঢাক খোৱাকৈ কপাহী বা মুগাৰ চুৰিয়া (চুৰিয়াৰ এটা আগ পোন্ধ মাৰি আনটো আগ আগফালে চুটিকৈ থোৰ মাৰি পিছিব লাগিব), গাত ফটু বা এঙা চোলা (আগফালে মুগাৰ আৰু পিছফালে ক’লা চিৰুৰ কাপোৰে চিলোৱা), মূৰত ৰঙা ফুলৰ গামোচা, কঁকালত টঙালি, হাতত সৰু গাঁঠিৰ ওপৰত গুটি ফুলৰ বা ৰঙা ফুল থকা হাচতি বা (ৰুমাল)।’^৬

চাদৰ, মেখেলা আৰু চোলা পিন্ধি ৰাতি বিহু আৰু গাভৰু বিহু নাচ নচা বিহুৱতীৰ সাজপাৰ সম্পৰ্কেও উপৰিউক্ত কৰ্মশালাত সিদ্ধান্ত গ্ৰহণ কৰা হয়। সেই অনুসৰি বিহুৱতীৰ সাজপাৰ - মুগাৰ ৰিহা-মেখেলা, বা চাদৰ-মেখেলা, ৰঙা চোলা বা ব্লাউজ আৰু কঁকালত ৰঙা-মুগা বা বগা বৰণৰ গুটি ফুলৰ হাচতি ব্যৱহাৰ কৰাৰ কথা গ্ৰহণ কৰা হয়। বৰ্তমান সময়ত বিভিন্ন ভাৰতীয় নিউজ চেনেল বা ৰিয়েলিটি শ্ব’ বিলাকত প্ৰদৰ্শিত বিহুনৃত্যত অসমীয়া সাজপাৰে স্বকীয়তা হেৰুৱাই পৰিৱৰ্তন হোৱা দেখা গৈছে। এই ক্ষেত্ৰত নগেন শইকীয়াদেৱে কোৱা কথাষাৰ প্ৰণিধানযোগ্য- ‘জীৱন-যাপনৰ বাবে আৱশ্যকীয় সকলো বিষয় সংগ্ৰহ, প্ৰস্তুত, নিৰ্মাণ, সংৰক্ষণ আৰু ব্যৱহাৰ কৰা পদ্ধতিৰ পৰিৱৰ্তন সাধন কৰি উন্নততৰ অৱস্থালৈ লৈ যোৱাৰ মাজেদিয়েই মানুহৰ সভ্যতাৰ ক্ৰমবিকাশ ঘটে।’^৭

৪.০০ প্ৰত্যাহ্বান আৰু সম্ভাৱনীয়তা :

সাম্প্ৰতিক সময়ৰ যান্ত্ৰিকতা বা কৃত্ৰিমতা বা চহৰমুখিতাৰ লগতে যুগৰ দাবীয়ে সকলো ক্ষেত্ৰতে

প্ৰত্যাহ্বানৰ সৃষ্টি কৰিছে। সাম্প্ৰতিক সময়ত বিহুৰ সময়ত হোৱা বিহুমেল্লা, বিহু প্ৰদৰ্শনী আদিয়ে বিহুক অধিক খবছী আৰু বৰ্হিমুখী কৰি তুলিছে। ইয়াৰ উপৰিও বিহুক কেন্দ্ৰ কৰি উদ্‌যাপন হোৱা বিহু সন্ধিয়াবোৰত বিহুসুৰীয়া গীতৰ তালে তালে বিভিন্ন সাজপাৰ পিন্ধা ডেকা-গাভৰুৱে নৃত্য কৰা দেখা যায়, লগতে বৰ্তমানৰ আৰ্থিক স্বচ্ছলতাৰ বাবে শিল্পীসকলে ব্যৱহাৰ কৰা বৰ্তমান সময়ৰ ইণ্টাৰনেটৰ বিভিন্ন সামাজিক মাধ্যম যেনে- Facebook, Youtube আদিত প্ৰচাৰ হোৱা বিহুসুৰীয়া গীতসমূহত শিল্পীসকলে বিভিন্ন ৰঙ আৰু বিভিন্ন আৰ্হিৰ পোছাক পিন্ধা পৰিলক্ষিত হয়।

পৰিৱৰ্তনৰ কিছুমান সুফলো দেখা পোৱা যায়। বিশেষকৈ বিহুক ২০২৩ চনত ৰাষ্ট্ৰীয় দৰবাৰলৈ আগবঢ়াই লৈ যোৱাৰ ক্ষেত্ৰত বৰ্তমানৰ অসমৰ মুখ্যমন্ত্ৰীয়ে আগভাগ লৈ বিশ্ব ৰেকৰ্ড গঢ়ি তুলিবলৈ সক্ষম হৈছে। যাৰবাবে বিহুৰ সাজপাৰে ৰাষ্ট্ৰীয় মৰ্যাদা পাইছে আৰু সমাদৰ বৃদ্ধি হৈছে। লগতে অসমীয়া গামোচাত জিঅ’টেগৰ ব্যৱহাৰে অসমৰ স্বাভিমান গামোচাখনক সন্মান প্ৰদান কৰিলে। ইয়াৰ লগে লগে অসমীয়া বিহুৱতীয়ে পৰিধান কৰা ৰিহা-মেখেলা আৰু বিহুৱাই পৰিধান কৰা গামোচাই এক সম্ভাৱনীয়তা কঢ়িয়াই আনিছে আৰু অসমৰ বস্তুশিল্পই এক নতুন মাত্ৰা লাভ কৰিছে।

৫.০০ সিদ্ধান্ত :

(১) লোক-সাহিত্যত লোক-সংস্কৃতিৰ সমল নিহিত হৈ থকাৰ কথাটো বিহুগীতৰ উল্লেখত বিহুৱা আৰু বিহুৱতীয়ে পৰিধান কৰা সাজপাৰৰ জৰিয়তে অৱগত হ’ল।

(২) সময়ৰ পৰিৱৰ্তনৰ লগতে সংস্কৃতিৰো পৰিৱৰ্তন হয়, সেই কথা বিহুত পুৰুষ-নাৰী উভয়ে পৰিধান কৰা সাজপাৰৰ পৰা জনা গ’ল।

(৩) আধুনিকীকৰণৰ নামত যাতে অধিক পৰিৱৰ্তন আনিবলৈ চেষ্টা নকৰি পুৰণি আৰু নতুনৰ মাজত এক ভাৰসাম্য ৰক্ষা কৰিব পৰা যায়, তাৰ প্ৰতি যুৱ প্ৰজন্ম সচেতন হোৱা প্ৰয়োজন।

(৪) গতিশীল সময়ত কেনো কাৰণতে বিহুত ব্যৱহৃত পৰম্পৰাগত সাজপাৰৰ স্বকীয় মৰ্যাদা যাতে লাঘৱ নহয়, তাৰ বাবে শিক্ষিত লোকসকল সচেতন হোৱাৰ উপৰিও নিজ দেশৰ নৱ-প্ৰজন্মক জ্ঞান দিয়াৰ চেষ্টা কৰিব লাগিব।

(৫) এইক্ষেত্ৰত নৱ-প্ৰজন্ম আগ্ৰহী হ'ব লাগিব আৰু নিজৰ জাতীয় ঐতিহ্য বহনকাৰী সাজপোছাক বিহুৰ সময়ত পিন্ধিব লাগিব।

৬.০০ সামৰণি :

বিহু অসমৰ জনসাধাৰণৰ জাতীয় উৎসৱ। বিহুৰ সৃষ্টি হৈছে অসমৰ কৃষিজীৱি লোকজীৱনৰ প্ৰাত্যহিকতাৰ অনুভৱ-অনুভূতিৰ প্ৰকাশ হিচাপে। এনেদৰে অসমীয়া বিহুগীতত প্ৰকাশ হোৱা সাজ-পোছাকে অসমীয়া সমাজৰ

স্বকীয়তাক তুলি ধৰাত সহায় কৰিছে। বিহু গছ তলৰ পৰা মঞ্চ অভিমুখী হোৱালৈ লক্ষ্য কৰি গীতমাতৰ লগতে সাজপাৰৰো আংশিক পৰিৱৰ্তন সাধন হৈছে। এই পৰিৱৰ্তন কিন্তু বৰ্তমানৰ পটভূমিত চালে পুৰণি বিহুৰ পৰা অভিন্ন নহয়। কাৰণ সংস্কৃতি পৰিৱৰ্তনশীল। যাৰবাবে সময়ৰ লগত হোৱা পৰিৱৰ্তন গ্ৰহণযোগ্য বুলি বিবেচনা কৰিব পাৰি। কিন্তু মূলসুঁতিৰ পৰা এৰি আহিলে জাতিৰ অস্তিত্বৰ সংকট দেখা দিব। □

পাদটীকা :

- (১) প্ৰফুল্ল দত্ত গোস্বামী, অসমীয়া জন-সাহিত্য, পৃ. ১৫
- (২) বিৰিঞ্চি কুমাৰ বৰুৱা, অসমীয়া ভাষা আৰু সংস্কৃতি, পৃ. ১০১
- (৩) বিৰিঞ্চি কুমাৰ বৰুৱা, অসমৰ লোক-সংস্কৃতি, পৃ. ১৯১
- (৪) বিমান চন্দ্ৰ হাজৰিকা, বিহুৰ সাজপাৰ, অলংকাৰ আৰু বাদ্য (প্ৰবন্ধ), পৃ. ১১০
- (৫) উল্লিখিত, পৃ. ১১০
- (৬) উল্লিখিত, পৃ. ১১১
- (৭) নগেন শইকীয়া - অসমৰ সমাজ-বিৱৰ্তনৰ স্বৰূপ (প্ৰবন্ধ), পৃ. ২৩

গ্ৰন্থপঞ্জী :

- (১) গগৈ লীলা, অসমৰ লোক-সংস্কৃতি, বীণা লাইব্ৰেৰী, তৃতীয় সংস্কৰণ, গুৱাহাটী - ১৯৯০
- (২) গোস্বামী, প্ৰফুল্ল দত্ত, অসমীয়া জন সাহিত্য, বাণী প্ৰকাশ মন্দিৰ, গুৱাহাটী - ২০১৮
- (৩) বৰদলৈ, নিৰ্মলপ্ৰভা, অসমৰ লোক-সংস্কৃতি, বীণা লাইব্ৰেৰী, দ্বিতীয় প্ৰকাশ, গুৱাহাটী - ১৯৯৬
- (৪) বৰুৱা, বিৰিঞ্চি কুমাৰ, অসমৰ লোক-সংস্কৃতি, বীণা লাইব্ৰেৰী, ১০ম সংস্কৰণ, গুৱাহাটী - ২০১১
- (৫) বৰুৱা, বিৰিঞ্চি কুমাৰ, অসমীয়া ভাষা আৰু সংস্কৃতি, লয়াৰ্ছ বুক ষ্টল, গুৱাহাটী - ১৯৫৭
- (৬) বুজৰবৰুৱা, পল্লৱী ডেকা (সম্পা.) সমাজ সংস্কৃতি ইতিহাস, সদৌ অসম ছাত্ৰ সন্থাৰ দ্বাৰা প্ৰকাশিত, দ্বিতীয় প্ৰকাশ - ২০১৯
- (৭) ভট্টাচাৰ্য, বসন্ত কুমাৰ, অসমীয়া লোকগীত সমীক্ষা, চন্দ্ৰ প্ৰকাশ, দ্বিতীয় প্ৰকাশ, গুৱাহাটী - ০১

আলোচনী :

- (১) লক্ষৰ, শংকৰ (সম্পা.) অসমীয়া খবৰ, বসন্ত সংখ্যা - ২০১৬

সামাজিক পুঁজি আৰু সমাজ পৰিৱৰ্তন : ডাইনী হত্যাৰ বিৰুদ্ধে বীৰৱালা ৰাভাৰ সংগ্ৰামৰ এক আলোচনা



জ্যোতিষ্মিতা ভূঞা

গৱেষক, ৰাজনীতি বিজ্ঞান বিভাগ
ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়
ডিব্ৰুগড়, অসম - ৭৮৬০০৪
☎ ৮৪৮৬৯১৬০৮২
✉ bjoyotishmita@gmail.com

সাৰাংশ :

বৈচিত্ৰ্যময় ঐতিহ্য, পৰম্পৰাৰ বাবে পৰিচিত ভাৰতবৰ্ষৰ অন্যতম ৰাজ্য অসমে সম্প্ৰতি 'মিছন বীৰৱালা' নামৰ স্বেচ্ছাসেৱী সংগঠনটিৰ অন্ধবিশ্বাস আৰু কু-সংস্কাৰ দূৰীকৰণৰ আশাশুধীয়া প্ৰচেষ্টাৰ জৰিয়তে ৰাষ্ট্ৰীয় আৰু আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় প্ৰেক্ষাপটত সমাদৰ লাভ কৰিছে। ডাইনী-হত্যা বিৰোধী এই সংগ্ৰাম মূলতঃ বীৰৱালা ৰাভা নামৰ এগৰাকী মহিলাৰ একক চিন্তাৰ ফল, যি নিজেই ডাইনীৰ সন্দেহত সমাজৰ পৰা বহিষ্কৃত হ'ব লগা হৈছিল। কেইবা দশকযোৰা বীৰৱালা ৰাভাৰ এই সংগ্ৰামে অসমীয়া সমাজ জীৱনত এক ইতিবাচক পৰিৱৰ্তনৰ বাট মুকলি কৰিছে, যি পৰিৱৰ্তন বৰ্তমানৰ লগতে এক সমৃদ্ধিশালী ভৱিষ্যতৰ সোপান।

এনে এখন সমাজ য'ত ডাইনী এক সময় আধাৰিত পৰম্পৰা, তেনে এখন সমাজৰ পৰা ডাইনীৰ অভিধাক মচি পেলোৱাৰ বাবে বীৰৱালা ৰাভাৰ সাহসী যাত্ৰা এক আলোচ্য বিষয়। কিদৰে বীৰৱালা ৰাভাৰ চিন্তা আৰু আদৰ্শই এখন সমাজক পোহৰমুখী কৰিছিল, কিদৰে সেই পোহৰে বৰ্তমানৰ সমাজখনক ডাইনী নামৰ এন্ধাৰৰ পৰা পৰিত্যাগ দিছে- সেই দিশটিকে এই প্ৰবন্ধত আলোচনা কৰা হৈছে।

মূলশব্দ :

ডাইনী হত্যা, মিছন বীৰৱালা, সামাজিক পুঁজি, ওজা / কবিৰাজ

পাতনি :

মানৱ সমাজৰ স্বৰ্ণিল আশাশুধীয়া উত্তৰণৰ বাটটোৰ সমান্তৰালকৈ এন্ধাৰ হাবিতলীয়া বাট এটাইও মানুহক আদিৰে পৰা বিভ্ৰান্ত কৰি আহিছে। পৰম্পৰাগত বিশ্বাস কিস্বা অন্ধবিশ্বাসৰ এই বাটটোয়ে মানুহক পোহৰ আৰু এন্ধাৰৰ, জীৱন আৰু মৃত্যুৰ চিনি উলিয়াব নোৱাৰা সীমান্তত এৰি থৈ আহে। একবিংশ শতিকাৰ বিকাশ আৰু বিজ্ঞানধৰ্মী চিন্তা-চেতনাক অংগুষ্ঠ প্ৰদৰ্শন কৰি একাংশৰ মনস্তত্ত্বক অৱদমন কৰা তেনে এক বিভ্ৰান্তি 'ডাইনী'। প্ৰান্তীয়, জনজাতীয়, অনক্ষৰ, অনগ্ৰসৰ সমাজ একোখনৰ বাবে আজিও ৰোগ, আকাল, খৰাং, মহামাৰী আদি অনেক সমস্যাৰ কেৱল আৰু কেৱল কাৰণ ডাইনী। বৈজ্ঞানিক মননশীলতাৰ হাজাৰ বৰ্ণনাই তেওঁলোকৰ 'ওজা' অথবা 'দেওধনী'ৰ প্ৰতি থকা বিশ্বাস আৰু প্ৰভুত্বক টোকৰ মাৰিব নোৱাৰে, তেওঁলোকৰ অনগ্ৰসৰতাৰ নিষ্পাপ চিকাৰবোৰৰ অধিকাৰ, প্ৰাপ্য আৰু অসহায়বোধৰ প্ৰশ্নই তেওঁলোকক জুৰুলা কৰিব নোৱাৰে।

তেনে এক প্ৰান্তীয়, অনগ্ৰসৰ, জনজাতীয় সমাজৰ অতি সাধাৰণভাৱে জীৱন অতিবাহিত কৰিও চিন্তা আৰু কৰ্মৰে ব্যতিক্ৰমী এক ব্যক্তিত্ব বীৰৱালা ৰাভা- যি



ড° প্ৰিয়ংকা শৰ্মা

সহকাৰী অধ্যাপিকা
ৰাজনীতি বিজ্ঞান বিভাগ
ডিব্ৰুগড় বিশ্ববিদ্যালয়, ডিব্ৰুগড়
অসম - ৭৮৬০০৪
☎ ৮৭৫২৯৫৪১৪২
✉ priyankasharma@dibru.ac.in

সমাজৰ ডাইনী, ওজা আৰু দেওধনীৰ প্ৰতি থকা মানুহৰ বিশ্বাসক বৈজ্ঞানিক চিন্তাৰে প্ৰত্যাহ্বান জনাইছিল। অভিশপ্ত সমাজ একোখনত শিপাই থকা জনবিশ্বাস এটাক উভালি পেলোৱা নিশ্চয়কৈ সৰু কথা নহয়। সমুখৰ পাহাৰ সদৃশ বৈপৰীত্য চিন্তাটোক আওকাণ কৰি বীৰুৱালা ৰাভাই সাহস কৰিছিল সহবাস কৰা সমাজখনৰ কলুষিত জীৱন প্ৰণালীক পবিত্ৰ কৰিবলৈ, চেষ্টা কৰিছিল অন্ধবিশ্বাসৰ অচিলা লৈ মানুহৰ মাজত লুকাই থকা অপৰাধ প্ৰৱণতাৰ বিৰুদ্ধে অকলে আৰম্ভ কৰা যাত্ৰাটোক ডাইনী বিৰোধী এক জনমতৰ ৰূপ দিবলৈ। সমাজে এঘৰীয়া কৰাৰ পৰা তেখেতৰ নামত এক জন অভ্যুত্থান সহজ কথা নাছিল। প্ৰাথমিক বিদ্যালয় শেষ নকৰা এগৰাকী মহিলাই অহিংসা নীতিৰে ৩৫ জনতকৈ অধিক অসহায় মানুহক পশুৰূপী এজাক মানুহৰ বৰ্বৰ আত্মবিকতাৰ পৰা ৰক্ষা কৰাৰ পৰিক্ৰমা নিতান্তই এক সংগ্ৰামজৰ্জৰ অধ্যায়। সমাজৰ পৰা বহিষ্কৃত হোৱা একেগৰাকী বীৰুৱালা ৰাভাৰ সেইখন সমাজতে চিন্তাৰ স্বীকৃতি উল্লেখনীয়। সেই বাবেই মৃত্যুৰ পিছতো বীৰুৱালা ৰাভা ডাইনী অভিহিত হোৱা সকলৰ বাবে আশাৰ পোহৰ। গতিকে, এই প্ৰবন্ধৰ যোগেদি আলোচনা কৰাৰ চেষ্টা কৰা হৈছে কেনেদৰে সমাজত থাকি, সমাজৰ হৈ, সমাজৰ হকে বীৰুৱালা ৰাভাই মূল্যবোধৰ ন- দিগন্তৰ সূচনা কৰিছিল।

বীৰুৱালা ৰাভাৰ জীৱনভিত্তিক বৰ্ণনামূলক আলোচনাটি কৰিবলৈ যাওঁতে প্ৰধানতঃ দ্বিতীয় উৎসৰ ওপৰত নিৰ্ভৰ কৰা হৈছে। ডাইনীৰ আৰম্ভণি, বিৱৰ্তন আৰু সামাজিক পুঁজি আদিৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰোঁতে বিভিন্ন পত্ৰ আৰু প্ৰবন্ধৰ সহায় লোৱা হৈছে। তাৰোপৰি, অসম আৰু ডাইনীৰ সম্পৰ্কে উপলব্ধ বিভিন্ন গৱেষণা পত্ৰৰ পৰা সংজ্ঞা, তথ্য আৰু বিভিন্ন সম্পৰ্কিত বিষয়সমূহৰ উদ্ধৃতি লোৱা হৈছে। বিশিষ্ট উপন্যাসিক গোবিন্দ কুমাৰ খাউণ্ডৰ দ্বাৰা ৰচিত ‘বগী’ শীৰ্ষক উপন্যাসখনৰ বিষয় আৰু গতিশীলতাৰ ওপৰত পত্ৰখনিৰ নিৰ্ভৰশীলতা অনস্বীকাৰ্য। ইয়াৰ লগতে, বীৰুৱালা ৰাভাৰ ডাইনী বিৰোধী যুঁজৰ সম্যক জ্ঞানৰ বাবে তেখেতৰ আৰু আত্মীয় তথা সহকৰ্মীৰ সাক্ষাৎকাৰৰ প্ৰতিবেদন আৰু তেখেতৰ জীৱনভিত্তিক ডকুমেন্টৰীসমূহ এই আলোচনাৰ অন্যতম দ্বিতীয় উৎস।

সামাজিক সমস্যা হিচাপে ডাইনী হত্যা :

মানৱতা আৰু মানৱ অধিকাৰৰ পৰিপন্থী ডাইনী হত্যা মূলতঃ অন্ধবিশ্বাস। আধুনিক শিক্ষা আৰু বৈজ্ঞানিক

চিন্তাধাৰাৰ গতিশীলতাৰ মাজতো আমাৰ সমাজ ব্যৱস্থাত অন্ধবিশ্বাসৰ অৱস্থিতি নুই কৰিব নোৱাৰি। ডাইনী হত্যা বা ডাইনী চিকাৰৰ যদিও এক বিশ্বব্যাপী অৱস্থিতি আছে, তথাপি অসমত এই কাৰ্যকলাপৰ সৈতে সংপৃক্ত মূল কাৰকসমূহ হৈছে — স্থানীয় জনজাতীয় পৰম্পৰা, পিতৃতান্ত্ৰিক গাঁথনি, অৰ্থনৈতিক গতিশীলতা আৰু সামাজিক ৰীতি-নীতি (সন্দিকৈ আৰু সিং, ২০২৫, পৃঃ ১)। গোবিন্দ কুমাৰ খাউণ্ডে বীৰুৱালা ৰাভাৰ উক্তিৰে সেয়ে ‘বগী’ৰ পাতত লিখিছে— “ডাইনী- একোজন মানুহৰূপী পিশাচৰ সু-চতুৰ পৰিকল্পনা। প্ৰথমে সন্দেহ, তাৰপিছত সমাজৰ অসংখ্য চকুৰ অচেতন চাৰনি কোপদৃষ্টি হৈ পৰে ডাইনী অপৰ্যায়ৰে নিৰ্দ্দিত হোৱাজনৰ ওপৰত। শেষত- হত্যা, মৰা-কটা অনেকখিনি হয় ডাইনী সজোৱাৰ নামত। ব্যক্তিগত আক্ৰোশ, স্বার্থ, স্বজন- তোষণ, হিংসা, খেয়ালি, কু- সংস্কাৰ, অন্ধবিশ্বাস আদি বহুসময়ত হৈ পৰে ডাইনী সজোৱাৰ কাৰক। আখেজ প্ৰতিশোধ হৈ পৰে মৃত্যুৰ সমতুল্য” (খাউণ্ড, ২০১৯, পৃঃ ৮২)।

‘মণীয়া বেহালৰ সৈতে হোৱা সাক্ষাৎকাৰত ডাইনী হত্যাৰ কাৰণ বা কাৰক সম্পৰ্কত বীৰুৱালা ৰাভাই কেছিল- সম্পত্তিৰ মালিকীস্বত্ব ডাইনী চিকাৰৰ অন্যতম কাৰক। স্বামীৰ মৃত্যুৰ পিছত বিধৱা মহিলাসকলক স্বামীৰ মৃত্যুৰ বাবে দায়ী বুলি দাবী কৰি ডাইনী সজাই হত্যা কৰা বা গাঁৱৰ পৰা খেদি পঠোৱাৰ পৰিকল্পনা কৰা হয় যাতে মৃত স্বামীৰ সম্পত্তিসমূহ আত্মীয়- স্বজন নাইবা ওচৰ চুবুৰীয়াই সৰাধ কৰিব পাৰে’ (বেহাল, ২০১১)। অসমৰ প্ৰাক্তন আৰক্ষী অধীক্ষক আৰু অসম সাহিত্য সভাৰ প্ৰাক্তন সভাপতি কুল শইকীয়াদেৱৰ সাংবাদিক সন্দীপ তালুকদাৰৰ সৈতে হোৱা এক সাক্ষাৎকাৰত তেখেতে উল্লেখ কৰিছে— “ডাইনী হত্যাৰ সাধাৰণ কাৰণসমূহৰ অন্যতম কাৰণ হ’ল- সম্পত্তিৰ মালিকীস্বত্ব। ডাইনীৰ সন্দেহত উৎপীড়িত হোৱা সকলে গাঁও এৰি গুচি যোৱাৰ পিছত অন্যলোকে সেই সম্পত্তিসমূহ হস্তক্ষেপ কৰিব পাৰে” (তালুকদাৰ, ২০২৪)।

তাৰোপৰি ৰোগৰ বাবে চিকিৎসকৰ সলনি ঐশ্বৰিক শক্তিৰ অধিকাৰী বুলি ভবা ‘ওজা’ৰ (Traditional Healer) প্ৰতি থকা বিশ্বাসো ডাইনী চিকাৰৰ অন্যতম কাৰক। ৰোগীয়াৰ ৰোগৰ প্ৰতিকাৰ হিচাপে ওজাই দাবী কৰা নিৰ্দিষ্ট মহিলাগৰাকীক হত্যা কৰি গাঁৱৰ মানুহে সমাজৰ অমংগল নোহোৱা কৰাৰ প্ৰয়াস কৰে আৰু এইয়া কৰিবলৈ যাওঁতে ওজাৰ লক্ষ্য হৈ পৰে সদায় দুৰ্বল, নিঃকিন, অকলশৰীয়া

মহিলা। ইয়াৰ ওপৰিও কাজিয়া, শত্ৰুতা, হিংসা, খেতি-বাতি নষ্ট হোৱা, অবৈধ সম্পৰ্ক আদি বিভিন্ন অজুহাতত মানুহে মানুহক ডাইনী সজাই হত্যা কৰে। অসম মহিলা সমতা সমিতিৰ সভাপতি মামণি শইকীয়াৰ মতে, “অন্ধবিশ্বাস, কু- সংস্কাৰ, শিক্ষাৰ পোহৰ নপৰা, যোগাযোগহীনতাই মানুহক অন্ধ কৰি তোলে” (খাউণ্ড, ২০১৯, পৃ: ৬৪)। প্ৰাক্তীয় বা জনজাতীয় অঞ্চলসমূহৰ আধুনিক শিক্ষা আৰু চিকিৎসা ব্যৱস্থাৰ প্ৰতি থকা অনীহাইয়ো ডাইনী জাতীয় সন্দেহ অথবা বিশ্বাসৰ প্ৰবলক শক্তিশালী কৰে। তাৰোপৰি মূলসুঁতিৰ সমাজখনৰ পৰা বিচ্ছিন্নবাদী মনোভাৱেও এনেধৰণৰ পৰম্পৰাক জীয়াই ৰখাত সহায় কৰে। অৰ্থাৎ ক্ষমতাৰ প্ৰতি লালসা, ব্যক্তিগত শত্ৰুতা, নিম্নমানৰ শিক্ষা, আধুনিক চিকিৎসা ব্যৱস্থাৰ প্ৰতি উদাসীনতা আদিয়েও ডাইনী কেন্দ্ৰিক সামাজিক বিশ্বাসক উদগণি দিয়ে।

National Crime Record Bureau ৰ হিচাপ অনুসৰি ২০০০-২০০১ সময়ছোৱাৰ ভিতৰত ডাইনী সন্দেহত ভাৰতবৰ্ষত মৃত্যু হোৱা লোকৰ সংখ্যা ২৫৩ জন। একেদৰে ২০০৮ চনৰপৰা ২০১২ চনলৈ ভাৰতবৰ্ষত ডাইনীৰ হত্যাৰ সংখ্যা ৭৬৮। ২০০৭-২০১২ চনৰ ভিতৰত কেৱল অসমতে ৬৫ টা ডাইনী হত্যাৰ ঘটনা সংঘটিত হৈছে (চক্ৰৱৰ্তী আৰু বৰা, ২০১৩, পৃ: ১৭, ১৮)। সংসদীয় মন্ত্ৰী চন্দ্ৰমোহন পাটোৱাৰীৰ মতে ২০১১-২০২০ চনলৈ অসমত সৰ্বমুঠ ১০৭ জন লোকক ডাইনী সজাই হত্যা কৰা হৈছে (Times of India, ১৮ অক্টোবৰ, ২০২০)। যদিও ‘ডাইনী’ৰ সংজ্ঞাৰ আওঁতাত পুৰুষ আৰু মহিলা উভয়কে সাঙুৰি লোৱা হৈছে, তথাপিও মহিলাৰ তুলনাত পুৰুষৰ প্ৰতি এই অপৰাধৰ প্ৰৱণতা সংখ্যাত তাকৰ। অসমতো বেছিভাগ ক্ষেত্ৰতে মহিলাইহে ডাইনী হত্যাৰ দৰে ঘটনাৰ শেষ পৰিণাম ভোগ কৰা দেখা যায়। সেয়ে, ডাইনী হত্যাক অন্যতম এক লিংগভিত্তিক বা নাৰীজনিত অপৰাধ হিচাপে গণ্য কৰা হয়। সংবিধান প্ৰদত্ত অধিকাৰ, বহনক্ষম উন্নয়নৰ লক্ষ্য (Sustainable Development Goals) আদিত উল্লেখিত লিংগ সমতাৰ বিষয়বোৰক এনেধৰণৰ জনবিশ্বাসে প্ৰত্যাহ্বান জনোৱাৰ লগতে এনেধৰণৰ কাৰ্য সমাজ এখনৰ বা সভ্যতা একোটাৰ অনগ্ৰসৰতা আৰু অবিজ্ঞানসন্মত চিন্তাধাৰাৰ প্ৰতীক। গতিকে, এনে এক ভয়াবহ সামাজিক ব্যাধিক সমাজৰপৰা নিৰ্মূল কৰা অত্যন্ত গুৰুত্বপূৰ্ণ।

সংক্ষেপে বীৰৱালা ৰাভা : ১৯৫৪ চনত অসম-

মেঘালয়ৰ সীমান্তৱৰ্তী গোৱালপাৰা জিলাৰ ঠাকুৰভিলা নামৰ গাঁৱত বীৰৱালা ৰাভাৰ জন্ম হৈছিল। তেখেতৰ পিতৃ আছিল স্বৰ্গীয় কলেৰা ৰাভা আৰু মাতৃ আছিল স্বৰ্গীয় সাগৰবালা ৰাভা। তেখেতে তৃতীয় শ্ৰেণীলৈ আনুষ্ঠানিক শিক্ষা সম্পূৰ্ণ কৰি পোন্ধৰ বছৰ বয়সত চণ্ডীচৰণ ৰাভাৰ সৈতে বিবাহ পাশত আৱদ্ধ হয়। বিয়াৰ পিছত বীৰৱালা ৰাভাৰ স্বামীৰ ভাতৃ উত্তম ৰাভাই তেখেতক সামাজিক কাম-কাজত জড়িত হ’বৰ বাবে উৎসাহ যোগাইছিল। উত্তম ৰাভাৰ নিদেৰ্শনাত ১৯৮৫ চনত তেখেতে ঠাকুৰভিলা আঞ্চলিক মহিলা সমিতি গঠন কৰে। সমাজসেৱাৰ বিভিন্ন পদক্ষেপৰ লগতে অঞ্চলটোৰ সামগ্ৰিক উন্নয়নত বীৰৱালা ৰাভাই এক বলিষ্ঠ কণ্ঠ হিচাপে আগভাগ লৈছিল। ২০০০ চনত সদৌ অসম মহিলা সমিতিৰ সক্ৰিয় কৰ্মী মামণি শইকীয়াৰ সান্নিধ্যই বীৰৱালা ৰাভাক সমাজমুখী বহল প্ৰেক্ষাপটখনৰ লগত চিনাকী কৰাই দিয়ে। ২০০১ চনত অসম আৰক্ষীৰ উদ্যোগত, অসমৰ চুকে-কোণে সিঁচৰিত হৈ থকা সামাজিক ব্যাধিসমূহ দূৰীকৰণৰ বাবে আৰম্ভ হোৱা ‘প্ৰজেক্ট পাহাৰী’ত বীৰৱালা ৰাভাই সহযোগিতা আগবঢ়ায়। ২০০৫ চনত তেখেত ‘Thousands Women’ প্ৰকল্পৰ অধীনত তেখেতৰ জীৱনযোৰা ‘ডাইনী হত্যা’ বিৰোধী অভিযানৰ বাবে ন’বেল বঁটাৰ বাবে মনোনীত হয়। ২০১১ চনৰ পৰা বীৰৱালা ৰাভাৰ নেতৃত্বত আৰম্ভ হোৱা ‘মিছন বীৰৱালা’ নামৰ ডাইনী হত্যা বিৰোধী সমাজ সংস্কাৰমূলক অভিযানটোয়ে সম্প্ৰতি ৮০০ তকৈও অধিক সহকৰ্মীৰ সহযোগিতাবে ডেৰকুৰিৰো অধিক লোকক আসন্ন মৃত্যুৰ পৰা বচাবলৈ সক্ষম হৈছে। ২০১০ চনত তেখেতে Reliance Industry Limited ৰ পৰা ‘ৰ’য়েলহিৰো’ (Royal Hero) ৰ সন্মান লাভ কৰে। বীৰৱালা ৰাভাক জেনেভাৰ মানৱ অধিকাৰ সন্মিলনত Human Rights Defender হিচাপে উপস্থিত থাকিবৰ বাবে আমন্ত্ৰণ জনোৱা হৈছিল। তাতে বীৰৱালা ৰাভাই বিশ্ব সম্প্ৰদায়ৰ আগত তৃতীয় বিশ্বৰ মহিলাসকলৰ দুখ-দুৰ্দশা দাঙি ধৰাৰ লগতে নাৰীক নৰক যন্ত্ৰণাৰে ডাইনী সজাই হত্যা কৰা, অভিশাপগ্ৰস্ত মহিলাক ৰুগ্ম সমাজে কৰা বৰ্বৰ আচৰণৰ বিষয়ে দাঙি ধৰাৰ সুবিধা লাভ কৰিছিল, কিন্তু আৰ্থিক অনাটনৰ বাবে বীৰৱালা ৰাভা এই সুযোগ গ্ৰহণৰ পৰা বঞ্চিত হ’বলগা হ’ল। ২০১৮ চনত বীৰৱালা ৰাভাই Women's World Summit Foundation, Geneva Switzerland ৰ পৰা

Women's World Summit Foundation বঁটা লাভ কৰে। ২০২১ চনৰ ২৫ জানুৱাৰী তাৰিখে ভাৰতৰ সেই সময়ৰ ৰাষ্ট্ৰপতি ৰামনাথ কবিন্দৰ হাতৰ পৰা তেখেতে 'পদ্মশ্ৰী' বঁটা লাভ কৰে। ২০২১ চনতে গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়ৰ পৰা তেখেতে প্ৰায় দুটা দশকযোৰা ডাইনী বিৰোধী সংগ্ৰামৰ বাবে সন্মানীয় ডক্টৰেট ডিগ্ৰী লাভ কৰে। ২০২৪ চনৰ ১৩ মে' তাৰিখে পদ্মশ্ৰী বীৰৱালা ৰাভাই শেষ নিশ্বাস ত্যাগ কৰে।

সামাজিক পুঁজি আৰু সমাজ পৰিৱৰ্তন : বীৰৱালা ৰাভাৰ ডাইনী বিৰোধী যাত্ৰা

অন্ধবিশ্বাস, কু-সংস্কাৰ আৰু ভিত্তিহীন চিন্তা কিছুমানৰ মাজত থাকি আত্ম-উপলব্ধি আৰু অভিজ্ঞতাৰে ভুল বুলি অনুধাবন কৰা কথাবোৰক শুধৰাই মানুহক আধুনিক-বৈজ্ঞানিক চিন্তাধাৰাৰ প্ৰতি আকৃষ্ট কৰিবলৈ যাওঁতে বীৰৱালা ৰাভাই অনুভৱ কৰিছিল যে সমাজৰ বাহিৰত, সমাজক বাদ দি মানৱ জীৱনৰ অস্তিত্বক স্বীকাৰ কৰিব নোৱাৰি। সেয়ে, সমাজ সৃষ্ট আৰু সমাজত লালিত হোৱা সমস্যা বা ব্যাধিসমূহক সমাজৰ মাজত থাকিয়ে পৰিৱৰ্তন কৰাতো জৰুৰী। পৰম্পৰাগত সমাজ জীৱনত ৰোপিত হৈ থকা ডাইনী হত্যাৰ ব্যাধিক নোহোৱা কৰিবলৈ বীৰৱালা ৰাভাই গ্ৰহণ কৰা কেইবা দশকযোৰা প্ৰচেষ্টাক সমাজে স্বীকৃতি প্ৰদান কৰিছে। সমাজ জীৱনলৈ বীৰৱালা ৰাভাই আগবঢ়োৱা অৱদানে বৰ্তমানৰ জীৱন যাত্ৰাক প্ৰভাৱিত কৰাৰ লগতে ভৱিষ্যতৰ সমাজখনকো সমৃদ্ধিশালী কৰাৰ থল আছে। গতিকে, বীৰৱালা ৰাভাৰ কৰ্মই এক বৃহৎ পৰিসৰত সামাজিক স্বাৰ্থ পূৰণ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে।

সভ্যতাৰ বিকাশৰ আৰম্ভণিৰে পৰা মানুহে সমূহীয়া প্ৰচেষ্টা আৰু সহযোগিতাৰ গুৰুত্বক অনুধাবন কৰি আহিছে। সমাজৰ বিভিন্ন সমস্যাসমূহৰ সমাধান হিচাপে উমৈহতীয়া কৰ্ম আৰু চিন্তাৰ গুৰুত্ব অনেক। মানুহৰ এনেধৰণৰ চিন্তাৰে এক আধুনিক বিকাশ হ'ল সামাজিক পুঁজিৰ ধাৰণা। লাইডা হানিফানে ১৯১৬ চনত তেওঁৰ গ্ৰন্থ 'The Rural School Community Center' ত সমাজৰ ব্যক্তি আৰু পৰিয়ালসমূহৰ মাজত থকা সদৃশতা, সংসৰ্গ, সহানুভূতি আৰু সামাজিক যোগাযোগক সামাজিক পুঁজি বুলি আখ্যা দিছে (বৈদ্যনাথন, ২০১৯, পৃঃ ৪৬)। ঠিক তেনেদৰেই Organization for Economic Co-operation and Development এ সামাজিক পুঁজিৰ বিষয়ে বহুলভাৱে

আলোচনা কৰি কয় যে সামাজিক গোটসমূহৰ মাজত থকা নীতি, মূল্য আৰু পাৰস্পৰিক বুজাবুজিৰ এক সংজ্ঞাল যিয়ে সমাজত সহযোগিতাৰ ভেঁটি মজবুত কৰে তাকে সামাজিক পুঁজি বুলিব পাৰি (বৈদ্যনাথন, ২০১৯, পৃঃ ৪৭)। সামাজিক পুঁজিৰ এই সংজ্ঞাসমূহৰ পৰা আমি এই কথা নিশ্চিত হ'ব পাৰোঁ যে, সমাজৰ সৰ্বাংগীন উন্নয়নৰ ক্ষেত্ৰত সমন্বয়বোধ আৰু সামাজিক কাৰ্যকলাপৰ প্ৰয়োজনীয়তা অতিকৈ গুৰুত্বপূৰ্ণ। সামাজিক পুঁজিৰ ক্ষেত্ৰত বিশিষ্ট আলোচক ৰবাৰ্ট পুটনামৰ অৰিহণা অন্যতম। তেওঁৰ মতে, সামাজিক সংস্থাসমূহৰ বৈশিষ্ট্য যেনে - বিশ্বাস, মূল্য আৰু যোগাযোগ সাধন (নেটৱৰ্ক) যিয়ে সমবায় কৰ্মৰ জৰিয়তে সমাজৰ দক্ষতা বৃদ্ধি কৰে তাকেই সামাজিক পুঁজি বুলি কোৱা হয় (পুটনাম, ১৯৯৩)। ইয়াৰ লগতে বিশ্ববেংকে দিয়া সামাজিক পুঁজিৰ ধাৰণা অনুসৰি সামাজিক পুঁজি হ'ল এনে এক সাংগঠনিক যোগফল, যিয়ে সমগ্ৰ সমাজখনক একত্ৰিত কৰি ৰখাত সহায় কৰে (SARC, report, 2008)। সমাজ আৰু সামাজিক আন্তঃ বান্ধোনৰ যি সমূহ কাৰকে মানুহক চৌপাশ সম্বন্ধীয় সজাগতা আৰু আভ্যন্তৰীণ আঁহসোঁৱাহসমূহৰ দূৰীকৰণত সহায় কৰে, সমাজ আৰু সম্পৰ্কৰ সৰ্বাংগীন বিকাশক তৰাঘিত কৰে, তেনে কাৰকে সামাজিক পুঁজি বুলিব পাৰি। মূলতঃ সামাজিক পুঁজিৰ সংগঠনসমূহে চাৰিটা গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা পালন কৰে-সেৱাৰ ভূমিকা (the Service Role), মূল্যৰ অভিভাৱকৰ ভূমিকা (the Value Guardian Role), সামাজিক সুৰক্ষাৰ ভূমিকা (the Advocacy/ Social Safety- valve Role) আৰু সম্প্ৰদায় গঠনৰ ভূমিকা (the Community Building Role) (SARC, report, 2008)। অৰ্থাৎ, সামাজিক পুঁজিৰ সংগঠনসমূহে সমাজৰ সামগ্ৰিক উন্নয়নৰ বাবে সেৱা আগবঢ়াৰ লগতে সামাজিক প্ৰমূল্যসমূহৰ অভিভাৱক হিচাপে কাম কৰে। ইয়াৰ ওপৰিও সামাজিক সুৰক্ষাক সুনিশ্চিত কৰি সম্প্ৰদায় গঠনক উৎসাহিত কৰা সামাজিক পুঁজিৰ অন্যতম এক গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা। এই ভূমিকাসমূহৰ জৰিয়তে এক সুস্থ সবল সমাজ গঠনত সামাজিক পুঁজিৰ গুৰুত্ব আৰু প্ৰয়োজনীয়তা নুই কৰিব নোৱাৰি।

বীৰৱালা ৰাভাৰ চিন্তা, কৰ্ম আৰু আদৰ্শতো চৌপাশৰ প্ৰতি সচেতনতা আৰু সমাজখনক একত্ৰিত কৰি বিকাশমুখী হ'বলৈ যোৱাৰ প্ৰৱণতা দেখিবলৈ পোৱা যায়। বিশ্বাস, নিষ্ঠা, একাগ্ৰতা, সততা আদি প্ৰমূল্যৰে বীৰৱালা ৰাভাই জনজাতীয় সমাজখনক কু- সংস্কাৰ আৰু অন্ধবিশ্বাসৰ পৰা ওলাই আহি

এক গুণগত জীৱন যাপন কৰিব পৰাকৈ, পৰম্পৰাগত চিন্তাবোৰক শিঠিল কৰিব পৰাকৈ সজাগ আৰু সচেতন কৰিব পাৰিছিল। সেয়ে বীৰৱালা ৰাভাৰ কৰ্মৰাজিক সামাজিক পুঁজিৰ আওঁতাত আলোচনা কৰিব পাৰি।

‘বগী’ত উল্লেখ থকা অনুসৰি শৈশৱৰ পৰাই বীৰৱালা ৰাভা দায়বদ্ধতাৰ সৈতে একাত্ম আছিল। ‘ধাই’ হিচাপে কৰ্মৰত মাকৰ ব্যস্ততাৰ অভাৱৰ পৰিপূৰক আছিল বীৰৱালা ৰাভা। বীৰৱালা ৰাভাৰ বৈবাহিক জীৱনৰ পাতনিৰ পিছতেই তেখেতৰ স্বামীৰ ভাৰ্য্য উত্তম ৰাভাই তেখেতক সামাজিক কাম-কাজত আগভাগ ল’বলৈ উৎসাহিত কৰিছিল। উত্তম ৰাভাৰ অনুপ্ৰেৰণাতে বীৰৱালা ৰাভাৰ নেতৃত্বত ঠাকুৰভিলা আঞ্চলিক মহিলা সমিতি গঢ় লৈ উঠিছিল আৰু তেখেতৰ দিহা-পৰামৰ্শমতেই বীৰৱালা ৰাভাই ঠাকুৰভিলাৰ মানুহখিনিক অন্যায়া-অবিচাৰ, ডাইনী, অন্ধবিশ্বাস, দেওধনী, কবিতাজ আদিৰ বিষয়ে সজাগ কৰিছিল। ঠাকুৰভিলা আঞ্চলিক মহিলা সমিতি গঠনৰ মূল উদ্দেশ্য আছিল- অঞ্চলটিৰ আৰ্থিক অনগ্রসৰতা দূৰ কৰা আৰু তাৰ বাবে চৰকাৰৰ দৃষ্টি আকৰ্ষণ কৰা। তাৰোপৰি মহিলা সমিতিখনৰ যোগেদি বীৰৱালা ৰাভাৰ নেতৃত্বত সামাজিক সমস্যা দূৰীকৰণ যেনে- মাদক দ্ৰব্যৰ অবাধ প্ৰচলন ৰোধ আৰু গাৰ্হস্থ্য জীৱনত মাদক দ্ৰব্যৰ প্ৰভাৱ আদি দূৰীকৰণৰ বাবে কাৰ্য্যপন্থা হাতত লোৱা হৈছিল। মণীয়া বেহালৰ সৈতে হোৱা সাক্ষাৎকাৰত বীৰৱালা ৰাভাই জনোৱা মতে তেওঁলোকে তেওঁলোকৰ অঞ্চলত দেশীয় সুৰাৰ প্ৰচলন সম্পূৰ্ণৰূপে ৰোধ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছিল। সামাজিক দায়বদ্ধতাৰ প্ৰতি থকা তেখেতৰ নিষ্ঠাৰ বাবেই উত্তম ৰাভাই বীৰৱালা ৰাভাক কৈছিল, “তুমি মোক এদিন গোঁৱৰাৱিত কৰিবা” (বেহাল, ২০১১)। সমাজৰ সৰু-বৰ সকলো সিদ্ধান্তৰ প্ৰতি বীৰৱালা ৰাভাই প্ৰদান কৰা সম গুৰুত্বই তেখেতৰ এখন সবল সমাজ গঠনৰ প্ৰতি থকা দায়িত্ব আৰু কৰ্তব্যক প্ৰতিফলিত কৰে।

সামাজিক সম্বলন বা স্থিতিৰস্থা অটুত ৰাখিবলৈ তেওঁলোকৰ ‘জামাত’ (jamat) নামৰ এক প্ৰতিষ্ঠান আছিল। তাত তেওঁলোকে পুত্ৰ অথবা স্বামীৰ হাতত কোনো মহিলাই দুৰ্ব্যৱহাৰৰ সন্মুখীন হ’লে উদ্ধাৰ কৰি পৰম্পৰাগত আৰু সামাজিক নিয়ম-কানুনেৰে সেই সমস্যাক সংশোধন কৰাৰ চেষ্টা কৰিছিল। এই প্ৰতিষ্ঠানৰ জৰিয়তে মূলত সমাজত প্ৰচলিত নীতি-নিয়মসমূহৰ সুপৰিকল্পিত তদাৰকৰ মাজেৰে যাতে সামাজিক নিয়ন্ত্ৰণৰ বাট মুকলি হয় বীৰৱালা

ৰাভাৰ সতীৰ্থসকলে তাৰ প্ৰস্তাৱ আগবঢ়াইছিল। ঠাকুৰভিলা আঞ্চলিক মহিলা সমিতিৰ যোগেদি সমাজমুখী হোৱা বীৰৱালা ৰাভাই সমাজত চলি থকা অন্যায়া, অবিচাৰৰ হকে সজাগতাৰ সৃষ্টি কৰিছিল। বীৰৱালা ৰাভাই প্ৰতি খোজত অনুভৱ কৰিছিল যে সামাজিক, আৰ্থিক, সাংস্কৃতিক, সাম্প্ৰদায়িক অনগ্রসৰতা দূৰীকৰণৰ একমাত্ৰ স্বাৱলম্বনেই হ’ল সামগ্ৰিক বিকাশ বা উন্নয়ন। বীৰৱালা ৰাভাৰ মতে, “ৰাস্তা লাগে, হাস্পাতাল লাগে, খোৱা পানী লাগে, বিজুলীবাতি লাগে- এইবোৰৰ পোহৰ নপৰিলে সমাজবোৰত, গাঁওবোৰত ডাইনীয়ে বাঁহ ল’ব, দেওধনি, কবিতাজ, বেজবোৰে দৈত্যৰ দৰে নাচিব, অন্ধবিশ্বাস, কু-সংস্কাৰ, গ্ৰহপূজা, জৰা-ফুকা, ডোল- তাবিজৰ জয়জয় ময়ময় হ’ব। ফলত মানুহে মানুহক কাটিব, মাৰিব, ঘৰ-দুৱাৰ ভাঙিব, তেজৰ নৈ ব’ব। সমাজৰ মানুহবোৰ অমানুহ হ’ব” (খাউণ্ড, ২০১৯, পৃ: ১৫) প্ৰগতিশীল চিন্তা আৰু আদৰ্শৰে সমাজ জীৱনৰ পাতনি মেলা বীৰৱালা ৰাভাই প্ৰতি মুহূৰ্ততে উপলব্ধি কৰিছিল যে এখন সমাজৰ প্ৰত্যেকজন ব্যক্তিৰ কৰ্মচেতনা আৰু মননশীলতাৰ উমৈহতীয়া পৰিৱৰ্তনৰ মাজেৰেহে সমাজখনৰ সুৰক্ষিত ভৱিষ্যত সম্ভৱ। সেই কাৰণেই ব্যক্তিগত স্বাৰ্থক একাঘৰীয়া কৰি সামাজিক স্বাৰ্থক তেখেতে অগ্ৰাধিকাৰ দিছিল।

সমাজ সেৱাৰ লগতে বীৰৱালা ৰাভাৰ সমাজৰ অন্ধবিশ্বাসক প্ৰত্যাহান জনোৱাৰ যাত্ৰা আৰম্ভ হৈছিল তেওঁলোকৰ পৰিয়ালকেন্দ্ৰিক এক ঘটনাৰ আঁত ধৰি। বীৰৱালা ৰাভাৰ পুত্ৰ ধৰ্মেশ্বৰ মানসিক ৰোগত আক্ৰান্ত হোৱাৰ পিছত সহজাত বিশ্বাসৰ আঁত ধৰি তেখেতৰ স্বামীয়ে এগৰাকী ‘ওজাৰ সহায়’ লৈছিল। ধৰ্মেশ্বৰৰ ককায়েক বিষুংৱে উল্লেখ কৰা অনুসৰি— ওজা চাৰল ৰাভাৰ ভৱিষ্যবাণী অনুসৰি - “ধৰ্মেশ্বৰৰ গাত পৰী লঙিছে, পৰীজনী এতিয়া গৰ্ভৱতী। তিনিদিন পিছত তাইৰ কেঁচুৱা হ’ব। কেঁচুৱা হোৱাৰ তিনি-চাৰিদিন পিছত ধৰ্মেশ্বৰ মৰিব” (তালুকদাৰ, ২০২৪)। ধৰ্মেশ্বৰ নমৰিল, শিলচৰৰ এখন ফাটেকত বৰ্তমানো ধৰ্মেশ্বৰ জীয়াই আছে। ধৰ্মেশ্বৰৰ মানসিক অসুস্থতাৰ দোহাই দি ওজাই দাবী কৰা অকাল মৃত্যুৰ প্ৰথম দিনাৰ পৰাই বীৰৱালা ৰাভাই বিৰোধিতা কৰি আহিছিল। তেখেতে বিশ্বাস কৰিছিল যে বিজ্ঞানসন্মত চিকিৎসাই ধৰ্মেশ্বৰক সুস্থ কৰি তুলিব। কোনো বেজৰ ভিত্তিহীন ভৱিষ্যবাণী ধৰ্মেশ্বৰৰ জীৱনৰ অন্তিম সত্য হ’ব নোৱাৰে। ওজাৰ বাণীক অস্বীকাৰ

কৰি সমাজৰ তথাকথিত জনবিশ্বাসক প্ৰশ্ন কৰাৰ ৰোযত, পুত্ৰ ধৰ্মেশ্বৰৰ মানসিক অৱস্থা আৰু স্বামীৰ দুৰাৰোগ্য ৰোগৰ কাৰণ হিচাপে সমাজে বীৰৱালা ৰাভাক ডাইনী সজালে। বীৰৱালা ৰাভাই সমাজ প্ৰদত্ত এই প্ৰত্যাহ্বানৰ পৰাই সমাজৰ ইতিবাচক পৰিৱৰ্তনৰ বাট মুকলি কৰিছিল। সমাজে দিয়া অপবাদক সাৰোগত কৰি পৰৱৰ্তী সময়লৈ বীৰৱালা ঠাকুৰভিলাৰ ৰাইজৰ বাবে আশীৰ্বাদ হৈছিল।

আঞ্চলিক মহিলা সমিতিৰ সভাপতি হিচাপে কৰ্মৰত অৱস্থাৰ পৰাই বীৰৱালা ৰাভাই নাৰী সৱলীকৰণ আৰু নাৰীৰ প্ৰতি সমাজৰ নেতিবাচক দৃষ্টিভংগীৰ পৰিৱৰ্তনৰ বাবে কাম কৰি আহিছে। বীৰৱালা ৰাভাৰ এই যাত্ৰাৰ সৱল সাৰথি আছিল অসম মহিলা সমতা সমিতিৰ সভাপতি তথা গোৱালপাৰা জিলাৰ সমন্বয়ক মামণি শইকীয়া। কেন্দ্ৰীয় চৰকাৰৰ ৰাষ্ট্ৰীয় মহিলা সংখ্যা আঁচনিৰ অধীনত মামণি শইকীয়াই গোৱালপাৰাৰ নিৰক্ষৰ মহিলাসকলৰ মাজত অন্ধবিশ্বাস আৰু কু-সংস্কাৰ সম্পৰ্কীয় সজাগতা সৃষ্টিৰ উদ্দেশ্যে গোৱালপাৰাৰ দ'দান মন্দিৰত এক জনসজাগতামূলক অনুষ্ঠানৰ আয়োজন কৰিছিল। অনুষ্ঠানত উত্থাপিত ডাইনীৰ প্ৰসংগত তেখেতে সুধিছিল - “ডাইনীৰ সন্দেহত গাঁৱৰ পৰা বহিষ্কাৰ হোৱা ইয়াত উপস্থিত থকা মহিলাসকল প্ৰকৃততে ডাইনী হয় নে” (বেহাল, ২০১১)। কিন্তু ভুক্তভোগী মহিলাসকলৰ কোনোও সমাজৰ বিপৰীতে গৈ সত্যৰ পক্ষত থিয় হোৱাৰ সাহস কৰা নাছিল। সেইদিনা সেইসকল মহিলাৰ হৈ বীৰৱালা ৰাভাই ডাইনী মিছা বুলি দাবী কৰিছিল। লগতে তেখেতে উল্লেখ কৰিছিল কিদৰে গাঁৱৰ ওজাই ধৰ্মেশ্বৰক লৈ কৰা ভৱিষ্যবাণী ভুৱা আছিল। বীৰৱালা ৰাভাই সমাজে ডাইনী সজোৱা মহিলাসকলৰ হৈ কৈছিল যে এই মহিলাসকলৰ কোনোয়েই ডাইনী নহয়, এই সকলোবোৰ অন্ধবিশ্বাস। গাঁৱৰ ওজা চাৰল ৰাভাৰ ভিত্তিহীন ঘোষণাৰ ওপৰত বিশ্বাস কৰিয়েই মানুহবোৰে ডাইনীৰ সন্দেহত মানুহক হানি-খুঁচি মাৰি পেলায়। বীৰৱালা ৰাভাৰ সাহসিকতাই মামণি শইকীয়াক আকৰ্ষিত কৰিছিল। গতিকে, বীৰৱালা ৰাভাৰ ব্যক্তিগত অভিজ্ঞতাৰে আৰম্ভ হোৱা ডাইনী বিৰোধী একক সংগ্ৰামে স্পষ্টবাদী আৰু সাহসী ৰূপত এক বহল পৰিসৰ লাভ কৰিছিল মামণি শইকীয়াৰ সান্নিধ্যলৈ অহাৰ পৰৱৰ্তী সময়ছোৱাত।

কিন্তু দ'দান মন্দিৰৰ প্ৰাংগণত সুপ্ৰতিষ্ঠিত জনবিশ্বাসক প্ৰত্যাহ্বান জনোৱাৰ অপৰাধত বীৰৱালা ৰাভা আৰু

তেখেতৰ পৰিয়ালক সামাজিকভাৱে অপদস্থ কৰি বহিষ্কাৰ কৰা হ'ল। বীৰৱালা ৰাভাই প্ৰতিষ্ঠা কৰা ঠাকুৰভিলা আঞ্চলিক মহিলা সমিতিৰ সভাপতি পদ ত্যাগ কৰিবলৈও ৰাইজে দাবী জনোৱাত বীৰৱালা ৰাভাই কৈছিল, “মই যদি পাপী তেনেহ'লে মোক হত্যা কৰাতো কোনো ভুল নহয়, কিন্তু মই এই নিৰপৰাধী মহিলাসকলক সুৰক্ষা দিহে মৰিম” (বেহাল, ২০১১)। এই স্বীকাৰোক্তিৰ পিছত বীৰৱালা ৰাভাক তিনি বছৰলৈ কোনো ৰাজহুৱা কাম-কাজত জড়িত হ'বলৈ দিয়া হোৱা নাছিল। কিন্তু সামাজিক প্ৰত্যাহ্বানে বীৰৱালা ৰাভাক স্থগিত কৰিব পৰা নাছিল। পৰৱৰ্তী সময়ত মামণি শইকীয়া আৰু মহিলা সহযোগীসকলৰ সমৰ্থনত তেখেতে এই যাত্ৰা অবিৰতভাৱে চলাই যাবলৈ সক্ষম হ'ল। ২০০০ চনৰ পৰা এক সৰল নেতৃত্বৰে বীৰৱালা ৰাভাই ডাইনী বিৰোধী সংগ্ৰামক গতি প্ৰদান কৰিলে। তেখেতে বিচাৰিছিল অতীতৰ ভেঁটিত প্ৰতিষ্ঠিত এই সংগ্ৰাম বৰ্তমান আৰু ভৱিষ্যতৰ মাগদৰ্শক হওক। সেয়ে সমুখৰ প্ৰাচীৰলৈ ভয় নকৰি মামণি শইকীয়াই সোধা ভৱিষ্যতৰ ভীতিকেদ্ৰিক এক প্ৰশ্নৰ উত্তৰত তেখেতে কৈছিল, “ৰাইজৰ পৰা শাৰীৰিক আঘাত পাব লগা হ'লেও মই মোৰ ইচ্ছাক অৱোধ কৰিব নোখোজা। ৰাজহুৱা প্ৰত্যাহ্বানে মোক মোৰ ইচ্ছাৰ পৰা বিতৰ্ক কৰিব নোৱাৰে” (বেহাল, ২০১১)। এনেদৰে মামণি শইকীয়াৰ সমৰ্থন আৰু সহযোগিতাৰ মাজেৰে বীৰৱালা ৰাভাই গাঁৱৰ পৰা ওলাই আহি বিদ্যালয় মহাবিদ্যালয়ৰ দৰে প্ৰতিষ্ঠানত ডাইনী বিৰোধী বক্তৃতা ৰখাৰ সুবিধা পাইছিল। তাৰ পৰৱৰ্তী সময়ত ‘ডাইনী’ সন্দেহত অপদস্থ হোৱা বহু মহিলাই বীৰৱালা ৰাভাৰ ওচৰলৈ উদ্ধাৰ আৰু সুৰক্ষা প্ৰদান কৰিবৰ বাবে সহায় বিচাৰি আহিছিল। জীৱনৰ প্ৰতি অহা ভাবুকিক আওকাণ কৰি হিংস্ৰতাৰে পৰিপূৰ্ণ সমাজবোৰলৈ গৈ বীৰৱালা ৰাভাই মানুহৰ মাজত এই বিশ্বাস জন্ম দিব পাৰিছিল যে ডাইনী - ভুৱা আৰু জনজাতীয় সমাজৰ অনগ্ৰসৰতাৰ প্ৰতীক। কিন্তু এইয়া কৰিবলৈ যাঁওতে বীৰৱালা ৰাভাৰ সন্মুখত হাজাৰ প্ৰতিবন্ধক আছিল। এই প্ৰসংগত পশ্চিম গাৰো পাহাৰৰ ৰুতলাৰ কাহিনী উল্লেখনীয় —

ৰুতলাৰ ঘৰ আছিল পশ্চিম গাৰো পাহাৰৰ চপাণ্ডৰি নামৰ এক দুৰ্গম অঞ্চলত। ডাইনীৰ অভিযোগত ৰুতলাক গাঁৱৰ ৰাইজে অকথ্য নিৰ্যাতন-উৎপীড়ন চলোৱা কথা বীৰৱালাই শুনি আহিছিল। সেয়ে, গাঁৱৰ মানুহখিনিৰ মাজত

এখন সভা অনুষ্ঠিত কৰি তেখেতে এনে অপৰাধৰ পৰা বিৰত থাকিবলৈ বুজাবলৈ গৈছিল। কিন্তু টিকিকিল্লা থানাৰ সমীপ পাওঁতেই এজাক উন্মাদ মানুহে বীৰুৱালা ৰাভা আৰু তেওঁৰ সতীৰ্থকলক মাৰিবলৈ যাঠি-জোং লৈ খেদি আহিছিল। আৰক্ষীৰ তৎপৰতা আৰু হস্তক্ষেপত কথমপি তেওঁলোকৰ প্ৰাণ ৰক্ষা পৰিছিল। গাঁওখনত সভা অনুষ্ঠিত কৰিবলৈ যোৱাৰ আগনিশা গাঁৱৰ মানুহে মাৰ-ধৰ কৰি ৰুতিলাক পাহাৰত পেলাই থৈ আহিছিল। কিন্তু ৰুতিলা নমৰিল। বীৰুৱালাই ৰুতিলাক উদ্ধাৰ কৰি সমীপৱৰ্তী থানাখনলৈ লৈ গ'ল। বীৰুৱালাই আশা কৰিছিল যে এই অতিশায্যত জড়িত মানুহবোৰক আনি ল'কআপত ভৰাব। কিন্তু বীৰুৱালাক আচৰিত কৰি থানাৰ অ'চিয়ে ৰুতিলাকহে ল'কআপত ভৰালে। বীৰুৱালাই তাইক কিয় ল'কআপত ভৰালে বুলি কৰা প্ৰশ্নত অ'চিয়ে উত্তৰ দিছিল তাই যদি ডাইনী হয় তেন্তে তাই ল'কআপত চিয়ৰ - বাখৰ কৰিব। পুলিচৰ ডাইনীৰ প্ৰতি থকা ধাৰণা আৰু চিন্তাৰ পৰিধি দেখি বীৰুৱালাৰ পুতৌ জন্মিছিল সেইদিনা। আৰক্ষীৰ হাতৰ পৰা মুকলি কৰি অনাৰ পিছত তাইৰ পৰিয়ালটোলৈ আহিব পৰা বিপদৰ কথা ভাবি ৰুতিলাই ঘৰলৈ যাবলৈ অস্বীকাৰ কৰিছিল।

- খাউণ্ড, ২০১৯, পৃষ্ঠা : ৭৫-৭৮*

অনক্ষৰ মানুহবোৰৰ পৰা বৰমূৰীয়ালৈকে ডাইনীৰ নামত চলি থকা আসুৰিক তৃপ্তিৰ ঘটনাপ্ৰবাহে বীৰুৱালা ৰাভাক দিনে-নিশাই অশান্তি কৰিছিল। সেয়ে ভুক্তভোগীৰ পৰা কণমান সহায় বিচাৰি অহা চকুবোৰক বীৰুৱালা ৰাভাই প্ৰত্যাখ্যান কৰিব পৰা নাছিল। হাৰাংডুবিৰ নুমলী বুঢ়ীৰ পৰিয়ালটোৰ সৈতে হোৱা গাঁৱৰ মানুহৰ অৰাজকতাৰ বিৰুদ্ধে বীৰুৱালাৰ অভিজ্ঞতা তাৰ আন এক উদাহৰণ —

হাৰাংডুবি মহিলা সমিতিৰ সম্পাদিকা গৰাকীয়ে এদিন হঠাতে আহি বীৰুৱালা ৰাভাক তেওঁলোকৰ গাঁৱলৈ যাবলৈ লগ ধৰিলে। প্ৰসংগত জনালে যে গাঁৱলৈ নতুনকৈ অহা বেজ এটাই গাঁৱৰে পৰিয়াল এটাক ডাইনী বুলি দাবী কৰিছে আৰু ইতিমধ্যেই বেজৰ কথামতেই গাঁৱৰ তিনিজন মানুহক ডাইনীৰ সন্দেহত হত্যা কৰা হৈছে। গতিকে কালিলৈ সেই পৰিয়ালটোক ৰাইজে বিচাৰ কৰোঁতে বীৰু বাইদেউ গৈ সিহঁতক ৰক্ষা কৰিব লাগে। বীৰুৱালা যাবলৈ মান্তি হ'ল। আৰক্ষীক অৱগত কৰিবলৈ যাওঁতেই তেখেতসকলে গম পালে যে পৰিয়ালটোক ৰাতিয়েই গাঁৱৰ মানুহে ধৰি-বান্ধি

বিচাৰ কৰিবলৈ লৈ গৈছে। কথাটোয়ে বীৰুৱালা ৰাভাক ভাৰাংগাস্ত কৰি তুলিলে। গন্তব্য স্থানত উপনীত হৈ তেওঁলোকে দেখিলে পাঁচজন মানুহক নদীৰ পাৰত হাত-ভৰি বান্ধি পেলাই থোৱা আছে। তাৰ মাজৰে এজনী দহ-বাৰ বছৰীয়া ছোৱালী, এজনী গৰ্ভৱতী মহিলা, এগৰাকী যাঠিৰ ওচৰ চপা বৃদ্ধা, প্ৰায় ৭০ বছৰীয়া এজন বৃদ্ধ আৰু তেওঁলোকৰ পুত্ৰ আৰু তেওঁলোকক আৱৰি আছে, হাতত যাঠি-জোং লৈ থকা এজাক উন্মাদ উন্মত্ত মানুহে। পুলিচ আৰু ৰাইজৰ বিতণ্ডাত পুলিচে হাৰ মনাৰ পিছত ৰাইজে বেজৰ কথা মানি বিচাৰ আৰম্ভ কৰিছে। মিথ্যা আৰু চাতুৰিৰে ঘটনাটো চাবলৈ যোৱা বীৰুৱালাক ডাইনী বচাবলৈ অহা মানুহ বুলি জানিব পাৰি ৰাইজখন আৰু অধিক উন্মাদ হৈ পৰিল। বীৰুৱালাই অনুভৱ কৰিলে পৰিস্থিতি সাধ্যৰ বাহিৰ হৈ গৈ আছে। পুলিচ, চি আৰ পি এফৰ দল এটাৰ সহযোগত মানুহখিনিক তেওঁলোকে শাস্ত কৰিব পাৰিলে। তাৰ পিছত গাঁওবুঢ়াৰ ঘৰতে বীৰুৱালা আৰু হাৰাংডুবিৰ ৰাইজৰ এক মেল বহিল। তাতে বীৰুৱালাক বুজোৱা হ'লে কেনেকৈ ৰেৱতীৰ ঘৰখন গাঁৱখনৰ অপায়-অমংগলৰ কাৰক। নিজৰ, সমাজৰ বাস্তৱ কথা আৰু কাহিনীবোৰ কৈও বীৰুৱালাই মানুহবোৰক বিশ্বাস দিব পৰা নাছিল যে ডাইনী-ভুৱা। তাৰ পিছত ডাইনী হত্যাৰ অপৰাধত জেললৈ যোৱা লুধু নামৰ অপৰাধীটোক ক'বলৈ দিলে জেলত ডাইনীক মৰা মানুহবোৰক কি কৰে। লুধুৰ অভিজ্ঞতা, অনুশোচনা, বীৰুৱালাৰ কথাৰে অৱশেষত তেওঁলোকে গাঁৱৰ মানুহবোৰক হাৰ মনাব পাৰিলে যে ডাইনী ভুৱা-বেজৰ কথা মিছা। এই ঘটনাটোৰ পিছত ঠাকুৰভিলাৰ দৰেই হাৰাংডুবিতো ডাইনী নোহোৱা হৈছিল। হাৰাংডুবিৰ দুৰ্ভাগীয়া মানুহবোৰৰ মনবোৰ লাহে লাহে পোহৰ হ'বলৈ লোৱাৰ পিছত, সমাজখনে ডাইনীৰ কথা নভবাকৈ, নপতাকৈ থাকিবলৈ শিকাৰ পিছত, লুধুয়ে কৈছিল, “তহঁতে ল'ৰা পাৰ, ছোৱালী পাৰ নাজানো; কিন্তু বীৰুৱালাক পাৰি দেই।”

- খাউণ্ড, ২০১৯, পৃষ্ঠা : ৭৮-৯৬**

হাৰাংডুবিৰ ঘটনাটোৰ পিছত মানুহৰ মাজত বীৰুৱালা ৰাভাক লৈ বিশ্বাস আৰু ভয় বৃদ্ধি পাইছিল। বিভিন্ন প্ৰচাৰ আৰু সামাজিক মাধ্যমত বীৰুৱালা ৰাভাৰ সাহসৰ বাতৰি প্ৰকাশ হৈছিল। তাৰ পিছত বীৰুৱালা ৰাভাৰ পৰা সহায় বিচাৰি অহা মানুহৰ সংখ্যা ক্ৰমাৎ বাঢ়ি আহিছিল। গাঁৱৰ মানুহেও বীৰুৱালা ৰাভাক লৈ গোঁৰৰ আৰু অহংকাৰ

কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰিছিল। সমাজৰ পৰিৱৰ্তনকামী এচাম মানুহৰ মাজত তেখেত বীৰযোদ্ধা হৈছিল। বীৰৱালাৰ বাভাৰ সমুখত নিতৌ ধৰা দিয়া ৰুতীলা, নুমলীৰ দৰে অনেক অসহায় মুখৰ প্ৰত্যেককে ন্যায্য প্ৰদানৰ বাবে বীৰৱালা বাভাই চেষ্টাৰ ত্ৰুটি কৰা নাছিল। বনেশ্বৰী আৰু সনাবালা বাভাৰ পৰা আৰু আৰম্ভ হোৱা এই যাত্ৰাই অসমৰ চুকে-কোণে ডাইনী খেদি ঘূৰি ফুৰিছিল। ২০০১ চনত অসম আৰক্ষীৰ উদ্যোগত সমাজৰ ব্যাধিসমূহ দূৰীকৰণৰ উদ্দেশ্যে আৰম্ভ হোৱা ‘প্ৰজেক্ট পাহাৰী’ত বীৰৱালা বাভাই উল্লেখনীয় অৱদান আগবঢ়াই গৈছে। বিভিন্ন মহিলা সংগঠন, ছাত্ৰ সংগঠন, বিজ্ঞান মঞ্চৰ লগতে উন্নয়ন আৰু আইন প্ৰনয়ণৰ সংস্থাসমূহৰ সন্মিলিত বহিঃপ্ৰকাশ আছিল ‘প্ৰজেক্ট পাহাৰী’। এই প্ৰচেষ্টাৰ জৰিয়তে মানুহৰ আৰ্থ-সামাজিক প্ৰস্থিতি উন্নীতকৰণৰ যোগেদি ডাইনী হত্যাৰ দৰে অপৰাধ প্ৰতিৰোধ কৰিবলৈ কাৰ্যপন্থা হাতত লোৱা হৈছিল। তাৰে ভিতৰত উল্লেখযোগ্য আছিল গাঁৱসমূহত নিয়মীয়া স্বাস্থ্য পৰীক্ষা শিবিৰ, বিশেষজ্ঞ গোটৰ দ্বাৰা স্বাস্থ্য আৰু পৰিচ্ছন্নতা সম্পৰ্কে সজাগতা সৃষ্টি লগতে স্থানীয় মহিলাসকলৰ বাবে প্ৰশিক্ষণৰ ব্যৱস্থা কৰা। এই পদক্ষেপবোৰৰ জৰিয়তে তেখেতসকলে নাৰী সৱলীকৰণৰ বাট মুকলি কৰিছিল। ‘প্ৰজেক্ট পাহাৰী’ৰ মূল হোতা অসমৰ সন্মানীয় প্ৰাক্তন আৰক্ষী অধীক্ষক কুল শইকীয়াই বীৰৱালা বাভা সম্পৰ্কত কৈছিল, “নাৰী সৱলীকৰণ ‘প্ৰজেক্ট পাহাৰী’ৰ অন্যতম মূল উদ্দেশ্য হোৱাৰ বাবে আমি এনে এগৰাকী সাহসী স্থানীয় মহিলাৰ সন্মান কৰিছিলোঁ যিয়ে সমাজৰ পৰম্পৰাগত পক্ষপাতিত্বৰ শিকলি ভাঙি ডাইনীৰ বিৰুদ্ধে থিয় দিব পাৰে। বীৰৱালা এই ভূমিকাৰ বাবে একেবাৰে সঠিক” (তালুকদাৰ, ২০২৪)।

ডাইনী হত্যাৰ সামগ্ৰিক ৰূপটোৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি বীৰৱালা বাভাই এই অপৰাধক নোহোৱা কৰিবলৈ এক সংগঠনৰ প্ৰয়োজনীয়তা অনুভৱ কৰিছিল। সেয়ে একে চিন্তাৰ মানুখিনিক সংগঠিত কৰি বীৰৱালা বাভাই ২০১১ চনত ‘মিছন বীৰৱালা’ নামৰ স্বেচ্ছাসেৱী সংগঠনটোৰ জন্ম দিয়ে। এই সংগঠনৰ লক্ষ্য আছিল - ডাইনীৰ চিকাৰ হোৱা লোকসকলক উদ্ধাৰ কৰাৰ লগতে আইনী ব্যৱস্থা গ্ৰহণৰ বাবে সহায় আৰু পৰামৰ্শ আগবঢ়োৱা, ভুক্তভোগীসকলক নিজ নিজ সমাজত পুনঃ সংস্থাপিত কৰা, প্ৰান্তীয় অঞ্চলত ডাইনী আৰু অন্ধবিশ্বাসৰ বিৰুদ্ধে সজাগতা শিবিৰৰ আয়োজন কৰা আৰু জনসমাজত বৈজ্ঞানিক চিন্তা-চৰ্চা

ৰোপণ কৰা (PRIDE, Lok Sabha Secretariat, ২০২২)। মিছন বীৰৱালাই বিভিন্ন সময়ত বিভিন্ন পৰ্যায়ত অসমৰ উজনিৰ পৰা নামনিলৈ ডাইনীৰ বিৰুদ্ধে কাম কৰি আহিছে। জনতাৰ চৰকাৰ শীৰ্ষক অনুষ্ঠানটোৰ জৰিয়তে সামাজিক মাধ্যমত প্ৰচাৰিত এক সাক্ষাৎকাৰত বীৰৱালা বাভাই কৈছিল — “বাতৰি কাকতত প্ৰকাশিত এক খবৰৰ আঁত ধৰি তেওঁলোক মাজুলীৰ চিকাৰী গাঁৱলৈ গৈছিল। চিকাৰী গাঁৱত ৩৮ গৰাকী মানুহক ডাইনী সজাইছিল। তাতে তেখেতে মানুখিনিক বুজাই আহিছিল যে বেজ-বেজালি, কবিৰাজ, ওজা সকলোবোৰ মিছা আৰু সমাজ নষ্টৰ কাৰণ। মানুহে নিজৰ স্বাৰ্থ, অভিলಾষ আদি পূৰণ কৰাৰ অজুহাতত মানুহক ডাইনী সাজে। বিজ্ঞানৰ যুগত আমি অন্ধবিশ্বাস আৰু মিছাৰ প্ৰশ্ৰয়ত জীয়াই থাকিব নালাগে” (MyGov Assam, ২০১৮)। তিনিচুকীয়াৰ কাঠনিবাৰী অঞ্চলৰ অনুৰূপ ঘটনাপ্ৰবাহত বীৰৱালা বাভা উপস্থিত হৈ মিছন বীৰৱালাৰ উদ্দেশ্য পূৰণত সফল হৈছিল। ‘প্ৰজেক্ট পাহাৰী’ আৰু বীৰৱালা বাভাৰ নেতৃত্বাধীন ‘মিছন বীৰৱালা’ৰ আইনী স্বীকৃতি আছিল “The Assam Witch Hunting (Prohibition, Prevention and Protection) Act ২০১৫”। ২০১৮ চনত, অসম চৰকাৰে প্ৰণয়ন কৰা আইনখনে অসমত ডাইনী হত্যা সমূল্যে মৰিচ কৰিব নোৱাৰিলেও অসমৰ ডাইনী হত্যা বিৰোধী সংগ্ৰামক ন্যায্যতা প্ৰদান কৰিলে। মিছন বীৰৱালাৰ সমাজলৈ অৱদান আৰু সমাজত মিছন বীৰৱালাৰ দৰে অনুষ্ঠান বা গণ আন্দোলনৰ প্ৰয়োজনীয়তা স্বীকাৰ কৰি মিছন বীৰৱালাৰ নামত চৰকাৰে ৰুমবুকপাৰাত আগবঢ়োৱা আঠ বিঘা মাটিত ৰাইজে ডাইনী সজোৱা মানুহবোৰ থাকিব পৰাকৈ ব্যৱস্থা কৰা হ’ল। বৰ্তমান ৮০০ ৰো অধিক সদস্যৰে মিছন বীৰৱালা সাংগঠিকভাৱে শক্তিশালী। ইয়াৰে শতাধিক সদস্যই অসমৰ সৰ্বমুঠ ১৪ খন জিলাত অন্ধবিশ্বাস আৰু ডাইনী সম্পৰ্কীয় সজাগতা সভাৰ লগতে কৰ্মশালা আয়োজন কৰি আহিছে। মিছন বীৰৱালাৰ তত্ত্বাবধানত ছাত্ৰ সমাজৰ সহযোগত তৃণমূল পৰ্যায়ত সংগঠনটিৰ সম্প্ৰসাৰণৰ বাবে মিছন বীৰৱালাৰ কোষ গঠন কৰা হৈছে।

সামাজিক ৰীতি-নীতি, বিশ্বাস, পৰম্পৰা আদি আনুষাংগিক উপাদানসমূহে মানৱ জীৱনক পৰিপূৰ্ণতা প্ৰদান কৰে। সেইবাবেই হয়তো মানুহে এখন সুস্থ - সবল সমাজৰ

আকাংক্ষা কৰে। কিন্তু, বহুসময়ত দেখা যায় যে সমাজত এনে কিছু পৰম্পৰা প্ৰচলিত হৈ আছে, যিয়ে সমাজ এখন সুচাৰুৰূপে পৰিচালনা কৰাৰ ক্ষেত্ৰত বাধাৰূপে দেখা দিয়ে। ইয়াৰে এক উদাহৰণ হ'ল - ডাইনী হত্যা। গতিকে, এই বাধাসমূহ দূৰ কৰিবলৈ সামাজিকভাৱে দায়বদ্ধ লোকসকলে বিভিন্ন সময়ত বিভিন্ন ধৰণেৰে চেষ্টা কৰি আহিছে। বীৰৱালা ৰাভা তেনে এক দায়বদ্ধতাৰ উদাহৰণ। এই প্ৰবন্ধত আলোচনা কৰা সামাজিক পুঁজিৰ ধাৰণা, সংজ্ঞা আৰু ভূমিকাৰ পৰা আমি উল্লেখ কৰিব পৰোঁ যে - পাৰম্পৰিক বিশ্বাসযোগ্যতাৰ মাজেৰে সমাজখনক এক কৰি ৰাখিবলৈ, সমাজৰ সকলোকে এক ন্যায়সংগত জীৱন দিবলৈ বীৰৱালা ৰাভাই আমৃত্যু চেষ্টা কৰিছিল, সমাজত শোষিত হোৱা নাৰীসকলক উদ্ধাৰ কৰি ন্যায় প্ৰদান কৰাৰ পৰা, সমাজৰ চাৰিওকাষে পোঁখাই থকা মানৱতাবিৰোধী ব্যাধিসমূহ নোহোৱা কৰিবলৈ ৰাষ্ট্ৰীয় আৰু আন্তঃৰাষ্ট্ৰীয় মজিয়াত প্ৰতিনিধি হোৱালৈ - কৰ্ম আৰু আদৰ্শৰে বীৰৱালা ৰাভাই বাস কৰা সমাজখনলৈ অক্ষয় অৱদান আগবঢ়াই থৈ গৈছে, যি অৱদান অনাগত দিনৰ পথ-প্ৰদৰ্শক। বীৰৱালা ৰাভাৰ এই কৰ্মপন্থা বৰ্তমানৰ লগতে ভৱিষ্যত দিনৰ সামাজিক প্ৰতিবন্ধকতা দূৰীকৰণৰ এক আহিলা। গতিকে, বীৰৱালা ৰাভাক অসম আৰু অসমীয়া সমাজ জীৱনৰ বাবে সামাজিক পুঁজি হিচাপে গণ্য কৰিব পাৰি।

সামৰণি : দৈনন্দিন ঘটনাপ্ৰবাহৰ কাৰণ আৰু কাৰকবোৰ বিচাৰি উলিয়াব নোৱাৰি 'ওজা' নাইবা 'দেওধনী'ৰ কথা মতে অনৈতিক আচৰণ কৰা এজাক মানুহক সঁচা-মিছাৰ দুদল্যমান অৱস্থা এটাৰ পৰা তুলি আনি বিশ্বাস আৰু অন্ধবিশ্বাসৰ মাজত থকা পাৰ্থক্যক অনুধাৱন কৰিবলৈ সামৰ্থ্য কৰি তুলা মানুহগৰাকীয়েই বীৰৱালা ৰাভা। গতিকে, বীৰৱালা ৰাভাই এৰি থৈ যোৱা সমাজ আৰু প্ৰজন্মটোৰ বাবে ই এক যোগাত্মক বাতৰি। বীৰৱালা ৰাভাই চৌপাশৰ অনৈতিকতাক, ব্যভিচাৰিতাক আওকাণ নকৰি মানৱতা আৰু যুক্তিবাদী চিন্তাৰে সমাজখনক সংগঠিত কৰাৰ লগতে, সমাজত নৈতিক প্ৰমূল্যবোধৰ সংৰোপণ কৰিবলৈ সমৰ্থ হৈছিল। ৰাষ্ট্ৰ, প্ৰশাসন, স্বৈচ্ছাসেৱী সংগঠন, ছাত্ৰ সমাজ সকলোকে একত্ৰিত কৰি বীৰৱালা ৰাভাই ডাইনীৰ বিৰুদ্ধে এক জনমত গঠন কৰাত সফল হৈছিল। পৰৱৰ্তী সময়ৰ যিকোনো অন্যায়ৰ বিৰুদ্ধে কঠৰ হ'বলৈ বিচাৰসকলৰ বাবে বীৰৱালা ৰাভা এক অমূৰ্ত আদৰ্শ। অনগ্ৰসৰ এজাক উন্মাদ মানুহৰ মাজত থাকি, জীৱনলৈ অহা আসন্ন মৃত্যুৰ ভাবুকি তুচ্ছ জ্ঞান কৰি সমাজৰ ইতিবাচক পৰিৱৰ্তনৰ বাট বুলি বীৰৱালা ৰাভা আজিও ডাইনীৰ নামত উৎপীড়নৰ বলি হোৱাসকলৰ বাবে সকাহৰ নাম আৰু ডাইনী বিৰোধী যাত্ৰাৰ মাইলৰ খুঁটি। আত্মস্বার্থকবলিদান দি ত্যাগ আৰু নিষ্ঠাৰে সমাজৰ এলান্ধুকলীয়া অন্ধবিশ্বাসক মোহাৰি পেলোৱা বীৰৱালা ৰাভা প্ৰকৃততাত অসমীয়া সমাজ জীৱনৰ বাবে এক সম্পদ। □

প্ৰসংগ-পুথি :

- Behal, M. (2011). <http://www.posterwomen.org/?p=6377>. August 8, 2016 at 12.56 pm
- MyGov Assam. (2018, September 19). *Birubala Rabha : Strangest Voice Against witch Hunting*. [Video:] Youtube. <https://youtu.be/CjOalnlUk6A?si=k5RWBYjGX8IUhjYU>
- Chakraborty, J. & Borah, A. (2013). *Witch Hunting in Assam: Strategising Alternative Media for Women Empowerment and Overcoming Superstition*, Journal of North East India Studies, Vol. 3(2) , pp. 15-24, <https://www.jneis.com/wp-content/uploads/2020/12/3.2.2.pdf>
- Dasgupta, P. & Serageldin, I. (2011). *Social Capital: A Multifaceted Perspective*, The International Bank for Reconstruction and Development/ The World Bank, 1818 H Street, N.W. Washington, D.C. 20433, <https://g.co/kgs/kJ6abTZ>
- PRIDE, Lok Sabha Secretariat. (2022, April 19). *Dr. Birubala Rabha, Padma Shri 2021, Social Work, Interacting with Hon'ble Members of Parliament*. [Video:] Youtube. https://youtu.be/5ly3W2pMees?si=6lF8_S9eAMS_ZIsB
- Gogoi, V. (2023). *A Conclusive Study on Decoding Witch- Hunting as a societal threat to Assam*, Dego Rangsang Research Journal, ISSN:2347-7180, Vol-13, Issue-1, no 3, <https://www.bing.com/search?q=a>
- Handique, N. & Singh, P. (2025). *From Superstition to Violence : Understanding the Tragic Reality of Witch-Hunting in Assam*. Oriental Institute of Cultural and Social Research and SAGE. DOI:10.1177/0972558X241313197
- Khelkar, G. & Sharma, A. *Culture, Capital and Witch Hunt in Assam*, Council for Social Development. Sangha Rachna, K.K. Birla Lane, 53, Lodhi Estate, New Delhi, 11003, <https://csdindia.org/wp-content/uploads/2021/12/Culture-Capital-and-Witch-Hunts-in-Assam.pdf>
- Khound, G. K. (2019). *Bagee*, Banalata, Panbazar, Guwahati - 1
- Ninth Report, Second Administrative Reforms Commission, (2008). *Social Capital- A Shared Destiny*, Government of India, https://darpg.gov.in/sites/default/files/Social_Capital9.pdf
- Putnam (1993) as cited in Alpino, M. & Mehlum, H. (2023) Two notions of social capital, The Journal of Mathematical Sociology, 47:4, 255-282, <https://doi.org/10.1080/0022250X.2021.2004597>

Sharma, A. (2022). *The Indian Woman Who Hunts Witch Hunters*, <https://thecriticalscript.com/article-details/the-indian-women-who-hunts-witch-hunters>

Talukdar, S. (2024). *Birubala Rabha: Assam's Tireless Crusader Against Witch- Hunting*, The Wire, https://thewire.in/rigts/birubala_rabha_assams_tireless_crusader_against_witch-hunting

Times of India, (18th October, 2020), <https://timesofindia.indiatimes.com/2020/10/18/archivelist/year-2020, month-10, starttime-44122.cms>

Vaidyanathan, R. (2019). *Caste as Social Capital : The Complex Place of Caste in Indian Society*. Penguin Random House India Pvt. Ltd 4th Floor , Capital Tower 1, MG Road, Gurugram 122002, Haryana, India

ড° ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়াৰ অসুৰ গল্পৰ নাট্য-অভিযোজনা : এক বিশ্লেষণ



অৰন বুঢ়াগোহাঁই

গৱেষক, অসম বিশ্ববিদ্যালয়
ডিফু চৌহদ, কাৰ্বি আংলং
☎ ৭০০২৯৬৪৫৬৫
✉ dassatya01@gmail.com



ড° সত্যজিৎ দাস

সহকাৰী অধ্যাপক
অসম বিশ্ববিদ্যালয়
ডিফু চৌহদ, কাৰ্বি আংলং
☎ ৭০০২৯৬৪৫৬৫
✉ dassatya01@gmail.com

সংক্ষিপ্তসাৰ :

উনবিংশ শতিকাত অসমীয়া সাহিত্যই আধুনিক ৰূপ পৰিগ্রহণ কৰি আজিৰ অৱস্থাত উপনীত হৈছে। সাহিত্যই বিভিন্ন সময়ত তাৰ গতি-প্রকৃতি সলনি কৰি ভাৱবস্তু আৰু ৰূপবস্তুৰ দিশত নতুনত্ব আনিবলৈ সক্ষম হৈছে। সাহিত্যিক সকলেও বিভিন্ন সমল গ্ৰহণ আৰু পৰীক্ষা-নিৰীক্ষাৰ যোগেদি নতুন নতুন দিশৰ সন্ধান কৰিছে। অসমীয়া সাহিত্যত তেনে এক নতুন সম্পৰীক্ষা হ'ল *অভিযোজনা (Adaptation)*। গল্প-উপন্যাসসমূহকো সম্পৰীক্ষাৰ যোগেদি আন আন মাধ্যম যেনে-নাটক,চিনেমালৈ ৰূপান্তৰ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। অসমীয়া সাহিত্যত সাধুকথা,কবিতা,গল্প,উপন্যাস আৰু নাটক এই আটাইবোৰ সমলৰপৰাই নাট্য-অভিযোজনা হোৱা দেখা যায়। বিশেষকৈ অসমীয়া নাটকৰ ক্ষেত্ৰখনত বহু নাটক পোৱা যায়, যিবোৰ পূৰ্বৰ কোনো কাহিনীৰ অভিযোজিত ৰূপ। সেয়া পেচাদাৰীয়ে হওক বা অপেচাদাৰী উভয় প্ৰকাৰৰ নাটকৰ ক্ষেত্ৰতে *অভিযোজনা* লক্ষ্য কৰা যায়। নাট্যকাৰসকলৰ এনেধৰণৰ সম্পৰীক্ষা তথা নাট্য-অভিযোজনাই অসমীয়া নাট্য-সাহিত্যক এক বিশেষ মাত্ৰা প্ৰদান কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। অসমীয়া নাট্য-সাহিত্যৰ এটি পৰিচিত নাম ড° ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়া। তেখেতে কেইবাখনো নাটক ৰচনা কৰি ভ্ৰাম্যমান জগতৰ লগতে অপেচাদাৰী নাটক আৰু অনাতাঁৰ নাটককো সমৃদ্ধি কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। তদুপৰি সম্পৰীক্ষাৰ যোগেদি তেখেতৰ সৃষ্টিশীল সাহিত্য গল্প আৰু উপন্যাসক নাট্যৰূপ দিছে। তাৰে ভিতৰত *যৌতুক গল্পৰ* আধাৰত *দীনবন্ধু* নাটক, *গহুৰ গল্পৰ* আধাৰত *গহুৰনাটক*, *অসুৰ গল্পৰ* আধাৰত *বন্দীশাল* নাটক আৰু *বানপ্ৰহু* গল্পৰ আধাৰত *সন্ধ্যাৰাগ* নাট্যৰূপ দিয়াৰ লগতে *অন্তৰীপ* উপন্যাসৰ আধাৰত *অগ্নিস্নান* চলচ্চিত্ৰ, *এন্দুৰ* গল্পৰ আধাৰত *কোলাহল* চলচ্চিত্ৰ নিৰ্মাণ কৰে। আমাৰ এই আলোচনাত তেখেতৰ *অসুৰ গল্পৰ* আধাৰত ৰচিত নাটক *বন্দীশাল* নাট্য-অভিযোজনা সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা হ'ব।

তদুপৰি আলোচনাত *অভিযোজনা* কি, সংজ্ঞা আৰু তাত্ত্বিক দিশৰ লগতে কৌশলগত দিশত পুংখানুপুংখ অধ্যয়ন কৰিবলৈ যত্ন কৰা হ'ব।

বীজ শব্দ :

অভিযোজনা,গল্প,নাটক, নাট্য-অভিযোজনা ইত্যাদি।

০.০ অৱতৰণিকা :

০.১ বিষয়ৰ পৰিচয় :

খ্ৰীষ্টান বেপ্তিষ্ট মিছনেৰীসকলৰ আগমণৰ পাছতে আধুনিক অসমীয়া সাহিত্যৰ ভেটি নিৰ্মাণ হয়। কেৱল সেয়াই নহয়, অসমীয়া ভাষা, সাহিত্য আৰু সংস্কৃতিৰ ক্ষেত্ৰতো

আমূলপৰিবৰ্তন হোৱা পৰিলক্ষিত হয়। ঊনবিংশ শতিকাতে হোৱা এনে পৰিবৰ্তনৰ মাজেদি আহি আধুনিক ৰূপত অসমীয়া সাহিত্যই বৰ্তমান অৱস্থাত উপনীত হৈছে। সাহিত্যৰ ভাৱবস্তু আৰু ৰূপবস্তুৰ নতুনত্বৰ লগতে সাহিত্যিকসকলে বিভিন্ন সমল গ্ৰহণ আৰু সম্পৰীক্ষাৰ যোগেদি সাহিত্যৰ নতুন নতুন দিশৰ সন্ধান কৰিছে। অসমীয়া সাহিত্যত তেনে এক সম্পৰীক্ষা হ'ল 'অভিযোজনা' (Adaptation)। অভিযোজনা সাহিত্যৰ ভিন্ন বিধাত পোৱা যায়। কেতিয়াবা এটি কবিতাৰপৰা উপন্যাস, আকৌ কেতিয়াবা উপন্যাস আৰু গল্পৰপৰা নাটক এনেধৰণে আটাইবোৰ সমলৰপৰাই অভিযোজনা হোৱা দেখা যায়। বিশেষকৈ অসমীয়া নাটকৰ ক্ষেত্ৰখনত বহু নাটক পোৱা যায়, যিবোৰ পূৰ্বৰ কোনো গল্প, উপন্যাস, কবিতা অথবা নাটকৰে অভিযোজিত ৰূপ। অভিযোজনাৰ জৰিয়তে মূল সাহিত্য ৰূপটোৰ অনুসৃষ্টিৰ যোগেৰে একাংশ দৰ্শক অথবা পাঠকক ৰুচি প্ৰদান কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। এই আলোচনাত "ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়াৰ অসুৰ গল্পৰ নাট্য-অভিযোজনা বন্দীশালনাটক" সম্বন্ধে আলোচনা কৰিবলৈ যত্ন কৰা হৈছে।

০.২ বিষয়ৰ পৰিসৰ :

আমাৰ অধ্যয়নৰ পৰিসৰত ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়াৰ অসুৰ গল্পটোৰ নাট্য-অভিযোজনা বন্দীশালৰ বিষয়ে আলোচনা কৰিবলৈ যত্ন কৰা হ'ব।

০.৩ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য আৰু গুৰুত্ব :

* অভিযোজনা কি সেই বিষয়ে জানিবপৰা হ'ব।

* ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়াৰ অসুৰ গল্পৰ বিষয়বস্তু আৰু বন্দীশাল নাটকৰ বিষয়বস্তু সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰা হ'ব।

* নাটকখনৰ অভিযোজনাৰ কৌশলগত দিশ সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা হ'ব।

অসমীয়া নাট্য-সাহিত্যৰ জগতত এটা পৰিচিত নাম ড॰ ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়া। তেখেতৰ বহুখিনি সৃষ্টিশীল সাহিত্য গল্প, উপন্যাসক তেখেতে নাট্যৰূপ দিবলৈ সক্ষম হৈছে। এনেধৰণৰ সম্পৰীক্ষাৰ যোগেদি অসমীয়া নাট্য সাহিত্যকো যথেষ্ট চহকী কৰি থৈ গৈছে। বিশেষকৈ অসমীয়া নাটকৰ গতি-প্ৰকৃতি বা সম্পৰীক্ষাৰ ক্ষেত্ৰত ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়াৰ যথেষ্টখিনি গুৰুত্ব আছে। তেখেতৰ সৃষ্টিশীল সাহিত্যখিনিৰ নাট্যৰূপৰ বিষয়ে পুংখানুপুংখভাৱে অধ্যয়ন কৰাৰ যথেষ্ট গুৰুত্ব আছে। যিহেতু নাটকে এটা গণমাধ্যমৰ

কাম কৰে, আনহাতে সৃষ্টিশীল সাহিত্যসমূহ কেৱল বৌদ্ধিক সমাজৰ মাজতে সীমাবদ্ধ হৈ থাকে। গতিকে সম্পৰীক্ষাৰ যোগেদি গণমাধ্যমলৈ ৰূপান্তৰিত হোৱাৰ যিটো পৰিৱেশ, সেইখিনি পুংখানুপুংখভাৱে অধ্যয়ন কৰাৰ যথেষ্ট গুৰুত্ব আছে।

০.৪ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি :

বিষয়বস্তুৰ অধ্যয়ন কৰিবলৈ প্ৰধানকৈ বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে যদিও প্ৰয়োজন সাপেক্ষে বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰো ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে।

১.০০ মূল বিষয় :

১.০০ ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়াৰ পৰিচয় :

ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়া (১৯৩২-২০০৩) অসমৰ এগৰাকী বিশিষ্ট ঔপন্যাসিক, গল্পকাৰ, নাট্যকাৰ আৰু বোলছবি পৰিচালক। কবিতা, নাটক, গল্প, উপন্যাস, প্ৰবন্ধ, সমালোচনা, হাস্য-ব্যংগাত্মক সাহিত্য, আত্মজীৱনী, শিশু সাহিত্য আদিকে ধৰি সাহিত্য-সংস্কৃতিৰ প্ৰায় সকলো দিশতে ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়াই অৱদান আগবঢ়াই থৈ গৈছে।

ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়াই লণ্ডন বিশ্ববিদ্যালয়ৰ পৰা পদাৰ্থ বিজ্ঞান বিষয়ত ডক্টৰেট ডিগ্ৰী লাভ কৰিছিল। তাৰ পিছত গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়ৰ পদাৰ্থ বিজ্ঞান বিভাগত ৰিডাৰ হিচাপে নিজৰ কৰ্মজীৱনৰ আৰম্ভ কৰে। অসমীয়া ভাষাৰ পষেকীয়া আলোচনী প্ৰান্তিক আৰু শিশু আলোচনী সঁফুৰা তেখেত প্ৰতিষ্ঠাপক সম্পাদক আছিল। ইয়াৰ উপৰি তেখেতে ৰেডিঅ' নাট, একাঙ্কিকা নাটক, ভ্ৰাম্যমান থিয়েটাৰৰ বাবে নাটক ৰচনা কৰিছিল। তেখেতে আঠখন অসমীয়া চলচ্চিত্ৰও পৰিচালনা কৰিছিল। ইয়াৰ সাতখন বোলছবি কাৰণে তেখেতে ভাৰত চৰকাৰৰ ৰজত কমল বঁটা লাভ কৰিছিল। তদুপৰি তেখেতে ১৯৭৬ চনত সাহিত্য অকাডেমি বঁটা আৰু ১৯৯০ চনত 'অসম উপত্যকা সাহিত্য বঁটা'ৰ লগতে পদ্মশ্ৰী সন্মানো লাভ কৰিছিল।

ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়াই তেখেতৰ একাধিক সাহিত্য ৰচনা লিখোঁতে ছদ্মনাম ব্যৱহাৰ কৰিছিল। বিশেষকৈ হাস্যব্যংগমিশ্ৰিত ৰচনাসমূহ তেখেতে ছদ্মনামেৰে লিখিছিল। সেই ৰচনাসমূহ 'প্ৰান্তিক' আৰু সাপ্তাহিক কাকত 'বুধবাৰ'ৰ বিভিন্ন সংখ্যাত প্ৰকাশিত হৈছিল। তেখেতৰ দ্বাৰা সৰ্বাধিক ব্যৱহৃত ছদ্মনামটি আছিল 'সত্যপ্ৰিয় পাঠক'।

তেখেতৰ চুটিগল্প সংকলন কেইখন হ'ল—

প্ৰহৰী (১৯৬৩), সেন্দূৰ (১৯৭১), শৃংখল (১৯৭৫), উপকণ্ঠ (১৯৯১), এই বন্দৰৰ আবেলি (১৯৮৮), বৃন্দাবন (১৯৬৫), তৰংগ (১৯৭৮), সান্ধ্য ভ্ৰমণ (১৯৯৮), গল্প আৰু শিল্প, আকাশ।

উপন্যাস হৈছে : অন্তৰীপ (১৯৮৬), বম্যভূমি (১৯৯১), আতংকৰ শেষত (১৯৫২ দশম শ্ৰেণীত থাকোঁতে চিত্ৰমূলক ৰচনা : প্ৰবন্ধ সংকলন শেষ পৃষ্ঠা (চাৰিটা খণ্ড)

শিশু সাহিত্য : মৰমৰ দেউতা (১৯৯১), তোমালোক ভাল থাকা, তোমালোকৰ ভাল হওক, শান্ত-শিষ্ট-হাষ্টপুষ্ট মহাদুষ্ট (১৯৯৭)

১.০২ অভিযোজনা :

অসমীয়া নাটকত অভিযোজনা বিভিন্নধৰণে হোৱা দেখা যায়। পাশ্চাত্যৰ নাটক বা আন সাহিত্যৰ অনুবাদ কলাৰ সহায় লৈ অসমীয়াত অভিযোজন ঘটাই নাটক ৰচনা কৰা দেখা যায়। কেৱল পাশ্চাত্যৰ সাহিত্যসমূহৰ পৰাই যে অসমীয়াত নাটকৰ অভিযোজনা কৰিছে তেনে নহয়। প্ৰাচ্যৰ বিভিন্নজন সাহিত্যিকৰ প্ৰচুৰ পৰিমাণে সাহিত্যিক অসমীয়া নাটকত অভিযোজন ঘটাইছে। ইয়াৰ উপৰিও আন এক শ্ৰেণীৰ অভিযোজনা দেখা যায়, সেয়া হৈছে অসমীয়া ভাষাৰ ভিতৰতে অসমীয়া সাহিত্যৰ বিভিন্ন সমলবোৰৰ পৰা অসমীয়া নাটকতে অভিযোজনা।

অভিযোজন (Adaptation) হৈছে গ্ৰন্থ বিশেষৰ বৰ্ণিত ঘটনা, চৰিত্ৰাৱলী আৰু সিবোৰ বাণীভংগী যথাসম্ভৱ অক্ষুণ্ণ ৰাখি তাক অন্য এটা মাধ্যমেদি প্ৰকাশ কৰিবৰ বাবে নতুনকৈ গঢ় দিয়া হয়, তাকে অভিযোজন বোলা হয়। উপন্যাস বিশেষকৈ কথাছবিৰ বাবে, ৰেডিঅ' আৰু টেলিভিছনৰ বাবে অভিযোজন কৰা হয়। আকৌ কেতিয়াবা নাটককো গল্পৰ ৰূপত, উপন্যাস ৰূপত প্ৰকাশ দেখা যায়; সিয়ো অভিযোজনেই। (কটকী, ২৭)

'Theory of Drama' নামৰ গ্ৰন্থত এলাডিক নিকলে নাটকৰ সংজ্ঞা এইদৰে আগবঢ়াইছে - *Drama is the art of expressing ideas about life in such manner as to render that expression capable of interpretation by actors and likely to interest an audience assembled to hear the words and witness the actions.* (Nicoll 35)

নাটক হ'ল জীৱন সংগ্ৰাস্ত ধাৰণাসমূহৰ অভিব্যক্তিৰ এনে এক শিল্পকলা, য'ত সেই অভিব্যক্তি অভিনেতাসকলৰ দ্বাৰা ব্যাখ্যাত হোৱাৰ উপযোগী আৰু যি অভিব্যক্তি তাৰ শ্ৰৱণীয় বচন আৰু দৰ্শনীয় ক্ৰিয়াশীলতাৰে সমবেত দৰ্শক মণ্ডলীৰ মনোৰঞ্জনৰ কাৰণ হ'ব পাৰে।

অভিযোজনাৰ ইংৰাজী প্ৰতিশব্দ 'Adaptation' ৰ সংজ্ঞা Harry Shaw - ৰে *Dictionary of Literary Terms* গ্ৰন্থত এনেদৰে আগবঢ়াইছে - "The re-casting of a work to fit another medium while retaining the action, characters and as much as possible the language and tone of the original. Novels are frequently adapted for the film, the stage of television : a play may appear as an adaptation in novel form or as a radio presentation etc." (Shaw 6)

অভিযোজনা অন্য এটা মাধ্যমৰ বাবে প্ৰস্তুত কৰা পুনঃনিৰ্মাণ কাৰ্য; য'ত চৰিত্ৰ, ভাষা, সুৰ আদিৰ মূল যথাসম্ভৱ ক্ৰিয়াশীল কৰি ধৰি ৰখা হয়। উপন্যাস সততে চিনেমা আৰু টেলিভিছনৰ মঞ্চৰ বাবে আশ্ৰিত কৰা হয়; এখন নাটকো ৰেডিঅ'ত পৰিবেশনৰ বাবে উপন্যাস ৰূপত অভিযোজন হয়।

'অভিযোজনা' যাক ইংৰাজীত 'Adaptation' বুলি কোৱা হয়, তাৰ আভিধানিক সংজ্ঞা বিচাৰি গ'লে আমি এনেদৰে পাবোঁ -

"Literary adaptation is the adapting of a literary source (e.g. a novel, short story, poem) to another genre or medium, such as a film, a stage play, or even a video game. It can also involve adapting the same literary work in the same genre or medium, just for different purposes, e.g., to work with a smaller cast, in a smaller venue (or on the road), or for a different demographic group (such as adapting a story for children). (en.m.wikipedia.org).

অৰ্থাৎ, সাহিত্যিক অভিযোজন হৈছে এক উৎসৰ (যেনে, এখন উপন্যাস, চুটিগল্প, কবিতা) ক আন এটা ধাৰা বা মাধ্যমৰ সৈতে খাপ খুৱাই লোৱা, যেনে চলচ্চিত্ৰ,

মঞ্চ নাটক, বা আনকি এচ ভিডিঅ' গেম। ইয়াত একেধৰণৰ বা মাধ্যমত একেটা সাহিত্যিক কামৰ সৈতে খাপ খোৱাটো অন্তৰ্ভুক্ত থাকিব পাৰে, কেৱল বিভিন্ন উদ্দেশ্যৰ বাবে, যেনে সৰু সৈতে কাম কৰা, সৰু স্থানত (বা ৰাস্তাত), বা এক পৃথক জনগাঁথনি গোটৰ বাবে (যেনে শিশুৰ বাবে কাহিনী এটা অভিযোজিত কৰা)।

বিভিন্নজনে আগবঢ়োৱা 'অভিযোজনা'/'Adaptation' ৰ সংজ্ঞা তলত উল্লেখ কৰা হ'ল -

"Cinema is still playing second fiddle to Literature."- Rabindranath Tagore (1929)(Hutcheon,1)

অৰ্থাৎ চিনেমা এতিয়াও সাহিত্যৰ বাবে দ্বিতীয় স্থানৰ ফিদল (বেহেলা বাদন)।

"Writing a screen play based on a great novel [George Eliot's Daniel Deronda] is foremost a labour of simplification. I don't mean only the plot, although particularly in the case of a Victorian novel teeming with secondary characters and subplots, severe pruning is required, but also the intellectual content. A film has to convey its message by images and relatively few words; it has little tolerances for complexity or irony or tergiversations. I found the work exceedingly difficult, beyond anything I had anticipated. And, I should add, depressing: I care about words more than languages, and yet I was constantly sacrificing words and their connotations. You might tell that through images film conveys a vast amount of information that words can only attempt to approximate, and you would be right, but approximation is precious in itself, because it bears the author's stamp. All in all, it seemed to me that my screenplay was worth much less than the book, and that the same would be true of the film.

Novelist John North in Lovis Begley's novel, Shipwreck (2003)(Hutcheon,2)

অৰ্থাৎ, এখন বিখ্যাত উপন্যাসৰ (জৰ্জ ইলিয়টৰ ডেনিয়েল ডেৰোণ্ডা) ওপৰত আধাৰিত এখন চিত্ৰনাট্য ৰচনা কৰাটো হৈছে সৰলীকৰণৰ এক শ্ৰম। মই কেৱল প্লটটো বুজাব নোৱাৰোঁ, যদিও বিশেষকৈ গৌণ চৰিত্ৰ আৰু উপ-প্লটৰে পৰিপূৰ্ণ ভিষ্টুৰিয়ান উপন্যাসৰ ক্ষেত্ৰত, তীব্ৰ পুনিং প্ৰয়োজন। কিন্তু লগতে বৌদ্ধিক সমল। এখন চলচ্চিত্ৰই ইয়াৰ বাৰ্তা ছবি আৰু তুলনামূলকভাৱে কম শব্দৰ দ্বাৰা প্ৰদান কৰিব লাগিবচি বিড়ম্বনা বা টৰ্গিভাৰেচনৰ ওপৰত জটিলতাৰ বাবে ইয়াৰ সামান্য ট'লৰেঞ্চ আছে। মই কামটো অত্যন্ত কঠিন পাইছিলোঁ, মই আশা কৰা যিকোনো বস্তু ৰখা। আৰু মই যোগ দিব লাগে হতাশাজনকঃ মই ছবিতকৈ শব্দৰ বিষয়ে বেছি চিন্তা কৰোঁ, আৰু তথাপিও মই নিৰন্তৰ শব্দ আৰু সেইবোৰৰ অৰ্থ ত্যাগ কৰি আছিলোঁ। আপুনি মোক ক'ব মোক ক'ব পাৰে যে ছবিৰ জৰিয়তে চলচ্চিত্ৰই এক বিশাল পৰিমাণৰ তথ্য প্ৰদান বাবে যি শব্দবোৰ কেৱল আনুমানিক কৰিবলৈ চেষ্টা কৰিব পাৰে, আৰু আপুনি শুদ্ধ হ'ব, কিন্তু আনুমানিক পৰিমাণ নিজেই মূল্যবান, ইয়াৰ বাবে ই লেখকৰ মোহৰ বহন কৰে। একেবাৰে মোৰ এনে লাগিছিল যে মোৰ চিত্ৰনাট্যৰ মূল্য কিতাপখনতকৈ বহুত কম আছিল, আৰু ছবিখনৰ ক্ষেত্ৰতো একেই কথা প্ৰত্যাশিত হ'ব।

এইকেইটা আছিল অভিযোজনা বা Adaptation কি তাৰ সংজ্ঞা। কিন্তু, কেনেকৈ হয় সেই বিষয়েও সংজ্ঞা পোৱা যায়। তলত তেনে এটি সংজ্ঞা উদ্ধৃত কৰা হ'ল -

"Unlike Dom Quixat's books, digital media take us to a place where we can act out our fantasies. With telnet connection or a CD - Rom drive, we can kill our own dragons."

- Janet M. Murray, Hamlet on the Holodeck.(Hutcheon,113)

অৰ্থাৎ, ডন কুইক্সোটৰ কিতাপখনৰ বিপৰীতে, ডিজিটেল মাধ্যমেই আমাক এনে এক ঠাইলৈ লৈ যায় য'ত আমি আমাৰ কল্পনাবাদী কাম কৰিব পাৰোঁ, টেলনেট সংযোগ বা চিডি-ৰম ড্ৰাইভৰ সৈতে, আমি আমাৰ নিজৰ ড্ৰেগনক হত্যা কৰিব পাৰোঁ।

এইদৰে প্ৰাচ্য আৰু পাশ্চাত্যৰ বিভিন্নজন পণ্ডিতে অভিযোজনা কি আৰু কেনেকৈ হয় সেই সম্পৰ্কে সংজ্ঞা দিয়া দেখা যায়।

১.০৩ অসুৰ গল্পৰ বিষয়বস্তু :

ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়াৰ এটি উল্লেখযোগ্য গল্প হৈছে অসুৰ। এই গল্পটোত পাৰিবাৰিক কিছু ঘটনাবাজিৰ উল্লেখৰে এটি কাহিনী পোৱা যায়।

গল্পটোত পোৱা চৰিত্ৰসমূহ হৈছে - ইন্দ্ৰ ৰাজবংশী, সুৰবালা (ইন্দ্ৰৰ পত্নী), উমা (ৰাজবংশীৰ জীয়েক), অনন্ত মহন্ত (নামঘৰৰ নামঘৰীয়া), গিদৱানী, খেমকা, পুৰকায়স্থ, তেৱাৰী, চৌধুৰী, চন্দ্ৰ উকীলৰ ঘৈণীয়েক, মাধৱীৰ বুঢ়ীমাক, ৰঙা বুঢ়ী আৰু ফুল মাষ্টৰণী, চন্দ্ৰ উকীল, মাধৱীৰ দেউতাক, বিপিন ঠিকাদাৰ আৰু ৰুদ্ৰ তালুকদাৰ।

ইন্দ্ৰ ৰাজবংশীৰ ঘৰুৱা সমস্যা এটি পাছলৈ গৈ কিদৰে ৰাজহুৱা সমস্যা হৈ পৰে তেনে এক ক্ষুদ্ৰ অথচ গুৰুগন্তীৰ বাৰ্তা গল্পটোত পোৱা যায়। গল্পকাৰ ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়াই সাধাৰণতে যিবোৰ কাহিনী লৈ গল্প ৰচনা কৰে, সেই সকলোবোৰ কাহিনীয়েই আমাৰ চাৰিওফালে ঘটি থকা কিছুমান কাহিনী। বাস্তৱ জীৱনৰ কাহিনী সমূহকে গল্পৰ ৰূপ দি অতি মনোগ্ৰাহী কৰি তোলে।

ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়াৰ অসুৰ নামৰ গল্পটোৰ কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ হৈছে ইন্দ্ৰ ৰাজবংশী। ইন্দ্ৰ ৰাজবংশী হৈছে এজন অতি সাধাৰণ মানুহ। দৰিদ্ৰতাই কোঙা কৰি পেলোৱা ইন্দ্ৰ ৰাজবংশীয়ে দুবেলা দুমুঠি খাবলৈও চিন্তা কৰিবলগীয়া হয়। তেখেতৰ দুজন পুত্ৰ থকা বুলি যদিও গল্পকাৰে উল্লেখ কৰিছে কিন্তু গল্পটোত তেওঁলোকৰ কোনো ভূমিকা দেখিবলৈ পোৱা নাযায়। গল্পকাৰে অতি কৌশলীৰূপত দুজন পুত্ৰক থকাটো উল্লেখ কৰিছে এইদৰে - “ৰামগোপাল আৰু হৰকুমাৰৰ পঢ়া-শুনা বৰ বেছি নহ’ল। এসময়ত ফৰেষ্ট গাৰ্ড হৈ ক’ৰবাৰ জঙ্গললৈ গুচি গ’ল। পিছত সি এজনী নেপালী ছোৱালী বিয়া কৰোৱাৰ খবৰ এটা আহিল। হৰকুমাৰৰ বহুত দিনৰেপৰা ফিলিমত উঠাৰ চখ হৈছিল, এদিন সিও ঘৰৰপৰা ওলাই বহুদূৰ পালেগৈ। মাজতে সি ফিলিমৰ ৰাজ্যৰ চাহৰ দোকান এখনত কাম কৰে বুলি খবৰ এটা আহিছিল, তাৰ পিচত আৰু কোনো চিঠি-পত্ৰ নাই।” (শইকীয়া, পৃষ্ঠা ৪২)

ইন্দ্ৰ ৰাজবংশীৰ ঘৰখনত কেৱল ইন্দ্ৰ আৰু তেখেতৰ পত্নী আৰু কন্যা উমা থাকে। কেউ কিছু নথকা ঘৰখনত এজনী গাভৰু ছোৱালী থাকিলে পিতৃ-মাতৃৰ কেনেকুৱা ধৰণৰ চিন্তা-ভাৱনাই আঙুৰি থাকে সেয়াও গল্পটোত দেখা পোৱা যায়। ইন্দ্ৰই আধা বয়সত চৰকাৰী বাছৰ অফিচৰ

চাকৰিত সোমাইছিল। কণ্ডাক্টৰ হিচাপে কিছুদিন কাম কৰাৰ পাছত নোৱাৰা হৈ আহিল আৰু তেতিয়া ইন্দ্ৰক অফিচত বহি হিচাপ কৰাৰ কাম কৰিবলৈ দিলে। তাৰ লগতে ইন্দ্ৰই তিনিখন পাণ-তামোল-বিড়ি-চিগাৰেটৰ দোকানঘৰ সজায়। পিতৃয়ে মাটি দান দিয়া নামঘৰটোৰ সন্মুখতে বহুওৱা তিনিওখন দোকানৰপৰা প্ৰতিমাহে দহটকা ভাড়া লয় কিন্তু, যিকোনো কথাতেই যে মানুহৰ এটা নহয় এটা আপত্তি থাকেই। তাৰ এটি আভাস গল্পটিত পোৱা যায়। দুগৰাকীমান বুঢ়ীয়ে ইন্দ্ৰ ৰাজবংশীক এইদৰে কৈছিল - “তুমি দোকান কেইখন একেবাৰে নামঘৰটোৰ আগতে বহুৱালা, কোনোমতে ওলোৱা সোমোৱা বাটটোহে ৰ’ল।” (শইকীয়া, পৃষ্ঠা ৪৩) মানুহে যে কেৱল নিজৰ সুবিধাটোহে চায়। ইন্দ্ৰ ৰাজবংশীৰ দৰে এজন দৰিদ্ৰ ব্যক্তিয়ে দোকান কেইখন খুলি যে কিবা অলপ উপাৰ্জন কৰিব পাৰিছে সেই কথাটোলৈ কোনোও মন-কাণ দিয়া নাই।

এনেকৈয়ে এদিন ইন্দ্ৰই জীয়েক উমাৰ বিয়াৰ কথা ভাবিলে। কিন্তু, বিয়া দিবলৈ যিমানখিনি টকা-পইচাৰ প্ৰয়োজন ইন্দ্ৰৰ হাতত সিমানখিনি নাছিল। সেয়েহে তেখেতে ঠিৰাং কৰিলে যে পিতাকে দান কৰি থৈ যোৱা নামঘৰটোৰ কাষৰ আধাকথা মাটি বিক্ৰী কৰিব। এই খবৰ বিয়পিপৰাৰ লগে লগে গিদৱানী, খেমকা, পুৰকায়স্থ, তেৱাৰী আৰু চৌধুৰী আদি কেইবাজনো গ্ৰাহক তেখেতৰ ওচৰলৈ আহে। গিদৱানীয়ে চাৰে পাঁচ হাজাৰ, খেমকাই সাত হাজাৰ, পুৰকায়স্থই ছয়, চাৰে ছয় আৰু তেৱাৰীয়ে ছয় হাজাৰ টকা দিম বুলি কয়। কিন্তু, ৰাজবংশীয়ে কো এজনকো হাঁ-না একো নকয়। ইফালে নামঘৰৰ কাষৰ মাটি টুকুৰা বিক্ৰী কৰিবলৈ ওলাইছে বুলি জানি নামঘৰৰ সমাজৰ লোকসকলে আপত্তি কৰে। ৰাজবংশীক মাটি ডোখৰ বিক্ৰী নকৰিবলৈ অনুৰোধ কৰে। ৰাজবংশীয়েও তেখেতৰ সমস্যাটোৰ বিষয়ে ৰাইজক অৱগত কৰাত ৰাইজে দান-বৰঙণি উঠাই হ’লেও মাটিডোখৰ নামঘৰৰ নামত কিনি লোৱাৰ সিদ্ধান্ত গ্ৰহণ কৰে। যিহেতু, নামঘৰীয়া অনন্ত মহন্তৰ থকা ঠাই এডোখৰৰ প্ৰয়োজন সেয়ে ৰাইজে সেই ঠাইডোখৰতে এটি ঘৰ সাজি দিয়াৰ পৰিকল্পনা কৰে। ৰাইজে সিদ্ধান্তটো ল’লে কিন্তু ফলপ্ৰসূহে নহ’ল। ফলত ৰাজবংশীয়ে জীয়েকৰ বিয়াৰ বাবে মাটিডোখৰ বিক্ৰী কৰাটোৱেই সিদ্ধান্ত গ্ৰহণ কৰে।

এইখিনিতে গল্পটোৰ কাহিনীয়ে অন্য এটা দিশ লয়। নামঘৰীয়া অনন্ত বাপুৱে ইন্দ্ৰ ৰাজবংশীৰ জীয়েক উমাক

বিয়া কৰোৱাৰ প্ৰস্তাৱ দিয়ে। ইন্দ্ৰ আৰু তেখেতৰ পত্নীয়ে এই কথাত অতি আনন্দ অনুভৱ কৰে। ৰাইজে কথাষাৰ গম পোৱাত ভাল পোৱাতকৈ বেয়াহে পালে। লাহে লাহে ৰাইজে নামঘৰলৈ অহা বন্ধ কৰে। এই কথাত ৰাজবংশীয়ে মনতে বৰ দুখ অনুভৱ কৰে আৰু থাপনাৰ সন্মুখত সেৱা কৰি নামঘৰৰ মাটিডোখৰ খেমকাক বিক্ৰী কৰি মানুহ থকা ঘৰ সাজিম বুলি কৈ কান্দিবলৈ ধৰে। ইমানতে গল্পটো সমাপ্ত হয়।

সাধাৰণ দুখীয়া শ্ৰেণীৰ মানুহবোৰৰ জীৱনলৈ যেন সুখ অহাৰ কোনো বাট নাথাকে। গল্পকাৰে তেনে এক ইংগিত দিছে। তথাকথিত ভদ্ৰসমাজে দুখীয়াৰ দুখ বুজিবলৈ চেষ্টা নকৰে। তেওঁলোকে কেৱল আলোচনা সমালোচনাৰে পৰ চৰ্চাহে কৰিব পাৰে। কিন্তু, কিছুমান সমালোচনাই যে এখন ঘৰ শেষ কৰি দিব পাৰে, সেই কথা কোনোও ভাবি নাচায়। ইন্দ্ৰ ৰাজবংশী এজন অতি দৰিদ্ৰ ব্যক্তি। গতিকে, কন্যাক বিয়া দিবলৈ মাটিডোখৰ বিক্ৰী কৰাৰ বাদে তেখেতৰ কোনো গত্যন্তৰ নাই। যিহেতু নামঘৰৰ ওচৰৰ মাটি গতিকে ৰাইজে বিক্ৰী কৰাত আপত্তি দৰ্শায়। কাৰণ, নামঘৰীয়া অনন্ত বাপু থাকিবলৈ সেইডোখৰ ঠাইত ৰাইজে এটি ঘৰ সাজি দিবলৈ খোজে। কিন্তু, অনন্ত বাপুৱে ইন্দ্ৰৰ জীয়েক উমাক বিয়া কৰাবলৈ ওলোৱাত ইন্দ্ৰই তেওঁলোকৰ ঘৰতে অনন্ত বাপুক থাকিবলৈ দিয়ে। ৰাইজে সেই কথাতো আপত্তি কৰে। লগতে নামঘৰলৈ অহাটোৱেই বাদ দিয়ে। ৰাইজ আৰু তেওঁলোকৰ আপত্তি এই দুটাক এটা এবাব নোৱাৰা সমস্যাৰ ৰূপত গল্পটোত উপস্থাপন কৰিছে।

প্ৰায় সমাজত ঘটি থকা এটি ক্ষুদ্ৰ অথচ অতি স্পৰ্শকাতৰ ঘটনাকে বিষয়বস্তু হিচাপে লৈ গল্পৰ ৰূপত ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়াই সুন্দৰকৈ সজাই-পৰাই ৰচনা কৰিছে। য'ত সমাজখনৰ বাস্তৱত সংঘটিত হৈ থকা সামাজিক সমস্যাৰ প্ৰতিফলন ঘটিছে। যিবোৰ সমস্যাই একোখন সমাজক ভাললৈ নহয়, কেৱল বেয়ালৈহে ঠেলি নিয়ে। গল্পকাৰে সমস্যাবোৰক বাস্তৱ ৰূপ দিয়াত সফল হৈছে বুলিব পাৰি।

১.০৪ বন্দীশাল নাট্য-অভিযোজনা :

১৯৬৯ চনতে ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়াই ৰচনা কৰা অসুৰ গল্পৰ আধাৰতে আৱাহন থিয়েটাৰৰ বাবে *বন্দীশাল* নামেৰে নাটক ৰচনা কৰে।

বন্দীশাল নাটকখনৰ চৰিত্ৰসমূহ হৈছে — ইন্দ্ৰ

ৰাজবংশী, খেমকা, চৌধুৰী, বৈকুণ্ঠ, পুৰকায়স্থ, চন্দ্ৰ উকীল, তালুকদাৰ, অনন্ত বাপু, তিনিজন মানুহ (ল'ৰা ১), চাহ দিয়া ল'ৰা, মিটিঙৰ সভ্যসকল, এজন দোকানৰ গ্ৰাহক, পাঁচজন ডেকা, গায়ক (পুৰুষ)

সুৰবালা (ইন্দ্ৰ ৰাজবংশীৰ স্ত্ৰী), উমা (ইন্দ্ৰ ৰাজবংশীৰ জীয়ৰী), কেইগৰাকীমান আই, শ্ৰীমতী বুজৰবৰুৱা (নাৰী চৰিত্ৰ)

কোনো কাহিনী, সাধুকথা, গল্প, উপন্যাস আদি সাহিত্যৰ প্ৰায় সকলো সমলৰপৰাই নাট্য-অভিযোজনা হোৱা দেখা যায়। নাট্যৰূপ বা অভিযোজনাটি কৰিবলৈ যাওঁতে কেতিয়াবা কাহিনীটোৰ এটা অংশ লয়, কেতিয়াবা কাহিনীটোৰ সৈতে অলপ সংযোগ কৰে, কেতিয়াবা সাৰ অংশ লয় আৰু কেতিয়াবা কেৱল ছাঁয়াটোহে থাকে।

বন্দীশাল নাটকৰ ক্ষেত্ৰটো দেখা যায় যে গল্পটোৰ নামটো আছিল অসুৰ কিন্তু নাট্যৰূপ দিওঁতে নাটকখনৰ নাম ৰাখে বন্দীশাল। নাটকখনত ইন্দ্ৰ ৰাজবংশী নামৰ এজন অতি সাধাৰণ ব্যক্তিৰ কথাকে কাহিনীটো আগবাঢ়িছে। গল্পটোত যিদৰে পোনপটীয়াকৈ মাটি বিক্ৰীৰ কথাকে আৰম্ভ কৰিছে নাটকখন কিন্তু তেনেকৈ আৰম্ভ কৰা নাই। নাটকখন আৰম্ভ হৈছে ৰাতিৰ এটা দৃশ্যৰে। যিটো দৃশ্যত কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ ইন্দ্ৰই সুৰাপান কৰি আহি ওচৰৰ বৈকুণ্ঠ নামৰ ল'ৰাটোৰ দোকানখনত বহে। অভিযোজনা কৰোঁতে প্ৰায়ে এনে হোৱা দেখা যায়।

বন্দীশাল নাটকখনত ইন্দ্ৰৰ দুখীয়া পৰিয়ালটোৰ দুখৰ ছবিবোৰ সংলাপৰ জৰিয়তে প্ৰকাশ পাইছে।

“তাইৰ বিয়াখনৰ বাহিৰে আৰু মোৰ কি কাম থাকিল? সেইডোখৰ মাটি গেৰেজৰ তেল-মবিল পৰি ক'লা হোৱাতকৈ, তাৰ পইচাৰে মোৰ ছোৱালীজনীৰ কপালত সেন্দূৰ উঠাই ভাল। কাইলৈ মই মুখে মুখে এডভেটাইজ কৰিম। সাত দিন ছেভেন ডেজ। তাৰ পিছত তোমাৰ হাতত নগদ বিয়াৰ খৰচ। তুমি ল'ৰাৰ যোগাৰ কৰা।” (শইকীয়া, ৬২৮)

জীয়েক উমাক বিয়া দিবলৈ ইন্দ্ৰই মাটি এডোখৰ বিক্ৰী কৰিব খোজে। সেয়ে দোকানী বৈকুণ্ঠৰ হতুৱাই কেইবাজনো গ্ৰাহকক মাটি আনি দৰ-দাম কৰে। কিন্তু, এইবোৰ কথা চিন্তা-চৰ্চা চলি থাকোঁতেই চৌধুৰী, চন্দ্ৰ আৰু তালুকদাৰ নামৰ তিনিজন ব্যক্তি আহি এটি প্ৰস্তাৱ লৈ ইন্দ্ৰৰ ওচৰলৈ আহে।

প্ৰস্তাৱটো আছিল এয়ে যে ইন্দ্ৰই বিক্ৰী কৰিবলৈ ওলোৱা মাটিডোখৰ নামঘৰৰ নামত দি দিব লাগে। ইন্দ্ৰৰ দেউতাকে যিহেতু নামঘৰটো সাজিবলৈ মাটি দান দিছিল, সেয়ে এতিয়া মণিকুটভাগ ভালকৈ বনাবলৈ বাকী থকা মাটিডোখৰো নামঘৰলৈ বুলি দান দিব লাগে। সেই মাটিতে তেওঁলোকে নামঘৰীয়া অনন্ত বাপু থাকিবপৰাকৈ ঘৰ এটি সাজি দিব। ইন্দ্ৰই এই প্ৰস্তাৱটো মানি ল'ব নোখোজে। কিয়নো তেওঁৰ ছোৱালী উমাক বিয়া দিবলৈ হ'লে টকাৰ প্ৰয়োজন হ'ব আৰু সেয়ে মাটিডোখৰ বিক্ৰী কৰিব লাগিব। সেইটোৱে একমাত্ৰ উপায় আছে।

ইন্দ্ৰৰ কথাবোৰত নামঘৰৰ ৰাইজে আপত্তি দৰ্শায়। তেওঁলোকে লাগিলে অলপ টকা বৰঙণি উঠাই হ'লেও মাটিডোখৰ ৰাখিব খোজে। কিন্তু, ৰাইজৰ কথা নহ'লগৈ কিয়নো বৰঙণি একেবাৰে নুঠিলে। যি দহ হাজাৰ বৰঙণি উঠোৱাৰ কথা আলোচনা হৈছিল উঠিলে মাত্ৰ এশ আঠচল্লিছ টকা। ইমানতো কথাষাৰ শেষ হোৱা নাছিল। চান্দা তুলিবলৈ গৈ ৰত্না দেৱী নামৰ এগৰাকীয়ে উমাৰ বিষয়ে বেয়াকৈ মানুহৰ ঘৰত কৈ ফুৰিছিল। সেইকথা ইন্দ্ৰই গম পাই মানুহগৰাকীৰ ঘৰতে গৈ গালি পাৰি থৈ আহিছিল। ফলত সন্ধিয়া তিনিজন ডেকা ল'ৰাই আহি ইন্দ্ৰক ধমক দিয়েহি।

পৰিৱেশ- পৰিস্থিতিবোৰ চাই-চিতি নামঘৰীয়া অনন্ত বাপুৱে উমাক বিয়া কৰোৱাৰ প্ৰস্তাৱ দিয়ে। যি প্ৰস্তাৱ শুনি ইন্দ্ৰ আৰু তেখেতৰ পৰিয়ালটি উৎফুল্লিত হৈ উঠে। কিন্তু, নামঘৰৰ ৰাইজে এই কথাটোও মানি নলয়। অনন্ত বাপুকে নামঘৰীয়া হিচাপে মানি নোলোৱাৰ দৰে পৰিৱেশ সৃষ্টি কৰে। ৰাইজৰ সন্মুখত আঁঠু লোৱাৰ মানসেৰে ইন্দ্ৰই শৰাই দিয়াৰ কথা চিন্তা কৰে। কিন্তু ৰাইজ নাহিল।

“গোটেই চহৰৰ চুবনিৰ চোৱাপাত মই আৰু ইয়াত গোট খাবলৈ নিদিওঁ। চোৱা চোৱা বাপু তুমিও চোৱা। চাহি বৈকুণ্ঠ, এয়া পাপৰ ভৰত ভেটিটো কেনেকৈ বহি গৈছে দেখিছা? বাচ। ছেছ। আজিৰপৰা আৰু এই পাপ নচলিব। কিমান দিন সিহঁতে মোৰ দেউতাক ডিছটাৰ্ব কৰিলে— (সুৰবালাক) কিমান আমনি কৰিলে দেখিলা? (সুৰবালা, উমাই চকু মচে) আজিয়েই শেষবাৰৰ কাৰণে কান্দি লোৱা। আজিৰপৰা আৰু আমাক কোনেও কোনেও কন্দুৱাব নোৱাৰে। দেউতা, আপোনাক আমনি কৰাৰ কাৰণে মই বৰ দুখ পাইছোঁ। বৰ দুখ পাইছোঁ দেউতা। আজিলৈকে একো কৰিব নোৱাৰাৰ কাৰণে মোক ক্ষমা কৰিব। এতিয়াৰপৰা

মই আপোনাক চাম। প্ৰমিজ দেউতা, প্ৰমিজ। আজিৰপৰা আৰু আপোনাৰ অশান্তি নহয় দেউতা। আপুনি শান্তিৰে শুব পাৰিব। (থাপনাৰ আগত দীঘল দি পৰেগৈ) কথা দিছোঁ দেউতা, কথা দিছোঁ।” এই সংলাপটিৰে দুখলগা দৃশ্যৰে নাটকখনৰ শেষ হয়।

সততে সমাজত চলি থকা, দেখি থকা এটি বাস্তৱ কাহিনী আৰু সুন্দৰ এটি পটভূমি তৈয়াৰ কৰি নাটকখনে দৰ্শকৰ অন্তৰ চুই যাবপৰাকৈ সংলাপ প্ৰক্ষেপ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। কেৱল সংলাপেই যে নাট্য-কাহিনীক আগবঢ়াই নিয়াত মুখ্য ভূমিকা লৈছে এনে নহয়, একোটা হৈঁত দীঘলীয়া মৌন মুহূৰ্ত্তয়ো সৰল প্ৰতীক হৈ দৰ্শকক এক সুকীয়া আমেজ লোৱাৰ সুযোগ প্ৰদান কৰা দেখা গৈছে।

অভিযোজনা কৰোঁতে কেতিয়াবা কিছুমান নতুন চৰিত্ৰৰ অৱতাৰণা কৰা হয় আৰু কেতিয়াবা দুই-এক চৰিত্ৰ সংযোজন-বিযোজন কৰা হয়। *বন্দীশাল* নাটকখনো ইয়াৰ ব্যতিক্ৰম নহয়। নাটকখনত ইন্দ্ৰক ধমক দিবলৈ অহা তিনিটা ল'ৰাৰ চৰিত্ৰ নতুনকৈ সংযোগ কৰা হৈছে। নাট্যকাৰে অতি কৌশলগতভাৱে এই তিনিটা চৰিত্ৰ সংযোজন কৰিছে। যাৰ জৰিয়তে নাট্যকাৰে তেখেতৰ উদ্দেশ্য সফল কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। এই চৰিত্ৰকেইটা উপস্থাপন নকৰাহেঁতেন গুণ্ডামি, দাবি-ধমকিৰ জৰিয়তে সাধাৰণ মানুহক বশ কৰি ৰাখিব বিচৰাৰ যি প্ৰৱণতা বৰ্তমান সময়ত দেখা পোৱা যায়, সেয়া উপস্থাপন কৰি নোৱাৰিলেহেঁতেন। আনহাতে গল্পটোত ইন্দ্ৰৰ দুজন পুতেকৰ কথা উল্লেখ কৰিছে, কিন্তু নাটকখনত এজন পুত্ৰ বুলিহে কৈছে। গল্পটোত দেখুওৱা হৈছে যে ইন্দ্ৰই মাটি বিক্ৰী কৰিবলৈ গ্ৰাহক বিচাৰিছে। কিন্তু, নামঘৰৰ সমাজে অলপ সহায় আগবঢ়াই মাটিডোখৰ নামঘৰৰ নামলৈ আনিবলৈ খুজিলে। কিন্তু নাটকখনত তাকে উপস্থাপন কৰিবলৈ যাওঁতে এখন ৰাজহুৱা সভা পাতিছে। বিভিন্ন খাম-খেয়ালি, চান্দা তুলি কিছু লোকে টকা-পইচা হৰলুকি কৰা ইত্যাদি আনুষংগিকভাৱে সংযোগ কৰা হৈছে। ইয়াৰ জৰিয়তে নাট্যকাৰে পৰিবৰ্তিত সমাজ-ব্যৱস্থাত যি মূল্যবোধৰ অৱক্ষয় হয়, লগতে সময়ৰ পৰিবৰ্তনৰ লগে লগে বস্তুবাদী সমাজৰ প্ৰতি আকৰ্ষিত হৈ মানুহৰ মানসিক যি পৰিবৰ্তন আহিছে সি বহুক্ষেত্ৰত নেতিবাচক হোৱা দেখা যায়। অৱশ্যে কেতিয়াবা ইয়াৰ ইতিবাচক প্ৰভাৱো দেখা যায়, সাম্প্ৰতিক সময়ত ই বিৰল। যিদৰে নামঘৰ হৈছে এক সমন্বয়ৰ প্ৰতীক, কিন্তু সেই সমন্বয়ৰ প্ৰতীক নামঘৰতেই

যে মূল্যবোধৰ কুঠাৰাঘাট হৈছে সেয়া নাটকখনত প্ৰতিফলিত হোৱা দেখা গৈছে। মূল্যবোধৰ অৱক্ষয় হোৱা বৰ্তমানৰ আধুনিক সমাজখনত প্ৰত্যেকেই যে বস্তুবাদী মানসিকতাত বন্দী, আমি কোনো তাৰপৰা যে মুক্ত নহয়। সেইকথা নাট্যকাৰে নাটকখনৰ নামকৰণৰ জৰিয়তে দেখুৱাইছে। যিটো বিষয়গত দিশত নাট্যকাৰ সফল হৈছে বুলি ক'ব পাৰি। গল্প, উপন্যাসৰ যিহেতু ৰচনা-কৌশল Linear অৰ্থাৎ সৰলবৈখিক, আনহাতে নাটক দৃশ্য-শ্ৰাব্য মাধ্যম বাবে ইয়াৰ ৰচনা কৌশলো বহুমাত্ৰিক (Multidimensional) সেয়েহে গল্পটিৰ নাট্যৰূপ দিবলৈ যাওঁতে তিনিটা চৰিত্ৰ নতুনকৈ সংযোজন কৰিছে। যিহেতু নাট্যকাৰে সমসাময়িক সমাজ-জীৱনৰ চিত্ৰ দেখুৱাবলৈ বিচাৰিছে সেয়েহে এই তিনিটা চৰিত্ৰৰ সংযোজনে নাট্যকাৰৰ কৌশলতাৰ পৰিচয় দিবলৈ সক্ষম হৈছে।

২.০০ সামৰণি :

২.০১ সিদ্ধান্ত :

গতিকে, এইদৰে আলোচনা কৰিলে দেখা যায় যে অসুৰ গল্পটিক আধাৰ হিচাপে লৈ ৰচনা কৰা বন্দীশাল নাট্য-অভিযোজনাখনিত কিছু সংযোগ-বিয়োগ ঘটিছে।

যিহেতু নাটক এখনৰ সময়সীমা থাকে, গতিকে চুটি-

দীঘল কৰিবলগা হয়। লগতে নতুন চৰিত্ৰৰো সৃষ্টি কৰিবলগা হয়। কেতিয়াবা নাটকলৈ ৰূপান্তৰ কৰোঁতে দুই-এটা চৰিত্ৰ সগল্পটো পঢ়ি আমি যি কেন্দ্ৰীয় ভাব পাওঁ, সেই একেটা ভাবেই নাটকখনৰপৰাও লাভ কৰা হৈছে। গল্প এটা যিহেতু সীমিত সংখ্যক পাঠক বা পঢ়ুৱৈৰ মাজতে সীমাবদ্ধ থাকে ; আনহাতে নাটকে গণমুখী চেতনাৰে এখন বৃহৎ সমাজক সামৰি ল'ব পাৰে অৰ্থাৎ ই গণ সাধ্যমৰ (Mass media) দৰে কাৰ্য সম্পাদন কৰে। সেয়ে ড॰ ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়াই তেখেতৰ বহুসংখ্যক গল্প-উপন্যাসক চিত্ৰনাট্য ৰূপ দিছে। যাতে সমাজৰ জ্বলন্ত সমস্যাবিলাক ৰাইজৰ সন্মুখত উপস্থাপন কৰি জনসাধাৰণক সজাগ আৰু সচেতন কৰিব পাৰি। তদুপৰি নাটকৰ ব্যৱসায়িক দিশটোক কম প্ৰাধান্য দি Serious ধৰ্মী নাটক ড্ৰাম্যমৰ মঞ্চত পৰিবেশনত গুৰুত্ব দিছিল।

সূক্ষ্মাতিসূক্ষ্ম পৰ্যবেক্ষণৰ জৰিয়তে বাস্তৱৰ ৰূঢ় চিত্ৰসমূহ গল্পৰ জৰিয়তে বৰ্ণনা কৰিছে। সেই বৰ্ণনাসমূহক লৈয়ে চৰিত্ৰ আকাৰে জীৱন্তৰূপত নাট্য-অভিযোজনাটিত তুলি ধৰিবলৈ সক্ষম হৈছে।

এনেধৰণেৰে আলোচনা কৰি আমি এটা সিদ্ধান্তত উপনীত হ'ব পাৰোঁ যে ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়াৰ অসুৰ গল্পৰ আধাৰত ৰচিত বন্দীশাল এখন সাৰ্থক নাট্য-অভিযোজনা। □

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী :

অসমীয়া গ্ৰন্থ :

কটকী, প্ৰফুল্ল। সাহিত্য-সংগ্ৰহ কোষ। গুৱাহাটী: জ্যোতি প্ৰকাশন, ২০০৯। মুদ্ৰিত

শইকীয়া, ভবেন্দ্ৰনাথ। ভবেন্দ্ৰনাথ শইকীয়াৰ নাট্যসম্ভাৰ। গুৱাহাটী: জ্যোতি

প্ৰকাশন, ২০০৮। মুদ্ৰিত

শইকীয়া, ভবেন্দ্ৰনাথ। গহুৰা গুৱাহাটী: জ্যোতি প্ৰকাশন, ২০০৩। মুদ্ৰিত

ইংৰাজী গ্ৰন্থ :

H Sondhi, Jigyasa and Himadri Roy. *AUTHOR TO AUTEAUR*. Delhi: Worldview Publication, 2022. Printed.

Hutcheon, Linda. *A Theory of Adaptation*. New York: Routledge Taylor and Francis group, 2006. Printed.

Nicoll, A. *The Theory of Drama*. New York, Thomas Y. Crowell make of Publication. 1931. Printed

Shaw, Harry. *Concise Dictionary of Literary Terms*. New York. McGraw-Hill Book Company. 1976. Printed

স্বৰ্ণ বৰাৰ ‘সোৱণশিৰিত ৰেলৰ উকি’ উপন্যাসত মিচিং জনজাতিৰ সমাজ-সংস্কৃতিৰ চিত্ৰণ



যুগল বৰগোহাঁই

সংক্ষিপ্তসাৰ :

সৃষ্টিশীল সাহিত্যৰ ভিতৰত লেখকে কোনো এটা জনসমষ্টিৰ সমাজ আৰু সংস্কৃতিৰ বিভিন্ন দিশ প্ৰতিফলিত কৰিবলৈ আটাইতকৈ সুবিধা আৰু এক বিশাল পটভূমি লাভ কৰা মাধ্যমটোৱেই হৈছে উপন্যাস। অসমীয়া উপন্যাস সাহিত্যৰ ইতিহাসত জনজাতীয় বিষয়কেন্দ্ৰিক উপন্যাসৰ এক গুৰুত্বপূৰ্ণ স্থান আছে। এই শ্ৰেণীৰ উপন্যাস সাহিত্যত জনজাতিসমূহৰ পৰিচয়, সামাজিক পৰম্পৰা আৰু পৰিৱৰ্তন, অৰ্থনৈতিক অৱস্থা, ৰাজনৈতিক চিন্তা-চেতনা, জনজাতীয় লোকবিশ্বাস-অন্ধবিশ্বাস, লোক-উৎসৱ, লোক-নৃত্য, সাজ-পাৰ, পৰম্পৰাগত খাদ্য আদি বিভিন্ন দিশৰ বৰ্ণনা পোৱা যায়। উত্তৰ-পূৰ্ব ভাৰতৰ জনজাতীয় জীৱন আৰু পৰম্পৰাক উপন্যাসৰ মাজেদি সাৰ্থক ৰূপে উপস্থাপন কৰা সকলৰ ভিতৰত স্বৰ্ণ বৰা অন্যতম। তেখেতে জনজাতিসকলৰ জীৱন-যাপন প্ৰক্ৰিয়াক অতি সৰল আৰু সূক্ষ্মভাৱে উপন্যাসত প্ৰকট কৰি তুলিছে। জনজাতীয়সকলৰ সহজাত মানৱীয় অনুভূতি, আৱেগ, মানৱীয় চিন্তন, স্বভাৱসুলভ আচৰণ আদি বিভিন্ন দিশক স্বৰ্ণ বৰাই পাঠক সমাজৰ আগত দাঙি ধৰিছে। মিচিং সমাজ জীৱন প্ৰতিফলিত হোৱা তেওঁৰ এখন অসমীয়া জনজাতীয় বিষয়কেন্দ্ৰিক উপন্যাস হৈছে ‘সোৱণশিৰিত ৰেলৰ উকি’।

সোৱণশিৰি হৈছে ব্ৰহ্মপুত্ৰৰ সৰ্ববৃহৎ উপনৈ। এই নৈখন চীন দেশৰ পৰা অৰুণাচল প্ৰদেশেৰে প্ৰবাহিত হৈ অসমত প্ৰৱেশ কৰিছে আৰু লক্ষীমপুৰ জিলাত ব্ৰহ্মপুত্ৰৰ সৈতে সংযোগ স্থাপন হৈছে। লক্ষীমপুৰ জিলাত এই সোৱণশিৰি নদীৰ পাৰত বহু মিচিং জনগোষ্ঠীৰ লোকে বসবাস কৰে। উপন্যাসিকে এই অঞ্চলক উপন্যাসৰ পটভূমি হিচাপে লৈ কাহিনীৰ সমান্তৰালকৈ মিচিংসকলৰ সমাজ-সংস্কৃতিৰ বিভিন্ন দিশক উপন্যাসখনত স্থান দিছে।

এই আলোচনা পত্ৰখনত স্বৰ্ণ বৰাৰ ‘সোৱণশিৰিত ৰেলৰ উকি’ উপন্যাসত প্ৰতিফলিত মিচিং জনজাতিৰ সমাজ-সংস্কৃতিৰ সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা হ’ব।

সূচক শব্দ :

মিচিং জনজাতি, সমাজ ব্যৱস্থা, সাংস্কৃতিক জীৱন, পৰম্পৰা, লোক-বিশ্বাস।

০.০ অৱতৰণিকা :

অসমত বসবাস কৰা এটা বৃহৎ জনজাতি হৈছে মিচিং জনজাতি। মিচিংসকল প্ৰধানকৈ উজনি অসমৰ ধেমাজি, লক্ষীমপুৰ, শোণিতপুৰ, তিনিচুকীয়া, ডিব্ৰুগড়, শিৱসাগৰ, মাজুলী, চৰাইদেউ, যোৰহাট আৰু গোলাঘাট জিলাত বসবাস কৰে। অসমৰ উপৰিও অৰুণাচল প্ৰদেশতো মিচিং জনগোষ্ঠীয়ে বসবাস কৰি আছে। মিচিংসকলক

গাওঁ- ১ নং চেঁচাকোষ
ডাকঘৰ- লালমাটি,
জিলা - ডিব্ৰুগড়, অসম-৭৮৬০০৭
☎ ৮৮৭৬৮৮২৯৪৪
✉ jugalborgohain1@gmail.com

‘মিৰি’ বুলিও কোৱা হয়। কিন্তু মিচিংসকলে নিজকে মিৰি বুলি পৰিচয় নিদি মিচিং বুলিহে পৰিচয় দিয়ে।

মঙ্গোলীয় গোষ্ঠীৰ অন্তৰ্গত মিচিং জনজাতিসকলে নদী কাষৰীয়া অঞ্চলক বসবাসৰ উপযুক্ত স্থান হিচাপে গ্ৰহণ কৰা দেখা যায় আৰু তেওঁলোকৰ জীৱিকাৰ মূল উৎস হৈছে খেতি। নদীৰ কাষৰীয়া উৰ্বৰা মাটিত তেওঁলোকে প্ৰধানকৈ আছ, বাও ধানৰ দৰে দ ঠাইত হোৱা ধান খেতি কৰিয়েই জীৱন নিৰ্বাহ কৰে।

মিচিং জনজাতিৰ সমাজ-সংস্কৃতিক কেন্দ্ৰ কৰি ৰচিত উপন্যাসসমূহৰ ভিতৰত এখন অন্যতম উপন্যাস হৈছে স্বৰ্ণ বৰাৰ ‘সোৱণশিৰিত ৰেলৰ উকি’। উপন্যাসিকে মুখ্য চৰিত্ৰ অৰুণ আৰু সোৱণশিৰি নদীৰ পাৰৰ সোনাতেলি গাঁৱৰ মাজেদি মিচিংসকলৰ জীৱন প্ৰণালীক ব্যক্ত কৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰিছে। ‘স্বৰ্ণ বৰাৰ ‘সোৱণশিৰিত ৰেলৰ উকি’ উপন্যাসত মিচিং জনজাতিৰ সমাজ-সংস্কৃতিৰ চিত্ৰণ’— শীৰ্ষক এই অধ্যয়ন পত্ৰখনত উপন্যাসিকে ‘সোৱণশিৰিত ৰেলৰ উকি’ উপন্যাসখনত মিচিংসকলৰ সমাজ-সংস্কৃতিক কেনেদৰে প্ৰতিফলিত কৰিছে সেই সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা হ’ব।

০.১ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য :

এই আলোচনা পত্ৰৰ প্ৰস্তুতৰ মূল উদ্দেশ্য হৈছে স্বৰ্ণ বৰাৰ ‘সোৱণশিৰিত ৰেলৰ উকি’ উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত মিচিং জনজাতিৰ সমাজ ব্যৱস্থা, কৃষি ব্যৱস্থা, বিবাহ পদ্ধতি, মৃতকৰ ক্ৰিয়াৰ লগত জড়িত বিধি-বিধান, লোকগীত, লোকনৃত্য, লোকবাদ্য, বয়ন শিল্প, বাসগৃহ আদি দিশসমূহ আলোচনা কৰা।

০.২ অধ্যয়নৰ গুৰুত্ব :

মিচিংসকলৰ সামাজিক আৰু সাংস্কৃতিক দিশসমূহে স্বৰ্ণ বৰাৰ ‘সোৱণশিৰিত ৰেলৰ উকি’ উপন্যাসখনত কিদৰে স্থান পাইছে সেয়া অধ্যয়ন কৰাত এই পত্ৰখনৰ গুৰুত্ব আছে।

০.৩ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ :

এই অধ্যয়নত স্বৰ্ণ বৰাৰ ‘সোৱণশিৰিত ৰেলৰ উকি’ উপন্যাসখনৰ এটি বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন কৰা হ’ব।

০.৪ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি :

‘স্বৰ্ণ বৰাৰ ‘সোৱণশিৰিত ৰেলৰ উকি’ উপন্যাসত মিচিং জনজাতিৰ সমাজ-সংস্কৃতিৰ চিত্ৰণ’— শীৰ্ষক অধ্যয়নটোত অৱলম্বন কৰা গৱেষণা পদ্ধতি হৈছে

বিশ্লেষণাত্মক আৰু বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতি।

১.০ স্বৰ্ণ বৰাৰ ‘সোৱণশিৰিত ৰেলৰ উকি’ উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত মিচিংসকলৰ সমাজ ব্যৱস্থা :

মিচিং সমাজ ব্যৱস্থা গণতান্ত্ৰিক পদ্ধতিৰে পৰিচালিত হয়। মিচিং গাঁওসমূহত একোজনকৈ ‘গাম্’ বা গাঁওবুঢ়া থাকে। এই গামেই মেল-মোকদ্দমাৰে সমাজ ব্যৱস্থাক সূচাৰু ৰূপে আগবঢ়াই নিয়ে। গামে পৰিচালনা কৰা সভাক কেবাং বোলে। সমাজত সংঘটিত চুৰি কাৰ্য্য, ছোৱালীক পলুৱাই বিয়া কৰা ঘটনা, মাটি-বাৰীৰ কাজিয়া আদি বিভিন্ন বিচাৰ এই কেবাঙতে কৰা হয়। উপন্যাসখনত অৰুণে ফুলিক পলুৱাই বিয়া পতাৰ পিছ দিনা ফুলিৰ দেউতাকে এখন কেবাং পতা দেখা যায়—

“ৰাতিপুৱাই— পুৱাই ফুলিৰ বাপেকে এনে এটা খবৰ পাই উগ্ৰমূৰ্ত্তি ধাৰণ কৰিলে আৰু লগে লগে কেবাং (মেল) বহুৱাবলৈ স্থিৰ কৰিলে। দুদিনৰ পিছত কেবাং বহিল।” (বৰা ১৪৮)

মিচিং সমাজত ‘মূৰং ঘৰ’ নামেৰে ডেকা-গাভৰুসকলৰ এটা কৃষ্টি কেন্দ্ৰ আছে। মূৰং ঘৰতে মিচিং ডেকা-গাভৰুৱে সামাজিক শিক্ষা আৰু জীৱনৰ বিষয়ে অভিজ্ঞতা লাভ কৰে। তাৰোপৰি এই মূৰং ঘৰে সমাজত ঐক্য আৰু সমন্বয়তা ৰক্ষা কৰে। এই মূৰং ঘৰতেই মিচিংসকলে পৰাগ উৎসৱ পালন কৰে।

মিচিং সমাজত ‘দাগলিগ’ অৰ্থাৎ সমবায় পদ্ধতিৰে ইঘৰে সিঘৰক বিপদত সহায় কৰা এক সামাজিক পৰম্পৰা আছে। উপন্যাসখনত অৰুণহঁতৰ গাঁৱত সোৱণশিৰিৰ ঢলে বানপানী সৃষ্টি কৰি ৰাইজৰ অনিষ্ট সাধন কৰাত ইঘৰে সিঘৰক এই পদ্ধতিৰে সহায় কৰা দেখা যায়—

“পানীৰ সোঁতত হালি যোৱা চাংঘৰবোৰ ঢোকা ভেজা দি পোন কৰিবলৈ দাগলিগ (সমবায় পদ্ধতিৰে কাম কৰা) ওলাল। নৈ পৰীয়া ডেকা ল’ৰাহঁতে মনৰ বল অটুট ৰাখি ৰাইজক সহায় কৰিবলৈ সমূহীয়া ভাবে ওলাই আহিল।” (বৰা ১৮০)

২.০ স্বৰ্ণ বৰাৰ ‘সোৱণশিৰিত ৰেলৰ উকি’ উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত মিচিংসকলৰ উৎসৱ পাৰ্বন :

২.০১ আলি য়াই লিগাং :

মিচিংসকলে পালন কৰা এটা উৎসৱ হৈছে আলি য়াই লিগাং। মূলতঃ কৃষি কৰ্মৰ শুভাৰম্ভ হৈছে আলি য়াই লিগাং

উৎসৱ। এই উৎসৱত মিচিংসকলে উপৰি পুৰুষসকললৈ স্মৃতি তৰ্পণ কৰে আৰু তেওঁলোকৰ প্ৰতি প্ৰাৰ্থনা কৰে। ফাগুন মাহৰ প্ৰথমটো বুধবাৰে আলি য়াই লুগাং উৎসৱ পালন কৰা হয় আৰু একেৰাহে পাঁচ দিন ধৰি এই উৎসৱ পালন কৰে।

আলি য়াই লিগাং দিনা সন্ধিয়া সময়ত গাওঁবুঢ়াৰ ঘৰৰ পৰা লেনাং বাৰবাং (বৰ কাঁহ) বজোৱা হয়। এই বাদ্য বজোৱাৰ পিছতহে নতুন সাজপাৰ পিন্ধি খাদ্য গ্ৰহণ কৰা এক পৰম্পৰা মিচিংসকলৰ মাজত প্ৰচলন আছে। প্ৰথমে ঘৰৰ মুৰব্বী জনক এবাতি আপং আৰু এটি পুৰাণৰ বাতি দিয়া হয়। প্ৰথমে তেওঁ খোৱা আৰম্ভ কৰাৰ পিছতহে অন্য সকলে খাবলৈ আৰম্ভ কৰে। লেনাং বাৰবাং বজোৱাৰ পিছত গাঁৱৰ বুঢ়া, ডেকা-জীয়েকী সকলোৱে ইঘৰে সিঘৰলৈ যোৱা পৰম্পৰা আছে। প্ৰথমে বুঢ়াসকল আৰু তাৰ পিছত ল'ৰা-ছোৱালীবোৰে আপং অপিন আৰু পুৰাং খাবলৈ যায়। সকলোৱে খোৱাৰ আগত মাটি আৰু পানীক আপং উৎসৰ্গা কৰা পৰম্পৰা আছে। উপন্যাসখনত পাহীয়ে আপঙৰ বাতি আৰু পুৰাণৰ টোপোলা খাবলৈ অনুৰোধ কৰোতে এই পৰম্পৰা প্ৰতিফলিত হৈছে—

“সকলোৱে খোৱাৰ আগতে প্ৰথমে আপং অপিন (আপং ভাত) আৰু বসুমতীক আপং যাচি মাটি পানী উৎসৰ্গা কৰি খাবলৈ ধৰিলে।” (বৰা ৭৪)

আলি য়াই লিগাঙৰ দ্বিতীয় দিনা চমান (বিহু) পতা হয়। এই দিনা গাঁৱৰ সকলোৱে চমানত যোগদান কৰে। এই বিহু দিনা গাভৰুসকলে নিজ হাতে বোৱা মেখেলা চাদৰ আৰু ডেকাসকলে হাতে বোৱা চুৰীয়া চোলা পৰিধান কৰি লিগাং কৃষ্টিৰ চিন স্বৰূপে পতাকা হাতত লৈ শোভাযাত্ৰা কৰে। এই শোভাযাত্ৰাত ডেকা-গাভৰু, বোৱাৰী, বুঢ়া মেঠাসকলে গুৰুগান্ধী নৃত্য প্ৰদৰ্শন কৰে। এই দলটোৱে প্ৰতি ঘৰে ঘৰে সোমাই বিহু মাৰি আগুৱাই গৈ থাকে আৰু প্ৰতি ঘৰ গৃহস্থই দলটোক আপং যাছে। আপং খাব নোৱাৰিলে কলহত গোটাই আনে। প্ৰতি ঘৰ গৃহস্থই দলটোক মাননি দিয়ে আৰু দলটোৱে হৰি ধ্বনি দি গৃহস্থৰ কুশল কামনা কৰে। এই বিহু দিনা পোৱা আপং আৰু টকাৰে তৃতীয় দিনা সকলোৱে মিলি ভোজ ভাত খায়। মিচিং ভাষাত এই ভোজ ভাতক ‘দপান্ তিপান’ বুলি কোৱা হয়।

মিচিংসকলে আলি য়াই লুগাঙৰ চতুৰ্থ দিনা গেনা পালন কৰে। এই গেনা সম্পৰ্কে উপন্যাসখনত এনেদৰে

উল্লেখ পোৱা যায়—

“— সেই দিনা আমাৰ ৰাইজে একো কাম বন নকৰে। লিগাঙৰ দ্বিতীয় দিনা বিহু গায় পোৱা আপং আৰু টকা পইচাৰে তৃতীয় দিনা সকলোৱে মিলি দপান্ তিপান (ভোজ ভাত) খাব আৰু চতুৰ্থ দিনা কোনো কাম বন নকৰি গেনা হৈ থাকিব।” (বৰা ৯২)

আলি য়াই লুগাঙৰ পঞ্চম দিনা গেনা ভঙা কাৰ্য্য পালন কৰে। এই দিনা ৰাইজে চিকাৰ কৰিবলৈ যায় আৰু চিকাৰ কৰি পোৱা মাংসৰে গেনা ভাঙে।

মিচিংসকলে আলি য়াই লুগাং উৎসৱত মৃতকৰ নামত জলপিণ্ড আগবঢ়ায়। ঘৰৰ বাৰীত সৰু আলি নিচিনাকৈ মাটি উঠাই তাৰ ওপৰত পাতেৰে বাতি সাজি মদ, বৰা চাউল চতিয়াই মৃতকক জলপিণ্ড দিয়ে। উপন্যাসখনত তাৰ বৰ্ণনা এনেদৰে পোৱা যায়—

“লিগাঙৰ পৰা আহি অৰুণৰ বাপেকে পাতেৰে সজা সৰু সৰু বাতিবোৰত চাই মদ ঢালি দিলে আৰু আমনি (বৰা চাউল) চতিয়াই দি অৰুণৰ মৃত মাকৰ নামত উৰম আপিন (জলপিণ্ড) দি ক'লে তোমাক বছৰৰ উন্নতিৰে খাব পিবৰ কাৰণে বৰা চাউল আৰু আপং দিছোঁ, গোটেই পৰিয়াল আৰু ওচৰ-চুবুৰীয়াক সুখে শান্তিৰে থাকিবলৈ দিবা। জলপিণ্ড দিয়া নাই বুলি নাভাবিবা।” (বৰা ৭২)

২.০২ পৰাগ :

মিচিংসকলৰ আন এটা লোক-উৎসৱ হৈছে পৰাগ উৎসৱ। মিচিংসকলে পৰাগৰ প্ৰথম দিনটো গিছাং (প্ৰতিষ্ঠা) উৎসৱ হিচাবে পালন কৰে। পৰাগ উৎসৱৰ বিৱৰণ উপন্যাসখনত এনেদৰে পোৱা যায়—

“প্ৰথমে বৰপুৰাৰী আৰু মিগম বৰাক তেওঁলোকৰ যি কোনো এগৰৰ পৰা গুৰুগান্ধী নাচৰ যোগেদি আগবঢ়াই আনিব আৰু দণ্ডিপল (সূৰ্য্য-চন্দ্ৰ) ক সাক্ষী কৰি পৰাগ উৎসৱ প্ৰতিষ্ঠা কৰিব। তাৰ পিছতহে মিনম য়ামনাম [অতিথি আদৰি অনা] উৎসৱ আৰম্ভ কৰিব।” (বৰা ১৩৫)

পৰাগ উৎসৱ উদযাপন কৰিবলৈ গাঁৱৰ সকলো মিচিং ৰাইজ ওলাই আহে। পৰাগলৈ অহা সকলো অতিথিকে ডেকা-গাভৰুৱে নাচি নাচি আদৰি অনা হয়। প্ৰথম দিনৰ মাজ নিশাৰ পৰা পবৰত ৰাইজে আপং ভৰাবলৈ আৰম্ভ কৰে। পবৰ হৈছে এক বাঁহৰ সঁজুলি। পবৰত আপং ভৰোৱা হয়। এই পবৰটো ওলমাই থোৱা হয় আৰু ইয়াত পানী

ঢালিবলৈ চাঙৰ ব্যৱস্থা কৰা হয়। আপং ভৰাই শেষ হোৱাৰ পিচত অতিথিসকলে তাত পানী ঢালিবলৈ আৰম্ভ কৰে। উপন্যাসখনত পানী ঢলা বিৱৰণ এনেদৰে উল্লেখ পোৱা যায়—

“বৰপুৰাৰী আৰু মিগমবৰাৰ নেতৃত্বত সমূহ ডেকা গাভৰু আৰু অতিথি সকল মিলি মূৰং ঘৰটো পাঁচবাৰ প্ৰদক্ষিণ কৰিলে। সৰ্বশেষত মিগম বৰা আৰু বৰপুৰাৰীয়ে “আচি কান্নাম” অৰ্থাৎ পানী ঢলা কাম কৰিলে।” (বৰা ১৩৭)

পৰৱৰ্তী পৰা আপং নিগৰি যেতিয়া তলত পাতি থোৱা পাত্ৰটোত পৰে তেতিয়া গাহৰী উৎসৰ্গা কৰা হয়। এই গাহৰীজনীক গুমবাগ নাচেৰে পাঁচবাৰ প্ৰদক্ষিণ কৰি বুকুৰ ফালে কটাৰীৰে ওপৰৰ ছালখন কাটি জোঙা বাঁহ এডাল প্ৰথমে মিগম বৰাই সোঁহাতে আৰু বৰ পুৰাৰীয়ে বাওঁহাতে ধৰি কটা অংশইদি ভিতৰলৈ সুমুৱাই দিয়ে।

৩.০ স্বৰ্ণ বৰাৰ ‘সোৱণশিৰিত ৰেলৰ উকি’ উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত মিচিংসকলৰ লোকবিশ্বাস :

মিচিং সমাজৰ লগত বহুতো লোক-বিশ্বাস জড়িত হৈ আছে। মিচিংসকলে আলি য়াই লুগাঙৰ গেনা ভঙা দিনা চিকাৰত পহু মাৰিব পাৰিলে আই বসুমতী সন্তুষ্ট হয় বুলি বিশ্বাস কৰে। উপন্যাসখনতো সেয়া প্ৰতিফলিত হৈছে—

“সেইদিনা যদি পহু মাৰিব পাৰে, তেনেহলে কুমদাং ৰিংঙং (আই বসুমতী) সন্তুষ্ট হৈছে বুলি বিশ্বাস কৰে।” (বৰা ৯৩)

মিচিং সমাজত মেগেলা গছৰ পাতক মাঙ্গলিক চিন হিচাবে ব্যৱহাৰ কৰা হয়। আলি য়াই লুগাঙত পথাৰত শস্য সিচাৰ আগত পূব কোণত এডোখৰ ঠাইত মেগেলা গছৰ পাতেৰে চিন দিয়া হয় আৰু চিন দিয়া ঠাই ডোখৰৰ দীঘে এহাত পথালিয়ে এহাত মাটি চহাই মিহি কৰি আলি য়াই লুগাঙৰ দিনা শস্য সিঁচে। মিচিং সমাজত জন বিশ্বাস আছে যে শস্য সিঁচি পূৰ্ব পুৰুষক স্মৃতি তৰ্পণ কৰিলে মাটিৰ বুকুত শস্য নষ্ট নহয় আৰু পোক পৰুৱা, বনৰীয়া জন্তু, প্ৰাকৃতিক দুৰ্যোগে অনিষ্ট নকৰে। উপন্যাসখনত পূৰ্ব পুৰুষসকলক এনেদৰে স্মৃতি তৰ্পণ কৰা দেখা যায়—

“ওপৌকা— গুচিং গামাং তল্ বল্ লাংকা
চিল, তাকয়িং তাকঙ

দপে তিপেনামমেম চিতদুং অপান আৰোলম্,

কগং মাগনেম বিচুয়েকে।।

কুমদাং ৰিকঙংঙে কাত্ তাদত লাংকা,

চিনে যকনে তা—তঃ যা—যঃ নালোতে

কালাং তাতলাংকা।” (বৰা ৭১)

মিচিং সমাজত আলি য়াই লুগাঙৰ দিনা পথাৰত গুটি সিচাৰ পাছত কোৰখন ভালকৈ ধুই তাত ছাই মদ ঢালি কৌপাতেৰে মেৰিয়াই ঘৰৰ চাঙত তুলি থয় আৰু এই কোৰখন নজোন নোলোৱালৈকে চাঙতে ৰখা হয়। নজোন নোলোৱালৈকে পোন্ধৰ দিন সকলোৱে সাৱধানৰে থাকে। এই সময়ছোৱাত মিচিংসকলে মাটি নাকাটে, পোক-পৰুৱা, কীট-পতঙ্গ আদিৰ অনিষ্ট নকৰে। তেনে কৰিলে অঘটন হয় বুলি বিশ্বাস কৰা হয়। তদুপৰি বেত-বাঁহ, খেৰ-খাগৰি আদি কটাৰ পৰাও বিৰত থাকে। তেনে কৰিলে ধানৰ গজালি ধৰিলে অমঙ্গল হয় বুলি জনবিশ্বাস প্ৰচলিত আছে। এই সময়ছোৱাত মিচিংসকলে ভজা-পোৰা খোৱা নাখায়। ভজা-পোৰা খালে তেওঁলোকে পুলিবোৰ শুকাই যায় বুলি বিশ্বাস কৰে। এই লোকবিশ্বাস উপন্যাসখনত এনেদৰে প্ৰতিফলিত হৈছে—

“অৰুণৰ বাপেকে কৌপাতেৰে কোৰখন মেৰিয়াই চাঙত ঢুলি থলে। নজোন নোলোৱালৈকে কোৰখনৰ কাম নাই, চাঙতে থাকিব। বাপেকে অৰুণলৈ চাই ক’লে— বোপাই অ’ নজোন নোলোৱালৈকে এই পোন্ধৰ দিন সাৱধানৰে থাকিব, মাটি নাকাটিবি, পোক পৰুৱা, কীট-পতঙ্গ আদিৰ অনিষ্ট নকৰিবি। অঘটন হ’ব। বেত-বাঁহ, খেৰ-খাগৰি নাকাটিবি সিঁহতৰ জীৱ আছে। ধান বিলাকৰ গজালি ধৰিলে অমঙ্গল ঘটিব। ভজা-পোৰা নাখাবি, পুলিবোৰ শুকাই যাব।” (বৰা ৭২)

মিচিং সমাজত গেনা লাগিলে গছ কটা, মাছ মৰা, মাটি খন্দা, পথাৰত জুই জ্বলোৱা আদি কামবোৰ দোষনীয় বুলি বিশ্বাস কৰা হয়। খোৱা বোৱাৰ ভিতৰত কণী সিজোৱা, মাছ মাংস তেলেৰে ভজা, চিৰা সান্দহ বনোৱা, টেঙা খোৱা আৰু ফলমূল খোৱা দোষনীয় বুলি বিশ্বাস কৰা হয়। উপন্যাসখনত তাৰ বৰ্ণনা এনেদৰে পোৱা যায়—

“কাম বনৰ ভিতৰত গছ কটা, মাছ মৰা, মাটি খন্দা, পথাৰত জুই জ্বলোৱা আদি কাম বৰ দোষনীয়। সেইবোৰ আমি নকৰো। আৰু খোৱা বোৱাৰ ভিতৰত কণী সিজোৱা, মাছ মাংস তেলেৰে ভজা, চিৰা সান্দহ বনোৱা, টেঙা খোৱা,

আৰু ফলমূল খোৱা দোষনীয় বুলি আমাৰ মিচিং সমাজে ভাবে আৰু এনে কৰিলে পথাৰত শস্য নগজে বুলি বিশ্বাস কৰে।” (বৰা ৯২)

মিচিং সমাজত কোনো ব্যক্তিয়ে অস্বাভাৱিক আচৰণ কৰিলে মিবুক মতা হয় আৰু মিবুৱে আহি মঙ্গল চায়। মিচিং সমাজৰ লোকবিশ্বাস মতে মিবু হৈছে ঐশ্বৰিক গুণ সম্পন্ন লোক। মিচিং সমাজে বিশ্বাস কৰে যে এই মিবুকল মানৱৰ পিতা আৰু পূৰ্বৰে পৰা মিচিং সমাজৰ কল্যাণ কৰি আহিছে। উপন্যাসখনত অৰুণৰ দেউতাকে ঘৰখনৰ অপায়-অমঙ্গল দূৰ কৰাৰ উদ্দেশ্যে মিবুক অমন্ত্ৰণ কৰা দেখা যায় আৰু মিবুৱে তেওঁলোকক এইবুলি উপদেশ দিয়া দেখা যায়—

“অস্পষ্ট ভাষাৰে মিবুয়ে ক’লে— পাহীৰ মাকৰ প্ৰেতাৱাই অমঙ্গল খটাইছে, কুকুৰা কাটি ভোজ দিব লাগিব তেতিয়া হ’লে পাহী ভাল হৈ উঠিব।” (বৰা ১৮৯)

৪.০ স্বৰ্গ বৰাৰ ‘সোৱণশিৰিত ৰেলৰ উকি’ উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত মিচিংসকলৰ বিবাহ পদ্ধতি :

বিবাহ হৈছে এক সমাজিক অনুষ্ঠান। মিচিংসকলৰ বিবাহ অনুষ্ঠানক ‘মিদাঙ’ বুলি কোৱা হয়। মিচিং বিবাহৰ সম্পৰ্কে উপন্যাসখনত এনেদৰে বৰ্ণনা পোৱা যায়—

“আমাৰ শুভবিবাহ হ’বলৈ হ’লে— ল’ৰাই ছোৱালীক পচন্দ কৰিব লাগে। পুৰণি কালত ঘাইকৈ অভিভাৱকৰ ইচ্ছা অনুযায়ীহে বিবাহ পাতিছিল। বৰ্তমানে ল’ৰা, মাক বাপেকৰ সমিল মিলতহে ছোৱালী বা কন্যা পচন্দ কৰে। ছোৱালী পচন্দ কৰাৰ পাচত দৰা ঘৰে মিতৰি ঘৰত ‘আকুনে’ৰে (টোপোলা) কন্যা (য়ামনে) খোজা বঢ়া কৰে।” (বৰা ৯৮)

মিচিং সমাজত দৰা ঘৰে ছোৱালী ঘৰক পান-তামোল আৰু মানেৰে টোপোলা আগবঢ়াই ছোৱালী খোজা নিয়ম আছে। ছোৱালী ঘৰৰ মত মিলিলে তাৎপিল পাতি বিয়াৰ শেষ বন্দবস্ত কৰে।

মিচিং সমাজত গন্ধৰ্বৰ বিবাহৰ প্ৰচলন আছে। গন্ধৰ্বৰ বিবাহৰে ছোৱালী বিয়া পাতিলে লগে লগে বা যথা সময়ত ছোৱালীৰ ঘৰলৈ খবৰ দিয়া এক নিয়ম আছে। তেনে নকৰিলে ল’ৰাই সমাজত জৰিমনা ভৰিব লগা হয়। আনহাতে ছোৱালীৰ দেউতাকে যদি বিয়াখনক মানি নলয় তেন্তে বিচাৰৰ বাবে সমাজত ‘কেবাং’ (মেল) বহায়।

মিচিং সমাজত ছোৱালীৰ দেউতাকে ল’ৰাৰ ঘৰৰ পৰা

আকুন (গা ধন) লোৱা নিয়ম আছে। সমাজৰ বিশ্বাস অনুসৰি আকুন নল’লে ছোৱালীজনী সংসাৰৰ শ্ৰীবৃদ্ধি হোৱাৰ পৰা বঞ্চিত হয়। উপন্যাসখনত অৰুণ দেউতাকে কুলিৰ দেউতাকক আকুন দিয়া দেখিবলৈ পোৱা যায়—

“ৰাইজে সাধাৰণ নিয়মতেই অৰুণৰ বাপেকক একুৰি পান তামোল আৰু আপং আদি আগবঢ়াবলৈ ক’লে। অৰুণৰ বাপেকে কথা মানিলে।” (বৰা ১৪৮)

মিচিং সমাজত অন্য জাতিলৈ বিয়া দিয়া নিয়ম নাই। তেওঁলোকে নিজ জাতিৰ মাজতে বিয়া বন্দবস্ত কৰে। উপন্যাসখনত এই সম্পৰ্কে মিচিং জীয়াৰী ফুলিয়ে পাহীক এনেদৰে বুজনি দিয়া দেখা যায়—

“আমাৰ মানুহে আন জাতিলৈ বিয়া নিদিয় বুলি তই দেখোন জানই, ইফালে তোৰ বিয়াৰ বন্দবস্ত হ’ল, তোৰ ককায়েকেতো কাটিবই, ৰাইজেও।” (বৰা ১২০)

৫.০ স্বৰ্গ বৰাৰ ‘সোৱণশিৰিত ৰেলৰ উকি’ উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত মিচিংসকলৰ মৃতকৰ ক্ৰিয়াৰ লগত জড়িত বিধি-বিধান :

মিচিংসকলৰ নিজস্ব শৱ সৎকাৰ কৰা সামাজিক ৰীতি নীতি আছে। মিচিং সমাজত মৃত লোকক দাহ কৰা প্ৰথা নাই। মিচিং সমাজত মৃতকক পুতা হয় আৰু শৱ পোতা গাতৰ ওপৰত মৈদাম সজা হয়। উপন্যাসিকে অৰুণৰ মাকৰ সৎকাৰ নিয়মৰ মাজেদি মিচিং সমাজৰ মৃতকৰ ক্ৰিয়াৰ লগত জড়িত বিধি-বিধানসমূহ প্ৰতিফলিত কৰিছে—

“সি মাকৰ মৈদামত মাটি দিছিল কিন্তু মমতাক জ্বলাই দিয়াৰ নিচিনাকৈ সি তাৰ মাকক দাহ কৰা নাছিল। কাৰণ সিহঁতৰ মিচিং সমাজত দাহ কৰা প্ৰথা নাই।” (বৰা ১৯)

মিচিং সমাজত মৃতকে জীৱিত কালত ব্যৱহাৰ কৰা সকলো বস্তু মৈদামৰ ভিতৰত দিয়া নিয়ম আছে। মিচিংসকলৰ বিশ্বাস অনুসৰি মৃত লোকৰ আত্মাৰ ভাব বিপৰীত হয় আৰু চলন-ফুৰণ, আচাৰ-ব্যৱহাৰ বিপৰীত হয়। মৃত লোকে ফুটা পাত্ৰতহে পানী খায় বুলি মিচিংসকলে বিশ্বাস কৰে। সেয়েহে উপন্যাসখনত অৰুণৰ মাকে ব্যৱহাৰ কৰা বাতিটো মৈদামত দিওঁতে ফুটা কৰিহে দিয়া দেখা যায়—

“মৈদামৰ ভিতৰত মাকে ব্যৱহাৰ কৰা সকলো বস্তু দিছিল। জীয়াই থাকোঁতে ব্যৱহাৰ কৰা মাকৰ বাতিটো ৰাইজে ফুটা এটা কৰিহে— মৈদামত দিছিল। কাৰণ মানুহে কয়— মৃত্যু হ’লে বোলে জীৱই বিপৰীত কাম কৰে।” (বৰা ২০)

মিচিং সমাজত কোনো লোকৰ মৃত্যু হ'লে মৃত্যুৰ সংকেত দিবৰ বাবে ওখ ঠাইৰ পৰা বৰকাঁহ আৰু ঢোল বজোৱা হয়। এই সংকেতৰ ধ্বনি শুনি গাঁৱৰ মানুহে আপঙৰ টোপোলা লৈ মৃতকৰ পৰিয়ালত উপস্থিত হয়। মিচিং সমাজত মৃতকক মাহ-হালধীৰে ধোৱাই নতুন কাপোৰ পিন্ধোৱা হয় আৰু মূৰ আচুৰি দিয়া নিয়ম আছে। মিচিংসকলৰ সামাজিক পৰম্পৰা অনুসৰি মৃতকক সকলোৱে শেষবাৰৰ বাবে ভক্তিৰে সেৱা কৰি কাপোৰেৰে মেৰিয়াই সাঙী কৰি শ্মশানলৈ লৈ যোৱা প্ৰথা আছে। মৃতকৰ সৎকাৰৰ বাবে এটা গাঁত খন্দা হয় আৰু গাঁতটোৰ তলত বাঁহৰ চ'চালি পাৰি মৃতদেহটো শুৱাই দিয়া হয়। মিচিং সমাজত যিজনে পিণ্ড দিব সেই ব্যক্তিজনে মৃতদেহৰ ওপৰত বাঁও হাতেৰে মাটি এচপৰা দিয়া নিয়ম আছে। তাৰ পিছত সকলোৱে বিদায় ধ্বনি দি বাঁও হাতেৰে মাটি এচপৰাকৈ দিয়ে। এই সম্পৰ্কে উপন্যাসখনত এনেদৰে বৰ্ণিত হৈছে—

“সি গৈ তাত দেখা পালে, আগতেই খান্দি থোৱা গাঁতটোৰ তলত বাঁহৰ চ'চালি পাৰি মাকৰ মৃতদেহটো শুৱাই দিলে। তাৰ পিছত ৰাইজে তাক মাটি এচপৰা দিবলৈ কৈছিল। সি সেইমতে বাওঁহাতেৰে এচপৰা মাটি মৈদামত দিছিল। তাৰ পিছত ৰাইজে কৈছিল—“দিংকে পাকেমাং” তোমাক আমি কিলাই মৰা নাই, তুমি নিজৰ থানলৈ যোৱা গৈ। আমাৰ পিঠি পাচ কৰিলা।” এই বুলি কৈ সকলোৱে এচপৰাকৈ মাটি দিছিল।” (বৰা ২০)

মিচিং সমাজত শৰ চাঙৰ পৰা নমোৱাৰ লগে লগে জুহাল সাৰি-মচি পৰিষ্কাৰ কৰা হয়। মিচিং সমাজত শ্মশানৰ পৰা ঘৰলৈ আহিলে বাহিৰে বাহিৰে গা ধুই তেল ঘঁহি কাপোৰ সলোৱা নিয়ম আছে। মিচিং সমাজত মৈদাম দি আহি পৰিয়ালৰ লোকে গা ধুই জুহালৰ কাষত যি খোজৰ চিন দেখা পাই মৃতকৰ আত্মাই সেই প্ৰাণী হিচাপে জন্ম লয় বুলি বিশ্বাস কৰে। উপন্যাসখনত এই লোক-বিশ্বাস এনেদৰে উল্লেখ পোৱা যায়—

“শ্মশানৰ পৰা সি বাহিৰে বাহিৰে আহি গাধুই তিতা চুৰীয়া পিন্ধি তেল ঘঁহি কাপোৰ সলাই চাঙৰ ওপৰলৈ উঠিছিল আৰু লিপি-মচি থোৱা জুহালৰ চাৰিওকাষে তন্ন তন্নকৈ চাইছিল। কাৰণ সিহঁতৰ সমাজৰ বিশ্বাস মতে জুহালৰ কাষত যি খোজৰ চিন দেখা পাই মৃতকৰ আত্মাই বোলে সেই জন্ম ল'য়।” (বৰা ২০)

৬.০ স্বৰ্ণ বৰাৰ ‘সোৱণশিৰিত ৰেলৰ উকি’

উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত মিচিংসকলৰ লোকগীত, লোকনৃত্য আৰু লোকবাদ্য :

৬.০১ লোকগীত :

মিচিংসকলৰ সমাজত প্ৰচলিত আটাইতকৈ জনপ্ৰিয় লোকগীত হৈছে ‘অইনিতম’। ঢোলৰ চেও আৰু ডেকা-গাভৰুৰ নৃত্যই অইনিতমক এক অন্য মাত্ৰা প্ৰদান কৰে। অইনিতমৰ অৰ্থ উপন্যাসখন এনেদৰে উল্লেখ পোৱা যায়—

“অৰুণে কালি তাক কৈছিল- “অই” মানে অতি আপোনজন আৰু “নিতম” মানে চেনেহৰ গীত।” (বৰা ৮১)

উপন্যাসখনত মিচিং সমাজত প্ৰচলিত বিভিন্ন ধৰণৰ লোকগীতৰ উল্লেখ পোৱা যায়। উপন্যাসখনত আলি য়াই লিগাঙত গুমৰাগ নাচোতে ডেৰা-গাভৰুৱে এনে ধৰণৰ গীত গোৱা দেখা যায়—

“ল-ল-লে ললে ল-লে

দাৰ ললে ললে ল-লে

চিচুক চুকব্ চুকব্ বদি যা

ৰেগাম গাম্ব গাম্ব বদি-যা” (বৰা ৭৭)

৬.০২ লোকনৃত্য :

মিচিংসকলে উৎসৱত প্ৰদৰ্শন কৰা এক লোকনৃত্য হৈছে গুমৰাগ নৃত্য। ঢোলৰ চেৱে চেৱে এই নৃত্য নচা হয়। ডেকা-গাভৰুসকলে শাৰী পাতি ঘূৰণীয়া হৈ নাচনীৰ হাতৰ ভঙ্গিত সমানে মিলাই এই নৃত্য প্ৰদৰ্শন কৰে। লিগাং উৎসৱৰ নাচৰ বিৱৰণ সম্পৰ্কে উপন্যাসখনত এনেদৰে উল্লেখ আছে—

“লিগাং নাচৰ ককাল ভঙাৰ নিয়ম কঠিয়া তোলা, ভুই ৰোৱা, ধান দোৱা, সূতা কটা আদি তৰহে তৰহে নাচোনত সোৱণশিৰিৰ পাৰৰ কছৰা বন কঁপাই তুলিছে।” (বৰা ৭৮)

৬.০৩ লোকবাদ্য :

উপন্যাসখনত উৎসৱৰ বতৰত মিচিংসকলে তেওঁলোকৰ পৰম্পৰাগত ঢোল বজোৱা দেখা যায়। উপন্যাসখনত উল্লেখ থকা এই ঢোলৰ চেও এনেধৰণৰ—

“দিন্ দিন্ পাক্ পাক্ বাৰ দিন্ পাক্

দিন দিন পাক পাক দাং দিন পাক।” (বৰা ৭৬)

ইয়াৰ উপৰিও পেম্পা (পেঁপা), বাঁহৰ চুঙাৰ দুম্পাক,

গগনা আদি মিচিংসকলৰ অন্যতম লোকবাদ্য বুলি উপন্যাসখনত উল্লেখ পোৱা যায়।

৭.০ স্বৰ্ণ বৰাৰ ‘সোৱণশিৰিত ৰেলৰ উকি’ উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত মিচিংসকলৰ বয়ন শিল্প :

মিচিং মহিলাসকল বোৱা-কটাত অতি নিপুণ। তেওঁলোকে প্ৰয়োজনীয় বস্ত্ৰসমূহ তাঁতশালত প্ৰস্তুত কৰি লয়। উপন্যাসখনত মিচিংসকলৰ বিভিন্ন কাপোৰৰ উল্লেখ আছে। ৰিবি, গাচেং, পেতালি আদি মিচিং মহিলাসকলৰ সাজপাৰ। উগন আৰু গালোক হৈছে মিচিং পুৰুষসকলৰ সাজপাৰ। উপন্যাসখনত মিচিংসকলৰ ফুলৰ চানেকী সম্পৰ্কে এনেদৰে বৰ্ণনা পোৱা যায়—

“কিছুমান ফুলৰ চানেকী আৰু আকাশৰ তৰা, বেলিৰ কিৰণ, লতাফুল-পাত, ৰামধেনুৰ দৰে সাতোৰং কৰি তোলা ফুল চকুত লগা হয়।” (বৰা ১১৪)

জিম কাপোৰ হৈছে মিচিংসকলৰ অন্যতম বয়ন শিল্পৰ নমুনা। এই জিম কাপোৰত বিভিন্ন ধৰণৰ ৰঙীন ফুল তুলি আকৰ্ষণীয় কৰি তোলা হয়। মিচিংসকলে পৰিধান কৰা আন এক বস্ত্ৰ হৈছে ‘দুমেৰ’ (গামোছা)। এই দুমেৰ মিচিং সমাজত অতি আদৰৰ বস্ত্ৰ বুলি উপন্যাসখনত উল্লেখ আছে।

৮.০ স্বৰ্ণ বৰাৰ ‘সোৱণশিৰিত ৰেলৰ উকি’ উপন্যাসখনত প্ৰতিফলিত মিচিংসকলৰ বাসগৃহ :

উপন্যাসখনত মিচিংসকলৰ বাসগৃহ সম্পৰ্কেও পৰিচয় পোৱা যায়। মিচিংসকলে চাং ঘৰ সাজি বাস কৰে।

সাধাৰণতে নদীৰ পাৰত মিচিংসকলে বসবাস কৰে বাবে বানপানীৰ পৰা ৰক্ষা পৰিবলৈ তেওঁলোকে চাং ঘৰ সাজে। উপন্যাসখনত উল্লেখ থকা বাসগৃহৰ বিভিন্ন অংশৰ নামসমূহ হৈছে— তুংগীঙ (বাৰান্দা), কগদাঙ (জখলা), অকুম (ঘৰ), আপকুৰ, যাপকুৰ (পিচফালৰ বাৰান্দা), লতা (চোতাল)।

৯.০ উপসংহাৰ :

মিচিংসকলৰ সমাজ আৰু সংস্কৃতিৰ এক স্বকীয় বৈশিষ্ট আছে আৰু ইয়ে ঐতিহ্য বহন কৰি আছে। ঔপন্যাসিক স্বৰ্ণ বৰাই মিচিং সমাজখনক অতি সূক্ষ্মভাৱে পৰ্য্যবেক্ষণ কৰি ‘সোৱণশিৰিত ৰেলৰ উকি’ উপন্যাসখনত মুখ্য চৰিত্ৰ অৰুণৰ জন্মস্থান সোনাতলি গাঁৱৰ জৰিয়তে মিচিংসকলৰ মাজত প্ৰচলিত সমাজ ব্যৱস্থা আৰু সংস্কৃতিৰ বিভিন্ন দিশ প্ৰতিফলিত কৰিছে। ঔপন্যাসিকে মুখ্য চৰিত্ৰ অৰুণৰ জীৱনৰ লগত মিচিং সমাজ-সংস্কৃতি জড়িত কৰি উপন্যাসখনৰ কাহিনীটোক গতি প্ৰদান কৰিছে। উপন্যাসখনত মিচিং সমাজ পৰিচালনাত কেবাং, মুৰং ঘৰ, দাগলিগ (সমবায় পদ্ধতিৰে কাম কৰা) আদিৰ গুৰুত্বতা প্ৰতিফলিত হৈছে। উপন্যাসখনত মূলতঃ কৃষি কৰ্মৰ ওপৰত নিৰ্ভৰশীল মিচিংসকলৰ আলি যাই লিগাং আৰু পৰাগ উৎসৱৰ বৰ্ণনাৰে ঔপন্যাসিকে জনগোষ্ঠীটোৱে পালন কৰা কৃষিভিত্তিক উৎসৱৰ পৰিচয় দাঙি ধৰিবলৈ প্ৰয়াস কৰিছে। এই উৎসৱৰ লগত জড়িত নৃত্য, গীত, বাদ্য, সাজপাৰ, খাদ্য আদি সাংস্কৃতিক উপাদানসমূহো উপন্যাসত প্ৰতিফলিত হোৱা দেখা যায়। ইয়াৰ উপৰিও মিচিং সমাজত প্ৰচলিত সামাজিক লোক-ৰীতি-নীতি উপন্যাসখনৰ মাজেদি ঔপন্যাসিকে ব্যক্ত কৰিছে। □

গ্ৰন্থপঞ্জী :

- ১) গগৈ, ড° লীলা. অসমৰ সংস্কৃতি. বনলতা, ২০১২
- ২) বৰা, স্বৰ্ণ. সোৱণশিৰিত ৰেলৰ উকি. সুনীল প্ৰকাশ, ১৯৯০
- ৩) ভূঞা, নয়নজ্যোতি. মিচিম জনগোষ্ঠীৰ লোক-সংস্কৃতি. উত্তৰ-পৰ্বাঞ্চলৰ জনগোষ্ঠীয় লোক-সংস্কৃতি. সম্পাদনা দেৱজিৎ বৰা, পাঞ্চজন্য, ২০১৪
- ৪) ভূগুমনি. মিচিং সংস্কৃতিৰ আলোচনা. লয়াৰ্ছ বুক ষ্টল, ১৯৮৯
- ৫) শৰ্মা, ড° নবীন চন্দ্ৰ. অসমীয়া লোক-সংস্কৃতিৰ আভাস. বাণী প্ৰকাশ প্ৰাইভেট লিমিটেড, ২০১১

যুৱ অধ্যয়ন তত্ত্বৰ দৃষ্টিকোণেৰে মনালিছা শইকীয়াৰ সত্যবান দূৰ হৈ নাযাবা উপন্যাসৰ এটি অধ্যয়ন

সাৰকথা :



চয়নিকা ৰাজখোৱা

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
অসম বিশ্ববিদ্যালয় ডিফু চৌহদ
৮৮৭৬১৪৩৫৬৭
crajkhwa70@gmail.com

যুৱ অধ্যয়ন হৈছে যুৱপ্ৰজন্মৰ সামগ্ৰিক দিশৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰা এটা শাখা। যুৱ অধ্যয়ন তত্ত্বই যুৱপ্ৰজন্মৰ গতিবিধি, চিন্তাধাৰা, কাম-কাজ, আচাৰ-আচৰণ ইত্যাদি বিভিন্ন দিশৰ বিষয়ে বিশদভাৱে অধ্যয়ন কৰে। বিশেষকৈ পাশ্চাত্যত গঢ় লৈ উঠা যুৱ অধ্যয়ন এই বিষয়টোৱে সাম্প্ৰতিক অসমীয়া সাহিত্যতো গুৰুত্ব লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে। অসমীয়া সাহিত্যৰ বিভিন্ন বিধাসমূহৰ ভিতৰত উপন্যাস সাহিত্য অন্যতম। অসমীয়া উপন্যাস সাহিত্যত একবিংশ শতিকাৰ পৰা যুৱ অধ্যয়নৰ ধাৰণাটোয়ে ক্ৰমাৎ বিকাশ লাভ কৰা পৰিলক্ষিত হৈছে।

অসমীয়া উপন্যাস সাহিত্যৰ জগতখনত ভিন ভিন ঔপন্যাসিকে তেওঁলোকৰ ৰচনাত যুৱপ্ৰজন্মৰ চিন্তা-চেতনা, মানসিকতাক অংকন কৰিবলৈ লৈছে। এইসমূহৰ ভিতৰত অন্যতম এগৰাকী ঔপন্যাসিক হৈছে মনালিছা শইকীয়া। তেওঁৰ সত্যবান দূৰ হৈ নাযাবা উপন্যাসখনৰ আধাৰ হৈছে যুৱপ্ৰজন্ম। উপন্যাসখনত ঔপন্যাসিকে যুৱচামৰ বিভিন্ন সমস্যা বা প্ৰসংগসমূহক তুলি ধৰিবলৈ যত্ন কৰিছে। নিৰ্বাচিত আলোচনাত উপন্যাসখনত তুলি ধৰা যুৱপ্ৰজন্মৰ ভিন ভিন দিশসমূহৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰিবলৈ চেষ্টা কৰা হৈছে।

বীজশব্দ :

উপন্যাস, অসমীয়া, সাহিত্য, যুৱপ্ৰজন্ম, যুৱ অধ্যয়ন।

০.০০ অৱতৰণিকা

০.০১ বিষয়ৰ পৰিচয় :

প্ৰত্যেক ব্যক্তিৰে জীৱনৰ এছোৱা গুৰুত্বপূৰ্ণ সময় হৈছে যৌৱনকাল। কৈশোৰ কাল অতিক্ৰম কৰি এজন যুৱক বা যুৱতীয়ে যৌৱনত ভৰি দিয়ে। যুৱপ্ৰজন্মৰ আশা-আকাংক্ষা, চিন্তা-চেতনা, কৰ্ম-কাণ্ড আদি অধ্যয়ন কৰিবলৈ সাহিত্যত এটি নতুন ধাৰাৰ প্ৰচলিত হৈছে। এই ধাৰাই যুৱসমাজৰ লগত জড়িত প্ৰত্যেকটো দিশকে সুক্ষ্মকৈ অধ্যয়ন কৰে, সাহিত্যত এই শাখাটোকে যুৱ অধ্যয়ন বা Youth Studies বুলি কোৱা হয়। যুৱ অধ্যয়নৰ ধাৰাটো পোনতে আৰম্ভ হৈছিল ইউৰোপৰ গ্ৰীচ দেশত। যুৱপ্ৰজন্মৰ আচাৰ-আচৰণ, কাৰ্য-ক্ৰমগণিকা, জীৱন-ধাৰণা প্ৰণালী, ৰুচি-অভিৰুচি, পৰিয়াল বা বন্ধুৰ লগত সম্পৰ্ক, মানসিক অৱস্থা ইত্যাদি বিভিন্ন প্ৰসংগ যুৱ অধ্যয়নত আলোচনা কৰা হয়। পৃথিৱীৰ আন আন সাহিত্যৰ দৰে অসমীয়া সাহিত্যতো সম্প্ৰতি যুৱ অধ্যয়নৰ প্ৰসংগসমূহ প্ৰতিফলিত হোৱা পৰিলক্ষিত হৈছে। বিশেষকৈ অসমীয়া উপন্যাস সাহিত্যত বহুতো নবীন-প্ৰবীণ লেখকৰ হাতত এই চিন্তা-চেতনা প্ৰকাশিত হৈছে। অসমীয়া



ড० প্ৰভাত ভূঞা

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
অসম বিশ্ববিদ্যালয় ডিফু চৌহদ
৭০০২৩০৮৭৮৮,
prabhatnlp@gmail.com

উপন্যাস সাহিত্যত এই চিন্তা-চেতনা প্ৰকাশ কৰা উপন্যাসিকসকলৰ ভিতৰত মনালিছা শইকীয়া অন্যতম। তেখেতৰ যুৱপ্ৰজন্মক কেন্দ্ৰ কৰিয়েই ৰচনা কৰা এখন উপন্যাস হৈছে *সত্যবান দূৰ হৈ নাযাবা*। ২০১২ চনত প্ৰকাশিত এই উপন্যাসখনত তেওঁ নৱপ্ৰজন্মৰ মানসিক অৱস্থাকে কেন্দ্ৰ কৰি পুৰণি আৰু নতুন প্ৰজন্মৰ মাজত সৃষ্টি হোৱা আদৰ্শৰ সংঘাত, যুৱ উচ্ছৃংখলতা আদি বিভিন্ন প্ৰসংগৰ অৱতাৰণা কৰিছে।

০.০২ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য আৰু গুৰুত্ব :

যুৱ অধ্যয়নৰ দৃষ্টিকোণেৰে মনালিছা শইকীয়াৰ *সত্যবান দূৰ হৈ নাযাবা* উপন্যাসখন অধ্যয়ন কৰোঁতে কেইটামান উদ্দেশ্য নিৰ্ধাৰণ কৰা হৈছে। সেয়া হৈছে -

- যুৱ অধ্যয়ন তত্ত্বৰ পৰিচয় দিয়া।
- উপন্যাসখনৰ বিষয়বস্তুৰ চমু আভাস আগবঢ়োৱা।
- উপন্যাসখনত চিত্ৰিত যুৱপ্ৰজন্মৰ লগত জড়িত বিভিন্ন দিশ বা প্ৰসংগসমূহ দাঙি ধৰা।
- উপন্যাসিকে চিত্ৰিত কৰা যুৱপ্ৰজন্মৰ প্ৰসংগসমূহৰ লগতে তেওঁৰ চিন্তাধাৰা বা দৰ্শনক পোহৰলৈ অনা।

যিহেতু যুৱপ্ৰজন্ম হৈছে এখন সমাজৰ মেৰুদণ্ডস্বৰূপ, সেয়েহে সমাজৰ এক বৃহৎ অংশক যুৱপ্ৰজন্মই আগুৰি আছে। কুৰি শতিকাৰ শেষৰ ফালৰ পৰাই অসমীয়া উপন্যাসৰ পাতত যুৱপ্ৰজন্মই বিশেষভাৱে ঠাই লাভ কৰিছে। মনালিছা শইকীয়াৰ *সত্যবান দূৰ হৈ নাযাবা* খনো তেনে এখন উপন্যাস। আধুনিক জীৱন-যাত্ৰাই কেনেদৰে যুৱক-যুৱতীসকলক প্ৰভাৱিত কৰিছে আৰু যুৱপ্ৰজন্মই তাৰ কেনেধৰণৰ প্ৰতিক্ৰিয়া আগবঢ়াইছে তাৰ প্ৰতিফলন উপন্যাসখনৰ মাজত প্ৰতিফলিত হৈছে। সেয়েহে এই উপন্যাসখনৰ যোগেদি অসমীয়া যুৱপ্ৰজন্মৰ যি মন-মানসিকতা চিন্তা-চেতনা প্ৰকাশিত হৈছে তাক অধ্যয়ন কৰি চোৱাৰ যথেষ্ট গুৰুত্ব আছে।

০.০৩ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ :

সাম্প্ৰতিক অসমীয়া উপন্যাস সাহিত্যত যুৱপ্ৰজন্মই বিভিন্ন ধৰণেৰে ঠাই লাভ কৰিছে। মনালিছা শইকীয়াৰো কেইবাখনো উপন্যাসত যুৱপ্ৰজন্মই বিশেষভাৱে ঠাই লাভ কৰিছে। তাৰ ভিতৰত *সত্যবান দূৰ হৈ নাযাবা* উপন্যাসখনহে অধ্যয়নৰ পৰিসীমাত সামৰি লোৱা হৈছে।

০.০৪ অধ্যয়নৰ সামগ্ৰী :

অধ্যয়নৰ প্ৰধান উৎস হৈছে নিৰ্বাচিত উপন্যাসখন। তাৰ উপৰিও গৌণ উৎস হিচাপে যুৱ অধ্যয়ন তত্ত্বৰ আধাৰ বা তাত্ত্বিক গ্ৰন্থসমূহ লোৱা হৈছে। ইয়াৰ উপৰিও যুৱ মানসিকতাৰ সম্পৰ্কে ৰচিত বিভিন্ন ধৰণৰ প্ৰবন্ধসমূহো গ্ৰহণ কৰা হৈছে।

০.০৫ অধ্যয়নৰ পদ্ধতি :

যুৱ অধ্যয়ন তত্ত্বৰ দৃষ্টিকোণেৰে মনালিছা শইকীয়াৰ *সত্যবান দূৰ হৈ নাযাবা* উপন্যাসৰ এক অধ্যয়ন - শীৰ্ষক বিষয়টো অধ্যয়ন কৰোঁতে প্ৰধানকৈ বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি গ্ৰহণ কৰা হৈছে। প্ৰয়োজন অনুসৰি ঠায়ে ঠায়ে বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতিৰো সহায় লোৱা হৈছে।

১.০০ যুৱ অধ্যয়ন তত্ত্বৰ পৰিচয় :

বৰ্তমান সময়ত সততে শুনিবলৈ পোৱা এটা শব্দ হ'ল যুৱপ্ৰজন্ম বা নৱপ্ৰজন্ম। এই যুৱসমাজৰ কিশোৰ-কিশোৰী বা যুৱক-যুৱতীসকলৰ ৰেহ-ৰূপ গতি-গোত্ৰক লৈ সকলো স্তৰৰ মানুহৰ মাজত আলোচনা হোৱা দেখা যায়। সাহিত্যতো এই যুৱসমাজৰ এনেধৰণৰ দৃষ্টিভংগী, চিন্তা-চেতনা, মানসিকতা আদিয়ে ঠাই লাভ কৰিছে। গতিকে যুৱপ্ৰজন্ম সম্পৰ্কীয় বিভিন্ন প্ৰসংগসমূহৰ বিষয়ে কৰা অধ্যয়নেই হৈছে যুৱ অধ্যয়ন। যাক ইংৰাজীত Youth Studies বুলি কোৱা হয়। যুৱপ্ৰজন্মই কি বিচাৰে, তেওঁলোকৰ ইচ্ছা-আকাংক্ষা, চিন্তাধাৰা, মানসিকতা কেনে বা এই সময়ছোৱাত তেওঁলোকৰ মাজত দেখা দিয়া বিভিন্ন সমস্যা বা প্ৰসংগসমূহক যুৱ অধ্যয়নে সামৰি লৈছে।

যুৱ অধ্যয়ন সম্পৰ্কে বিভিন্ন চিন্তা-চৰ্চা প্ৰথমে পশ্চিমীয়া দেশসমূহত আৰম্ভ হৈছিল। ইউৰোপৰ গ্ৰীচ দেশতে ইয়াৰ শুভাৰম্ভ হয়। এই ক্ষেত্ৰত জেমছ্ ই. কটে (James E. Cote) তেওঁৰ *Youth Studies : Fundamental Issues and Debates* নামৰ গ্ৰন্থখনত যুৱ অধ্যয়ন তত্ত্বৰ বিকাশৰ চাৰিটা স্তৰৰ কথা উল্লেখ কৰিছে।

১৯০০-১৯৬০ আধুনিক কৈশোৰৰ উচ্ছৃংখলতা (Modern Adolescence Turmoil)

১৯৫০-১৯৭০ আধুনিক যুৱ শক্তিৰ উত্থান (Modern Youth in Rebellion)

১৯৬০-১৯৯০ সক্ৰিয় অভিকৰ্তা হিচাপে যুৱ (Youth as active Agents)

১৯৮০-বৰ্তমানলৈকে, ইতিবাচক পৰিচয়েৰে দীৰ্ঘদিন

পৰিচালিত যুৱক (Prolonged Youth as Positive Identity)^১

১৯০০-১৯৬০ এই সময়ছোৱাত যুৱক-যুৱতীসকলৰ মাজত বাঢ়ি অহা যুৱ উচ্ছৃংখলতাৰ প্ৰতি প্ৰথমে চকু দিয়া হৈছিল। আমেৰিকাতো এই সময়তে কৈশোৰ মনোবিজ্ঞানৰ ধাৰণাটোৰ উন্মেষ ঘটে। সমাজৰ কিশোৰ-কিশোৰীৰ মাজত বৰ্ধিত শৃংখলহীনতা বা অবাধ্যতা সম্পৰ্কে অধ্যয়ন কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰে। এই সময়ছোৱাত কেৱল যুৱক-যুৱতীৰ উচ্ছৃংখলতাৰ বিষয়েহে অধ্যয়ন কৰা হৈছিল। সেয়েহে এই সময়ছোৱাক আধুনিক কৈশোৰৰ উচ্ছৃংখলতাৰ সময় বুলি বিবেচনা কৰা হৈছে। কৈশোৰৰ সময়ছোৱা প্ৰতিজন কিশোৰ-কিশোৰীৰ বাবে 'ধুমুহা আৰু উৎপীড়ণৰ সময়' বুলি গণ্য কৰা হয়। গতিকে এই সময়ছোৱাত যুৱক-যুৱতীৰ অপৰাধ প্ৰৱণতাৰ প্ৰতি লক্ষ্য ৰাখি অপৰাধমূলক অধ্যয়নৰো উত্থান ঘটে। ১৯৫০-১৯৭০ আধুনিক যুৱশক্তিৰ উত্থানৰ এই সময়ছোৱাত আমেৰিকান অধ্যয়নকাৰীসকলে কিশোৰ-কিশোৰীসকলক আধুনিক সমাজত নতুন ভূমিকা বা নতুন শক্তিৰ উত্থানৰ দৃষ্টিৰে ব্যাখ্যা কৰে। ৰাজনৈতিক, অৰ্থনৈতিকবিদসকলে যুৱপ্ৰজন্মৰ প্ৰতিবাদক অগ্ৰাধিকাৰ দিবলৈ ধৰে। মনোবিজ্ঞানীসকলে যুৱপ্ৰজন্মৰ জ্ঞানমূলক, নৈতিক বিকাশ আদি প্ৰকাশৰ পৰ্যায়সমূহৰ প্ৰস্তাৱ আগবঢ়ায়। এই ক্ষেত্ৰত পৰিলক্ষিত বিভিন্ন অসুবিধাসমূহৰ প্ৰতিও চকু ৰখা হয়। ১৯৬০-১৯৯০ এই সময়ছোৱাত সমাজবিজ্ঞানীসকলে শ্ৰমিক শ্ৰেণীৰ যুৱকসকলৰ অবাধ্যতাক তেওঁলোকৰ ওপৰত হোৱা শ্ৰেণী অত্যাচাৰৰ প্ৰতিৰোধ হিচাপে গণ্য কৰিছে। সাংস্কৃতিক তত্ত্ববিদসকলেও আমেৰিকাৰ অপৰাধমূলক অধ্যয়নক তেওঁলোকৰ অধ্যয়নত সন্নিবিষ্ট কৰিছে। আমেৰিকা আৰু ইউৰোপত ক্ৰমান্বয়ে এই সময়ত কিশোৰ-কিশোৰী বা যুৱক-যুৱতীৰ মনোবৈজ্ঞানিক অধ্যয়ন বৃদ্ধি পাবলৈ ধৰে। ১৯৮০ চনৰ পৰা যুৱক-যুৱতীসকলৰ পৰিচয়ৰ ক্ষেত্ৰত বিভিন্ন অঞ্চলত একাধিক বা বৰ্ণিত দৃষ্টিভংগীৰ উন্মেষ ঘটে। সময়ৰ লগে লগে গৱেষণাসমূহ বিষয়ভিত্তিক আৰু পৰ্যায়ভিত্তিক আৰু অধিক স্পষ্টভাৱে মূল্যবোধৰ দ্বাৰা পৰিচালিত হোৱাৰ বাবে যুৱ অধ্যয়নৰ গৱেষণাৰ তাত্ত্বিক দৃষ্টিভংগীও অধিক গুৰুত্বপূৰ্ণ হৈ পৰে।

যুৱ অধ্যয়নত সাধাৰণতে যুৱপ্ৰজন্মৰ কৈশোৰৰ পৰা প্ৰাপ্ত বয়স্কলৈকে হোৱা এই পৰিৱৰ্তনত সমাজৰ ভূমিকা,

শিক্ষা আৰু কৰ্মৰ সৈতে যুৱচামৰ সম্পৰ্ক, যুৱসমাজৰ জীৱন-ধাৰণা প্ৰণালী তথা যুৱ-সংস্কৃতি আদিৰ পৰিৱৰ্তন আৰু এই পৰিৱৰ্তনৰ ছবিখনৰ বিষয়ে অধ্যয়ন কৰা হয়। পুৰণি প্ৰজন্মৰ পৰা আঁতৰি আহি নতুন নতুন মূল্যবোধ আৰু শিক্ষাৰে অনুপ্ৰাণিত যুৱসমাজৰ বিভিন্ন দিশ অধ্যয়ন কৰা দেখা পোৱা গৈছে।

যুৱ অধ্যয়ন সম্পৰ্কে জেমছ কট (James Cote)ৰ উপৰিও এণ্ডি ফাৰলং (Andy Furlong), ডেৰেক কেচম (Derek kassem), ইভ টাক (Eve Tuck), লিজা মাৰফী (Lisa Murphy), এলিজাবেথ টেইলৰ (Elizabeth Taylor), নেনচি লেচকো (Nancy Lasko) ইত্যাদিয়ে নিজা চিন্তা-চৰ্চা আগবঢ়াইছে। যুৱ অধ্যয়ন বিষয়টোৰ সম্পৰ্কে কেৱল চিন্তা-চৰ্চাই নহয়, সম্প্ৰতি বিদ্যায়তনিক ক্ষেত্ৰতো ক্ৰমান্বয়ে এই বিষয়ে সূচনা হ'বলৈ ধৰিছে। উদাহৰণ স্বৰূপে, নেদাৰলেণ্ডৰ ইউ ট্ৰেঙ্ক্ট ইউনিভাৰচিটি (Utrecht University) ত স্নাতকোত্তৰ পৰ্যায়ত যুৱ অধ্যয়ন বিষয়টো বিদ্যায়তনিক বিষয় হিচাপে অন্তৰ্ভুক্ত কৰা হৈছে। এই অধ্যয়নত যুৱপ্ৰজন্মৰ সামাজিক সমতা-অসমতা, মনস্তাত্ত্বিক সমস্যা, গণ মাধ্যমৰ প্ৰভাৱ, যুৱপ্ৰজন্মৰ সামাজিক আৰু অসামাজিক আচৰণ, যুৱ-সংস্কৃতি, সাংস্কৃতিক জীৱন দৰ্শন, বন্ধু তথা সমনীয়াৰ প্ৰভাৱ, যৌন আচৰণ, ইত্যাদি দিশসমূহ অধ্যয়ন কৰা হয়।

২.০০ উপন্যাসখনৰ সাৰাংশ :

মনালিছা শইকীয়াৰ এখন অন্যতম উপন্যাস হৈছে *সত্যবান দূৰ হৈ নাযাবা*। উপন্যাসখন প্ৰধানতঃ যুৱপ্ৰজন্মক কেন্দ্ৰ কৰি ৰচিত। উপন্যাসিকে বাস্তৱ জীৱনৰ বুকুৰ পৰাই উপন্যাসখনৰ বিভিন্ন চৰিত্ৰসমূহ বুটলি লৈছে। উপন্যাসখনৰ প্ৰধান চৰিত্ৰ হৈছে সত্যবান, যি এক অশান্ত, অস্থিৰ চৰিত্ৰ। মদৰ নিচাত পৰি মদাহী নামেৰে সমাজত পৰিচিত। উপন্যাসখনৰ আন আন চৰিত্ৰসমূহ হৈছে ৰণদীপ, পুৰতি, কাকলি, সাদৰী, ৰাজু, অনিল ইত্যাদি। উপন্যাসখনৰ কাহিনী আৰম্ভ হৈছে সত্যবানৰ জীৱনৰ কৰ্মসংস্থাপনহীনতাক কেন্দ্ৰ কৰি। জীৱনৰ আঠাইছ-উনবিছ বছৰ বয়স অতিক্ৰম কৰিছে সত্যবানে। বৰ্তমান পৰ্যন্ত কোনো ধৰণেৰে নিজক কামত নিয়োজিত কৰিব নোৱাৰাটোয়ে সত্যবানৰ পৰিয়ালৰ তাৰ প্ৰতি থকা প্ৰধান আক্ষেপ। বিশেষকৈ সত্যবানৰ দেউতাকে সৰুৰে পৰাই তাক বায়েক আৰু ভায়েকৰ লগত তুলনা কৰি আহিছে। সত্যবানে বাৰে বাৰে তেওঁলোকক প্ৰশ্ন কৰে



যে পৰীক্ষাৰ নম্বৰকেইটাই মানুহক কেৱল সুখী কৰিব পাৰে নেকি? নম্বৰ নাপালে মানুহ বেয়া হৈ যায় নেকি? সত্যবানৰ এনেধৰণৰ প্ৰতিক্ৰিয়াই বাবে বাবে তাক অস্থিৰ কৰি তোলে। উপন্যাসখনত মন কৰিবলগীয়া এটি দিশ হৈছে নতুন প্ৰজন্মৰ চিন্তাধাৰাৰ প্ৰকাশ। প্ৰধানকৈ পুৰতী, সাদৰী, কাকলিহঁতৰ দৰে কৰ্মথ যুৱতীৰ নিজৰ ভৱিষ্যতক লৈ কৰা চিন্তা, নিজ ইচ্ছাক বাস্তৱায়িত কৰাৰ প্ৰচেষ্টা, তেওঁলোকৰ মন-মানসিকতাত ফুটি উঠা আগ্ৰহ, উদ্যম, সত্যবানৰ জীৱন তথা সমাজৰ প্ৰতি থকা ধাৰণা, মানুহক মানুহ হিচাপে কৰা ব্যৱহাৰ, সততা, আত্মীয়তা আদি আবেগ আৰু ভাৱনাসমূহ উপন্যাসিকে অতি সুন্দৰকৈ উপন্যাসখনত তুলি ধৰিছে। উপন্যাসখনৰ প্ৰতিটো চৰিত্ৰৰ মাজেৰে যুৱসমাজত দেখা পোৱা বিভিন্ন প্ৰসংগ বা দিশৰ অৱতাৰণা কৰা হৈছে। নৱপ্ৰজন্মই সন্মুখীন হোৱা নিৰনুৱা সমস্যা তথা কৰ্মসংস্থাপনহীনতা, যুৱসমাজত বাঢ়ি অহা অপৰাধ প্ৰৱণতা, যুৱ উচ্ছৃংখলতা, মানসিক অশান্তি আৰু নিঃসংগতাবোধ ইত্যাদি ন ন দিশৰ উল্লেখ উপন্যাসখনৰ পাতত পৰিলক্ষিত হৈছে। যুৱক-যুৱতীৰ লগত জড়িত এনেধৰণৰ প্ৰসংগৰ সমাহাৰ উপন্যাসিকে উপন্যাসখনত সন্নিবিষ্ট কৰিবলৈ যত্ন কৰিছে।

৩.০০ সত্যবান দূৰ হৈ নাযাবা উপন্যাসত প্ৰতিফলিত যুৱ প্ৰসংগ :

৩.০১ কৰ্মসংস্থাপনহীনতাৰ সমস্যা :

বৰ্তমান সময়ৰ এক সামাজিক হৈছে নিৰনুৱা সমস্যা। এজন ব্যক্তি যেতিয়া কাম কৰিবলৈ সক্ষম আৰু ইচ্ছুক অথচ নিয়োগৰ অভাৱত নিৰনুৱা হৈ থাকিবলগীয়া হয় তেনে অৱস্থাকে কৰ্মসংস্থাপনহীনতা বুলি কোৱা হয়। এই নিৰনুৱা যুৱক-যুৱতীসকলে কৰ্মহীন লোকসকলৰ এটা সৰু অংশক প্ৰতিনিধিত্ব কৰি আহিছে। বিশেষকৈ বিশ্বযুদ্ধৰ পাছত শৈক্ষিক দিশত লোৱা পৰিৱৰ্তিত আহিয়ে উন্নত দেশসমূহত কৰ্মসংস্থাপনৰ হাৰ ক্ৰমাৎ হ্ৰাস কৰি আনিলে। ২০০৮ চনত অ'ই.চি.ডি.ৰ অন্তৰ্গত ৩০ খন দেশত ১৫-২৪ বছৰীয়া যুৱক-যুৱতীৰ ভিতৰত ৪৪ শতাংশই কৰ্মসংস্থাপন লাভ কৰে। ২০০৭-০৮ চনৰ পৰা ইউৰোপ আৰু উত্তৰ আমেৰিকাত হোৱা মন্দাৱস্থাই যুৱক-যুৱতীৰ নিয়োগৰ হাৰ যথেষ্ট কমাই আনে। ইউৰোপীয় ইউনিয়নত ২০১১ চনৰ প্ৰথম ভাগত এই হাৰ সৰ্বকালৰ নিম্নস্তৰ হৈ ৩২.৯ শতাংশলৈ গতি কৰে।^১ সেইদৰে ১৯৮০ চনৰ মন্দাৱস্থাৰ সময়তো প্ৰায় সকলো উন্নত দেশত যুৱ নিৰনুৱাৰ সমস্যা বৃদ্ধি পায়। অৰ্থনৈতিক অগ্ৰগতিয়ে কিছু বেহাই দিলেও ১৯৯০ চনত আকৌ ইয়াৰ পুনৰাবৃত্তি ঘটে।^২ উন্নত দেশসমূহৰ তুলনাত ভাৰতত নিৰনুৱা সমস্যা এক ভয়াবহ সমস্যা হিচাপে পৰিগণিত হৈছে। অসমতো এই সমস্যা বহু পুৰণি। অসমৰ অনুন্নত অৰ্থনৈতিক গাঁথনি, সীমিত উদ্যোগ, সীমিত চৰকাৰী চাকৰি, উপযুক্ত নিৰ্দেশনাৰ অভাৱ, প্ৰব্ৰজন, জনসংখ্যা বৃদ্ধি আদি বিভিন্ন কাৰকে নিৰনুৱা সমস্যাৰ সৃষ্টি কৰিছে। মন কৰিবলগীয়া যে যেতিয়া নিয়োগকৰ্তাসকলে নিয়োগ বন্ধ কৰি দিয়ে বা কিছু সময়লৈকে নিযুক্তি বন্ধ কৰি ৰাখে তেতিয়াই নিৰনুৱা সমস্যা বৃদ্ধি পায়। এইক্ষেত্ৰত নিয়োগকৰ্তা সকলে যেতিয়া পুনৰ নিয়োগ আৰম্ভ কৰে তেওঁলোকে ইতিমধ্যে থাকি যোৱা যুৱক-যুৱতীসকলৰ সলনি নতুন বা সক্ৰিয় যুৱক-যুৱতীক নিয়োগ কৰে। এইদৰে থাকি যোৱা যুৱপ্ৰজন্মসকলক 'হেৰুৱা প্ৰজন্ম' বা Lost Generation বুলি কোৱা হয়।

কৰ্মসংস্থাপনহীনতা বা নিৰনুৱা জীৱনে এজন যুৱক বা যুৱতীৰ মনত বিৰূপ প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰে। আনুষ্ঠানিক শিক্ষাৰ পাছতে যুৱপ্ৰজন্মৰ মাজত সংস্থাপনৰ বাবে হাহাকাৰ পৰিস্থিতিৰ সৃষ্টি হয়। নিৰ্বাচিত উপন্যাসখনৰ কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ

সত্যবানো এজন ডেকা যুৱক। আনুষ্ঠানিক শিক্ষা আধাতে এৰি সি বৰ্তমান এজন বেকাৰ। সত্যবানৰ এই অৱস্থাই তাৰ লগতে পৰিয়ালতো যথেষ্ট প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰিছে। উপন্যাসখনত সত্যবানৰ কৰ্মসংস্থাপনহীনতাক ঔপন্যাসিকে এনেধৰণেৰে ব্যক্ত কৰিছে -

‘সি একো এটা উপাৰ্জন কৰিব নোৱাৰা কথাটোৱেই যেন ঘৰখনক অমানিশাৰ ছাঁ এটাৰ দৰে আৱৰি ৰাখে।’ (শইকীয়া, ১৩)

সত্যবান ঘৰখনৰ ডাঙৰ ল’ৰা। বায়েকক বিয়া দিয়াৰ পাছৰে পৰা তাক আৰু ভায়েকক লৈয়ে মাক-দেউতাকে সপোন দেখিছে। সত্যবান অপৰিপক্ক নহয়, সকলো বিষয়তে সি সহজতে টোকাৰ মাৰি চাব পাৰে। সেয়া শেহতীয়া সাহিত্য, খেল, দৰ্শন অথবা আট্টেই হওক তাৰ দখল সকলো বিষয়তে আছে। সত্যবানৰ বন্ধু মহলো সুকীয়া, খেলোৱালাৰ পৰা মন্ত্ৰীৰ পুতেকলৈকে তাৰ বিচিত্ৰ বন্ধু। কিন্তু জীৱনৰ আঠাইছ-উনত্ৰিছ বছৰৰ বয়সলৈকে ডেকা যুৱক সত্যবানে কোনো ধৰণৰ কৰ্মসংস্থাপনৰ বাট নেদেখাৰ বাবে পৰিয়ালতোৰ সকলোৰে চিন্তা হৈছে। সত্যবানেও এই ক্ষেত্ৰত একো নভবা নহয়, কিন্তু তাৰ মনৰ মাজত সৃষ্টি হোৱা অস্থিৰতাই তাক বাবে বাবে পথহীন কৰি তোলে। দৰাচলতে সত্যবানৰ মনৰ অস্থিৰতাৰ মাজত লুকাই আছে তাৰ মনৰ ভিতৰত ক্ৰিয়া কৰি থকা কিছুমান চিন্তা আৰু আৱেগ অনুভূতি। সত্যবানে সৰুৰে পৰাই পৰিয়ালৰ পৰা কোনোধৰণৰ উৎসাহ, অনুপ্ৰেৰণা লাভ কৰা নাছিল। সৰু কালৰে পৰাই দেউতাক আৰু তাৰ মাজত এক দূৰত্ব বৰ্তি আছিল আৰু সময় বাগৰাৰ লগে লগে এই দূৰত্ব ক্ৰমান্বয়ে বাঢ়ি আহে। তদুপৰি সত্যবানৰ জীৱনত একমাত্ৰ সাহস হিচাপে থিয় দিয়া প্ৰেয়সী পুৰতীকো সময়ৰ সোঁতত হেৰুৱাই পেলোৱাৰ ভয়ত সত্যবান অস্থিৰ হৈ পৰে। এই অস্থিৰতাৰ বাবেই সত্যবানে কোনো এটা কামতেই দীৰ্ঘদিনলৈ মনোনিৱেশ কৰিবলৈ অপাৰগ হৈ পৰে।

৩.০২ অপৰাধ প্ৰৱণতা :

যুৱসমাজৰ মাজত দেখা দিয়া আন এক গুৰুত্বপূৰ্ণ সমস্যা হৈছে অপৰাধ প্ৰৱণতা। অতীজৰে পৰাই আমাৰ সমাজত যুৱ অপৰাধৰ বিষয়টোৱে স্থান পাই আহিছে। অৱশ্যে পৰম্পৰাগত সমাজত কৈশোৰ বা শিশু অৱস্থাত ধেমালিতে বাৰীৰ ফল-মূল বা বিহু আদিত জেওৰা, জপনা, হাঁহ চুৰি কৰা কাৰ্যক অপৰাধ বুলি ক’ব নোৱাৰি। যুৱ অধ্যয়নৰ

ক্ষেত্ৰখনত ইয়াক অতি বহল দৃষ্টিৰে চোৱা হয়। যুৱ অধ্যয়নৰ ক্ষেত্ৰখনে যুৱপ্ৰজন্মৰ অপৰাধ প্ৰৱণতাৰ দিশটোৰ প্ৰতি যথেষ্ট গুৰুত্ব দিয়া দেখা যায়। যুৱপ্ৰজন্মৰ দ্বাৰা সংঘটিত এই অপৰাধক ইংলেণ্ড আৰু ৰেলছত পাঁচটা ভাগত ভাগ কৰিছে। সেয়া হৈছে - চুৰি কাৰ্য, কোনো ব্যক্তিৰ প্ৰতি কৰা হিংসাত্মক কাৰ্য, অপৰাধীয়ে কৰা হানি বা অনিষ্ট, মটৰ-গাড়ী সম্পৰ্কীয় জগৰ আৰু ৰাজহুৱা নিৰ্দেশ সম্বন্ধীয় দোষ। যুৱসমাজত সংঘটিত সৰ্বোচ্চ অপৰাধৰ ভিতৰত হিংসাত্মক অপৰাধ আৰু যৌন অপৰাধসমূহ অন্যতম।^{১৫} ইংলেণ্ডৰ দৰে আমেৰিকাতো এই অপৰাধ কাৰ্যক পাঁচটা ধৰণেৰে ভাগ কৰি লৈছে। সেয়া হৈছে - চুৰি কাৰ্য, আক্ৰমণাত্মক কাৰ্য, মাদক দ্ৰব্য ব্যৱহাৰ কৰি কৰা অবাঞ্ছনীয় আচৰণ, অসুস্থ বা বিশৃংখল আচৰণ, আইন-শৃংখলাৰ উলংঘন।^{১৬} যুৱক-যুৱতীসকলৰ মাজত হোৱা এনে অপৰাধসমূহৰ আঁৰত কিছুমান কাৰণ জড়িত হৈ থাকে। যুৱ অধ্যয়নৰ মতে এই কাৰকসমূহ হৈছে আৰ্থিক দুৰ্বলতা, নৈতিক শিক্ষাৰ অভাৱ, পাৰিবাৰিক অশান্তি, সামাজিকীকৰণৰ অভাৱ, সমনীয়াৰ প্ৰভাৱ আৰু সামাজিক মাধ্যমৰ প্ৰভাৱ ইত্যাদি। নিৰ্বাচিত উপন্যাসখনতো যুৱসমাজৰ মাজত ঘটা এনে কিছু প্ৰসংগ চিত্ৰিত হৈছে। উপন্যাসখনত ৰাজু নামৰ যুৱকজনৰ মাজেৰে ইয়াৰ প্ৰতিফলন ঘটিছে -

‘ৰাজুক পুলিচে ধৰি নিছে।

কিয়? কি কৰিলে সি?

সি হেনো গুডামৰ চুৰি মাল ছাপ্লাই দিয়ে। তাৰ অট’ত সিহঁতে তিনি বস্তা চাউল আৰু ঘেঁহু পালে।’ (শইকীয়া, পৃ. ২৮৫)

ৰাজু এজন আৰ্থিকভাৱে দুৰ্বল যুৱক। গুৱাহাটী মহানগৰীত অট’ চলাই জীৱন নিৰ্বাহ কৰি আছে। সৎ পথেৰেই কষ্ট কৰি উপাৰ্জন কৰা ৰাজুয়ে এটা সময়ত পৰিস্থিতিৰ আগত হাৰ মানি দুই নম্বৰী পথেৰে টকা উপাৰ্জন কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰিলে। ৰাজুৰ আৰ্থিক দুৰ্বলতাই আছিল ইয়াৰ প্ৰধান কাৰণ। ৰাজুয়ে ঘণ্টাৰ পাছত ঘণ্টা ধৰি পেচেঞ্জাৰলৈ ৰৈ ৰৈ সৎ পথেৰে অট’ চলাই জীৱন নিৰ্বাহ কৰিবলৈ অতি কঠিন হৈ পৰিছিল। তাৰ সেই ভাৰাৰ টকাৰে গাঁৱৰ ঘৰখন চলাবলৈ নোৱাৰি সি বিবুদ্ধিত পৰে। সেয়েহে সি এদিন হঠাৎ গুডামৰ চুৰি মাল চাপ্লাই দিবলৈ আৰম্ভ কৰে। এনেদৰে দুই নম্বৰীভাৱে চুৰি মাল চাপ্লাই কৰোঁতে এদিন ৰাজুৰ অট’ত পুলিচে তিনিবস্তা চাউল আৰু ঘেঁহু পালে।

তাৰ পাছতেই তাক পুলিচে ধৰি লৈ যায়। এনেদৰে কেতিয়াবা আৰ্থিক দুৰাৱস্থাই বাজুৰ দৰে সৎ মানুহকো অপৰাধ জগতলৈ লৈ যোৱাৰ ছবিখন উপন্যাসখনত চিত্ৰিত হৈছে।

যুৱপ্ৰজন্মৰ মাজত বৃদ্ধি পোৱা আক্ৰমণাত্মক আচৰণ বা হিংসাত্মক কাৰ্যৰ উল্লেখো উপন্যাসখনৰ পাতত দেখা গৈছে। নৈৰ পাৰত হাত-ভৰি বন্ধা অৱস্থাত ব্ৰিনয়ন বৰুৱা নামৰ এজন যুৱকৰ মৃতদেহ পোৱা গৈছে। ল'ৰা জনৰ সমগ্ৰ গাতে ছুৰিৰ দাগ। আচৰিত যে তেওঁৰ লগতে থকা দুজন ঘনিষ্ঠ বন্ধুয়ে মিলি তেওঁক হত্যা কৰিছে।

‘একেলেগে আনি তাৰ গাড়ীত বহি মদ খাইছিলোঁ। সামান্য কথা এটাতে তৰ্কতৰ্কি হ’ল। সি আমাৰ সৈতে কাজিয়া কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰিছিল। খঙত হিতাহিত জ্ঞান হেৰুৱাই পেলাইছিলোঁ।’ (শইকীয়া, পৃ ৪৪)

যুৱসমাজত বাঢ়ি অহা এনেধৰণৰ অপৰাধে নতুন প্ৰজন্মৰ মাজত বিৰূপ প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰে। অপৰাধ কৰাৰ পাছতো অপৰাধীৰ মাজত কোনো ধৰণৰ অনুশোচনাও দেখা পোৱা নাই। ঔপন্যাসিকে যুৱসমাজত বাঢ়ি অহা এনে হিংসাত্মক কাৰ্যৰ জৰিয়তে নতুন প্ৰজন্মৰ মন-মানসিকতা, কৰ্ম-কাণ্ডক প্ৰতিফলিত কৰিছে।

৩.০৩ যুৱ উচ্ছুংখলতা :

সজ কথা, সজ আচৰণ, সজ ব্যৱহাৰ প্ৰতিজন যুৱক-যুৱতীৰে কাম্য। যুৱপ্ৰজন্মই সমাজত মিলি থাকিবলৈ হ’লে এই গুণবোৰ তেওঁলোকৰ মাজত থকাটো অতি বাঞ্ছনীয়। উদ্যোগীকৰণ, প্ৰযুক্তি বিদ্যাৰ ন ন উদ্ভাৱন, ভোগবাদী মানসিকতা আদিৰ প্ৰভাৱৰ লগে লগে যুৱসমাজৰ মাজত এই সজ আচৰণবোৰ প্ৰায় কমি আহিবলৈ ধৰিছে। সততা, সহিষ্ণুতা, নীতিপৰায়ণতা, প্ৰতিশ্ৰুতিবদ্ধতা, বিনয়তা আদি গুণ ক্ৰমে হ্ৰাস পাইছে। একবিংশ শতিকাৰ সময়ছোৱাত পৰিলক্ষিত এক অন্যতম সমস্যা হৈছে এই যুৱ উচ্ছুংখলতা। যুৱপ্ৰজন্মৰ ৰীতি-নীতি, আচৰণ, ব্যৱহাৰলৈ যথেষ্ট পৰিৱৰ্তন আহিছে। এই ক্ষেত্ৰত অৱশ্যে নব্বৈ দশকৰ শেষৰ ফালে অহা বিশ্বায়ন তথা গোলকীকৰণে কঢ়িয়াই অনা ভোগবাদী মানসিকতাই যুৱসমাজক যথেষ্ট পৰিমাণে প্ৰভাৱিত কৰিছে। মদ্যপান, নিচাযুক্ত দ্ৰব্যসেৱন আদি তেওঁলোকৰ মাজত সঘনে বৃদ্ধি পাবলৈ ধৰিছে। যুৱসমাজৰ মাজত দেখা পোৱা এই নিচাযুক্ত দ্ৰব্যসেৱনৰ উদাহৰণ নিৰ্বাচিত উপন্যাসখনত দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। উপন্যাসখনৰ প্ৰধান চৰিত্ৰ সত্যবান

নামৰ যুৱকজনে অত্যাধিক মদ্যপান কৰিবলৈ ধৰিছে আৰু তাৰ ফলশ্ৰুতিতে নিজৰ জীৱনটোকো শেষ কৰাৰ পৰ্যায়ত উপনীত হৈছে। উপন্যাসখনত সত্যবানে মদৰ কবলৰ পৰা নিজকে আঁতৰ কৰিবলৈ চেষ্টা কৰিও সফল হ’ব নোৱাৰি পুৰতকি তাৰ এই অৱস্থাৰ বিষয়ে অৱগত কৰিছে এনেদৰে -

‘মই মদ এৰিব পৰা নাই পুৰতি’। হঠাতে ঘপহকৈ অপৰাধীৰ সুৰত কৈ পেলায় সত্যবানে...‘কালি ৰাতি মই ৰমেশ আৰু ছিদ্দিকৰ সৈতে বহু দেৰিলৈকে মদ খালোঁ। কিবা ভাল লাগি থকা নাছিল। মই কি সঁচাই ‘এলকহলিক’ হৈ গৈছোঁ নেকি? মোৰ সকলো কষ্টৰ উপশম ঘটাবলৈ মই মদৰ বাবে আন একো আশ্ৰয় বিচাৰি নাপাওঁ। বুজি নাপাওঁ, কিয় এনে হয়।’ সত্যবানৰ অসহায়, কাতৰ কণ্ঠ। মদৰ সৈতে নিঃশেষ হ’বলৈ সি নিবিচাৰে। অথচ ক’ব নোৱাৰাকৈ সি মদৰ কবলত পৰে। (শইকীয়া, পৃ. ২৬৬)

দৰাচলতে যুৱাৱস্থাত মাদক দ্ৰব্যসেৱনৰ আঁৰতো বিভিন্ন কাৰকে ক্ৰিয়া কৰে। সেইসমূহৰ ভিতৰত মনস্তাত্ত্বিক কাৰণ যেনে : মনৰ পৰা বিৰক্তি আঁতৰাবলৈ, বাধা নিষেধ দূৰ কৰিবলৈ, আত্মবিশ্বাস বঢ়াবলৈ, মানসিক সন্তুষ্টি ল’বলৈ, প্ৰিয়জনৰ পৰা অৱহেলা বা কষ্ট পালে, বাস্তৱ সমস্যাৰ পৰা আঁতৰি আহিবলৈ ইত্যাদি কাৰণত মদ্যপান কৰা দেখা যায়। ইয়াৰ লগতে কেতিয়াবা নিঃসংগতা বা পৰিয়ালৰ পৰা পোৱা বিভিন্ন অশাস্তি বা সমস্যাৰ বাবে, পিতৃ-মাতৃৰ লগত হোৱা কাজিয়া বা মতবিৰোধ, সমনীয়াৰ হেঁচা আদি আদি কাৰকেও যুৱক-যুৱতীক মাদক দ্ৰব্যসেৱনৰ প্ৰতি আগ্ৰহী কৰি তোলে। উপন্যাসখনতো সত্যবানৰ মাজত এনে কিছুমান কাৰকে প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰা দেখা গৈছে। সত্যবান এজন সুদক্ষ যুৱক। সি খুউব ভাল ছবি আকে। আনুষ্ঠানিক শিক্ষা সম্পূৰ্ণ নকৰিলেও তাৰ মাজত প্ৰায় সকলো বিষয়ৰে জ্ঞানৰ দখল দেখা পোৱা যায়। নিজ পৰিয়ালৰ পৰা পোৱা অত্যাধিক হেঁচা, পিতৃৰ লগত হোৱা মতবিৰোধ, সমনীয়াৰ সংগ আদি কাৰণতে সি সুৰাসক্ত হৈ পৰে। জীৱনৰ প্ৰায় কুৰিৰো অধিকতম বয়স পাৰ কৰাৰ পাছতো নিজকে সংস্থাপন দিবলৈ সক্ষম নোহোৱা বাবে, প্ৰেয়সী পুৰতিৰ সপোন আৰু তাইক হেৰুৱাৰ শংকাত সত্যবানে নিজকে সুৰাৰ মাজত ডুৱাই ৰাখে। প্ৰকৃত অৰ্থত বাস্তৱ জীৱনৰ এই সমস্যাসমূহৰ পৰা পলাই সি নিজকে কেৱল মদ্যপানৰ মাজতে ব্যস্ত কৰি ৰাখিবলৈ বিচাৰে। যাৰ ফলত দিনটোত সি এবাৰো যদি সুৰাসেৱন কৰিবলৈ নাপায়

নিজকে বৰ অসহায় যেন অনুভৱ কৰে।

৩.০৪ নিঃসংগতা :

মানুহৰ মনৰ পৰা যেতিয়া আশা, আকাংক্ষা, উদ্যম, সাহস আদি সকলো ইতিবাচক চিন্তা-চেতনা লোপ পাই আহে, তেতিয়াই এজন মানুহ হতাশ হ'বলৈ ধৰে আৰু ক্ৰমে নিঃসংগতাত ভুগিবলৈ আৰম্ভ কৰে। সাধাৰণতে মানসিক চাপেই হৈছে নিঃসংগতাৰ আৰম্ভণি। যুৱসমাজৰ মাজত নিঃসংগতা, একাকীত্ব আদি মনোভাৱৰ সঘনে দৃষ্টিগোচৰ হোৱা পৰিলক্ষিত হয়। সময়ৰ লগে লগে অহা ন ন প্ৰযুক্তিবিদ্যাই যুৱচামক ভীৰৰ মাজতো যেন অকলশৰীয়া কৰি তুলিছে। উদাহৰণস্বৰূপে, বৰ্তমান বাঢ়ি অহা সামাজিক মাধ্যমৰ অত্যাধিক ব্যৱহাৰে যুৱপ্ৰজন্মক বাস্তৱ জীৱনত নিঃসংগ কৰি তুলিছে। যুৱক-যুৱতীসকলে বাস্তৱ জগতৰ পৰা আঁতৰি একোখন ভাৰ্চুৱেল পৃথিৱীত বাস কৰিবলৈ ধৰিছে। এই ভাৰ্চুৱেল পৃথিৱীখনতে তেওঁলোকে নিজক বিচাৰি পায় আৰু সময় অতিবাহিত কৰিবলৈ বিচাৰে। ইয়াৰ জৰিয়তে তেওঁলোকে বাস্তৱ জীৱনৰ সমস্যাসমূহৰ পৰাও নিজকে আঁতৰাই ৰাখিবলৈ সুবিধা পায়। উপন্যাসখনতো কাকলি, ব্ৰিয়ান আদি চৰিত্ৰৰ মাজেৰে নিঃসংগতাবোধ ফুটি উঠিছে।

ডাইং ইন ল'নলিলেছ। নিঃসংগতাৰ যন্ত্ৰণাৰ পৰা মুক্তি পাবলৈ তোমাৰ সৈতে কথা পাতিছোঁ। নহ'লে এই সময়খিনিত মোৰ কণ্ঠ বাঢ়ি গৈ আছিল। (শইকীয়া, পৃ.১৪১)

উপন্যাসখনত কাকলিয়ে ব্ৰিয়ানক কৈছে যে তাইৰ জীৱনৰ নিঃসংগতাক আঁতৰাবলৈয়ে তাই ব্ৰিয়ানৰ লগত বাৰ্তালাপ কৰে, সময় অতিবাহিত কৰে। কাকলি এজনী কৰ্মঠ যুৱতী। ৰঞ্জনৰ লগত কাকলিৰ বহুদিনীয়া প্ৰেম আৰু শেষত ঘৰৰ অমতত গৈ দুয়ো বিবাহপাশত আৱদ্ধ হৈছিল। কিন্তু সময় যোৱাৰ লগে লগে তেওঁলোকৰ মাজত দূৰত্ব বাঢ়িবলৈ ধৰিলে। বৰ্তমান দুয়ো ডিভোৰ্ছৰ বাবে সহমত দিছে। কাকলিয়ে ৰঞ্জনৰ পৰা পোৱা বিৰক্তি, হেমাৰ্হি অথবা তিক্ততা আৰু প্ৰবল একাকীত্বৰ যন্ত্ৰণাৰ পৰা মুক্তি পাবলৈ ব্ৰিয়ান নামৰ কানাডাৰ এজন যুৱকৰ লগত সামাজিক মাধ্যমতে বাৰ্তালাপ কৰে। কাকলিৰ ভাষ্যত ব্ৰিয়ান তাইৰ অনলাইন বয়ফ্ৰেণ্ড। ধেমালিৰ চলেৰেই কাকলিয়ে ব্ৰিয়ানক তাইৰ কথা, অসমৰ কথা

আদি বিভিন্ন বতৰা দিয়ে। ব্ৰিয়ানো এজন অকলশৰীয়া যুৱক। ব্ৰিয়ানে মেৰী নামৰ এগৰাকী যুৱতীৰ সৈতে তিনি বছৰ ধৰি লিভ ইনত আছিল আৰু শেষত মেৰীয়ে তাক প্ৰতাৰণা কৰি আন এজনৰ লগত গুচি যায়। এনেদৰে কাকলি আৰু ব্ৰিয়ানে নিজৰ জীৱনৰ নিঃসংগতাক আঁতৰাবলৈ ইজনে সিজনক সংগ দিয়ে। প্ৰকৃত অৰ্থত যুৱসমাজত দেখা পোৱা এই নিঃসংগতা তথা একাকীত্ব মনোভাৱে তেওঁলোকৰ মনৰ পৰা ইচ্ছা, আগ্ৰহ, আত্মবিশ্বাস, সাহস আদি গুণবোৰ নাইকীয়া কৰি এজন সুষ্ঠু মানুহকো পংগুসদৃশ কৰি তোলে। যুৱপ্ৰজন্মৰ মনত নেতিবাচক চিন্তাৰ জন্মৰ আঁৰতেই আছে প্ৰধানকৈ নিঃসংগতাবোধ। উপন্যাসখনতো এই চৰিত্ৰসমূহৰ জৰিয়তে উপন্যাসিকে নিঃসংগতাৰ ছবিখন দাঙি ধৰিছে।

৪.০০ উপসংহাৰ :

আলোচনাৰ অন্তত দেখা যায় যে মনালিছা শইকীয়াৰ সত্যবান দূৰ হৈ নাযাবা উপন্যাসখনত বিভিন্ন চৰিত্ৰৰ মাজেৰে যুৱপ্ৰজন্মৰ চিন্তা-চেতনা, মন-মানসিকতা ফুটি উঠিছে। উপন্যাসখনৰ প্ৰধান চৰিত্ৰ হৈছে সত্যবান। উপন্যাসখনত সত্যবানৰ মাজেৰে উপন্যাসিকে যুৱসমাজত দেখা দিয়া কৰ্মসংস্থাপনহীনতাৰ প্ৰসংগটো তুলি ধৰিছে। কৰ্মসংস্থাপনহীনতা হৈছে এক সামাজিক ব্যাধি। যুৱপ্ৰজন্মৰ মাজত বৰ্ধিত নিৰনুৱা সমস্যাই কৰ্মসংস্থাপনহীনতাৰ সৃষ্টি কৰিছে। অৱশ্যে কৰ্মসংস্থাপনহীনতাৰ আঁৰত আন বহুতো কাৰকেও ক্ৰিয়া কৰে। উপন্যাসখনত চিত্ৰিত যুৱক-যুৱতীৰ ক্ষেত্ৰত কৰ্মসংস্থাপনহীনতাৰ বাবে তেওঁলোকৰ মনৰ অস্থিৰতা, পৰিয়ালৰ হেঁচা আদি কাৰক নিহিত হৈ আছে। উপন্যাসখনত পৰিলক্ষিত আন এক প্ৰসংগ হৈছে যুৱপ্ৰজন্মৰ অপৰাধ প্ৰৱণতা। অপৰাধ প্ৰৱণতা এক অসামাজিক আচৰণ। যুৱপ্ৰজন্মই কেতিয়াবা পৰিস্থিতি সাপেক্ষে বিভিন্ন অপৰাধ কাৰ্যত জড়িত হয়। উপন্যাসখনতো অপৰাধ বা এনে অসামাজিক আচৰণৰ চিত্ৰ প্ৰকাশ পাইছে। আৰ্থিক দুৰ্বলতাই এজন কিশোৰ বা যুৱকক অপৰাধ জগতলৈ কেনেদৰে লৈ যাব পাৰে সেয়া উপন্যাসখনত ৰাজু নামৰ যুৱকজনৰ জৰিয়তে দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। উপন্যাসখনত দেখা গৈছে যুৱ উচ্ছৃংখলতাৰ অন্যতম উদাহৰণ হিচাপে নিচাযুক্ত দ্ৰব্যৰ সেৱন।

উপন্যাসখনত অত্যধিক মদ্যপান তথা সুৰা সেৱনে যুৱসমাজক কেনেকৈ ধ্বংসৰ পথলৈ লৈ যায় তাৰ বৰ্ণনা দেখা পোৱা গৈছে সত্যবান নামৰ চৰিত্ৰটোৰ যোগেদি।

নিঃসংগতা হৈছে মনৰ এক আৱেগ য'ত এজন ব্যক্তিয়ে সামাজিক সংযোগৰ পৰা বিৰত থাকিবলৈ চেষ্টা কৰে। উপন্যাসখনত নিঃসংগতাৰ বাবে যুৱপ্ৰজন্মই নিজকে কেনেদৰে নিযোজিত কৰি ৰাখিছে তাৰ বৰ্ণনা কাকলি আৰু ব্ৰিয়ান চৰিত্ৰৰ মাজেৰে দেখা পোৱা গৈছে। কাকলিয়ে তাইৰ প্ৰাক্তন স্বামী ৰঞ্জনৰ লগত হোৱা বিচ্ছেদৰ

পাছতে মনৰ নিঃসংগতা দূৰ কৰিবলৈ সামাজিক মাধ্যমত চিনাকী হোৱা কানাডাৰ যুৱক ব্ৰিয়ানৰ লগতে সময় অতিবাহিত কৰিবলৈ আৰম্ভ কৰিছে। দেখা গৈছে যে প্ৰযুক্তি বিদ্যাৰ ন ন আবিষ্কাৰ যেনে : সামাজিক মাধ্যমে যুৱসমাজক মনৰ বিৰক্তি বা সময় অতিবাহিত কৰিবলৈ সহজ কৰি তুলিছে আৰু ইয়াৰ বিপৰীতে সামাজিক মাধ্যমৰ অনৈতিক ব্যৱহাৰে যুৱপ্ৰজন্মক নৈতিকতাৰ পৰা আঁতৰায়ো আনিছে। □

প্ৰসংগটীকা :

১. Cote, James.E, *Youth Studies: Fundamental Issues And Debates*, p.10

২. Furlong, Andy, *Youth Studies An Introduction*, p.75

৩. Furlong, Andy, *Youth Studies An Introduction*, p.78

৪. Furlong, Andy, *Youth Studies An Introduction*, p.189

৫. Furlong, Andy, *Youth Studies An Introduction*, p.189

গ্ৰন্থপঞ্জী :

দত্ত, জয়ন্ত। আৰু গীতাশ্ৰী শইকীয়া, সম্পাদক। *একবিংশ শতিকাৰ অসমীয়া উপন্যাস*। প্ৰথম প্ৰকাশ, অসম বুক ট্ৰাষ্ট, ২০২০

শইকীয়া, মনালিছা। *সত্যবান দূৰ হৈ নাযাবা*। আখৰ প্ৰকাশ, চতুৰ্থ প্ৰকাশ, ২০২২।

Cote, James. *Youth Studies Fundamental Issues And Debates*. 1st ed., Palgrave Macmillan Publication, 2014.

Furlong, Andy. *Youth Studies: An Introduction*. 1st ed., Routledge, 2013.

চাহ জনগোষ্ঠী আৰু সাদৰি ভাষাৰ এটি বিশ্লেষণাত্মক অধ্যয়ন (কোৰামোৰ, পানেৰী আৰু ডিমাকুচি চাহ বাগিচাৰ বিশেষ উল্লিখনসহ)

সংক্ষিপ্ত সাৰ :



দিপাঞ্জলী মেধি দাস

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়

☎ ৮৭৫৩৯৩৮৩৬৯

✉ dipanjaliimedhidas@gmail.com

অসমৰ অৰ্থনীতি উন্নয়নৰ ক্ষেত্ৰত বিশেষভাৱে অবিহণা আগবঢ়াইছে চাহ জনগোষ্ঠীৰ অন্তৰ্ভুক্ত লোকসকলে। তেওঁলোকৰ অসমলৈ হোৱা প্ৰব্ৰজন স্বাভাৱিক নাছিল। অসমৰ নতুনকৈ বৃটিছে স্থাপন কৰা চাহ বাগিচা সমূহত বনুৱা হিচাপে কাম কৰিবলৈ নানান প্ৰলোভন দি তেওঁলোকক অসমলৈ অনা হৈছিল। তেওঁলোকৰ প্ৰত্যেকৰে মাতৃভাষা সুকীয়া আছিল যদিও বৃটিছে তেওঁলোকক একেলগে একো একোখন চাহ বাগিচাত ৰখাৰ ব্যৱস্থা কৰিছিল। প্ৰথম অৱস্থাত এই লোকসকলে কোনেও কাৰো মাতৃভাষা বুজি পোৱা নাছিল। পিছলৈ তেওঁলোকে পাৰস্পৰিক ভাৱৰ আদান-প্ৰদানৰ বাবে অসমীয়া, বাংলা, হিন্দী, ভোজপুৰী, উড়িয়া আদি ভাষাৰ সংমিশ্ৰণেৰে এটি সংযোগী ভাষা (Lingua Franca) ৰ সৃষ্টি কৰি লৈছিল। ফলস্বৰূপে বিভিন্ন ভাষাৰ পৰা সংগৃহীত সীমিত বৈয়াকৰণিক বৈশিষ্ট্য আৰু বিভিন্ন ভাষাৰ শব্দৰে এই ভাষাটো যোগাযোগৰ মাধ্যম ৰূপে তেওঁলোকৰ মাজত গঢ় লৈ উঠিছিল। এই ভাষাটোকে পণ্ডিতসকলে ‘সাদানি’, ‘সাদৰি’ বা ‘বাগানীয়া অসমীয়া’ আদি নামেৰে নামকৰণ কৰিছে। পিছলৈ ৰূপত প্ৰচলিত এই ভাষাটোৰ ধ্বনিগত, ৰূপগত, বাক্যগত, শব্দগত বৈশিষ্ট্য অতি বৈচিত্ৰপূৰ্ণ। এই প্ৰবন্ধটিত ভাষাটোৰ ওপৰোক্ত দিশসমূহৰ ওপৰত আলোকপাত কৰাৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

সূচক শব্দ :

প্ৰব্ৰজন, ধ্বনিগত, ৰূপগত, বাক্যগত, শব্দগত।

অৱতৰণিকা :

ইংৰাজ সকলৰ প্ৰিয় পানীয় হৈছে চাহ। তেওঁলোকে পোনপ্ৰথম চীন দেশৰ পৰা চাহৰ আমদানি কৰিছিল। পিছলৈ চীনৰ সৈতে ব্যৱসায়িক যোগাযোগ বন্ধ হৈ পৰে। জাপানতো চাহ পোৱা গৈছিল যদিও জাপানেও ব্যৱসায় বন্ধ কৰে। চাহৰ আমদানি বন্ধ হোৱাৰ বাবে ইংৰাজ সকল মহা বিপদত পৰে। সেয়ে ব্যৱসায়ী গোষ্ঠী ইংৰাজে চাহৰ অভাৱ যাতে দূৰ কৰিব পাৰে তাৰবাবে ভাৰতবৰ্ষত কি কি নতুন খেতি কৰিব পাৰিব সেই সন্দৰ্ভত জোচেফ বেঙ্কক এখন প্ৰতিবেদন দাখিল কৰিবলৈ দিয়ে। তেওঁ সেই নিৰ্দেশ অনুসৰি প্ৰতিবেদন প্ৰস্তুত কৰি জনায় যে ভৱিষ্যতে ভাৰতত উত্তৰ-পূব অঞ্চলত চাহ বাগিচা পাতিব পৰাৰ সম্ভাৱনা আছে। তাৰে ওপৰত ভিত্তি কৰি গৱৰ্ণৰ জেনেৰেলৰ এজেণ্ট ডেভিড স্কট চাহাবে অসমত চাহ খেতি কৰাৰ প্ৰতি মনোযোগ দিয়ে। সেয়ে তেওঁ কলিকতাৰ বোটানিকেল গাৰ্ডেনৰ পৰা চীন দেশৰ পৰা অনা চাহৰ পুলি অসমত ৰুবলৈ খুজি পঠিয়াই। সেই চাহ পুলি আহে যদিও গুৱাহাটী পায় মানে



ড° প্ৰণীতা দেৱী

অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ
গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়

☎ ৯৪৩৫৭৩০১২৬

✉ pranitadevi@gauhati.ac.in

এটা পুলিও বাচি নাথাকে। তাৰ কিছুদিন পিছত ‘ৰবাৰ্ট ব্ৰাচ চাহাবে ১৮২৩ খৃষ্টাব্দত অসমত চাহ গছৰ সন্ত্ৰেদ পায়।’^১ এই ক্ষেত্ৰত তেওঁৰ ভায়েক চি.এ. ব্ৰাচও সহায় কৰে। পিচলৈ তেওঁ নিজকে ‘প্ৰথম ইউৰোপীয় চাহ আৱিষ্কাৰক বুলি দাবী কৰে।’^২ অৱশ্যে তেওঁলোকে অসমত চাহ গছ থকা কথা জনাৰ আগৰে পৰা চিংফৌ সকলৰ মাজত চাহৰ প্ৰচলন আছিল। ১৮২৩ চনত ৰবাৰ্ট ব্ৰাচ অসমৰ ৰজা চন্দ্ৰকান্ত সিংহৰ এজেন্ট হৈ থাকোঁতে চিংফৌ বীচা গামক লগ পায়। গামে তেওঁক অসমত চাহ গছ থকাৰ কথা কোৱাৰ লগতে দুজোপা চাহ গছ উপহাৰ হিচাপে দিয়ে যদিও গছ দুজোপা ৰুবলৈ নাপাওঁতেই মৰি যায়। ১৮২৬ চনত চিংফৌ বিদ্ৰোহ হয়। চিংফৌসকলৰ মাজত হোৱা বিদ্ৰোহ দমন কৰিবলৈ নৌ-বাহিনীৰ কেপ্তেইন হৈ চাৰ্লচ আলেকজেণ্ডাৰ ব্ৰাচ আহে। তেওঁ ৰবাৰ্ট ব্ৰাচৰ নিৰ্দেশ মতে উভতি যাওঁতে চিংফৌ গামৰ পৰা চাহ গছৰ নমুনা সংগ্ৰহ কৰি ডেভিদ স্কটক দিয়ে। তেওঁ কলিকতাৰ বোটানিকেল গাৰ্ডেনত নমুনা পৰীক্ষা কৰায় যদিও সেই চাহ চীনা চাহৰ সৈতে একে নহয় বুলি জনায়। চীন আৰু জাপানৰ সৈতে ইতিমধ্যে চাহৰ আমদানি বন্ধ হৈ পৰিছিল। গতিকে ‘১৮৩৪ চনৰ ১ ফেব্ৰুৱাৰীত অসমত চাহ খেতিৰ সম্ভাৱনাৰ বিষয়ে পৰীক্ষা-নিৰীক্ষা কৰিবলৈ এখন চাহ সমিতি গঠন হয়।’^৩ তেতিয়ালৈকে অসমৰ চাহ গছে স্বীকৃতি লাভ কৰা নাছিল। গতিকে অসমৰ মাটিত চাহ খেতি কৰিবৰ বাবে গুটি আৰু চাহপুলি আনিবলৈ সমিতিৰ সম্পাদক মিঃ গৰ্ডনক চীনালৈ পঠিয়াই। অৱশেষত বিভিন্ন পৰীক্ষা কৰি অসমৰ বনৰীয়া চাহ পাতৰে চীনা বনুৱাৰ হতুৱাই চাহ প্ৰস্তুত কৰি লণ্ডনলৈ পঠিয়ায়। চীনদেশৰ চাহপাতৰ লগতে সেই চাহপাত ১৮৩৯ চনত লণ্ডন নীলাম বজাৰত নীলাম কৰা হয়।^৪ অসমৰ সেই চাহপাত উৎকৃষ্ট মানদণ্ডৰ বুলি স্বীকৃতি পোৱাৰ পিছতে অসমৰ মাটিত চাহ বাগিচা স্থাপনৰ বাবে ব্যৱসায়ী সকল আগবাঢ়ি আহে।

অসমত চাহ খেতিৰ আৰম্ভ হ’ল যদিও চাহ বাগিচাত কাম কৰিবলৈ বনুৱাৰ অভাৱ হ’বলৈ ধৰিলে। অসমৰ স্থানীয় মানুহে চাহ বাগিচাত কাম কৰিবলৈ প্ৰস্তুত নাছিল। তদুপৰি চীনৰ পৰা অনা বনুৱাৰ মজুৰি অত্যাধিক আছিল। সেয়ে ভাৰতৰ দুৰ্ভিক্ষ-পীড়িত বিভিন্ন অঞ্চলৰ পৰা গিৰমিটীয়া আৰু আড়াকাটীয়া চুক্তিৰ দ্বাৰা বনুৱা আনে। এই লোকসকলৰ প্ৰত্যেকৰে মাতৃভাষা সুকীয়া আছিল। চাহ বাগিচাত কাম কৰিবলৈ ভিন্ন ভাষা কোৱা লোকসকলক একেলগে ৰখা

হৈছিল। গতিকে মনৰ ভাৱ আদান-প্ৰদান কৰিবলৈ এটি সংযোগী ভাষাৰ প্ৰয়োজন হৈছিল। এই ভাষাটোক ‘সাদৰি বা বাগানীয়া’^৫; ‘সাদানি’^৬ আদি নামেৰে পণ্ডিতসকলে নামকৰণ কৰিছে। এই ভাষাটো বৰ্তমানো তেওঁলোকৰ মাজত সংযোগী ভাষা ৰূপে প্ৰচলিত হৈ আছে।

অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য আৰু গুৰুত্ব : চাহ বাগিচাত বসবাস কৰি থকা চাহ-জনগোষ্ঠীৰ লোকসকলৰ প্ৰত্যেকৰে মাতৃভাষা সুকীয়া। বৃটিছে ভিন্ন ভাষী লোকসকলক একেলগে বাগিচাৰ আবেষ্টনিত ৰখাৰ ফলত তেওঁলোকৰ মাজত প্ৰচলিত হৈ থকা বিভিন্ন ভাষাৰ শব্দ আৰু বৈয়াকৰণিক বৈশিষ্ট্যৰ এটি সংযোগী ভাষাৰ সৃষ্টি হয়। এই ভাষাটোত অসমীয়া, বাংলা, হিন্দী, উড়িয়া, ভোজপুৰী আদি বিভিন্ন ভাষাৰ বৈয়াকৰণিক বৈশিষ্ট্যৰে ভৰা। গতিকে এই বৈচিত্ৰ্যপূৰ্ণ ভাষাটোৰ অধ্যয়ন অতি প্ৰয়োজনীয়।

অধ্যয়নৰ পৰিসৰ : উক্ত অধ্যয়ন যিহেতুকে সীমিত পৰিসৰৰ ভিতৰত কৰা হ’ব সেয়ে ওদালগুৰি জিলাত অৱস্থিত কোৰামোৰ, পানেৰী আৰু ডিমাৰুচি চাহ বাগিচাত প্ৰচলিত হৈ থকা সংযোগী ভাষাটোৰ ধ্বনিগত, ৰূপগত, শব্দগত আৰু বাক্যগত দিশত আলোকপাত কৰা হ’ব।

অধ্যয়ন পদ্ধতি : এই প্ৰৱন্ধটি প্ৰস্তুত কৰোঁতে প্ৰধানকৈ বিশ্লেষণাত্মক আৰু বৰ্ণনাত্মক পদ্ধতি গ্ৰহণ কৰা হৈছে।

তথ্য সংগ্ৰহ : প্ৰৱন্ধটি প্ৰস্তুত কৰোঁতে মুখ্য সমল হিচাপে ক্ষেত্ৰ অধ্যয়ন আৰু গৌণ সমল হিচাপে চাহ জনগোষ্ঠীৰ সৈতে জড়িত বিভিন্ন পুথিৰ সহায় লোৱা হ’ব।

বিষয়বস্তুৰ পৰিচয় : বৃটিছে অসমত চাহপাত উৎপাদনৰ বাবে বিভিন্ন ঠাইত চাহ বাগিচা স্থাপন কৰে। ওদালগুৰি জিলাতো তেওঁলোকে পোনপ্ৰথম হাবি-জংঘল মুকলাই চাহ বাগিচা স্থাপন কৰিছিল। এই জিলাখনত ‘Robert Logan (1860 Scotland)’ ৰ দ্বাৰা ‘কোৰামোৰ’ নামৰ প্ৰথম চাহ বাগিচাখন পাতিছিল। বৰ্তমান এই জিলাত ‘২৪’ খন চাহ বাগিচা আৰু বহুতো ক্ষুদ্ৰ চাহ বাগিচা আছে। আমাৰ আলোচনাৰ সুবিধাৰ্থে প্ৰৱন্ধটিত কোৰামোৰ, পানেৰী আৰু ডিমাৰুচি এই তিনিখন চাহ বাগিচা অন্তৰ্ভুক্ত কৰা হৈছে। কোৰামোৰ চাহ বাগিচা ১৮৬০ চনত, পানেৰী চাহ বাগিচা ১৯৩৮ চনত আৰু ডিমাৰুচি চাহ বাগিচা ১৯৫৪ চনত স্থাপন হৈছিল। এই চাহ বাগিচাত কাম কৰিবলৈ ভাৰতৰ

বিভিন্ন প্ৰান্তৰ পৰা মানুহ অনা হৈছিল। তেওঁলোক প্ৰত্যেকে ওৰাওঁ, উৰিয়া, ভোজপুৰী, বাংলা আদি বিভিন্ন মাতৃভাষাৰে পাৰস্পৰিক মাজত ভাৱৰ আদান-প্ৰদান কৰিছিল; যদিও পাৰস্পৰিক যোগাযোগৰ বাবে সকলো জাতিৰ ভিন্ন মাতৃভাষী লোকসকলৰ মাজত উমৈহতীয়া সংযোগী ভাষা (Lingua Franca) হিচাপে এটি ভাষাৰ প্ৰচলন হৈছিল। বিভিন্ন ভাষাৰ ধ্বনিগত, ৰূপগত, বাক্যত আৰু শব্দগত বৈশিষ্ট্যৰে পৰিপূৰ্ণ এই ভাষাটো তেওঁলোকৰ মাজত ‘সাদৰি’ নামেৰে প্ৰচলিত হৈ আছে। বৰ্তমান এই ভাষাৰ মাধ্যমেৰে তেওঁলোকে সামাজিক স্থানত পাৰস্পৰিক ভাৱৰ আদান-প্ৰদান কৰে। তদুপৰি এই ভাষাৰে বৰ্তমান তেওঁলোকে ছুটি ছবি, গীত আদি সামাজিক মাধ্যমত প্ৰচাৰ কৰাও দেখা যায়।

এই প্ৰৱন্ধটিত উক্ত বাগিচা কেইখনত প্ৰচলিত হৈ থকা সংযোগী ভাষাৰ ধ্বনিগত, ৰূপগত, বাক্যগত, শব্দগত বিষয়ে আলোচনা কৰা হৈছে।

ধ্বনিগত বৈশিষ্ট্য : ভাষাৰ মূল হৈছে ধ্বনি। চাহ বাগিচাত প্ৰচলিত সাদৰি ভাষাৰ ধ্বনি সমূহক স্বৰধ্বনি আৰু ব্যঞ্জনধ্বনি এই দুটা ভাগত ভাগ কৰা হৈছে। তলত ধ্বনিগত বৈশিষ্ট্য উল্লেখ কৰা হ’ল -

১। চাহ বাগিচাত প্ৰচলিত সাদৰি ভাষাত স্বৰধ্বনিৰ সংখ্যা, সাতটা। ই, এ, এ’, আ, উ, অ’, অ।

২। সাদৰি ভাষাত তিনি প্ৰকাৰৰ স্বৰাগম দেখা যায়। যেনে - আদ্য স্বৰাগম, মধ্য স্বৰাগম আৰু অন্ত্য স্বৰাগম।

আদ্য স্বৰাগম - ইচকুল (ই চ ক উ ল) ‘স্কুল’

মধ্য স্বৰাগম - জনম (জ অ ন ম) ‘জন্ম’

অন্ত্য স্বৰাগম - অঙৰা (আ ঙ ৰ আ) ‘এঙাৰ’

৩। মান্য অসমীয়া ভাষাৰ ‘ও’ স্বৰধ্বনিত সাদৰি ভাষাত / অ, অ’ আৰু উ / ৰূপে প্ৰয়োগ হয়।

ও > অ : ত অ ৰ ‘তৰ’ (তোৰ)

ও > অ’ : ক অ’ ন ‘ক’ন’ (কোন)

ও > উ : ত আ ম উ ল ‘তামুল’ (তামোল)

৪। চাহ বাগিচাত প্ৰচলিত সাদৰি ভাষাত ব্যঞ্জন বৰ্ণৰ সংখ্যা ২৪ টা। সেইকেইটা হৈছে - ক, খ, গ, ঘ, ঙ, চ, ছ, জ, ঝ, হ, ত, থ, দ, ধ, ন, প, ফ, ব, ভ, ম, ল, ৰ, ৱ আৰু য।

৫। সাদৰি ভাষাত মান্য অসমীয়া ভাষাত নিম্ন স্বৰধ্বনি উচ্চ স্বৰধ্বনিলৈ পৰিৱৰ্তন হোৱা দেখা যায়। যেনে -

মান্য অসমীয়া

তামোল

মই

তই

সাদৰি

তামুল

মুই

তুই

ৰূপগত বৈশিষ্ট্য : সাদৰি ভাষাৰ ৰূপগত বৈশিষ্ট্য সমূহ তলত উল্লেখ কৰা হ’ল -

১) সাদৰি ভাষাৰ পদক ৰূপতাত্ত্বিক দিশৰ পৰা দুটা ভাগত ভাগ কৰা হৈছে - সব্যয় পদ আৰু অব্যয় পদ। সব্যয় পদক আকৌ বিশেষ্য, বিশেষণ, সৰ্বনাম আৰু ক্ৰিয়াপদ এই কেইটা ভাগত ভাগ কৰা হৈছে।

২) সাদৰি ভাষাত লিংগ দুবিধ। যেনে - পুংলিংগ আৰু স্ত্ৰীলিংগ।

পুংলিংগ

নানা (ককা)

কাকা (খুৰা)

মামা (মামা)

স্ত্ৰীলিংগ

নানী (আইতা)

কাকী (খুৰী)

মামী (মামী)

৩) সাদৰি ভাষাত বচন দুবিধ। যেনে - একবচন আৰু বহুবচন।

একবচন

আদমী (মানুহ)

ছাত্ৰ (ছাত্ৰ)

বহুবচন

আদমীছৰ (মানুহবোৰ)

ছাত্ৰমন (ছাত্ৰসকল)

বাক্যগত বৈশিষ্ট্য : সাদৰি ভাষাত বাক্যগত বৈশিষ্ট্য সীমিত। ভাষাটো মিশ্ৰ বা জটিল বাক্য আৰু যৌগিক বাক্যৰ তুলনাত সৰল বাক্যৰ প্ৰয়োগহে অধিক দেখা যায়। তলত সৰল বাক্যৰ উদাহৰণ দিয়া হ’ল -

গৰু ঘাঁচ খায়। (গৰুৱে ঘাঁহ খায়)

মুই ভাত খায়। (মই ভাত খাঁও)

ও বাজাৰ যাবেক (সি বজাৰলৈ যাব)

শব্দগত বৈশিষ্ট্য : সাদৰি ভাষাত শব্দ সমূহ বিভিন্ন ভাষাৰ পৰা গ্ৰহণ কৰা হৈছে। সেইবোৰ হৈছে -

সাদৰি ভাষাৰ শব্দ

গৰু

ছাগলি

চিয়াল

হাচ

অসমীয়া অৰ্থ

গৰু

ছাগলী

শিয়াল

হাঁহ

গাঞ্জা, মুৰগা	মতা কুকুৰা	ছোকড়া	ল'ৰা
খিৰা	তিয়ঁহ	ছোকড়ী	ছোৱালী
পুঁই চাক	পুৰৈ শাক	সামৰণি :	
কচু	কচু	বুঢ়িছ ইষ্ট ইণ্ডিয়া কোম্পানীৰ দিনতে ভাৰতৰ বিভিন্ন	
চালতা টেঙা	ওটেঙা	প্ৰান্তৰ পৰা অসমৰ চাহ বাগিচা সমূহলৈ কাম কৰিবলৈ অহা	
বাইগুন	বেঙেনা	লোকসকল অসমৰ অৰ্থনীতিৰ ক্ষেত্ৰত বিশেষ অৱদান	
কাকুড়ি	তিয়ঁহ	আগবঢ়াই আহিছে। তেওঁলোক ভাৰতৰ ভিন্ন ঠাইৰ হোৱা বাবে	
বিলাতি	বিলাহী	বৰ্তমানো তেওঁলোকৰ মাজত সুকীয়া সুকীয়া মাতৃভাষাৰ	
চক্ষু	চকু	প্ৰচলন আছে; যদিও ভিন্ন ভাষী এই লোকসকলে পাৰস্পৰিক	
চাতি	বুকু	ভাৱৰ আদান-প্ৰদানৰ বাবে সংযোগী ভাষা হিচাপে সাদৰি	
ঠেং	ভৰি	ভাষাটো ব্যৱহাৰ কৰি আছে। সীমিত বৈয়াকৰণিক বৈশিষ্ট্যৰে	
বাপ	দেউতা	গঢ় লৈ উঠা ভাষাটোৰ ধ্বনিগত, ৰূপগত, বাক্যগত আৰু	
কাকা	খুৰা	শব্দগত বৈশিষ্ট্যসমূহ অতি গুৰুত্বপূৰ্ণ। ভাষাটো পিছলৈ ৰূপতে	
চচুৰ	শহুৰ	বৰ্তমানো তেওঁলোকৰ মাজ প্ৰচলিত। সীমিত বৈশিষ্ট্যৰে গঢ়	
মামা	মামা	লোৱা এই ভাষাটোৰ অধ্যয়ন অতি প্ৰয়োজনীয়। তদুপৰি	
মামী	মামী	ভাষাটোৰ অধ্যয়নে ভৱিষ্যতৰ প্ৰজন্মক এই সংযোগী ভাষা	
অজা	ককা	সম্পৰ্কে তথ্য আগবঢ়াব পাৰিব। বৰ্তমান বিজ্ঞান আৰু	
আয়ু	মা	প্ৰযুক্তিবিদ্যাৰ উন্নতিয়ে অন্যান্য ভাষাৰ দৰে এই ভাষাটো প্ৰভাৱ	
মিতৰ	মিতিৰ	পেলাইছে। কথিত ৰূপত প্ৰচলিত হৈ থকা ভাষাটোৰ লিখিত	
অতকুৰ	নিঃসন্তান লোত	ৰূপ বৰ সীমিত ৰূপতহে দেখা যায়। অৱশ্যে বৰ্তমান গীত,	
ডাইনী	ডাইনী	কথাছবি আদি এই ভাষাত প্ৰচলন হৈ আছে। □	
বহনাই	ভিনদেউ		
ৰাখনী	ৰক্ষিতা		

পাদটীকা :

- ১) বৰা লোহিত কুমাৰ : অসমৰ চাহ জনগোষ্ঠীৰ সমাজ আৰু সংস্কৃতি, পৃষ্ঠা-৬
- ২) প্ৰাগুক্ত, পৃষ্ঠা-৭
- ৩) প্ৰাগুক্ত, পৃষ্ঠা-১০
- ৪) বৰুৱা অঞ্জন : চাহ শিল্পৰ কথা আৰু অসম, পৃষ্ঠা-৪৮
- ৫) ৰাভা উপেন হাকচাম : অসমীয়া আৰু অসমৰ ভাষা-উপভাষা, পৃষ্ঠা-২৪০
- ৬) পাঠক ৰমেশ : অসমীয়া ভাষাৰ ইতিহাস, পৃষ্ঠা-১৬০

তথ্যদাতা :

- ১) মেস্ক টিৰ্কী, বয়স - ৩৫ (কোৰামোৰ)
- ২) আশ্ৰিতা বেহৰা, বয়স - ৪২ (কোৰামোৰ)
- ৩) খগেৰাজু তাঁতী, বয়স - ৪৫ (পানৈৰী)
- ৫) বৰুণ মুণ্ডা, বয়স - ৩৫ (পানৈৰী)
- ৬) দ্বিপনে তালুকদাৰ, বয়স - ৪৮ (ডিমাকুচি)
- ৭) ধৃতি ৰঞ্জন তাঁতী, বয়স - ৪৮ (ডিমাকুচি)
- ৮) ৰাজেশ পৰ্জা, বয়স - ৩৫ (ডিমাকুচি)
- ৯) জুনিতা পৰ্জা, বয়স - ৩০ (ডিমাকুচি)

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী :

- ১) চৌধুৰী প্ৰসেনজিৎ : অসমৰ চাহবনুৱা আৰু উন্নৈশ শতিকাৰ বিদ্যুৎ সমাজ, ষ্টুডেণ্টচ ষ্টৰ্ভ, গুৱাহাটী-১৯৮৯
- ২) পাঠক ৰমেশ : অসমীয়া ভাষাৰ ইতিহাস, অশোক বুক ষ্টল, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী-২০১৪
- ৩) বৰুৱা অঞ্জন : চাহ শিল্পৰ কথা আৰু অসম, অসম সাহিত্য সভা, যোৰহাট-১৯৯৪
- ৪) বৰা লোহিত কুমাৰ : অসমৰ চাহ জনগোষ্ঠী সমাজ আৰু সংস্কৃতি, কৌস্তভ প্ৰকাশ-২০০৮ (ডিব্ৰুগড়)
- ৫) ৰাভা উপেন হাকচাম : অসমীয়া আৰু অসমৰ ভাষা-উপভাষা, জ্যোতি প্ৰকাশন, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী- ২০১৭

অসমৰ সংস্কৃতিত পৰম্পৰাগত অলংকাৰ : ইয়াৰ গুৰুত্ব আৰু তাৰ লগত জড়িত লোকবিশ্বাস



ড° কান্কেলি গগৈ

গৱেষক, অসমীয়া বিভাগ
কটন বিশ্ববিদ্যালয় তথা
সহকাৰী অধ্যাপক
বি. বি. কৃষ্ণ কলেজ, জালাহ

☎ ৭০০২৩৫৮২৫৮

✉ asaraniapranita@gmail.com



ড° কান্কেলি গগৈ

সহকাৰী অধ্যাপক, অসমীয়া বিভাগ,
কটন বিশ্ববিদ্যালয়, গুৱাহাটী-১

☎ ৮০১১০০০৬৭০

সংক্ষিপ্ত সাৰ :

অলংকাৰ হৈছে সৌন্দৰ্যবৰ্ধনৰ এক আহিলা। ইতিহাসে চুৰি পোৱা কালৰে পৰাই আমি মানুহক সৌন্দৰ্যৰ উপাসক ৰূপত দেখিবলৈ পাইছোঁ। এসময়ত চিকাৰ কৰি জীৱন নিৰ্বাহ কৰা আদিম সমাজে চিকাৰ কৰি অনা জীৱ-জন্তুৰ হাড়-ছাল, হিংস্ৰ পশুৰ শিং, দুৰ্লভ চৰাইৰ পাখি আদি পৰিধান কৰিছিল। ই আছিল তেওঁলোকৰ নিজৰ বীৰত্ব তথা প্ৰতিপত্তি প্ৰদৰ্শনৰ এক মাধ্যম। চিকাৰী পুৰুষসকলে এই অলংকাৰ বিশেষৰ ওপৰত একচেতিয়া অধিকাৰ সাব্যস্ত কৰিছিল। গতিকে কোৱা হয় যে পুৰুষসকলেই পোনপ্ৰথমে অলংকাৰ পৰিধান কৰিছিল। যিহেতু তেওঁলোকেই চিকাৰকাৰ্য সমাপন কৰিছিল সেয়েহে তেওঁলোকে মহিলাসকলক তাৰ কোনো অংশৰে ভাগ দিব বিচৰা নাছিল। ফলস্বৰূপে মহিলাসকলে চৰাইৰ পাখি, ফুল, নানাৰঙী গছৰ পাত আদিৰে নিজকে সজাইছিল। পৰৱৰ্তী সময়ত ধাতুৰ আৱিষ্কাৰে নতুন সভ্যতা সৃষ্টি কৰাৰ লগে লগে অলংকাৰৰ ক্ষেত্ৰতো বহুল প্ৰভাৱ পেলাইছিল। তাৰ সৈতে অলংকাৰৰ মূল্য, গুৰুত্ব আৰু প্ৰয়োজনীয়তাও দ্ৰুতগতিত সলনি হৈছিল। তদুপৰি অলংকাৰ পৰিধানৰ যি তাড়না সেয়াও ধাতু আৱিষ্কাৰৰ পিছত পুৰুষৰ পৰা মহিলালৈ স্থানান্তৰিত হৈছিল। ইয়াৰ অন্তৰালতো অৱশ্যে বিভিন্ন কাৰক জড়িত হৈ আছে। বৰ্তমান সমাজ এখনৰ ৰীতি-নীতি, উৎসৱ অনুষ্ঠান আদিত অলংকাৰ এক এৰাব নোৱাৰা অংগ। আদিম যুগৰ কেঁচা সামগ্ৰীকে সাজোন কাচোনত ব্যৱহাৰ কৰাৰ পৰা বৰ্তমান অলংকাৰে এক শিল্প হিচাপে স্বীকৃত লাভ কৰিলৈকে অলংকাৰে এক সুদীৰ্ঘ যাত্ৰা অতিক্ৰম কৰিছে। গতিকে অলংকাৰৰ লগত জড়িত হৈ আছে ইতিহাস, লোকবিশ্বাস, কলাসুলভ মনৰ উৎকৰ্ষৰ কৌশল ইত্যাদি বহুতো ধাৰণা। এই গৱেষণা পত্ৰৰ জৰিয়তে পৰম্পৰাগত অসমীয়া অলংকাৰৰ গুৰুত্ব আৰু লোকবিশ্বাস সম্পৰ্কে আলোচনা কৰিবলৈ যত্ন কৰা হ'ব।

বীজ শব্দ :

অলংকাৰ, বিশ্বাস, পৰম্পৰা, সংস্কৃতি, ৰীতি-নীতি।

০.০০ অৱতৰণিকা :

লোকবিশ্বাস হৈছে সমাজত প্ৰচলিত হৈ অহা কিছুমান বিশ্বাস যি মানুহৰ মাজত ভয় বা দোষ নিবাৰণ, বিপদ- আপদৰ পৰা ৰক্ষা পৰা আদি বিভিন্ন কাৰণত প্ৰচলিত হয়। এই লোকবিশ্বাস পদটো ইংৰাজী Folk Belief শব্দটোৰ প্ৰতিশব্দ হিচাপে ব্যৱহৃত হয়। সহজকৈ ক'বলৈ গ'লে লোকসমাজত অতিজৰে পৰা প্ৰচলিত হৈ অহা বিশ্বাসেই লোকবিশ্বাস। লোকবিশ্বাসৰ মূল কথা হ'ল বিশেষ কাৰ্য বা ক্ৰিয়াৰ এটি সুনিৰ্দিষ্ট কাৰণৰ অনুসন্ধান। সেইফালৰ পৰা লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায় যে মানুহৰ বিজ্ঞান চেতনাৰ প্ৰথম

স্বফুৰণ ঘটে লোকবিশ্বাসৰ মাজতেই। কাৰণ বিজ্ঞানে কয় যে জগতত আকস্মিকতা কোনো স্থান নাই। প্ৰতিটো কাৰ্যই সুনিৰ্দিষ্ট কাৰণেৰে সংপৃক্ত। লোকবিশ্বাসতো এনে কাৰ্য্য কাৰণৰ সম্পৰ্ক নিৰূপণৰ চেষ্টা কৰা হয়। অৱশ্যে এটা কথা ঠিক যে এই কাৰ্য্য কাৰণবোৰ বৈজ্ঞানিক ভাৱে পৰীক্ষিত নহয়। সমাজৰ মানুহ আৰু তাৰ অভিজ্ঞতা তথা সাধাৰণ বুদ্ধি বা বিশ্বাসৰ ওপৰত নিৰ্ভৰ কৰিয়েই কাৰ্য্য কাৰণৰ সম্পৰ্কে নিৰূপণ কৰাত ব্ৰতী হৈছে।

লোকবিশ্বাসৰ মূল কাৰণ অনুসন্ধানৰ প্ৰয়াস থাকিলেও পৰবৰ্তী সময়ত যি সকলে তাক অনুসৰণ কৰে তেওঁলোকে তাক অনুসৰণ কৰে তেওঁলোকৰ মাজত কিন্তু অন্ধবিশ্বাস তথা অনুগত্যৰ মনোভাৱ ক্ৰিয়াশীল হৈ থাকে। লোকবিশ্বাসৰ সৈতে আমাৰ শুভ-অশুভৰ কি সম্পৰ্ক আছে কি নাই তথা থাকিলেও তাৰ প্ৰমাণ কিমান, সেই বিষয়টোক বাদ দিলেও এই কথা ঠিক যে মনস্তাত্ত্বিক দিশেৰে এই বিশ্বাসৰ মূল্য বহুত। যেনেদৰে সমাজে যি কথা শুভ বুলি চিহ্নিত কৰে সেয়া তেওঁলোকে দেখিলে বা সংঘটিত হ'লে মনত অনেক বল পায়। সেই শক্তিয়ে তেওঁলোকক নিৰ্ধাৰিত লক্ষ্যত উপনীত হোৱাত সহায় কৰে। এবাৰ বিপৰীতক্ৰমে যি অশুভ বুলি স্বীকৃত সেই বস্তু বা প্ৰাণীৰ দৰ্শনে মানুহৰ মনত এক বিপৰীত ক্ৰিয়াৰ সৃষ্টি কৰে, যিয়ে তাৰ আত্মবিশ্বাস বিনষ্ট কৰে। সফলতা লাভৰ পথত সি গুৰুতৰ অন্তৰায় হৈ দেখা দিয়ে। লোক-বিশ্বাসৰ এটা উল্লেখযোগ্য বৈশিষ্ট্য হ'ল যে একে উদ্দেশ্য বা পৰিণামৰ বাবে স্থানভেদে বহুতো কাৰণ বা আচৰণৰ কথা ক'লেও ইয়াৰ লগত যুক্ত আচৰণীয় প্ৰথাৰ মাজত স্থান কালভেদে এনে ভিন্নতা সামান্যভাৱে দেখা যায়।

সমাজ এখনৰ লগত সংস্কৃতিৰ ধাৰণা ওতঃপ্ৰোতভাৱে জড়িত। সেয়েহে সংস্কৃতিৰ উপাদানসমূহত সমাজত প্ৰচলিত বিশ্বাসবোৰো সাঙুৰ খাই থাকে। অতিজৰে পৰা লোকবিশ্বাস পৰম্পৰাগতভাৱে অসমৰ সমাজত প্ৰচলিত হৈ আহিছে। পৃথিৱীৰ চূড়ান্ত শক্তিৰ প্ৰতি থকা ভয় আৰু বিশ্বাসে লোকবিশ্বাসসমূহৰ জন্ম দিছিল বুলিব পাৰি। স্বাস্থ্য আৰু সম্পত্তিৰ হানি বিঘিনী নোহোৱাকৈ ৰাখিবলৈ বা তাৰ শ্ৰীবৃদ্ধিৰ বাবে লোকবিশ্বাসসমূহৰ সৃষ্টি হৈছিল। এই লোকবিশ্বাসসমূহ আমাৰ মন মগজুত এনেদৰে শিপাই আছে যে ই হৈ পৰিছে আমাৰ সংস্কৃতিৰ এটা অংগ। গতিকে অসমৰ উৎসৱ অনুষ্ঠান, সাজপাৰ, খোৱা-পিন্ধা আদিৰ ব্যৱহাৰিক দিশত পৰম্পৰাগত লোকবিশ্বাস জড়িত হৈ আছে।

লোকবিশ্বাসে বিভিন্ন লোকাচাৰৰো সৃষ্টি কৰিছে। লোকবিশ্বাস হৈছে অতিজৰে পৰা পৰম্পৰাগতভাৱে মানুহৰ মাজত প্ৰচলিত কিছুমান বিশ্বাস বা আচাৰ। “লোকবিশ্বাসে মানসিক সহজবুদ্ধি গঠন কৰে আৰু যুগ যুগ ধৰি এই মানসিক সহজবুদ্ধি গঠন কৰে আৰু যুগ যুগ ধৰি এই সহজবুদ্ধিয়ে মানৱৰ যুক্তি প্ৰৱণতাৰ ওপৰত প্ৰভাৱ বিস্তাৰ কৰি আহিছে। মহাযুদ্ধৰ প্ৰতি সকলোৰে ভয়; কিন্তু সময়ৰ অগ্ৰগতিৰ লগে লগে সেই ভয়ৰ তীব্ৰতাও কমে; লোকবিশ্বাসৰ প্ৰতি থকা ভয়ৰ তীব্ৰতা কোনো দিনে নকমে, বৰং বাঢ়েহে।”^১ লোকবিশ্বাসৰ ধাৰণাই অন্ধবিশ্বাসকো সাঙুৰি লয়। অৱশ্যে লোকবিশ্বাস আৰু অন্ধবিশ্বাসৰ মাজত পাৰ্থক্য আছে। লোকবিশ্বাসৰ প্ৰক্ৰিয়াত আনক আঘাত কৰাৰ প্ৰৱণতা নাথাকে, অন্ধবিশ্বাসত কিন্তু সেই প্ৰৱণতা দেখা যায়। অতিজৰে পৰা লোকবিশ্বাস পৰম্পৰাগতভাৱে অসমৰ সমাজত প্ৰচলিত হৈ আহিছে। অন্ধবিশ্বাসে মানুহ দুষ্ট চৰিত্ৰক চৰিতাৰ্থ কৰাত সহায় কৰে। লোকবিশ্বাসে কিন্তু মানুহৰ মনোবল বৃদ্ধিত অৰিহণা যোগায়। লোকবিশ্বাসৰ লগত পৰম্পৰাগত খাদ্যাভ্যাস, সাজপাৰ, খোজকাটল, জীৱ-জন্তুৰ আচৰণ আদিৰ কথাও সমাজত জড়িত হৈ আছে। অন্ধবিশ্বাসত কিন্তু আনৰ অনিষ্ট সাধনৰ চক্ৰগন্ত তথা নিৰ্বলীৰ ওপৰত বলীৰ প্ৰতিপত্তি প্ৰদৰ্শনৰ ধাৰণাই ব্যাপকভাৱে ক্ৰিয়া কৰে। তথাপি ক'ব পাৰি যে “লোক জীৱন আৰু চিন্তাৰ লগত প্ৰায়ে অন্ধবিশ্বাস আৰু লোকবিশ্বাস প্ৰায়ে একাভূত হৈ পৰাৰ লগে লগে আধুনিক সমাজ আৰু অভিজাত সভ্যতাত প্ৰচলিত ধৰ্মীয় আৰু সামাজিক অনুষ্ঠানৰ লগতো লোকবিশ্বাসবোৰে অপৰিহাৰ্য্য উপাদানৰূপে স্থান লাভ কৰি স্থায়ী তাৎপৰ্য্য লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হয়।”^২ সংস্কৃতিৰ লগত সমাজৰ সকলো উপাদানৰ লগতে ই লোকবিশ্বাসৰ এক সম্পৰ্ক জড়িত হৈ থকাৰ লেখিয়াকৈ অলংকাৰৰ সৈতেও গুৰুত্বপূৰ্ণভাৱে জড়িত। অলংকাৰৰ ধাতু, ব্যৱহাৰ আৰু তাৰ সময় লৈ বিভিন্ন লোক বিশ্বাস আমাৰ সমাজত জড়িত হৈ আছে।

০.০১ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য আৰু পদ্ধতি :

আলোচনা পত্ৰখনৰ মুখ্য উদ্দেশ্য হ'ল- মানুহৰ সাজপাৰ তথা সাজ সজ্জাৰ লগতে লোকবিশ্বাস সমূহ আমাৰ সমাজখনত পুৰুষ মহিলা ওভয়ে পৰিধান কৰা অয়-অলংকাৰৰ লগতো জড়িত হৈ আছে। অলংকাৰে মানুহৰ জীৱনত কিয় গুৰুত্ব লাভ কৰিলে তাৰ পৰিধানৰ অন্তৰালত

থকা বিভিন্ন কাৰণসমূহ আলোচনা কৰিবলৈ যত্ন কৰা হৈছে।

আলোচনা পত্ৰখন প্ৰস্তুত কৰোঁতে বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি ব্যৱহাৰ কৰা হৈছে।

০.০২ তথ্য আহৰণৰ উৎস :

তথ্য আহৰণৰ উৎস হৈছে বিভিন্ন পুথি তথা কিছু ব্যক্তিগত অভিজ্ঞতা।

০.০১ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ :

আলোচনা পত্ৰখনৰ পৰিসৰৰ ভিতৰত ভাৰতীয় তথা অসমীয়া অলংকাৰৰ লগত জড়িত লোকবিশ্বাসক তুলি ধৰিবলৈ যত্ন কৰা হ'ব। তদুপৰি অসমীয়া সমাজত অলংকাৰৰ গুৰুত্ব সম্পৰ্কে আলোচনা কৰা হ'ব।

১.০০ মূল বিষয়বস্তু :

অসমৰ লোকসংস্কৃতিত অলংকাৰৰ সুকীয়া গুৰুত্ব আছে যাৰ বাবে অলংকাৰৰ লগত জড়িত বিভিন্ন অনুষ্ঠান আৰু বিশ্বাসৰ প্ৰচলন হৈ আহিছে। শিশু এটা জন্মৰ পৰা মৃত্যুলৈ বিভিন্ন স্তৰত অলংকাৰৰ গুৰুত্ব সম্পৰ্কীয় বিশ্বাসে ক্ৰিয়া কৰে। অসমত ছোৱালী জন্ম হ'লে কান বিকোৱাৰ কাৰণে সুকীয়া অনুষ্ঠান পতা হয়। বিয়াতো অলংকাৰৰ সুকীয়া মৰ্যাদা দেখিবলৈ পোৱা যায়। এনেদৰে আ-অলংকাৰৰ ব্যৱহাৰৰ ক্ষেত্ৰতো বিভিন্ন বিশ্বাস জড়িত হৈ আছে। অলংকাৰৰ লগত জড়িত বিশ্বাসক - (১) জ্যোতিষশাস্ত্ৰ কেন্দ্ৰিক, (২) ধৰ্মীয় আৰু (৩) সামাজিক এই তিনিটা ভাগত বিভক্ত কৰি আলোচনা কৰিব পাৰি।

১.০১ জ্যোতিষশাস্ত্ৰ কেন্দ্ৰিক :

“মানৱ সমাজৰ এটা বুজন অংশই অন্ততঃ যোৱা চাৰি হেজাৰ বছৰ কাল ধৰি বিশ্বাস কৰি আহিছে, যে আকাশত দেখা গ্ৰহ নক্ষত্ৰ সমূহৰ, পৃথিৱীৰ লগত আৰু পৰস্পৰ মাজত থকা কৌণিক অৱস্থানে, পৃথিৱী পৃষ্ঠত হৈ থকা আৰু হ'বলগীয়া ঘটনা সম্বন্ধে নিৰ্দেশ দিয়ে। গ্ৰহ-নক্ষত্ৰৰ অৱস্থান আৰু নিৰ্দেশ শুদ্ধভাৱে সন্ধেতোদ্ধাৰ কৰা কাৰ্য্য আৰু বিজ্ঞানেই হ'ল জ্যোতিষ।”^১ বহুক্ষেত্ৰত জ্যোতিষবিজ্ঞান বুলিলে ভৱিষ্যত গণনাৰ ধাৰণাটোহে পোন প্ৰথমে মনলৈ আহে। প্ৰকৃততে ভৱিষ্যত গণনা জ্যোতিষশাস্ত্ৰৰ এটা অংশহে। মানৱ সভ্যতাত আকাশৰ গ্ৰহ নক্ষত্ৰৰ জৰিয়তে কৰা ভৱিষ্যত গণনা পদ্ধতি ভাৰতীয় আৰ্য সভ্যতাতকৈ বহু পুৰণি। পোন প্ৰথমে ই পৃথিৱীৰ চাৰিটা স্থানত স্বাধীনভাৱে বিকাশ হৈছিল। তাৰ ওপৰত ভিত্তি কৰিয়ে পৃথিৱীত চাৰিটা

প্ৰধান গ্ৰহভিত্তিক ভৱিষ্যত গণনা কৰা পদ্ধতি গঠন হৈছিল। সেই চাৰিটা পদ্ধতি হ'ল : চীন দেশীয়, ছুমেৰীয়, ইজিপ্তীয় আৰু মধ্য-দক্ষিণ আমেৰিকাৰ। “ভাৰতীয় জ্যোতিষ, ইউৰোপীয় জ্যোতিষ আৰু আৰব জ্যোতিষ, ছুমেৰীয় জ্যোতিষৰ, কালডীয় ৰূপান্তৰিত শাখাৰ পৰা উদ্ভূত বুলি পণ্ডিত সকলে কয়। তিব্বতীয় আৰু মঙ্গোলীয় জ্যোতিষ, ভাৰতীয় আৰু চীনীয় জ্যোতিষৰ সংমিশ্ৰণৰ ফল।”^২ ভাৰতীয় জ্যোতিষৰ ব্যক্তিৰ ভাগ্যফল গণনা কৰা শাখা গ্ৰীক জ্যোতিষৰ ওপৰত প্ৰতিষ্ঠিত। যাক কালডীয় জ্যোতিষৰ পৰা উদ্ভূত হোৱা শাস্ত্ৰ বোলা হয়। হোৱা শব্দৰ অৰ্থ হৈছে : মহাকাশত বিচৰন কৰি থকা গ্ৰহ-নক্ষত্ৰৰ চক্ৰাকাৰ নৃত্য বা বলয়াকাৰ নৃত্য। হোৱা শব্দৰ লেটিন অৰ্থ হৈছে সময় অৰ্থক। অৰ্থাৎ ই হৈছে সূৰ্য-চন্দ্ৰৰ আপাতঃ গতিৰ ওপৰত নিৰ্ভৰ কৰি পল, দণ্ড, দিন, মাহ, বৎসৰৰ দৈৰ্ঘ্য আৰু স্থিতি নিৰ্ণয় কৰা শাস্ত্ৰ। বৰ্তমান সময়ত প্ৰচলিত ৰাশিৰ বাৰটা ভাগ, ৰাশিৰ নাম সৌৰ লগ্ন, গ্ৰহৰ উচ্চ-নীচ, পনফৰ আদি গ্ৰীক গণনা পদ্ধতি ভিত্তিক।

ভাৰতীয় জ্যোতিষ শাস্ত্ৰক তিনিটা প্ৰধান ভাগত বিভক্ত কৰা হৈছে। সেয়া হ'ল- সিদ্ধান্ত, সংহিতা আৰু হোৱা। সিদ্ধান্ত শাস্ত্ৰ আকৌ সিদ্ধান্ত, তন্ত্ৰ আৰু কৰণ - এই তিনিটা ভাগত বিভক্ত। ভাৰতীয় হোৱা শাস্ত্ৰৰই কিন্তু কেৱল ভৱিষ্যত গণনাৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি সিদ্ধান্ত আৰু কৰণ শাস্ত্ৰৰ যোগে আলোচনা কৰা হয়। ভাৰতীয় জ্যোতিষ বা ভৱিষ্যত গণনা শাস্ত্ৰসমূহ একগোট কৰি খাষি পৰাশৰে “বৃহৎ হোৱা শাস্ত্ৰ প্ৰস্তুত কৰে। খৃঃ চতুৰ্থ শতিকাৰ পৰা যোন্ধ শতিকালৈ বিভিন্ন জ্যোতিষীয়ে নিজৰ পৰ্যবেক্ষণ ফল যোগ কৰি হোৱা শাস্ত্ৰৰ কলেবৰ বৃদ্ধি কৰে। বৰাহ মিহিৰৰ বৃহৎ জাতক জ্যোতিষ শাস্ত্ৰ জৰিত অন্য এক মৌলিক গ্ৰন্থ। ভাৰতীয় জ্যোতিষৰ এক উল্লেখযোগ্য অৱদান হ'ল- ৰাছ কেতুৰ অৱস্থান নিৰ্ণয়। জ্যোতিষ শাস্ত্ৰৰ ক্ষেত্ৰত কোনো যন্ত্ৰ পাতি নোহোৱাকৈ এডাল মাৰিৰে গ্ৰহ সম্পৰ্কীয় বিভিন্ন ব্যাখ্যা আগবঢ়াইছিল। মনকৰিবলগীয়া যে বিশেষ ৰত্ন পৰিধানৰ জৰিয়তে ব্যক্তিৰ ভাগ্যৰ পৰিবৰ্তন কৰিব পাৰি বুলি থকা ধাৰণাটো বিজ্ঞানসন্মত নহয়। কিন্তু ৰত্ন পৰিধানে ব্যক্তিৰ স্বাস্থ্য পৰিবৰ্তন কৰাতো বিজ্ঞানসন্মতভাৱে সম্ভৱ। ভাৰত বৰ্ষত জ্যোতিষ শাস্ত্ৰতকৈ চিকিৎসা শাস্ত্ৰৰ বিকাশ তীব্ৰ গতিত হৈছিল। উদাহৰণস্বৰূপে চৰক, শুশ্ৰূত, নাগাৰ্জুন আদিৰ চৰক সংহিতা, শুশ্ৰূত সংহিতা আদি গ্ৰন্থ ভাৰতীয় চিকিৎসা শাস্ত্ৰৰ

সেই সময়ৰ সৰ্বোচ্চ বিকশিত চিকিৎসা বিদ্যাৰ ৰূপ। যাৰ বাবে আলেকজেণ্ডাৰে ভাৰতৰ পৰা প্ৰত্যাবৰ্তন কৰা সময়ত বহুসংখ্যক চিকিৎসক আৰু জ্ঞানী ব্যক্তিক ভাৰতবৰ্ষৰ পৰা নিজৰ লগত লৈ যায়। ভাৰতবৰ্ষত বেদ আৰু মহাকাব্যৰ যুগত জ্যোতিষী বা মঙ্গলতিৰ দ্বাৰা ৰোগ নিৰূপনৰ উদাহৰণ পোৱা নাযায়। অৱশ্যে মহাকাব্য আৰু পুৰাণ ভাগৱতৰ যুগত ভৱিষ্যত দৃষ্টি ধ্যান বা দিব্যচক্ষুৰ যোগেৰে লাভ কৰিছিল। সমসাময়িকভাৱে প্ৰাচীন গ্ৰীচ আৰু ৰোমৰ মানুহে জ্যোতিষী বা মঙ্গলতী চোৱাইহে কামবোৰ সম্পাদন কৰিছিল। গতিকে গ্ৰীচৰ পৰাই জ্যোতিষৰ জৰিয়তে ৰোগ নিৰূপনৰ পৰম্পৰা ধাৰণা আহি ভাৰতবৰ্ষত প্ৰৱেশ কৰে বুলিব পাৰি। প্ৰাচীন কালত ইজিপ্ত, ইজৰাইল, বেবিলনৰ সভ্যতাত ৰোগ চিকিৎসাত বত্ন বা মাণিকৰ পৰিধানৰে চিকিৎসাৰ পৰম্পৰাৰ প্ৰচলন আছিল। তদুপৰি আয়ুৰ্বেদ, ইউনানী, তিব্বতীয়, চিনী আদি চিকিৎসা শাস্ত্ৰৰ ঔষধ প্ৰস্তুত কাৰ্য্যত বিভিন্ন বত্ন মাণিকৰ চূৰ্ণ, ভস্ম আৰু ৰসায়ন ব্যৱহাৰ হৈ আহিছে। বত্ন ধাৰণ বা পৰিধান এই বত্ন চিকিৎসা পদ্ধতিৰ এটি অংগ।

ভাৰতবৰ্ষৰ আয়ুৰ্বেদ শাস্ত্ৰৰ মূল অৰ্থৰ্বেদ আৰু চৰক সংহিতাত ৰোগ চিকিৎসাৰ বাবে বত্ন বা মাণিকৰ ব্যৱহাৰৰ উল্লেখ অতি সীমিত ৰূপত দেখা যায়। তাৰ পৰৱৰ্তীসময়ত লিখা গৰুড় পুৰাণৰ অষ্টাশী অধ্যায়ত বৈদ্য শাস্ত্ৰ কথনত মনঃশিলা, স্বৰ্ণ মাস্কিক, কান্তুলৌহ, হিঙ্গুল আদি ধাতব মাণিকৰ লগতে বত্ন মাণিক তুথকৰ উল্লেখ আছে। এইখন গ্ৰন্থৰেই বত্ন পৰীক্ষা অধ্যায়ত বত্নৰ অলৌকিক গুণক গুৰুত্ব প্ৰদান কৰা হৈছে যদিও কিছুমান ঠাইত বত্নৰ ঔষধি গুণৰ বিষয়ে তুলি ধৰিছে। আনুমানিক নৱম শতিকা ৰচিত বাগভট্টত ৰস সমুচ্চয় গ্ৰন্থত বত্ন, জ্যোতিষ আৰু চিকিৎসাৰ সমন্বয় দেখা যায়। আলাউদ্দিন খিলজীৰ ৰাজত্বকালত লিখা “বত্ন পৰীক্ষা” গ্ৰন্থত আয়ুৰ্বেদৰ অন্তৰ্গত চল্লিছখন বত্নক মুখ্য চিকিৎসা উপাদান হিচাপে লোৱা ৰস চিকিৎসা শাস্ত্ৰক সংকলিত ৰূপ প্ৰদান কৰা হয়। অৰ্থৰ্বেদত মুক্তা আৰু প্ৰবালৰ নাম ঔষধ হিচাপে অন্তৰ্ভুক্ত কৰা হৈছে। পঞ্চম শতিকাত বৰাহ মিহিৰৰ দ্বাৰা ৰচিত বৃহৎসংহিতাত প্ৰথম বাৰৰ বাবে আকাশৰ গ্ৰহ আৰু পৃথিৱীত থকা মণিকৰ সম্বন্ধ স্থাপন কৰা হয়। ষষ্ঠৰ পৰা একাদশ শতাব্দীলৈকে এই কালছোৱাত ভাৰতবৰ্ষত জ্যোতিষ আৰু আয়ুৰ্বেদ পৰম্পৰাৰ সম্পূৰ্ণৰূপে বিকশিত হয়। আয়ুৰ্বেদৰ নিদান শাস্ত্ৰত (ৰোগ নিৰূপন) জ্যোতিষ এটা গুৰুত্বপূৰ্ণ অংগ হৈ পৰে। ভাৰতীয় আয়ুৰ্বেদত

বত্ন মাণিকৰ ব্যৱহাৰ হোৱাৰ দৰে জ্যোতিষতো গ্ৰহ বৈগুণ্য গুহাবৰ বাবে ধাতু আৰু উদ্ভিদৰ ব্যৱহাৰ কৰা হয়। বিশেষকৈ “ৰস চিকিৎসাত ধাতু ঔষধ হিচাপে ব্যৱহাৰ হোৱা মূল উপকৰণ হৈছে পাৰা। পাৰাৰ ভিত্তিত বিভিন্ন ভেষজ, ধাতুৰ পদাৰ্থ আৰু বত্ন মাণিকৰ সংযোগত কিছুমান শক্তিশালী ঔষধ প্ৰস্তুত কৰা হৈছিল। ভাৰতবৰ্ষ উত্তৰ অংশ পাঠানৰ অধীন হোৱাৰ লগে লগে ভাৰতত ৰাজনীতি আৰু সংস্কৃতিৰ বহুল পৰিবৰ্তন ঘটে। ধৰ্মীয় বাধাৰ বাবে ৰাজঘৰত জ্যোতিষ শাস্ত্ৰ উপেক্ষিত হ’বলৈ ধৰে। ফলত জ্যোতিষ শাস্ত্ৰ আৰু চিকিৎসা শাস্ত্ৰ পৃথক ৰূপে ব্যৱহাৰ হ’বলৈ ধৰে। তথাপিও বত্ন চিকিৎসাৰ ধাৰাটো মানুহৰ মাজত প্ৰচলন হ’বলৈ আৰম্ভ কৰে আৰু তাৰ প্ৰতি এক বিশ্বাস মানুহৰ মাজত চলি আহিব ধৰিলে।

আদিম সমাজত ধৰ্মীয় পুৰোহিত, ভাগ্য গণনা কাৰক আৰু ৰোগ চিকিৎসক একেজন মানুহেই আছিল। কিন্তু সময়ৰ সোঁতত এই তিনিওটা বৃত্তি সুকীয়াকৈ বিকাশ হ’ব ধৰিলে। আজিও বিভিন্ন অঞ্চলত জৰা-ফুকা, মঙ্গল চোৱা আৰু দেও পূজা একেজন ব্যক্তিয়েই কৰে। আনুমানিক পোন্ধৰ, যোন্ধ শতিকাত ভাৰতীয় জ্যোতিষত বিশেষ গ্ৰহৰ লগত বিশেষ বত্নৰ সম্বন্ধ স্থিৰ হয়। বৰাহ মিহিৰৰ বৃহদজাতক গ্ৰন্থত বৈগুণ্যত ক্ষেত্ৰত ধাতু আৰু বত্ন ব্যৱহাৰ কৰাৰ পৰোক্ষ উল্লেখ আছে কিন্তু স্থিৰ সম্বন্ধ নাই। পৰাশৰ হোৱা শাস্ত্ৰত, আন গ্ৰহ ধাতুৰ লগত, কেতুৰ বত্ন নীলমণি ৰূপত উল্লেখ আছে। মধ্যযুগৰ ফলদীপিকা, মধ্বেশ্বৰ মহাৰাজত উল্লেখ থকা গ্ৰহৰ লগত সংযুক্ত হোৱা বত্নৰ নাম সমূহ উল্লেখ কৰা হ’ল—

গ্ৰহ	বত্ন
ৰবি	মাণিক্য
চন্দ্ৰ	মুক্তা
মঙ্গল	ৰক্ত প্ৰবাল
বৃহস্পতি	পুষ্পৰাগ
শুক্র	হীৰা
বুধ	মৰকত
শনি	নীলমণি
ৰাছ	গোমেদক
কেতু	বৈদুৰ্য

বৃহজ্জাতকত আকৌ সুকীয়া মত দেখা যায়। যেনেঃ ৰবি—মাণিক্য, চন্দ্ৰ—বৈদুৰ্য, মঙ্গল—প্ৰবাল, বুধ—পদ্মৰাগ, বৃহস্পতি—মুক্তা, শুক্র—হীৰা, শনি—ইন্দনীল, ৰাছ—গোমেদক

আৰু কেতু- মৰকত। এনেধৰণে ৰত্নধাৰণৰ ক্ষেত্ৰত গ্ৰন্থসমূহত কিছুমান পৰিবৰ্তন দেখা যায়।

জ্যোতিষশাস্ত্ৰৰ লগত চিকিৎসাবিজ্ঞানৰ ধাৰণা জড়িত হৈ আছে। অৱশ্যে অসমত ৰত্ন বিজ্ঞান বা জ্যোতিষবিজ্ঞানৰ নামত অন্ধবিশ্বাসৰ প্ৰচলন হোৱা দেখা যায়। তথাপি অসমীয়া সমাজ আৰু সংস্কৃতিত এই জ্যোতিষবিজ্ঞান কেন্দ্ৰিক বিভিন্ন লোকবিশ্বাস আৰু লোকাচাৰ জড়িত হৈ আছে। স্বাভাৱিকতে আমি আমাৰ সমাজখনত বেদ বা পুৰণি শাস্ত্ৰৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি বহুতো ৰীতি- নীতিৰ প্ৰচলন দেখিবলৈ পাওঁ। জ্যোতিষশাস্ত্ৰ বা পুৰণি বেদ তথা ৰত্নবিজ্ঞানৰ লগত জড়িত লোকবিশ্বাস অসমত বৰ্তমানেও প্ৰচলিত হৈ আছে। সেয়েহে ভাৰতবৰ্ষত প্ৰধানমন্ত্ৰীৰ পৰা পিয়নলৈকে এক বুজন সংখ্যক লোকে আজিকালি জ্যোতিষীৰ উপদেশ অনুসৰি বিভিন্ন ৰত্ন মাণিক ক্ৰয় কৰি গ্ৰহ সাহায্যৰ আশাত আঙুঠি বা মাদুলি পৰিধান কৰিব ধৰিলে। বিভিন্ন কাৰণত ভাৰতত গ্ৰহক দেৱতা ৰূপে জ্ঞান কৰা হয়। আৰু এই দেৱতাৰ ৰোষত পৰি মানুহৰ অসুখ হয়। যাৰ বাবে গ্ৰহ তথা দেৱতাৰ সন্তুষ্ট কৰিবলৈ গ্ৰহ পূজা আৰম্ভ হয়। তদুপৰি এই বিশ্বাসো মানুহৰ মাজত প্ৰচলিত হয় যে- বিশেষ ৰোগৰ লগত সম্পৰ্কযুক্ত দেৱতাৰ প্ৰিয় গ্ৰহ পিন্ধিলে ৰোগ নোহোৱা হয় আৰু ৰোগ হ'লে আৰোগ্য লাভ কৰে।

ভাৰতীয় বা অসমীয়া সমাজত প্ৰতিজন ব্যক্তিৰ ব্যক্তিগত জন্ম কুণ্ডলীত গ্ৰহ অৱস্থান চাই বৰ্তমানৰ মহাদশা, অন্তৰ্দশা আৰু প্ৰত্যন্তৰ দশাৰ ভিত্তিত ৰত্ন পৰিধানৰ বিধান দিয়ে। এই বিধি ব্যক্তিগত প্ৰয়োজন ভিত্তিক। অৰ্থাৎ ভাৰতীয় জ্যোতিষৰ ৰত্ন পৰিধান ব্যৱস্থা চিকিৎসা ভিত্তিক বা নিবাৰক। পশ্চিমীয়া জ্যোতিষত অৱশ্যে সামূহিক ৰত্ন পৰিধান ব্যৱস্থা জোখা যায়। সময়ৰ লগে লগে “ভাগ্য দাঁতাৰ” পৰা “প্ৰতিকাৰকলৈ” পৰিবৰ্তনৰ ফলত ৰত্নৰ দৈৱ শক্তিতকৈ ৰত্ন ৰাসায়নিক আৰু ভৌতিক গুণৰ ওপৰত অধিক গুৰুত্ব আহি পৰিল। “ৰস ৰত্ন সমূচ্চয়” গ্ৰন্থত হীৰা আৰু মুকুতাক তাৰ বৰ্ণ আৰু গুণানুসাৰে চাৰিটা শ্ৰেণীত ভাগ কৰা হৈছে- ব্ৰাহ্মণ, ক্ষত্ৰিয়, বৈশ্য আৰু শূদ্ৰ। সবাতোকৈ শ্ৰেষ্ঠ নিৰ্মল বগা আৰু বৰ্ণহীন ৰত্ন হ'ল ক্ষত্ৰিয় ৰত্ন, সেউজীয়া বা নীলাৰ ছাঁ থকা ৰত্ন বৈশ্য ৰত্ন আৰু ক'লা বা ছাই ৰঙৰ ধূসৰ ৰত্ন, শূদ্ৰ ৰত্ন। ৰত্নৰ ব্যৱসায়িক মূল্যও ৰং অনুযায়ী হ্ৰাস হ'ব।

১.০২ ধৰ্মীয় লোকবিশ্বাস :

ধৰ্মীয় লোকবিশ্বাসসমূহত আচলতে সৰ্বভাৰতীয় প্ৰভাৱ আমি দেখিবলৈ পাওঁ। অলংকাৰৰ লগত বিভিন্ন

ধৰ্মীয়বিশ্বাসো কেতিয়াবা জড়িত হৈ থকা দেখা যায়। পৰম্পৰাগত অলংকাৰসমূহৰ ধৰ্ম অনুসৰি সুকীয়া সুকীয়া বৈশিষ্ট্য কিছুমান জড়িত হৈ আছে। ধৰ্মীয় অলংকাৰৰ লগত মূলতঃ নিৰ্দিষ্ট ধৰ্মসমূহৰ মাদত থকা দেৱ দেৱীৰ মূৰ্তি তথা পৌৰাণিক কথা-কাহিনী জড়িত হৈ থাকে। সকলোধৰণৰ অলংকাৰ পৰিধানৰ প্ৰাথমিক বিশ্বাস অশুভ শক্তিৰ পৰা পৰিত্ৰাণ পোৱা। অসমত মূলত হিন্দু, ইছলাম, খ্ৰীষ্টিয়ান আৰু বৌদ্ধধৰ্মী লোকৰ সমাবেশ অন্য ধৰ্মাৱলম্বী মানুহতকৈ বেছি গতিকে নিৰ্দিষ্ট এই চাৰিটা ধৰ্মৰ মাজত চলা অলংকাৰ সম্পৰ্কীয় লোকবিশ্বাস সমূহ তুলি ধৰিবলৈ যত্ন কৰা হ'ব।

ধৰ্মীয় হাৰ আৰু লকেট : হিন্দু নাৰীসকলে মূৰৰ পৰা ভৰিলৈকে গোটেই দেহতে অলংকাৰ পৰিধান কৰাৰ পৰম্পৰা প্ৰচলিত হৈ আহিছে। হিন্দু সংস্কৃতিত বিশ্বাস কৰা হয় যে এই অলংকাৰ কেৱল প্ৰদৰ্শনৰ বাবেই নহয় নাৰীক চৈতন্য প্ৰদান কৰাৰ লগতে তেওঁৰ মাজত ঈশ্বৰত্ব প্ৰদানৰ এক গুৰুত্বপূৰ্ণ মাধ্যম বুলি বিশ্বাস কৰা হয়। চেলাউৰিৰ সো-মাজত পৰিধান কৰা “ফোট”টোও হিন্দুধৰ্মৰ এক অলংকাৰ সদৃশ। কাঠেৰে নিৰ্মাণ কৰা অলংকাৰৰ যেনে : ৰুদ্ৰাক্ষ বা তুলসীৰ মালা সম্পূৰ্ণ ধৰ্মীয় ধ্যান ধাৰণাৰে হিন্দুসকলে পৰিধান কৰা এবিধ অলংকাৰ। হিন্দু ধৰ্মত অলংকাৰ এক এৰাব নোৱাৰা অংগ। বিশেষকৈ ছোৱালী এজনীৰ জন্মৰ লগে লগে অলংকাৰৰ লগত তেওঁৰ সম্পৰ্ক স্থাপন হয়। হিন্দু ধৰ্মত এগৰাকী ছোৱালীৰ জন্মৰ পৰা মৃত্যুলৈকে ঘটনাৰ লগত অলংকাৰ সম্পৰ্কীয় লোকবিশ্বাস সৰ্বভাৰতীয় পৰ্যায়ত প্ৰচলিত। ৰুদ্ৰাক্ষ বা তুলসীৰ মালা সম্পূৰ্ণ ধৰ্মীয় ধ্যান ধাৰণাৰে হিন্দুসকলে পৰিধান কৰে যি নাৰী শক্তিৰ সৰ্বোচ্চ শক্তি, শক্তি আৰু শক্তিৰ সংৰক্ষকৰ প্ৰতীক বুলি বিশ্বাস কৰা হয়। শিখ সম্প্ৰদায়ৰ লোকসকলে হাতত এপাত ষ্টিলৰ খাৰু পৰিধান কৰে যাক তেওঁলোকে কাৰা বুলি কয়। তদুপৰি ওঁম, গনেশ, কৃষ্ণ আদি হিন্দুধৰ্মৰ বিশ্বাস আৰু প্ৰতীকযুক্ত লটকন পৰিধান কৰে। হিন্দু ধৰ্মত অলংকাৰ সধবাৰ প্ৰতীক। এগৰাকী নাৰীৰ স্বামীৰ মৃত্যুৰ পাছত তেওঁৰ পৰা অলংকাৰ পৰিধানৰ অধিকাৰো নোহোৱা হৈ যায়। কাৰণ অলংকাৰ হৈছে নাৰী এগৰাকীৰ সৌন্দৰ্য্যবৰ্দ্ধনৰ এক আহিলা। স্বামী হেৰুওৱা নাৰীক সেয়েহে অলংকাৰ পৰিধানৰ

অনুমতি দিয়া নহয়। অৱশ্যে অলংকাৰক কেৱল প্ৰদৰ্শনৰ বস্তু বুলি হিন্দু ধৰ্মত বিশ্বাস কৰা নহয়। হিন্দু ধৰ্ম মতে অলংকাৰ হৈছে নাৰীক চৈতন্য বা ঐশ্বৰীয় চেতনা প্ৰদান কৰাৰ লগতে তেওঁৰ মাজত ঈশ্বৰত্ব প্ৰদানৰ এক গুৰুত্বপূৰ্ণ মাধ্যম। তদুপৰি জ্যোতিষ সম্পৰ্কীয় লোকবিশ্বাস সমূহো কিন্তু মুখ্যতঃ হিন্দুধৰ্মৰ শাস্ত্ৰ সমূহৰেই এটা অংগ।

লকেট থকা হাৰঃ- মানুহে বিপদ আৰু দুষ্ট আত্মাৰ পৰা ৰখাৰ বাবে নিজৰ ধৰ্মৰ ওপৰত থকা বিশ্বাসৰ প্ৰতীক হিচাপে নিজ নিজ ধৰ্মৰ সুৰক্ষামূলক তাবিজ পৰিধান কৰে। খ্ৰীষ্টানসকলে চি-ৰো মনোগ্ৰাম থকা লকেট পিন্ধে, পবিত্ৰ শক্তিৰ প্ৰতীক কপৌ, বলিদানৰ প্ৰতীক খ্ৰীষ্টৰ বলিদানৰ প্ৰতীক বা ক্ৰছ বুকুৰ ওপৰত পৰিধান কৰে। মুছলমানসকলে ধৰ্মীয় বাণী লিখা থকা লকেট বা লটকন ডিঙিত পৰিধান কৰে। লটকনবোৰত আল্লাহৰ কেলিগ্ৰাফী বা কাবা, আয়াত-উলজ্ব-কুৰ্চি, বিছমিল্লাহ, কালমা আদি লিখা থাকে যিয়ে মুছলমানসকলৰ বিশ্বাস, ধাৰণা আদিক ফুটাই তোলে। এই লকেটসমূহ সুখ- দুখ, ভক্তিৰ প্ৰতীক। হামছা-হেণ্ড অৱ ফাতিমা চাৰ্ম পেণ্ডেণ্টে দুষ্ট আত্মাক আঁতৰাই সৌভাগ্য কঢ়িয়াই আনে। ৰূপৰ মূদ্ৰাত আয়াতুল কুৰ্চি লিখা থকা হাৰ পৰিধান কৰা কাৰ্যটো একপ্ৰকাৰ ঈশ্বৰৰ প্ৰতি থকা শ্ৰদ্ধা। শিখসকলে তৰোৱালৰ (কিপান) আকৃতিৰ লকেট থকা হাৰ পিন্ধে যি আত্মৰক্ষা আৰু নিপীড়িতক সুৰক্ষা দিবলৈ সাজু হোৱাৰ প্ৰতীক।

১.০৩ সামাজিক লোকবিশ্বাস :

সমাজত প্ৰচলিত বিভিন্ন জীৱন ধাৰণ প্ৰক্ৰিয়া, উৎসৱ পাৰ্বন, লোকাচাৰ আদিৰ লগত জড়িত লোকবিশ্বাসসমূহেই সামাজিক লোকবিশ্বাস। এই লোকবিশ্বাসসমূহে সমাজৰ নীতি নিৰ্দেশনাকে ধৰি বিভিন্ন লোকাচাৰ সৃষ্টিত সহায় কৰে। অসমীয়া সমাজত জন্ম-মৃত্যু বিবাহ সম্পৰ্কীয় বিভিন্ন ৰীতি-নীতি, আচাৰ অনুষ্ঠান প্ৰচলিত হোৱা দেখা যায়। ইয়াৰ লগত বিশেষ ভাৱে অলংকাৰৰ ব্যৱহাৰ তথা তাৰ লগত কিছু লোক বিশ্বাস জড়িত হৈ থকা দেখা যায়। বিশেষকৈ জন্ম প্ৰক্ৰিয়াৰ পৰা আদি কৰি মৃত্যু পৰ্যন্ত অলংকাৰৰ এক বিশেষ স্থান অসমীয়া সমাজত লক্ষ্যণীয়। তদুপৰি লিংগ ভেদে অলংকাৰ পৰিধানৰ কিছু নিৰ্দেশনাও অসমীয়া সমাজে বহন কৰে। যেনে- আঙুঠিৰ ক্ষেত্ৰত পুৰুষে সোঁফালে আৰু নাৰীয়ে বাঁওফালে অলংকাৰ পৰিধান কৰা উচিত

বুলি সমাজত এটা বিশ্বাস আছে। ঠিক তেনেদৰে ছোৱালীয়ে ভঙা খাৰু পিন্ধাৰ ক্ষেত্ৰত সমাজত নিষেধ আছে। অৱশ্যে এই ক্ষেত্ৰত কিছুমান যুক্তিযুক্ততা বিচাৰ কৰি চালে দেখা যায় যে ছোৱালীয়ে ভঙা খাৰু পৰিধান কৰিলে হাত কাটি যোৱাৰ সম্ভাৱনা থাকে বা কাপোৰ আদিত লাগি নষ্ট হোৱাৰ সম্ভাৱনীয়তাও লক্ষ্যণীয়। সেয়েহে হয়তো এনে নিষেধাজ্ঞাৰ প্ৰচলন অসমীয়া সমাজত প্ৰচলিত হোৱা দেখা যায়।

জন্ম প্ৰক্ৰিয়াৰ সৈতে জড়িত বিভিন্ন লোক বিশ্বাসত অলংকাৰৰ এটা বিশেষ ভূমিকা দেখা যায়। সন্তান সন্তৰা তিৰোতাক দেও ভূতে লুপ্তিৰ পাৰে বুলি বেজ-বেজনীৰ হতুৱাই মন্ত্ৰপুত কৰি অনা তাবিজ বা দোল সোঁহাতত এডাল দিয়া হয়।^৮ অসমৰ গাঁৱলীয়া সমাজত “সন্তান জন্ম হোৱাৰ পিছত লোকৰ ঘৰৰ পৰা যঁতৰৰ বটিয়াডাল মনে মনে চুৰ কৰি আনি মাকগৰাকীৰ গাত দিয়ে আৰু মুখ নেলাগিবৰ বাবে সন্তানৰ হাত-ভৰিত ছিগা “ব” সূতা বান্ধি দিয়া নিয়ম।^৯ জনবিশ্বাস অনুসৰি শিশু এটি জন্ম হোৱাৰ ছয় দিন পিছত বিধাতাই তাৰ জীৱন পৰিক্ৰমা লিখে। তাৰ বাবে গৃহস্থই সিদিনা ৰাতি এখন পিৰাত কাগজ, পাখি কলমৰ লগত চিয়াঁহী দোৱাতৰ লগত এধাৰ মণি ৰাখি থয়। বিশ্বাস আছে যে বিধাতাই লিখন লিখি শিশুটোক মণিধাৰ পিন্ধাই দীৰ্ঘজীৱী হ’বলৈ আশীৰ্বাদ দিয়ে। অসমীয়া সমাজত বিশ্বাস কৰা হয় যে বসন্ত ওলালে শীতলাদেৱীৰ মূৰ্ত্তি থকা গহনা পিন্ধিলে পুনৰ বসন্ত ৰোগ নহয়।

লোকবিশ্বাস অনুসৰি “নাৱেৰে নদী পাৰ হোৱাৰ পূৰ্বেই জলদেৱতাক সন্তুষ্ট নহলে নদীৰ মাজত হয়তো নাওখন ডুবাই দিব পাৰে। সেইবাবে নাৱত উঠাৰ লগে লগে মাহ-চাউল, পইচা, ৰূপৰ নাইবা সোণৰ ফুল, অথবা তামোল-পাণ জলদেৱতাৰ উদ্দেশ্যে নদীত দিব লাগে।”^{১০} এনেধৰণৰ সামাজিক বিভিন্ন দিশত অলংকাৰৰ এক এবাৰ নোৱাৰা সম্পৰ্ক আমি দেখিবলৈ পোৱা। আলৌকিকতা, আধ্যাত্মিকতা আদিতো অলংকাৰক বিশ্বাসৰ এক মাধ্যম ৰূপে ব্যৱহাৰ কৰা হয়। কেতিয়াবা আকৌ অলংকাৰ হৈ পৰে এটা বংশৰ মান মৰ্যাদাৰ প্ৰতীক। পূৰ্বপুৰুষৰ পৰা চলি অহা অলংকাৰ সমূহে কিছুমান পৰিয়ালৰ বংশ বিকাশৰ এক চিহ্ন স্বৰূপেও কাম কৰে। সি যি কি নহওক অসমীয়া সমাজত প্ৰচলিত বিভিন্ন আচাৰ অনুষ্ঠান তথা বিশ্বাসত অলংকাৰ এক অপৰিহাৰ্য অংগ।

১.০৩.০১ বিবাহ অনুষ্ঠানৰ লগত জড়িত অলংকাৰ সম্পৰ্কীয় লোকবিশ্বাস :

অতিজৰে পৰা পুষ্পিতা হোৱা গাভৰুৰ শুচি হোৱা বা কৰোঁৱাৰ নিয়ম অসমত প্ৰচলিত হৈ আহিছে। পুষ্পিতা হোৱা ছোৱালীজনীক ঘৰত সোমাই থোৱা পিছত সামৰ্থ অনুসৰি হাত, ভৰি, ডিঙি বা আঙুলিত সোণ বা ৰূপৰ অলংকাৰ পৰিধান কৰিবলৈ প্ৰদান কৰা হয়। তোলনী বিয়াত কইনাজনীক ঘৰত পাঁচ বা সাতদিন সুমুৱাই ৰখা হয়। তাৰ পিছত সূচী কৰাবলৈ নোওৱা ধোওৱা হয়। নিৰ্দ্ধাৰিত শুচি হোৱাৰ দিনা কইনাই গা ধুওৱাৰ সময়ত দৰা ৰূপী কলগছক দুগদুগী বা চিপাত মণি পিন্ধোৱাৰ বিশ্বাসৰ প্ৰচলন আছে। “ঘৰৰ খুৰীয়েক, নবৌৱেক বা যি কোনো আয়তীয়ে সোণে-পোৱালে বণিয়াই সৰুকৈ মণি এধাৰ গাঁথে। ওচৰৰ আই - বাই আহি পূৰঠ ডালিম এটা গছৰ পৰা আনি, ডালিম নেপালে তিনিটা বা তামোল তিনিটাকৈ ঠানিৰে সৈতে আনি-তাত ছিগা-চুলি দুডালমান আৰু ৰঙা-বগা এৰা-সূতা মেৰিয়াই, নকৈ গঁথা মালাধাৰ তাতে পিন্ধাই দি খৰিকা পাঁচডালেৰে সৈতে একেলগ কৰি ভাল নতুন গামোছা এখনত টুপলিৰ দৰে কৰি উৰুলি দি দি “কনাই” বান্ধে।”^৮ আচলতে তোলনী বিয়াত ছোৱালীজনীক কলপুলি এডালৰ কইনা হিচাপে ধৰা হয়। ইয়াত কলপুলিডাল হৈছে দৰা। “এইখিনিতে কলপুলি দৰাক পিন্ধাবলৈ দুগদুগী বা চিপাত্মণি এধাৰ আইতাকে আনি কইনাৰ হাতত দিয়ালে।”^৯ সোণৰ আঙুঠি বা ৰূপৰ টকা মাকে কইনাক দি প্ৰথমে মাকেই কইনাক পৰা কনাই লয়। পুষ্পিতা হোৱাৰ সাতদিনৰ দিনা সোণৰ আঙুঠি বা ৰূপৰ টকা মাকে সলনি কৰাৰ প্ৰথা এই বিশ্বাসৰ লগত সংযোজিত।

অসমীয়া বিয়াত অলংকাৰৰ এক গভীৰ প্ৰভাৱ আছে। বিয়া ঠিক কৰি আঙুঠি পিন্ধোৱাৰ নিয়ম অসমীয়া সমাজত দেখা যায়। বিয়াৰ আগত দৰাৰ ঘৰৰ পৰা কইনা ঘৰলৈ জোৰণ লৈ আহে। জোৰণত দৰাঘৰীয়াই “কইনাৰ বাবে অলংকাৰ, তেল, সেন্দূৰ, আঁঠী, ফণি, ৰুমাল আৰু বনকৰা এসাজ, পাতলিৰছা এসাদ উকাপাতৰ কেছবছা বিহাৰ এসাজ আৰু নোৱনিসাজ বুলি অনা মুগাৰ বিহা-মেখেলা আৰু গুণাৰ পাৰী বছা আশী সূতাৰ চাদৰ - ভাগে ভাগে ব্লাউজ, ছেমিজ আদিৰে সৈতে উলিয়াই শৰাইত সজাই দিছে।”^{১০} জোৰণ বহু নীতি নিয়মৰ মাজেৰে সমাপন কৰা হয়। “প্ৰথমেই তামোল কটাৰীৰ তামোলটো কইনাৰ শিৰত থৈ

তাৰ ওপৰত জোৰণৰ বাবে নিয়া আঙুঠি দি সুগন্ধি তেল তিনিবাৰ দৰাৰ মাকে কইনাৰ মুৰত দি সেই আঙুঠিৰে গোলা সেন্দূৰ শিৰত পিন্ধাই দিলে।”^{১১}

১.০৩.০২ অসমত ধাতুসম্পৰ্কীয় লোকবিশ্বাস :

অসমীয়া সমাজত বিশ্বাস কৰা হয় যে সোণৰ অলংকাৰ হেৰুওৱা আৰু পোৱা দুয়োটাই অশুভ। সোণ হেৰোৱাজনৰ বা হেৰোৱা সোণ পোৱা দুয়োজনৰে দুৰ্ঘটনাৰ সন্মুখীন হোৱাৰ সম্ভাৱনা থকা বুলি বিশ্বাস কৰা হয়। অৱশ্যে ইয়াৰ লগত কিছু যুক্তিযুক্ততাও জড়িত হৈ আছে যেন অনুভৱ হয়। কাৰণ আমি সকলোৱে জানো যে সোণ অতি মূল্যবান ধাতু। সেয়েহে সোণেৰে নিৰ্মিত মূল্যবান অলংকাৰ ব্যৱহাৰকাৰী বা অলংকাৰৰ অধিকাৰীয়ে যাতে সতৰ্কতা অৱলম্বন কৰে তাৰ বাবে এই লোকবিশ্বাস প্ৰচলন কৰা হৈছিল।

ঘৰত পুত্ৰ সন্তান থাকিলে বিধৱা মাতৃয়ে হাতত খাৰু আৰু ডিঙিত হাৰ পৰিধান কৰিব লাগে বুলি অসমীয়া সমাজত বিশ্বাস আছে। ভাৰতীয় তথা অসমীয়া সমাজত সোণক এক পবিত্ৰ ধাতু বুলি বিশ্বাস কৰা হয়। গতিকে সেয়েহে সোণৰ অলংকাৰৰ বহুল জনপ্ৰিয়তা অসমীয়া সমাজত দেখা যায়। ঘৰ এখনৰ অসুচি গুচাবলৈ সেইকাৰণে বহুত সময়ত আমি পানীত এৰা গাখীৰ দি তাত চাউল আৰু সোণৰ বা ৰূপৰ অলংকাৰ ডুবাই ৰাখি তুলসী পাতেৰে ছটিয়াই ঠাইখিনি শুচি কৰা হয়।

মানৱ সভ্যতাত লোহা ধাতুবিধৰ গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকা সৰ্বজন স্বীকৃত। ভাৰতীয় তথা অসমীয়া সভ্যতাৰ অগ্ৰগতিত গুৰুত্বপূৰ্ণ ভূমিকাৰ অধিকাৰী এই ধাতুটি বিভিন্ন প্ৰকাৰৰ ৰোগ নিৰাময়, জন্ম, বিবাহ তথা মৃত্যুৰ দৰে অনুষ্ঠানৰ অপৰিহাৰ্য উপকৰণ হিচাপে স্বীকৃতি লাভ কৰিছে। অৱশ্যে ইয়াৰ বিপৰীত চিত্ৰ এখনো আমাৰ সমাজত দেখিবলৈ পোৱা যায়। কিছুমান লোকবিশ্বাসত লোহাক একেবাৰে পৰিহাৰ কৰি চলা দেখা পোৱা যায়। প্ৰাচীন গ্ৰীচত মন্দিৰৰ ভিতৰত লোহাৰ প্ৰৱেশ নিষিদ্ধ আছিল। চ’ল’ম’ন মন্দিৰ নিৰ্মাণৰ সময়ত হাতুৰী বা কোৰৰ শব্দ শুনা যোৱা নাছিল বুলি কোৱা হয়। হিন্দুসকলে পুণ্যস্থানৰ সময়ত লো স্পৰ্শ নকৰে বুলি কোৱা হয়। কাৰণ লোহাক এক অশুভ ধাতু বুলি গণ্য কৰা হয়। লোকবিশ্বাস অনুসৰি লোহা চুৰ কৰিলে ব্যক্তিগত জীৱনত সুখ স্বাচ্ছন্দ্য লাভ কৰিব নোৱাৰে যাৰ বাবে চুৰেও লো চুৰ কৰিবলৈ ইতস্ততঃবোধ কৰে বুলি

কোৱা হয়। বেদজ্ঞসকলে জুইশালত কেতিয়াও লোহাৰে নিৰ্মিত অস্ত্ৰ নিবলৈ অনুমতি নিদিয়ৈ। পূজা- অৰ্চনাৰ সময়ত হাতত লোহাৰ আঙুঠি বা লোহাৰ অলংকাৰ পৰিধান কৰি থাকিব দিয়া নহয়।

২.০০ সামৰণি :

ওপৰোক্ত আলোচনাৰ পৰা এই সিদ্ধান্ত উপনীত হ'ব পাৰি

যে অসমৰ সমাজ আৰু সংস্কৃতিত অলংকাৰৰ গুৰুত্ব অপৰিসীম। অলংকাৰে সৌন্দৰ্যবৰ্ধনৰ উপৰি মানুহৰ মনত জন্ম হোৱা ভয় শংকা দূৰ কৰা আহিলা হিচাপে ব্যৱহাৰ হোৱাৰ লগতে বিভিন্ন প্ৰতীকৰূপেও ব্যৱহাৰ হয়। গতিকে অসমীয়া সমাজ আৰু সংস্কৃতিত অলংকাৰৰ ব্যৱহাৰ একবাৰে এৰাব নোৱাৰা। □

পাদটিকা :

- ১। অসমীয়া লোক সংস্কৃতিৰ আভাস, নবীন চন্দ্ৰ শৰ্মা, পৃ. ১০০
- ২। অসমীয়া লোক সংস্কৃতিৰ আভাস, নবীন চন্দ্ৰ শৰ্মা, পৃ. ১০৪
- ৩। বত্ন, জ্যোতিষ আৰু বিজ্ঞান, ড° প্ৰণৱজ্যোতি ডেকা, পৃঃ ১
- ৪। বত্ন, জ্যোতিষ আৰু বিজ্ঞান, ড° প্ৰণৱজ্যোতি ডেকা, পৃঃ ৩৮
- ৫। গহনা-গাঁঠি, যুগল দাস, পৃ. ৫
- ৬। অসমৰ লোক-সংস্কৃতি, নিৰ্মলপ্ৰভা বৰদলৈ, পৃ. ৬
- ৭। অসমীয়া লোক-সংস্কৃতিৰ আভাস, ড° নবীন চন্দ্ৰ শৰ্মা, পৃঃ ১৪০
- ৮। অসমৰ লোকসংস্কৃতি, নিৰ্মলপ্ৰভা বৰদলৈ, পৃঃ ১১
- ৯। অসমৰ লোকসংস্কৃতি, নিৰ্মলপ্ৰভা বৰদলৈ, পৃঃ ১৩
- ১০। অসমৰ লোকসংস্কৃতি, নিৰ্মলপ্ৰভা বৰদলৈ, পৃঃ ১৭
- ১১। অসমৰ লোকসংস্কৃতি, নিৰ্মলপ্ৰভা বৰদলৈ, পৃঃ ১৮

গ্ৰন্থপঞ্জী :

- গগৈ, লীলা আৰু হৰিপ্ৰসাদ। সম্পা। অসমীয়া সংস্কৃতি। গুৱাহাটী : বনলতা, ২০০৩। ছপা।
- গগৈ, লোকেশ্বৰ। অসমৰ লোকসংস্কৃতি। গুৱাহাটী : ক্ৰান্তিকাল প্ৰকাশন, ২০১১। ছপা।
- ডেকা, প্ৰণৱজ্যোতি। বত্ন, জ্যোতিষ আৰু বিজ্ঞান। কলিকতা : কেম্ব্ৰিজ লেজাৰ প্ৰিণ্ট। ১৯৯৫। ছপা।
- দাস, নাৰায়ণ। সম্পা। মহাপুৰুষ শ্ৰীশ্ৰীশংকৰদেৱ বিৰচিত ৰুক্মিণী হৰণ কাব্য। গুৱাহাটী : বাণী লাইব্ৰেৰী, ২০১২। ছপা।
- দাস, নাৰায়ণ আৰু ৰাজবংশী পৰমানন্দ। সম্পা। অসমৰ সংস্কৃতি কোষ। গুৱাহাটী : জ্যোতি প্ৰকাশন, ২০১৪। ছপা।
- দাস, যুগল। অসমৰ লোক-কলা। গুৱাহাটী : প্ৰকাশন পৰিষদ : অসম, ১৯৬৮। ছপা।
- । গহনা-গাঁঠি। গুৱাহাটী : অসম প্ৰকাশন পৰিষদ, ১৯৮৮। ছপা।
- বৰদলৈ, নিৰ্মলপ্ৰভা। অসমৰ লোক-সংস্কৃতি। গুৱাহাটী : বীণা লাইব্ৰেৰী, ১৯৭২। ছপা।
- বৰা, দেৱজিত। উত্তৰ-পূৰ্বাঞ্চলৰ জনগোষ্ঠীয় লোক-সংস্কৃতি। গুৱাহাটী : এম আৰ পাব্লিকেশ্যন, ২০১৪। ছপা।
- বৰুৱা, বিৰিঞ্চি কুমাৰ। অসমৰ লোকসংস্কৃতি। গুৱাহাটী : বীণা লাইব্ৰেৰী, ১৯৯২। ছপা।
- শৰ্মা, নবীন চন্দ্ৰ। অসমীয়া লোক সংস্কৃতিৰ আভাস। গুৱাহাটী : বীণা লাইব্ৰেৰী, ২০১৫। ছপা।

लेखकों से निवेदन

- द्विभाषी राष्ट्रसेवक में प्रकाशन हेतु पत्रिका की प्रकृति के अनुरूप भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक लेख आमंत्रित हैं।
- अनूदित रचनाओं के संदर्भ में मूल लेखक की अनुमति/स्वीकृति अनिवार्य है।
- लेखक अपनी रचनाएँ केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी यूनिकोड में 13 प्वाइंट में टंकित करारकर पत्रिका के ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com पर अथवा स्पष्ट अक्षरों में लिखकर समिति कार्यालय के पते (मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-781032, असम) पर भेजें।
- अस्वीकृत रचनाएँ लौटाई नहीं जाएँगी। अतः भेजी गई रचना की प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- लेखक अपनी रचना के साथ अपना नाम, पदनाम, मोबाइल नं., ई-मेल, पूरा पता सहित एक पासपोर्ट साइज फोटो अवश्य भेजें।
- शोधपत्र की न्यूनतम शब्द-सीमा 2500 और अधिकतम 3000 होनी चाहिए और सार 150 से 200 शब्दों के भीतर होना चाहिए।
- असमीया भाषा में लिखे गए लेख को पेजमेकर फारमेट में गीतांजलि फॉन्ट, 12 प्वाइंट में टाइप करारकर भेज सकते हैं।
- शोधपत्र के लेखन में एमएलए शैली का अनुपालन करना होगा।
- शोधपत्र में क्रमशः शीर्षक, सार, प्रस्तावना, उद्देश्य, संसाधन/सामग्री, प्रविधि/पद्धति, क्षेत्र, मूल विषयवस्तु का विश्लेषण, परिणाम/उपलब्धियाँ, निष्कर्ष और उद्धृत कार्य शामिल होंगे।
- शोधपत्र की मौलिकता हेतु रचना के साथ घोषणा-पत्र संलग्न किया जाना आवश्यक है।
- लेखक अपनी तथ्यात्मक सटीकता के लिए पूरी तरह जिम्मेदार हैं।

द्विभाषी राष्ट्रसेवक का सदस्यता प्र-पत्र

नाम :
पदनाम :
पूरा पता :
ई-मेल : मोबाइल :
RTGS का विवरण :

सदस्यता शुल्क

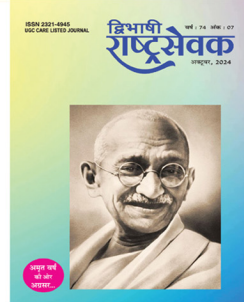
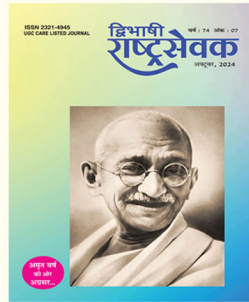
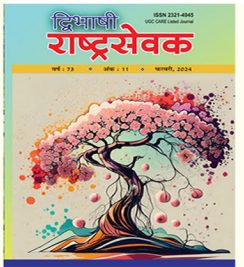
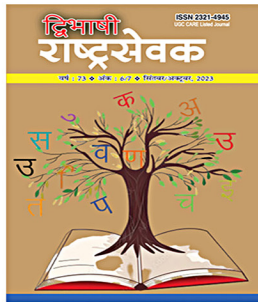
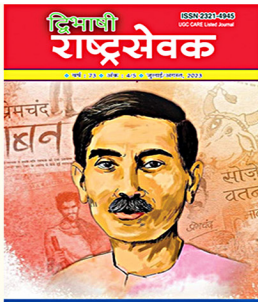
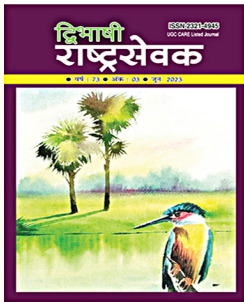
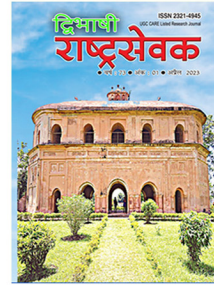
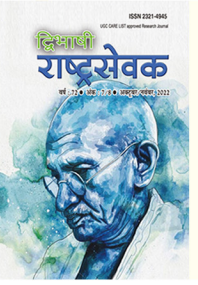
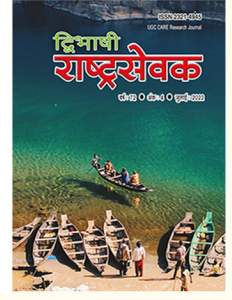
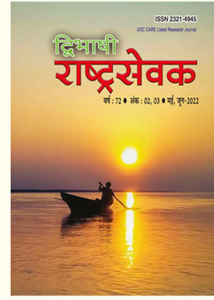
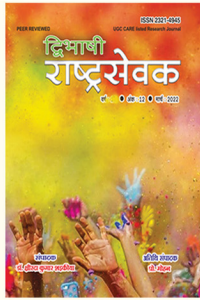
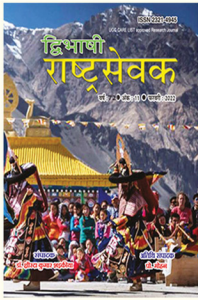
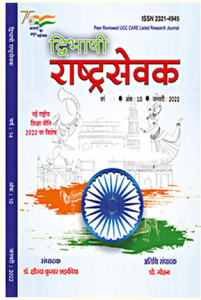
व्यक्तिगत		संस्थागत	
प्रति अंक	: रु. 100/-	प्रति अंक	: रु. 150/-
वार्षिक	: रु. 1000/-	वार्षिक	: रु. 1,500/-
आजीवन सदस्य	: रु. 10,000/-		

निर्धारित शुल्क मनीऑर्डर/डी.डी. के द्वारा असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के नाम से समिति कार्यालय के पते पर भेजा जा सकता है। ऑनलाइन शुल्क निम्न विवरण के अनुसार भेजें :-

Name of Beneficiary : Asom Rastrabhasha Prachar Samiti
A/c No. : 551802010004619
Name of Bank & Branch : Union Bank of India, Hatigaon Chariali, Dispur-781038
IFS Code : UBIN0555185

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें -

डॉ. क्षीरदा कुमार शङ्कीया, मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, डाक : इंद्रपुर, जिला : कामरूप
महानगर, गुवाहाटी-781032 (असम), मो. 9101541380, ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com



संपादकीय कार्यालय :

प्रधान संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-781032

arpsguwahati.cor ✉ rastrasewak51@gmail.com ☎ 9101541395/9101541380